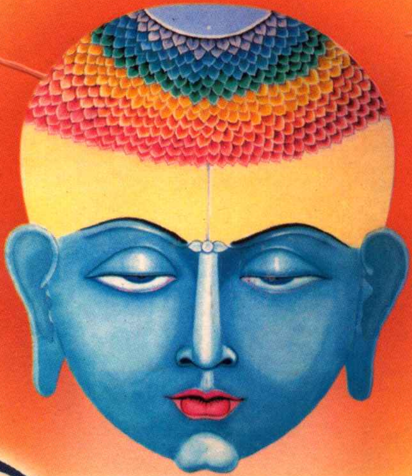

श्रीविद्या-साधना

(श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन)

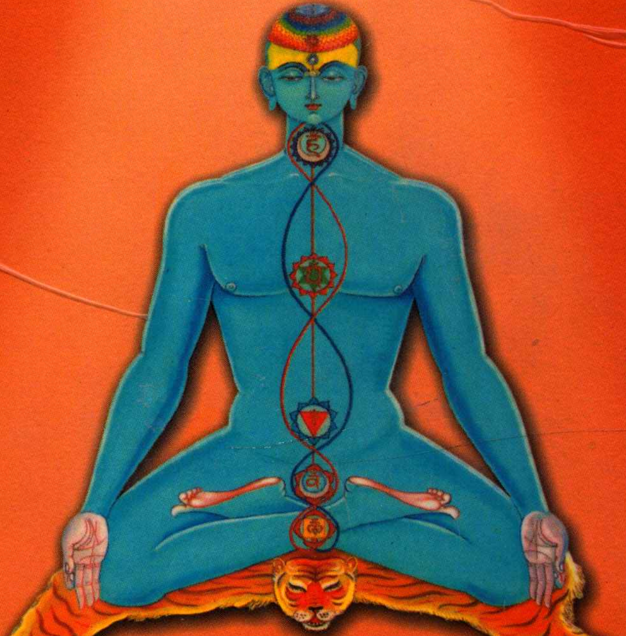

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

महत्त्वपूर्ण तन्त्रशास्त्रीय प्रकाशन

* **तन्त्रसारः** (१-२ भाग) : परमहंस मिश्र
* **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
* **वर्णबीजप्रकाशः** : परमहंस मिश्र
* **तन्त्रालोकः** (१-५ भाग) : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **स्वच्छन्दतन्त्रम्** (१-२ भाग) : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **नेत्रतन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
* **रुद्रयामलम्** (१-२ भाग) : सुधाकर मालवीय
* **शारदातिलकम्** (१-२ भाग) : सुधाकर मालवीय
* **मन्त्रमहोदधिः** : सुधाकर मालवीय
* **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
* **तन्त्रराजतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
* **त्रिपुरारहस्यम्** (१-२ भाग) : जगदीशचन्द्र मिश्र (ज्ञान एवं माहात्म्य खण्ड)
* **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
* **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **भूतडामरतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस० एन० खण्डेलवाल
* **गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः** : गदाधर प्रसाद शर्मा
* **विज्ञानभैरवः** : बापूलाल आँजना
* **मन्त्र एवं मातृकाओं का रहस्य** : शिवशङ्कर अवस्थी
* **तन्त्रविज्ञान एवं साधना** : सीताराम चतुर्वेदी
* **पुरश्चर्यार्णवः** (मूलमात्रम्)
* **प्राणतोषिणी** (मूलमात्रम्)
* **श्रीदेवीरहस्यम्** (मूलमात्रम्)
* **बृहन्नीलतन्त्रम्** (मूलमात्रम्)
* **सप्तशतीसर्वस्वम्** : सरयू प्रसाद द्विवेदी

Text with English Translation—

* Kamakalavilasa : Dwivedi & Malviya
* Mahanirvana Tantra : M. N. Dutta
* The Shiva Samhita : S. C. Basu
* The Gheranda Samhita : S. C. Basu
* The Hatha Yoga Pradipika : P. Singh

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

३९१

श्रीविद्या - साधना

श्रीविद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन

(प्रथम भाग : १-३ परिच्छेद)

लेखक

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

Dr. Shyama Kant Dwivedi

M.A. ,M.Ed.,

Ph.D., D. Litt.

Vyākarnāchārya

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक
© चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : २३३५२६३; २३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण २००५ ई०
मूल्य : १२००.०० (१-२ भाग)

प्रकृत मौलिक ग्रन्थ के विषयक्रम, रेखाचित्र, चित्र आदि का सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा स्वायत्तीकृत है।

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो० बा० नं० २११३
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : २३८५६३९१

❖

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : २४२०४०४

अक्षर-संयोजक
मुकेश कम्प्यूटर्स, वाराणसी

मुद्रक
ए० के० लिथोग्राफर्स, दिल्ली

श्रीविद्या का निहितार्थ

'श्रीविद्या' वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्य विद्याओं में से अन्यतम विद्या है। यह सिद्धियों का रत्नाकर एवं मोक्ष का अन्यतम साधन है। 'श्रीविद्या' श्री की विद्या है। इसमें निहित 'श्री' शब्द 'शकार, रकार, ईकार एवं बिन्दु' का कल्पवृक्ष है। यही 'षोडशी कला' भी है और भगवती त्रिपुरसुन्दरी भी। लक्ष्मीधर ने ठीक ही कहा है—

'षोडशी कला शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।'

श्रीविद्या 'चन्द्रविद्या' है, चन्द्रकला 'अमृतकला' है, भगवती कुण्डलिनी 'अमृतलहरी' हैं और वे 'श्रीस्वरूपा' (त्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा) हैं।

दश महाविद्याओं में एक महाविद्या षोडशी या श्रीविद्या भी है। इसकी 'त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी, सुभगा, बालत्रिपुरसुन्दरी' आदि अनेक नामों से पूजा की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्करराय, पुण्यानन्दनाथ आदि परमोपासक रहे हैं। पौराणिक परम्परा की दृष्टि से इसके द्वादश सम्प्रदाय और द्वादश उपासक हैं। इनका यन्त्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है। दश या अट्ठारह महाविद्याओं के दो कुल हैं। उनमें से एक 'काली-कुल' है और दूसरा 'श्रीकुल'। श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बद्ध है। इस श्रीयन्त्र के मुख्यतः तीन सम्प्रदाय हैं— हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। श्रीयन्त्र के अन्तरतम में जो 'बिन्दु' होता है, वही है— भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, आसन एवं धाम। यही है— ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड का उद्भव-केन्द्र। भगवती का श्रीयन्त्र समस्त सृष्टि का रेखात्मक चित्र तो है ही; साथ ही यह अनन्त देवी-देवताओं, शक्तियों तथा समस्त रचनास्तरों, लोकों एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म मण्डलों का भी निवासस्थान है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना यद्यपि 'पशु, वीर एवं दिव्य' तीन भावों से की जा सकती है; किन्तु दिव्यभाव सर्वोत्तम होता है। शाक्तों के तीन सम्प्र-दाय प्रमुख हैं— कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग। आदि शङ्कराचार्य समय-

मार्गी थे। समयमार्गी शाक्त वेदों, पुराणों, सदाचारों एवं विधि-निषेधों में आस्था रखते हैं; किन्तु कौल इस लक्ष्मणरेखा को नहीं मानते।

'समयाचार' श्रीविद्या की आन्तर पूजा का प्रतिपादक है— 'समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः।' 'परमशिव' के साथ 'शक्ति' का या 'समय' के साथ 'समया' का सामरस्य कराना ही समयाचारियों का परम लक्ष्य है।

श्री सम्प्रदाय अद्वैतवादी दर्शन में विश्वास रखता है; अतः 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति ही उनका काम्य है।

श्रीविद्या के साधनापथ में भक्ति, ज्ञान एवं योग तीनों स्वीकृत हैं। षट्-चक्र-वेधन के द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत करके उसके वियुक्त प्रियतम 'अकुल' से उसका सम्मिलन कराना भी एक साधन-पथ है तथा 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' के द्वारा (ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य करके) विश्वात्मा (भगवती ललिता) का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधन-पथ है। ये दोनों पथ श्रीविद्या में स्वीकृत हैं। श्रीविद्या की साधना में 'बहिर्याग' से उत्कृष्टतर 'अन्तर्याग' का ही आत्मीकरण माना जाता है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्व-मय भी। यथार्थतः तो वे 'कामेश्वर' भी हैं और 'कामेश्वरी' भी।

बैन्दवस्थान में सहस्त्रदल कमल है और उसमें भगवती की पूजा आदर्श पूजा है। चन्द्रमण्डल से विगलित अमृत से सिक्त श्रीचक्ररूपी त्रिपुरा की पुरी में पूजा करना ही यथार्थ पूजा है। बैन्दवपुर ही 'चिन्तामणि गृह' है। सामयिकों के मत में इसी चिन्तामणि गृह में या सहस्त्रदल कमल में भगवती की पूजा की जानी चाहिये; न कि बाह्य पीठ आदि पर। 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्त्रदलकमल एव न तु बाह्ये पीठादौ' कहकर लक्ष्मीधर ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है।

प्राक्कथन

वैदिक विद्याओं में 'श्रीविद्या' सर्वोच्च विद्या है। इसी का अपर रूप 'गायत्री मन्त्र' में स्फुरित हुआ है। देव्युपनिषद् एवं अथर्ववेद-सौभाग्यखण्ड इस विद्या को रहस्यात्मक आवरण या प्रतीकात्मक शब्दावली में इस प्रकार प्रकट करता है—

[१]कामो योनि: कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्र:।
पुनर्गुहा सकला मायया चपुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम्।।

तैत्तिरीयारण्यक श्रुति में श्रीयन्त्र का भी उल्लेख किया गया है—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मय: कोश: स्वर्गे लोको ज्योतिषावृत:।।

शङ्कराचार्य के चारो पीठों में प्रारम्भ से आज तक श्रीयन्त्र एवं श्रीविद्या की अनवरत रूप में उपासना चली आ रही है; क्योंकि आद्य शङ्कराचार्य शैव होते हुये भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के परमोपासक थे। हयग्रीव, अगस्त्य, दत्तात्रेय, दुर्वासा, परशुराम, गौड़पाद, शङ्कराचार्य, भास्करराय, उमानन्दनाथ एवं अमृतानन्दनाथ आदि आचार्यों ने श्रीविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रणयन तो किया ही; पराभट्टारिका राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी या भगवती ललिता की उपासना भी की।

उत्तर भारत में श्रीविद्या एवं श्रीविद्या-सम्प्रदाय के प्रचलन की तो बात ही क्या; यहाँ तो सामान्यत: लोगों को इनका नाम भी ज्ञात नहीं है। इस विद्या की रहस्यात्मकता, उच्च स्तरीयता, अतिशय क्लिष्टता एवं अगम्यता के कारण समस्त उत्तर भारत में इसका प्रचार-प्रसार अवरुद्ध ही रहा और प्राय: लोग श्रीविद्या के नाम से भी अनजान रहे।

भगवती राजराजेश्वरी ललिता देवी का नाम 'त्रिपुरा' भी है; क्योंकि—

त्रिमूर्त्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्या:।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।

सिद्धेश्वरीमत के अनुसार—

ब्रह्मा-विष्णु-महेशानैस्त्रिदेवैरर्चिता पुरा।
त्रिपुरेति तदा नाम कथितं दैवतै: पुरा।।

आचार्य भास्करराय की दृष्टि में 'त्रिपुरा' नाम की सार्थकता इसलिये है; क्योंकि—

---

१. 'अथर्वशीर्ष' में पाठान्तर : 'कामो योनि: कमला वज्रपाणि।'

'अथ त्रीणि पुराणि ब्रह्म-विष्णु-शिवशरीराणि यस्मिन् सः त्रिपुरः परशिवः, तस्य पुराणि सुन्दरी शक्तिः।'

ऋग्वेदीय त्रिपुरोपनिषद् के अनुसार 'त्रिपुरा' पद की सार्थकता निम्न तथ्यों के कारण है—

१. भगवत्ती त्रिपुरा तीन पुरों की अधीश्वरी हैं।
२. तीन पन्थ वाली हैं।
३. समस्त (त्रिलोक) एवं प्राणियों की जननी (जन्मदात्री) हैं।
४. वे 'अ-क-था' हैं।
५. वे अक्षरा हैं।
६. वे अजरा हैं।
७. वे पुराणी हैं।
८. वे देवों का अधिष्ठान हैं।

तिस्रः पुरस्त्रिप्रथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा।
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

'त्रिपुराविद्या' के ज्ञानाधिगम से साधक सिद्ध-संघ का अधिपति बन जाता है—

अथ वक्ष्ये परां विद्यां त्रिपुरामतिगोपिताम्।
यं ज्ञात्वा सिद्धिसन्धानामधिपो जायते नरः।। (शारदातिलक)

यह विद्या वाग्भवबीज, कामबीज एवं कामराजबीज के भेद से बीजत्रयात्मिका है—

वाग्भवं प्रथमं बीजं काम बीजं द्वितीयकम्।
तृतीयं कामराजाख्यं त्रिभिर्बीजैरितीरिता।। (शारदातिलक)

भगवती त्रिपुरा की 'पञ्चदशी विद्या' का परिचय इस प्रकार है—

पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरसुन्दरी।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पंक्तिः समीरितः।।

भगवती त्रिपुरा की उपासना वाममार्ग एवं दक्षिणमार्ग दोनों में प्रचलित है। आचार्य विद्यानन्द (अर्थ० में) कहते हैं कि इनकी प्रधान साधना दक्षिणमार्गानुष्ठिता है। आचार्य दीपकनाथ (त्रिपुरसुन्दरीदण्डक में) कहते हैं कि उनकी प्रधान साधना का मार्ग वाम-मार्ग है—'सुस्फुटं वाममार्गस्य सर्वोत्तमत्वं समुपदिश्यते।' इनमें वाममार्ग तो कौलमार्ग है और दक्षिणमार्ग समयमार्ग है। भगवती त्रिपुरा की उपासना कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग—तीनों में प्रचलित है।

दस महाविद्याओं में भगवती 'षोडशी' (महात्रिपुरसुन्दरी) तृतीया 'महाविद्या' हैं। दस महाविद्यायें निम्नाङ्कित हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।।

वामकेश्वरतन्त्र में इन्हीं भगवती त्रिपुरा देवी को 'त्रिविधा' कहा गया है, जो कि ज्ञान-शक्ति, क्रियाशक्ति एवं इच्छाशक्ति के रूपों में तथा त्रिदेवों के रूप में विभाजित है—

त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये।।

अन्त में मैं इस पुस्तक के वैचारिक केन्द्र में स्थित 'श्रीविद्या' की अधिष्ठात्री परदेवता के श्रीपादपद्मों में नमन करते हुये ऋषि दुर्वासा के शब्दों में निवेदन करना चाहता हूँ कि—

आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीतमहोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानानर्घ्यविभूषणैरगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारि सुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम।।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

सीधी (म० प्र०)
कार्त्तिकपूर्णिमा-२०६१

प्रस्तावना

भारतीय दर्शनों के आर्ष सूत्र-वाङ्मय पर दृष्टिपात किया जाय तो हमें उनमें तीन प्रकार की जिज्ञासायें दृष्टिगोचर होती हैं—

१. 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (वेदान्तसूत्र) : बादरायण व्यास।

२. 'अथातो धर्मजिज्ञासा' (मीमांसासूत्र) : ऋषि जैमिनि।

३. 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' (शक्तिसूत्र) : ऋषि हयग्रीव एवं ऋषि अगस्त्य।

उपर्युक्त तीनों सूत्रों की मानसपटल पर उपस्थिति होने के साथ ही यह स्पष्ट होता है कि जहाँ एक ओर बादरायण व्यास की जिज्ञासा का केन्द्र 'ब्रह्म' था तो दूसरी ओर ऋषि जैमिनि की जिज्ञासा का केन्द्र ब्रह्म न होकर 'धर्म' था। एक के ध्यान एवं उपासना का विषय निर्गुण, निराकार, निरञ्जन परात्पर सत्ता थी तो दूसरे के ध्यान एवं उपासना का विषय वेद एवं यज्ञ था। व्यास का 'वेदान्तदर्शन' यद्यपि निर्गुण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करके उसके स्वरूप की मीमांसा करता रहा; किन्तु जैमिनि का 'मीमांसादर्शन' परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करते हुये स्वर्ग के साधनभूत वेद, धर्म, यज्ञ एवं यज्ञीय कर्म आदि की मीमांसा में रत रहा। एक की दृष्टि में विश्व के सृजन, पालन एवं संहार के लिये किसी परात्पर परमात्म सत्ता में विश्वास करना सर्वथा आवश्यक था, जबकि दूसरे को इन सृष्ट्यादिक व्यापारों के निष्पादन के लिये किसी भी परात्पर परमात्म सत्ता के अस्तित्व की आवश्यकता ही नहीं थी। इन दोनों ही दर्शनों की जिज्ञासाओं में किसी परात्पर, निरपेक्ष, सार्वभौम, नित्य एवं सर्वादिकारणभूता परा शक्ति के चिन्तन की कथमपि आवश्यकता नहीं थी। फलस्वरूप तान्त्रिकों ने वही कार्य किया, जिसे ब्रह्म-जिज्ञासुओं एवं धर्म-जिज्ञासुओं ने नहीं किया और इसीलिये उन तान्त्रिकों की जिज्ञासा का विषय परात्परा स्वातन्त्र्य शक्ति-समन्विता, अद्वितीया, सर्वादिकारणभूता, अजा, एका, ब्रह्मस्वरूपा एवं अवाङ्मनसगोचरा, अद्वैत महाशक्ति का अनुसन्धान बना; जिसके परिणामस्वरूप उनकी जिज्ञासा ने 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' के रूप में आकार ग्रहण किया। इसी शक्ति को 'बह्वृचोपनिषद्' में कामकला, शृङ्गारकला, एका, सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी, परं ब्रह्म, आत्मा, ब्रह्मसंवित्ति, सच्चिदानन्दलहरी, चिन्मात्र, षोडशी, श्रीविद्या, सुन्दरी, बाला, अम्बिका, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, सावित्री, सरस्वती, गायत्री और ब्रह्मानन्द कला कहा गया। 'भावनोपनिषद्' में इन्हें कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता एवं 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' में भगवती त्रिपुरा, परमा विद्या, त्रिपुरा परमेश्वरी, त्रिपुरा शक्ति, महाकुण्डलिनी, कामाख्या, तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपदेवतापरिवृता, सकलकलाव्यापिनी,

त्रिकूटा, त्रिपुरा, परमा माया, श्रेष्ठा, परा भगवती लक्ष्मी, परा वैष्णवी, चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनी चन्द्रकला, सप्तदशी, चैतन्यरूपिणी, सुन्दरी महामाया, सर्वसुभगा महाकुण्डलिनी, चित्कला एवं महात्रिपुरा आदि कहा गया। 'सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्' में इन्हें ही तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपपीठ-देवतापरिवृता, चतुर्भुजा, श्रियं, हिरण्यवर्णा आदि कहा गया।

'त्रिपुरोपनिषद्' की उस 'एका स आसीत् प्रथमा सा', 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' की 'सैवेयं भगवती त्रिपुरेति', 'बह्वृचोपनिषद्' की 'महात्रिपुरसुन्दरी, परब्रह्म, पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुरसुन्दरी' एवं 'भावनोपनिषद्' की 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्ति एवं इच्छाशक्तिर्महात्रिपुर-सुन्दरी' देवी एवं उनकी स्वात्मभूता 'श्रीविद्या' एवं 'श्रीचक्र' के स्वरूप की विवेचना ही शाक्तदर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बना।

शाक्तदर्शन एवं शाक्तोपासना का आर्ष सूत्र है— 'अथात: शक्तिजिज्ञासा।'

ऋग्वेद की प्रथम ऋचा 'अग्निमीळे पुरोहितम्' से लेकर अथर्ववेद तक, संहिता से लेकर उपनिषद् तक, स्मृतियों से लेकर पुराणों तक, साङ्ख्य दर्शन से लेकर न्याय-वैशेषिक तक के समस्त दार्शनिक चिन्तनों में विश्व की आधारभूता परा सत्ता का विमर्शन पुरुषाकाररूप में ही किया गया है। कहीं उस सर्वानुस्यूत, सर्वाधार, सर्वव्याप्त, सर्वस्वरूप, सर्वाकार, सर्वात्मक एवं सर्वातीत परा सत्ता को 'ब्रह्म' कहा गया तो कहीं 'परमेश्वर'। कहीं उसे 'परमात्मा' कहा गया तो कहीं 'भगवान्'। कहीं 'परमशिव' कहा गया तो कहीं 'महाविष्णु'। प्रत्येक पुरुषाकार परा सत्ता के साथ उसकी शक्ति की भी कल्पना की गई और वही कल्पित शक्ति कहीं समवायिनी अभिन्न शक्ति के रूप में तो कहीं अचिन्त्य मायाशक्ति के रूप में, कहीं सत् रूप में तो कहीं असत् रूप में कल्पित की गई; लेकिन किसी ने भी उसे निरपेक्ष परात्पर परा सत्ता के रूप में कल्पित नहीं किया। वेदान्तसूत्रों की व्याख्या भी शक्तिवाद को मूल सिद्धान्त मान कर नहीं की गई।

यद्यपि वेदों में 'सरस्वती, ऊषा, अदिति, वाणी, रात्रि, गायत्री, सावित्री, राका, सिनीवाली, दुर्गा, त्रिपुरा, सुभगा, सुन्दरी, अम्बिका, चिति, श्रीविद्या, ललिता, श्री' आदि देवियों की परा शक्ति के रूप में कल्पना दृष्टिगोचर होती है; किन्तु दार्शनिक प्रस्थानों में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की भाँति 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' के रूप में पृथक् दार्शनिक चिन्तन के रूप में उसे कोई स्थान नहीं मिला।

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष (अथर्ववेद) में समस्त देवताओं द्वारा देवी से अपना परिचय देने के अनुरोध का उल्लेख है। सारे देवता पूछते हैं— हे महादेवी ! तुम कौन हो? : 'काऽसि त्वं महादेवीति'। देवी कहती हैं— 'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी, मत्त: प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्, शून्यञ्चाशून्यञ्च, अहमानन्दानानन्दौ, अहं विज्ञानाविज्ञाने, अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि, अहमखिलं जगत्, वेदोऽहमवेदोऽहम्, विद्याहमविद्याहम्, अजाहमन-जाहम्, अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक्चाहम्।' आदि।

इन्हीं के विषय में देवताओं ने भी कहा कि— 'एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। .... सैष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। विश्वरूपिणी, अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका, मन्त्राणां मातृका, शब्दानां ज्ञानरूपिणी, ज्ञानानां चिन्मयातीता, शून्यानां शून्यसाक्षिणी।'

इस प्रकार शक्ति (नारी) को परात्पर परब्रह्म के रूप में स्थान तो मिल गया; किन्तु शक्तिवाद की सुदृढ़ स्थापना तो त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद्, भावनोपनिषद्, सरस्वतीरहस्योपनिषद्, सीतोपनिषद्, बह्वृचोपनिषद्, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् आदि; अगस्त्य के शक्तिसूत्र, हयग्रीव के शाक्तदर्शनम्, दत्तात्रेय की दत्तसंहिता, परशुराम के परशुरामकल्पसूत्र, त्रिपुरारहस्य, दुर्वासा के ललितास्तवरत्न, पराशम्भुस्तोत्र, त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र, सौभाग्यभास्कर, कालिकापुराण, देवीभागवतपुराण, ललितासहस्रनाम, सप्तशती, गौडपाद की सुभगोदयस्तुति, शङ्कराचार्य की सौन्दर्यलहरी, पुण्यानन्द के कामकलाविलास, अमृतानन्द एवं भास्कर के ग्रन्थों (दीपिका, सेतुबन्ध, वरिवस्यारहस्यम् आदि), अगस्त्य के शक्तिमहिम्नस्तोत्र एवं क्षेमराज के शक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों के द्वारा ही हो पायी। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की तरह 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' प्रथम सूत्र के रूप में पहली बार हयग्रीव के 'शाक्तदर्शनम्' एवं अगस्त्य के 'शक्तिसूत्र' में ही अवस्थान प्राप्त कर सका।

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जो मन्त्रों में 'मातृका', शब्दों में 'ज्ञान', ज्ञानों में 'चिन्मयातीता' एवं शून्यों में 'शून्यसाक्षिणी' है। देव्युपनिषद् में कहा भी गया है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी॥[१]

यहाँ वही जिज्ञास्य है, जो कामकला, शृंगारकला, परा शक्ति, शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या तथा प्रत्यक् चितिस्वरूपा महात्रिपुरसुन्दरी है;[२] जो षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कहलाती है;[३] जो इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति एवं कुण्डलिनी तथा महात्रिपुरसुन्दरी है;[४] जो कामेश्वरी, सदानन्दघना, पूर्णा एवं स्वात्मैक्यरूपा देवता है।[५]

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जिसकी उपासना में 'इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक ब्रह्मग्रन्थिमत् रसतन्तु ब्रह्मनाडी' ब्रह्मसूत्र हैं, 'चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्फुरण' ही वस्त्र है, 'चिच्चन्द्रमयी सर्वाङ्गस्रवण' ही स्नान है, 'रक्तशुक्लपदैकीकरण' ही पाद्य है, 'स्वच्छस्वपरिपूरणानुस्मरण' ही गन्ध है, 'सच्चिदुल्काऽकाशदेहो' दीप है और 'मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्यन्तं गतागत रूप' प्रादक्षिण्य है।[६] यह साधना का वह उच्चतम स्तर है—

१. देव्युपनिषत्
२. बह्वृचोपनिषत्
३. बह्वृचोपनिषत्
४. बह्वृचोपनिषत्
५. बह्वृचोपनिषत्
६. भावनोपनिषत्

● जहाँ निरोध, उत्पत्ति, बन्धन, साधना, मुमुक्षता, मुक्ति, बद्ध, साधक, मुमुक्षु एवं मुक्त की अवधारणा भी मिथ्या हो जाती है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।[१]

● जहाँ ज्ञान-विज्ञान-तत्पर योगी धान्यार्थी की भाँति समस्त बाह्याडम्बरों का 'पलाल' की भाँति त्याग कर देता है—

पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थमशेषतः।[२]

● जहाँ आन्तर पूजा ही यथार्थ पूजा होती है—

'अतः समयिनामैहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम्।'

(लक्ष्मीधरा)

● जहाँ मन्त्रों का पुरश्चरण, जप, बाह्य होम, बाह्य पूजा के लिये कोई स्थान नहीं है और हृत्कमल एवं सहस्रार में पूजा ही यथार्थ पूजा है—

'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति, जपो नास्ति, बाह्यहोमोऽपि नास्ति, बाह्यपूजा-विधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावदनुष्ठेयम्।'

● जहाँ बाह्य पूजा निषिद्ध है; सनत्कुमारसंहिता में कहा भी गया है—

बाह्यापूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।

● जहाँ मन्त्र-जप-जपाङ्ग, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, ध्याता-ध्यान-ध्येय, उपासक-उपासना-उपास्य, साधक-साधना-साध्य, देवता, ऋषि, छन्द, वर्ण, नाद, शून्य, अवस्था, मन्त्रार्थ, जगत्, ग्रह, नक्षत्र, चक्र, राशि, शक्तिचक्र, गुरु एवं भगवती महात्रिपुर-सुन्दरी के मध्य स्थित सारे द्वैत ध्वस्त होकर पूर्ण सामरस्य की अनुभूति होती है।

● जहाँ शिव और शक्ति, भक्त और भगवान्, कुल एवं अकुल, षट्चक्र एवं श्रीचक्र, श्रीचक्र एवं शरीर, शिवचक्र एवं शक्तिचक्र, मूलाधार एवं सहस्रार, कुण्डलिनी एवं महाकुण्डलिनी आदि सभी अपनी-अपनी भेदात्मकता का त्याग करके अद्वैतभावापन्न होकर एक हो जाते हैं।

● जहाँ समग्र, सार्वभौम, सर्वव्यापक एवं नित्य सामरस्य ही पूर्ण उपलब्धि होती है।

● जहाँ कर्म-ज्ञान-भक्ति-उपासना एवं योग अपने-अपने भेद-भाव का त्याग करके गंगा-जमुनी संगम में रूपान्तरित होकर एक हो जाते हैं।

यह 'श्रीविद्या' ब्राह्मीभाव, ब्रह्माद्वैत एवं पञ्चकृत्यकारी परमशिव की विमर्शस्वरूपा आत्मशक्ति की साधना की संदेशवाहिका है। यहाँ पहुँचकर ज्ञान एवं योग एक हो जाते

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषत् २. त्रिपुरातापिन्युपनिषत्

हैं तथा यहाँ ज्ञान एवं योग का प्राधान्य होते हुये भी 'भक्ति' की मन्दाकिनी ही सर्वाधिक पूज्या है। आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।।[१]

यहाँ पहुँचकर ज्ञानमार्गी, केवलाद्वैतवेदान्ती आचार्य शंकर भी अपनी ब्रह्मरूपता की अस्मिता भूलकर कह उठते हैं—

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो वै तरङ्गः न तारङ्गो वै समुद्रः।।

यहाँ जगत् ब्रह्म एवं जीव से भिन्न 'विवर्त' नहीं है; प्रत्युत यहाँ यह परा शक्तिस्वरूप है, ब्रह्माभिन्न है और 'परिणाम' है—

'शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थः। यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते, तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते .... चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।[२]

आचार्य भास्कर अपने वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं—

'स्वाभिमतः परिणामवाद एव स्फुटीकृतः।'

आचार्य शंकर ने भी इसकी पुष्टि की है। शक्तिसूत्र की व्याख्या में आचार्य क्षेमराज ने जगत् को शिव एवं शिवा से अभिन्न माना है—

'स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र कारणत्वम्, चिदेव भगवती .... स्वच्छस्वतन्त्ररूपा .... जगदात्मना स्फुरति .... कार्यकारणभावः, विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव, श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति; जगतः प्रकाशात्म्येनावस्थानम्।'

जगत् दुःख नहीं है; प्रत्युत शिव को आह्लादित करने वाला एवं उनके द्वारा संरचित आह्लादकारी चित्र है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति भगवान् शिवः।।

अगस्त्यकृत शक्तिसूत्र के अनुसार तो मुक्ति की प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप इस प्रकार है—

'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते। मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति।'[३]

शिवसूत्रविमर्शिनी (आचार्य क्षेमराज) के अनुसार तो बन्धन एवं मुक्ति का स्वरूप निम्नानुसार है—

'आत्मन्यनात्मताभिमानरूपाख्यातिलक्षणाज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलं बन्धो, यावदानात्मनि शरीरादावात्मताभिमानात्मकमज्ञानमूलं ज्ञानमपि बन्ध एव। शिवाभेदाख्यात्यात्मका ज्ञानस्वभावो-

---

१. शिवस्तोत्रावली
२. योगिनीहृदयदीपिका : अमृतानन्द
३. शक्तिसूत्र

ऽपूर्णम्मन्यतात्मकाणवमलसतत्वसङ्कुचितज्ञानात्मा बन्धः।'[१]

प्रत्यभिज्ञा भी मुक्ति है।

यहाँ आसन, कम्बल आदि बाह्य वस्तु नहीं हैं। यहाँ ३६ तत्त्व ही 'आसन' हैं। इसीलिये योगिनीहृदय में कहा भी गया है—

षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यन्तमासनं परिकल्प्य च।

शाक्तदर्शन के अनुसार जगत् चिन्मय एवं आनन्दमय है।[२]

भगवती हैं तो एक; किन्तु क्रीड़ा-व्यापार में अनेक बन जाती हैं—

त्वमेव तासां रूपेण क्रीडसे विश्वमोहिनी।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
सन्दृश्यसे बहुविधा ननु नर्वकीव।

जगत् शक्ति की क्रीड़ा है।

यहाँ माना गया है कि जगत् परमाणुओं से नहीं; बल्कि इच्छा-ज्ञान-क्रिया, परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी से उत्पन्न होने के कारण मूलतः परमाण्वात्मक न होकर मातृकात्मक एवं शक्त्यात्मक है।

यहाँ गुरु बाह्य विग्रह नहीं; प्रत्युत भगवती स्वयं गुरु हैं—

त्वामिच्छाविग्रहां देवी गुरुरूपां विभावयेत्।[३]

यहाँ परमशिव, जगत्, चक्र, श्रीविद्या एवं भगवती से तादात्म्य प्राप्त कर लेना ही 'मुक्ति' है।

वर्ण, पद, मन्त्र (शब्दाध्व) एवं कला, तत्त्व तथा भुवन (अर्थाध्व) से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। शिव एवं शक्ति ही 'शब्द' एवं 'अर्थ' हैं। शाब्दी सृष्टि से ही आर्थी सृष्टि का उदय हुआ है। अतः शाक्तदर्शन वर्ण, मन्त्र, नाद आदि की विवेचना पर अधिक चिन्तन करता है। 'जगत्' शब्द का विवर्त है; अतः मूल तत्त्व तो 'शब्द' ही है। शब्दों की मूल चेतना परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाक् में अन्तःगर्भित है और भगवती स्वयं ही परा-पश्यन्ती-मध्यमास्वरूपा वर्णात्मिका एवं मन्त्रात्मिका हैं। चूँकि मन्त्र एवं यन्त्र तथा श्रीविद्या एवं देवतातत्त्व मूलतः अभिन्न हैं; अतः अद्वैत से प्रारम्भ की जाने वाली यह शाक्तोपासना तभी चरितार्थ होती है, जबकि उपासक सभी के साथ अपना सामरस्य स्थापित कर सके। शाक्तोपासना 'शक्ति' की उपासना है, स्वात्मस्वरूपा भगवती ललिता का साक्षात्कार है तथा 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अद्वैतानुभूति है।

---

१. क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी

२. योगिनीहृदय

३. योगिनीहृदय-१९८

श्रीचक्र में स्थित सर्वानन्दमय 'बिन्दुचक्र' सहस्रार का प्रतीक है और निःशेष विश्व एवं विश्व की निःशेष सत्ताओं के उद्भव का केन्द्र है। यहीं कामेश्वर एवं कामेश्वरी सामरस्यावस्था में परस्पर लीन हैं। यही स्थान 'आदि दम्पति' का राजशौध है।

'श्रीविद्या' एक रहस्यविद्या है। 'श्रीयन्त्र' चक्राधिपति यन्त्र है। श्रीविद्या, श्रीचक्र, श्रीदेवी, जगत्, साधक एवं साधना में ऐकात्म्य की अनुभूति ही श्रीविद्योपासना का उद्देश्य है।

मैंने इस ग्रन्थ में उपासना के क्रमिक सोपानों का विवेचन नहीं किया है और न तो मैंने इस दृष्टि से ही इसे प्रणीत किया है कि इसके आलोक में प्रातःकाल से चतुर्थ याम (चतुर्थ सन्ध्या)-पर्यन्त अनुष्ठीयमान, साधना-सोपानों पर आरूढ़ होकर उपासना-यात्रा यथाक्रम निष्पादित की जा सके। अन्य बहुत-से ऐसे ग्रन्थ हैं, जो कि एतदर्थ द्रष्टव्य हैं।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरा मुख्य उद्देश्य 'श्रीसम्प्रदाय, श्रीविद्या, भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, मन्त्र, यन्त्र, श्रीयन्त्र, पीठ, देवता, ध्यान, भक्ति, भाव, पूजा, जप, न्यास, गुरु, दीक्षा' आदि तत्त्वों के मूल स्वरूप का उद्घाटन करना एवं उनमें अन्तर्निहित रहस्यात्मक बिन्दुओं की विवेचना करना है। इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना भी जान-बूझ कर छोड़ दी गई है और साथ ही श्रीविद्या, श्रीचक्र एवं श्रीदेवी (भगवती ललितादेवी) की साङ्गोपाङ्ग, क्रमिक उपासना के पृथुल कर्मकाण्डीय विधानों को भी चिन्तन का विषय नहीं बनाया गया है।

भगवती की उपासना के पूर्व उपासना के अङ्गों, उपाङ्गों, साधनों, अधिकारों, भावनात्मक स्तरों, मानसिक वृत्तियों एवं अपने आधिकारिक स्तरों का ज्ञान अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य को केन्द्र में रखकर मैंने इन बिन्दुओं पर सविस्तार प्रकाश डाला है। इसकी विवेचना इसलिये भी आवश्यक थी, क्योंकि श्रीसम्प्रदाय की उपासना में प्रयुक्त समस्त साधनतत्त्व अन्य उपासनाओं की तुलना में अधिक सूक्ष्म, रहस्यमय, प्रतीकात्मक, विशिष्टार्थ-गर्भित एवं अद्वैतात्मक है।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

विषयानुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद : अध्याय १-५

शाक्तमत एवं श्रीसम्प्रदाय

विषय	पृष्ठाङ्क
प्रथम अध्याय	**७-२१**
शाक्तसम्प्रदाय : एक विहङ्गमावलोकन	
श्रीविद्या एवं शक्त्युपासना की शाखायें	७
तान्त्रिक उपासना	८
तन्त्र : एक विहङ्गमावलोकन	८
तन्त्र या आगम की दृष्टियाँ	८
शाक्ततन्त्र के प्रमुख लक्षण	८
तन्त्र के विभिन्न प्रकार	८
तान्त्रिक सम्प्रदाय	९
शाक्तागम की प्रमुख विद्यायें	९
तन्त्र के सप्ताचार	९
तन्त्रशास्त्र में ज्ञान-भक्ति की दृष्टि	९
तन्त्र के भावत्रय	१०
तन्त्र में यजन के भेद	१०
तन्त्र के पादचतुष्टय	१०
तन्त्र या आगम के तत्त्व	१०
शैवागम के स्रोत	१०
तन्त्र के षट्कर्म	१०
तन्त्र का भोग-मोक्षसमन्वयवाद	१०
तन्त्र के पञ्च मकार	११
शाक्तागम के भेद	११
शाक्तोपासना के मुख्य केन्द्र	११
शाक्तों के मुख्य सम्प्रदाय	११
कौलसम्प्रदाय	११
पूर्वकौल एवं उत्तरकौल	११
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	१२
श्रीविद्यागम की सन्तानें	१२
देश का वर्गीकरण	१२
शाक्तपूजा के प्रधान केन्द्र	१३
शाक्ततन्त्र के आचार्य और उनकी रचनायें	१३
शाक्तयुग	१५
काश्मीरी तान्त्रिकों के ग्रन्थ	१५
आम्नाय-विभाजन	१५
पूर्वाम्नाय	१६
पश्चिमाम्नाय	१६
उत्तराम्नाय	१६
दक्षिणाम्नाय	१६
अधाम्नाय	१६
ऊर्ध्वाम्नाय	१६
शाक्तमत और उसका आदिकाल	१७
रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत	१७
श्रीचक्र	१७
शक्ति के कामप्रधान रूप की विवेचना	१९
नवव्यूह	१९
कालव्यूह	२०
कुलव्यूह	२०
नामव्यूह	२०
ज्ञानव्यूह	२०
चित्तव्यूह	२०
नादव्यूह	२०
बिन्दुव्यूह	२०
कलाव्यूह	२०

विषय	पृष्ठाङ्क
जीवव्यूह	२०
अद्वैतवाद-तान्त्रिकों के मार्गत्रय	२१
आचार	२१
पञ्च मकार	२१
द्वितीय अध्याय	**२२-५८**
शाक्तमत एवं श्रीविद्या	
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	२२
कौलमार्ग	२२
शाक्तमत और कौलाचार	२३
प्राचीन कौलसम्प्रदाय	२३
अन्य कौलसम्प्रदाय	२४
डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का मत	२४
त्रिपुरोपासना के उपसम्प्रदाय	२५
त्रिकोण के भेद	२७
लक्ष्मीधर की दृष्टि में कौलमार्ग	२८
कुल, अकुल और कौल	२९
कुल की अन्य व्याख्यायें	३०
कुल का वंशानुगत अर्थ	३०
कुल का योगशास्त्रानुगत अर्थ	३०
कुल का दर्शनानुगत अर्थ	३०
ज्ञान की व्यापकता	३१
कुण्डलिनी शक्ति	३१
गुरुतत्त्व	३१
कुण्डलिनी के विभिन्न स्वरूप	३२
कुमारी कुण्डलिनी और उसका अवस्थान	३२
योषित् कुण्डलिनी और उसका यात्रापथ	३३
पतिव्रता कुण्डलिनी और यात्रापथ	३४
पतिव्रता कुण्डलिनी की लयभूमि	३५
श्रीचक्रक्रम	३६
कुण्डलिनी का स्वस्थान	३७
कुण्डलिनी-तत्त्व और शक्ति-जागरण	३७
कुमारी कुण्डलिनी	३७
योषित् कुण्डलिनी	३८
पतिव्रता कुण्डलिनी	३८
शक्तिकुण्डलिनी	३८
कुण्डलिनी	३९
विसर्ग	३९
श्रीविद्या-सम्प्रदाय का वर्णविज्ञान और उसका रहस्य	३९
वर्ण का शक्तित्व और शिवत्व	३९
कुण्डलिनी शक्ति और भगवती महात्रिपुरसुन्दरी	४१
पराकुण्डलिनी	४१
वर्णकुण्डलिनी	४१
प्राणकुण्डलिनी	४२
ऊर्ध्वकुण्डलिनी	४२
शक्तिकुण्डलिनी	४२
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनीस्वरूप	४५
वाग्देवता कुण्डलिनी का स्वरूप	४५
पञ्चमकारों के प्रतीकार्थ	४६
पञ्चमकारोपयोगविषयक भ्रामक दृष्टि का निराकरण	४८
पञ्चमकारों का प्रतीकात्मक उपयोग	४९
समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीयता का भाव	५०
आगमसार	५०
वर्ण एवं आश्रमधर्म के अनुकूल पञ्चमकारों का उपयोग	५१
त्रिपुरा देवी के सङ्केतत्रय	५१
कौलाचार एवं समयाचार	५२
समयिमत	५४
भगवती का पूजा-विधान	५५
भगवती की पूजा के प्रकार	५५
साधना एवं पूजा के अन्य भेद	५५
परमशिव द्वारा अनुष्ठित देवी की नित्योदिता पूजा का स्वरूप	५६

विषय **पृष्ठाङ्क**

परापूजा का स्वरूप ५६
सहस्रदल कमल की पूजा ५८

तृतीय अध्याय ५९-८५

शाक्तदर्शन : एक विहङ्गमावलोकन

शाक्तदर्शन का दार्शनिक पक्ष एवं सृष्टि ५९
कामकला तत्त्व ५९
अहंतत्त्व ६०
अद्वैतवाद ६०
तत्त्व ६०
विमर्श ६१
शिव ६१
विश्व ६२
परम सत्ता ६२
सक्रिय परमशिव ६२
जगत् का स्रष्टा शिव और जगत् शिव का स्पन्द ६२
परमसत्ता में इच्छा-ज्ञान-क्रिया-स्वातन्त्र्य-चैतन्य-आनन्द का समावेश ६३
परमतत्त्व में शिव एवं शक्ति का सामरस्य ६३
परमशिव एवं विश्व का सम्बन्ध ६३
आदिशक्ति एवं परतत्त्व ६३
महालक्ष्मी का स्वरूप ६३
अवतारक्रम ६४
भगवती महालक्ष्मी ६४
आदिशक्ति ६४
अथर्वशीर्षोक्त आत्मशक्ति : श्रीमहाविद्या का स्वरूप ६४
महात्रिपुरसुन्दरी महाविद्या का स्वरूप ६५
योगनिद्रा : दशभुजी भगवती महाकाली ६५
अष्टादशभुजी महालक्ष्मी ६५
अष्टभुजी महासरस्वती ६५
चतुर्भुजी महालक्ष्मी ६५

विषय **पृष्ठाङ्क**

भगवती का स्वरूप एवं उनका नाम ६६
चतुर्भुजी महाकाली ६६
दुर्गासप्तशती के प्रधान देवता ६८
जगत् ६८
जीवात्मा ७१
पुरुष और प्रकृतितत्त्व तथा शिव और शक्तितत्त्व ७३
शिव और शक्ति ७४
सृष्टि और उसका प्रयोजन : क्रीडा-लीला-चित्र-स्वेच्छा ७५
शैव सिद्धान्त, काश्मीरीय शैव दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त ७६
सृष्टि का प्रयोजन : लीलावाद एवं अनुग्रह ७६
सृष्टि का प्रेरणा-केन्द्र ७७
लीलावाद एवं इच्छा-सृष्टिवाद ७८
शाक्त सम्प्रदाय की मुक्तिसम्बन्धिनी अवधारणा ७८
हयग्रीवप्रणीत शाक्तदर्शनम् की दृष्टि ७८
जीवन्मुक्ति ७९
हयग्रीव की मुक्तिसम्बन्धिनी दृष्टि ८०
प्रजापति का मत ८०
बादरी का मत ८१
शक्तिसूत्रं के अनुसार मुक्ति का स्वरूप ८३
आचार्य अगस्त्य की दृष्टि ८३
प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति ८४
ब्रह्मीभाव ही मुक्ति ८४
आत्मज्ञान ही मुक्ति ८४

चतुर्थ अध्याय ८६-९२

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

निर्गुण रूप ८६
पुरुष रूप ८६

विषय	पृष्ठाङ्क
नारी रूप	८६
भगवती के अन्य रूप	८७
श्रीविद्या की निरतिशय महत्ता	८७
श्रीविद्या का महत्त्व	८७
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	८९
मुक्ति	९१
नाद एवं बिन्दु	९२
पञ्चम अध्याय	**९३-१०७**
श्रीविद्योपासना	
पन्द्रह तिथियों की देवी के नाम	९३
त्रिपुरसुन्दरी	९४
श्रीविद्या	९५
ऐक्यचतुष्टय	९५
चक्र एवं श्रीविद्यात्मक यन्त्र	९५
श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में तदात्मकता	९५
श्रीविद्या के मन्त्राक्षर एवं उनका रहस्य	९५
श्रीविद्या का स्वरूप	९६
श्रीयन्त्र का स्वरूप	९६
श्रीयन्त्र की उत्पत्ति	९७
कुण्डलिनी और श्रीविद्या	९७
कूटत्रय का अर्थ	९८
गुरु का ध्यान	९९
श्रीविद्या के अंग	९९
शाक्तदर्शन के दर्शनिक विचार	९९
ह्रींकारत्रय	९९
स-क-ल	९९
श्रीविद्या के तीन खण्ड	१००
सुभगोदय की दृष्टि के अनुसार तिथियाँ, उनके नाम एवं कलायें	१००
तिथियों के नाम	१००
दर्शादि कलाओं का खण्डत्रय-विभाजन	१००
दर्शा आदि कलाओं का स्वरूप	१००
आग्नेय खण्ड की कलायें	१००
सौरखण्ड की कलायें	१०१
सौम्यखण्ड की कलायें	१०१
सादाख्या चन्द्रकला	१०२
बाह्य पूजा का खण्डन	१०२
श्रीविद्या का स्वरूप	१०३
श्रीचक्र का विभाजन	१०४
श्रीयन्त्र का विभाजन	१०४
श्रीचक्र एवं सत्यलोकादि लोकों में ऐक्य	१०४
श्रीचक्र एवं सुतल, वितल, पातालादि में ऐक्य	१०४
पिण्ड एवं श्रीचक्र में ऐक्य	१०४
श्रीविद्या मन्त्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य	१०५
नाद-बिन्दु का ऐक्य	१०५
पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य	१०५
श्रीचक्र एवं त्रिपुरा के त्रिपुरात्व में अन्त:सम्बन्ध	१०६
श्रीचक्र का अर्चनक्रम	१०६
पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐकात्म्य	१०६

द्वितीय परिच्छेद : अध्याय ६-१५

देवतातत्त्व

विषय	पृष्ठाङ्क
षष्ठ अध्याय	**११३-१६५**
श्रीविद्या में देवतातत्त्व	
अनुबन्धचतुष्टय	११३
देवता	११४
विमर्शदर्पण	११४
(अ) देवता तत्त्व	११४
देवताओं के तीन स्वरूप	११४
देवताओं के वर्ण	११५
'देवता' शब्द का अर्थ	११५
देवों की व्यापकता	११६

विषय	पृष्ठाङ्क
देवता का मूल स्वरूप	११७
देवता की परिभाषा	११७
देवताओं के प्रकार	११८
देवताओं के भेद	११८
आजानदेवता	११८
मर्त्य देवता	११९
अधिष्ठातृ देवता	११९
एकदेववाद	११९
वस्तुविभाग एवं देवविभाग	११९
छन्द	१२०
देवता	१२०
विनियोग	१२०
विष्णुपुराण की दृष्टि से देवता का स्वरूप	१२०
देवताओं के गण	१२१
देवताओं के मुख्य स्थान	१२१
देवता की उत्पत्ति	१२१
जप एवं देवता तथा नौ तत्त्व	१२१
मन्त्राधीनञ्च देवता	१२१
देवता की परिभाषा (कुलार्णवतन्त्र)	१२१
बीज और देवता	१२२
बीजसाधन	१२२
भगवत् सत्ता एवं गुरु में ऐकात्म्य	१२४
देवतास्वरूपिणी भगवती विमर्शशक्ति	१२४
मन्त्र और देवता में अभेद	१२४
देवता का स्थूल रूप	१२६
देवता का सूक्ष्म रूप	१२६
देवता का पर रूप	१२६
ऋषि	१२६
नवार्णमन्त्र	१२६
मातृकामन्त्र	१२६
रामरक्षास्तोत्र	१२६
देवी का कवच	१२६

विषय	पृष्ठाङ्क
अर्गलास्तोत्रमन्त्र	१२६
कीलकमन्त्र	१२६
श्रीसूक्तमन्त्र	१२७
श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्र	१२७
मन्त्र-देवता और उनकी जपसंख्या	१२७
छन्द	१२७
ऋषि	१२७
काली देवी के मन्त्र	१२८
देवता के रूप	१२८
देवता के उपासनाभेद	१२८
भावनोपास्ति	१२८
वामकेश्वरतन्त्र की दृष्टि	१२९
देवता का चक्रस्वरूप	१२९
(आ) त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	१२९
बैन्दवी कला और त्रिपुरसुन्दरी	१३०
भगवती त्रिपुरा	१३०
ब्रह्म की निष्क्रियावस्था : परा संवित् अवस्था	१३१
कामकलाविलास में पुण्यानन्द की दृष्टि	१३२
त्रिपुरभैरवी	१३३
षोडशी विज्ञान	१३६
अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि	१३७
सोलहवीं तुटि के भाग	१३९
शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम	१३९
कृष्ण पक्ष के दिनों के नाम	१४०
दिनों की फलश्रुति	१४०
दर्शा	१४०
षोडशी	१४१
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप : कामकलाविलास	१४२
महाबिन्दु और भगवती त्रिपुरसुन्दरी	१४२
कामबीज एवं त्रिपुराभैरवी	१४२
बीजत्रय	१४३
भगवती की नखशक्ति	१४४

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती की उँगलियों के नख एवं भगवान् के दशावतार	१४४
दशावतारों का भगवती के साथ तादात्म्य	१४४
भगवती का कूटस्वरूप	१४५
भगवती का मन्त्रस्वरूप	१४५
महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान	१४५
ललितासहस्रनाम की दृष्टि	१४६
षोडशी	१४८
त्रिमूर्त्ति	१४८
त्र्यक्षरी	१४९
चिदेकरसरूपिणी	१४९
महात्रिपुरसुन्दरी के तीन रूप	१४९
(इ) दशमहाविद्या एवं त्रिपुरसुन्दरी	१४९
दशमहाविद्याओं के नामों में मतभेद	१५०
कालीकुल और श्रीकुल	१५१
काली के भेद	१५१
काश्मीरप्रचलित दश विद्या	१५२
सृष्टिकाली	१५२
रक्तकालिका	१५२
कामकलाविद्या का महत्त्व	१५३
महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	१५३
भद्रकाली के भेद	१५३
कालीकुल	१५४
श्रीकुल	१५४
दश एवं अष्टादश महाविद्या	१५४
षोडशी, त्रिपुरभैरवी एवं अन्य महाविद्याओं का आविर्भाव	१५५
शक्ति का निरपेक्ष स्वतन्त्र रूप	१५६
कठोर रूप	१५७
सौम्य रूप	१५७
भुवनेश्वरी	१५७
महाविद्याओं के प्राकट्य का अन्य वृत्तान्त	१५७
१. कालिकापुराण	१५७

विषय	पृष्ठाङ्क
२. दुर्गासप्तशती	१५८
३. नारदपाञ्चरात्र	१५८
जगन्निर्मात्री भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप-विस्तार	१५८
दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र और त्रिपुरासिद्धान्त	१५९
त्रिपुरासिद्धान्त	१६०
त्रिपुरासिद्धान्त एवं प्रत्यभिज्ञा का अन्तस्सम्बन्ध	१६१
चन्द्रमा और त्रिपुरसुन्दरी	१६३
षोडशी कला और सुन्दरी	१६४
मन्त्र, चक्र एवं देवता की एकात्मता	१६५
सप्तम अध्याय	**१६६-२०५**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	
१. ब्रह्मवैवर्तपुराण की दृष्टि से महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	१६७
भगवती के विभिन्न स्वरूपों का वर्गीकरण	१६८
भगवती की शक्तियों के व्यापार	१६८
२. भगवती का मालिनी स्वरूप	१६८
वर्णमाला के दो स्वरूप	१६९
उत्तरमालाक्रम सृष्टि	१६९
परात्रिंशिकाक्रम	१६९
उत्तरमालिनी वर्णमाला और मूलतत्त्व	१६९
उत्तरमालिनीक्रम	१७०
परात्रिंशिका की दृष्टि	१७०
मालिनीरूप शब्द से जगतरूप अर्थ की सृष्टि का क्रम	१७०
सच्चिदानन्द, परमशिवस्वरूप अ-अ-क्ष	१७१
भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही जगत्	१७२
भगवती शम्भु का शरीर	१७२
३. महात्रिपुरसुन्दरी का सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार स्वरूप	१७२

विषय	पृष्ठाङ्क
ललितासहस्रनाम की दृष्टि से भगवती के विभिन्न स्वरूप	१७२
४. त्रिपुरारहस्य में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	१७६
५. आचार्य भास्करराय की दृष्टि और भगवती त्रिपुरसुन्दरी	१७७
स्थूल रूप	१७८
सूक्ष्म रूप	१७८
पर रूप	१७८
६. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी : सच्चिदानन्दलहरी	१७९
महात्रिपुरसुन्दरी की ब्रह्मात्मकता एवं आनन्दात्मकता	१७९
आनन्दात्मिका विद्या	१८०
आनन्द और उनकी तुलनात्मक श्रेणियाँ	१८०
७. प्रपञ्चनिर्मात्री के रूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी	१८१
शिव-शक्तियोग सृष्टि	१८२
तान्त्रिक आचार्य गौडपाद की दृष्टि	१८२
माण्डूक्योपनिषद् की दृष्टि	१८३
शक्ति ही ब्रह्म	१८३
आचार्य क्षेमराज की दृष्टि	१८४
८. त्रिपुरसुन्दरी शब्दात्मिका-वर्णात्मिका नादात्मिका एवं मन्त्रात्मिका	१८५
भगवती त्रिपुरा, नाद एवं मन्त्र	१८५
९. नादात्मक एवं मातृकात्मक रूप में महात्रिपुरसुन्दरी	१८९
वर्णों का स्वरूप एवं शक्ति के साथ उनका तादात्म्य	१९०
१०. भगवती त्रिपुरसुन्दरी का श्रीचक्रात्मक स्वरूप	१९१
बिन्दुचक्र	१९१
आचार्य भास्करराय की दृष्टि	१९१

विषय	पृष्ठाङ्क
पथत्रय	१९२
सालोक्य का पथ	१९२
कैवल्य का पथ	१९२
सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य का पथ	१९२
बिन्दुचक्र	१९२
अकथा	१९३
अक्षरा	१९३
त्रिकोण और वसुकोण	१९४
सृष्टिक्रम	१९४
संहारक्रम	१९४
सृष्टिचक्र : वृत्तत्रयविशिष्ट पद्मद्वय	१९६
भूगृहात्मक नवम चक्र	१९७
भगवती का पञ्चभूतात्मक एवं चक्रात्मक स्वरूप	१९८
११. महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप (भावनोपनिषद्)	१९८
भगवती का कुण्डलिनी-स्वरूप और मातृकात्मक स्वरूप	१९९
१२. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सर्वदेव्यात्मकता	२००
१३. भगवती त्रिपुरा का काम-कलात्मक स्वरूप	२०१
कामकला	२०१
कामकला का स्वरूप	२०२
काम एवं कला की अभिन्नता	२०४
अद्वैतवाद	२०५
अष्टम अध्याय	**२०६-२२६**
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वस्वरूप (सौन्दर्यलहरी के आलोक में)	
१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी-स्वरूप	२०६
२. भगवती का चक्रात्मक स्वरूप	२०६

विषय	पृष्ठाङ्क
३. भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप	२०८
४. भगवती का सहस्रारात्मक स्वरूप	२०९
५. भगवती का तत्त्वात्मक एवं शक्त्यात्मक स्वरूप	२०९
सर्वशक्तिवाद	२१०
भगवती का परमशक्त्यात्मक स्वरूप	२१३
६. भगवती का विश्वात्मक स्वरूप	२१४
शक्तिपरिणामवाद	२१५
७. भगवती का मातृस्वरूप	२१५
८. भगवती का विश्वोद्धारक एवं विद्यास्वरूप	२१६
९. भगवती का कामकलास्वरूप	२१७
१०. भगवती का मन्त्रात्मक या श्रीविद्यात्मक स्वरूप	२१७
'ह्रीं' बीज देवी प्रणव एकाक्षर ब्रह्म	२१८
श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में भगवती की अनुस्यूतता	२१८
११. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के दो विशेष स्वरूप	२१८
भगवती का सगुण स्वरूप	२२०
भगवती का साकार एवं विग्रहस्वरूप	२२०
भगवती का षट्चक्रात्मक शरीर	२२१
भगवती का षट्चक्रात्मक रूप	२२१
भगवती का किरीट	२२२
भगवती के केश	२२२
भगवती की माँग	२२२
भगवती के घुँघुराले बाल	२२२
भगवती का ललाट	२२२
भगवती की भृकुटी	२२२
भगवती के नेत्र	२२२
१२. भगवती का सौन्दर्यात्मक एवं विभूत्यात्मक स्वरूप	२२२
भगवती के नेत्र	२२४
भगवती की कनपटी	२२४
भगवती का मुख	२२४
भगवती के कानों के कर्णपुष्प	२२४
भगवती की नासिका	२२४
भगवती के ओष्ठ	२२५
भगवती का गला	२२५
भगवती की नाभि	२२५
१३. भगवती का करुणात्मक स्वरूप	२२५
नवम अध्याय	**२२७**
बह्वृचोपनिषद् में महात्रिपुरसुन्दरी का चिच्छक्ति का स्वरूप	
१. भगवती का सर्वसृजनात्मक पक्ष	२२७
२. भगवती का परस्वरूप एवं विद्यास्वरूप	२२७
३. भगवती का आत्मरूप, सच्चिदानन्दरूप, चिन्मात्रस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप तथा सोऽहं एवं महाविद्या आदि स्वरूप	२२७
दशम अध्याय	**२२८-२३२**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप	
मन्त्रमय भगवती	२२८
भगवती का सूक्ष्मतम स्वरूप (कुण्डलिनी-स्वरूप)	२२९
भगवती का स्वरूप	२२९
भगवती कुलकुण्डलिनी के विविध रूप	२३०
कुण्डलिनी एवं श्रीविद्या का रहस्यार्थ	२३०
श्रीविद्या का रहस्यार्थ	२३१
कुण्डलिनी ही भगवती त्रिपुरा	२३१
एकादश अध्याय	**२३३-२३४**
सङ्केतपद्धति में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	
शक्तित्रयात्मक भगवती	२३३

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती का मुख	२३३
कामेश्वरी के आयुध	२३३
भगवती का पर्यङ्क	२३४
भगवती का गृह एवं आसन	२३४
श्रीविद्या के लीलाविग्रह	२३४
आत्मशक्ति श्रीविद्या के विभिन्न रूप	२३४
भगवती का शरीर	२३४
द्वादश अध्याय	**२३५**
त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप	
त्रयोदश अध्याय	**२३६**
त्रिपुरोपनिषद् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप	
चतुर्दश अध्याय	**२३७-२३९**
बह्वृचोपनिषद् में वर्णित भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	
१. चिच्छक्ति का स्वरूप	२३७
२. शक्त्यात्मक एवं विद्यात्मक स्वरूप	२३७
३. प्रत्यक् चिति स्वरूप	२३७
४. सर्वात्मक स्वरूप	२३८
५. त्रिपुरसुन्दरी की ब्रह्मरूपता	२३८
६. त्रिपुरसुन्दरी की सच्चिदानन्दरूपता	२३८
७. त्रिपुरसुन्दरी की समस्त आकारों में विद्यमानता	२३८
सर्वं खल्विदं महात्रिपुरसुन्दरी	२३८
८. एकमात्र सत्य वस्तु तथा अद्वितीय अखण्ड परब्रह्म के रूप में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी	२३९
९. महात्रिपुरसुन्दरी : प्रत्येक जीव की ब्रह्मस्वरूप आत्मा के रूप में	२३९
१०. महात्रिपुरसुन्दरी का अनेक शक्तियों के रूप में अवस्थान	२३९

विषय	पृष्ठाङ्क
पञ्चदश अध्याय	**२४०-२७४**
त्रिपुरसुन्दरी का वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप	
१. परा वाक् का स्वरूप	२४०
सुभगोदयवासना	२४१
व्याकरणागम की दृष्टि	२४१
वाणी के भेद	२४२
पश्यन्ती	२४२
भगवती : परा वाक् की भूमि	२४२
परात्रिंशिका की दृष्टि	२४३
बिन्दु (शिव)	२४४
शङ्कराचार्य की दृष्टि	२४४
परावाक् का स्वरूप	२४४
वाक्चतुष्टय	२४५
वाक् तत्त्व	२४५
प्रकाशांश	२४६
विमर्शांश	२४६
शिवांश-शक्त्यंश का सामरस्य और परा शक्ति का नाम	२४६
कामकलाविलास की दृष्टि	२४७
परा वाक् की भावना के प्रकारत्रय	२४७
अवस्थायें (चेतन तत्त्व के पाँच स्तर)	२४८
शब्दों के स्तर	२४८
वाक्तत्त्व के चार भेद	२४९
परा वाक्	२४९
पश्यन्ती वाक्	२५२
मध्यमा वाक्	२५२
वैखरी वाक्	२५२
आचार्य सोमानन्द एवं अभिनवगुप्त के मत में प्रतीयमान वैषम्य	२५५
पश्यन्ती के भेद	२५६
स्थूल पश्यन्ती	२५६
सूक्ष्म पश्यन्ती	२५६

विषय	पृष्ठाङ्क
पर पश्यन्ती	२५६
मध्यमा : विशेष स्पन्द	२५६
वाणियों का स्थान	२५८
श्रीचक्र में शक्तियों की स्थिति	२५८
एका परा	२५८
तदन्या परा	२५८
मध्यमा	२५९
वैखरी वाक् एवं मध्यमा	२५९
प्रकाशांश विमर्शांश	२६०
तन्त्रसद्भाव की दृष्टि	२६१
नव नाद	२६१
हंसोपनिषद् और नाद के भेद	२६१
स्वच्छन्दतन्त्र और नाद के भेद	२६२
सोमानन्दपाद की दृष्टि	२६३
विमर्श शक्ति और परा-पश्यन्ती आदि वाणियाँ	२६४
नादव्यूह और शब्दवृत्तियाँ	२६४
मध्यमा वाक्	२६५
मध्यमा के भेद	२६६
नटनानन्द द्वारा उल्लिखित नादों के प्रकार	२६६
नवनादमयी सूक्ष्मा का स्वरूप	२६६
स्वात्माराम मुनीन्द्रप्रोक्त नादों के प्रकार	२६७
सुषुम्णा में प्राणों के लय से आविर्भूत अनाहत नादों के प्रकार	२६७
नादक्रम	२६७
शिवसंहिताप्रोक्त नादविधान एवं नादक्रम	२६८
अवस्थाद्वय	२६८
घटावस्था	२६८
परिचयावस्था	२६८
निष्पत्त्यवस्था	२६९
वैखरी वाक्	२६९
वाक्तत्त्व एवं श्रीचक्र में सामरस्य	२६९
अन्य प्रकार के सामरस्य का अभेद	२७०
शब्द की जागरावस्था	२७०
ईक्षण	२७१
ईक्षण के सम्बन्ध में भास्करराय की दृष्टि	२७१
शृङ्गाट वपु	२७२
वैखरी और पञ्चदशी मन्त्र	२७३
सुन्दरी के तीन रूप	२७३
पञ्चदशाक्षरी विद्या	२७४

तृतीय परिच्छेद : अध्याय १६-२२

❁ मन्त्रतत्त्व ❁

षोडश अध्याय	**२७९-३२३**
श्रीविद्या एवं मन्त्रतत्त्व	
शून्यभावना	२८०
नादभावना	२८०
(अ) मन्त्रतत्त्व	२८०
तान्त्रिकों की दृष्टि	२८१
मन्त्रतत्त्व की तात्त्विक दृष्टि एवं उसका तात्त्विक स्वरूप	२८१
मन्त्र और उसके जप की साधना का फलितार्थ	२८२
(आ) मन्त्र-विज्ञान	२८८
शब्दब्रह्म, बिन्दु, महामाया एवं मन्त्र	२८८
मन एवं मन्त्र की मात्रायें	२८९
मन्त्र की मात्रायें	२८९
मन्त्र और मन	२९०
शाब्दी वृत्तियाँ और मन्त्र	२९०
मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा	२९०
शब्द के प्रकार और मन्त्र	२९०
मूल मन्त्र का स्वरूप	२९१
बिन्दु-क्षोभ	२९२

विषय	पृष्ठाङ्क
बिन्दु या महामाया तथा शब्द	२९१
परमात्मा और बिन्दु महामाया	२९२
परा वाक् की परा शक्ति	२९३
मन्त्र ही शक्तिसाधना	२९३
शब्दावस्थायें	२९३
मन्त्र ही सृष्टि का आदि, मध्य एवं अन्त	२९५
शब्दब्रह्म और मन्त्र	२९६
सृष्टिक्रम एवं लयक्रम	२९६
प्राणात्मक बीजों से मन्त्र की उत्पत्ति	२९६
योगबीज	२९७
मन्त्र : मन की मात्राओं को क्षीणतर करते जाने का विधान	२९८
मन्त्र : आत्मा की रश्मियाँ	२९८
मन्त्रसाधना : शक्तिसाधना	२९९
शक्ति के रूप	३०१
शक्ति के परिणाम	३०२
विचार और मन्त्र : एक शक्ति के विभिन्न रूप	३०३
मन्त्र और देवता का सम्बन्ध	३०३
मन्त्र और देवता : वाच्य-वाचकसम्बन्ध	३०४
मन्त्राक्षर और देवता के अङ्गों का सम्बन्ध	३०५
मन्त्र और कुण्डलिनी	३०५
मन्त्र और नाद	३०५
मन्त्र और जीव	३०६
मन्त्र और देवता	३०६
(इ) श्रीविद्या	३०६
षोडशाक्षरी विद्या की अवर्णनीय महत्ता	३०७
भगवती के विश्वमय एवं विश्वातीत स्वरूप	३०८
मन्त्र एवं यन्त्र में सामरस्य	३०९
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का विश्वात्मक रूप	३०९
श्रीविद्या की रसात्मकता	३१०
(ई) श्रीविद्या या पञ्चदशी मन्त्र	३१०
श्री	३१०
विद्या	३१०
विद्या का मान्त्रिक स्वरूप	३११
श्रीविद्या के मन्त्रावयव	३११
भगवती के पञ्चदशी मन्त्र के खण्ड	३१२
ध्यातव्य बिन्दु	३१२
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	३१५
श्रीविद्या और उसके मन्त्राक्षर	३१५
तन्त्रराजतन्त्र : एक विहङ्गमावलोकन	३१५
कादिमत	३१६
त्रिकोण	३१६
पूजा के प्रकार	३१७
अद्वैतभावना	३१७
श्रीसम्प्रदाय	३१८
श्रीविद्या के सम्प्रदाय	३१९
प्रागैतिहासिक युग एवं तत्कालीन आचार्य	३१९
कामराजसन्तानक्रम	३१९
लोपामुद्रासन्तानक्रम	३१९
ऐतिहासिक युग के आचार्य	३२१
श्रीयन्त्र और श्रीविद्या	३२२
दश महाविद्यायें	३२२
श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय	३२३
दश महाविद्याओं में प्रधान विद्यायें	३२३
नादतत्त्व एवं श्रीविद्या का अन्तस्सम्बन्ध	३२३
सप्तदश अध्याय	**३२४-३४२**
त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में प्रतिपादित द्वादश विद्यायें	
श्रीचक्र एवं मन्त्र में ऐकात्म्य	३२५
श्रीविद्या : पञ्चदशाक्षरी विद्या : द्वादश विद्यायें	३२५
द्वादश विद्याओं का संघटन तन्त्र	३२६
पञ्चदशी मन्त्र और चक्र	३२८
कुण्डलिनी खण्ड एवं पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के कूट	३२८

विषय	पृष्ठाङ्क
श्रीविद्या के खण्ड	३२९
श्रीविद्या और उसके पचास वर्ण	३२९
पौर्णमासी एवं अमावस्या का स्वरूप	३३०
ध्यान एवं उपासना-विधानक्रम	३३०
श्रीविद्या में समस्त मातृकाओं का अन्तर्भाव	३३३
ऐक्यचतुष्टय	३३३
श्रीविद्या में वर्णमाला के वर्णों का अन्तर्भाव	३३३
कला, यन्त्र एवं मन्त्र की एकता	३३४
दर्शाद्या पूर्णिमान्त कलायें	३३४
अधिदेवता	३३५
अधिष्ठान देवता	३३५
आग्नेय खण्ड	३३५
सौर खण्ड	३३५
चान्द्र खण्ड	३३६
तैत्तिरीय ब्राह्मण की दृष्टि में श्रीविद्या	३३७
उपासनाहेतु प्रशस्त एवं निषिद्ध तिथियाँ	३३८
श्रीविद्या और कामदेव	३३८
श्रीविद्या एवं महात्रिपुरसुन्दरी की अभिन्नता	३३९
गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या	३४०
गायत्री मन्त्र	३४०
श्रीविद्या का महत्त्व	३४०
श्रीविद्या एवं जगत् में तादात्म्य	३४२

अष्टादश अध्याय ३४३-३४५

श्रीविद्या का स्वरूप

विमर्श शक्ति और श्रीविद्या	३४३
गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या का तादात्म्य	३४३

एकोनविंश अध्याय ३४६-३५८

श्रीविद्या के विभिन्न अङ्ग

बाह्य अङ्ग	३४६
आन्तरिक अङ्ग	३४६
बाह्याडम्बरजन्य अङ्ग एवं उपासना	३४६
अन्तरङ्ग	३४६
बहिरङ्ग	३४७
अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग साधनों या अङ्गों में वरीयताक्रम	३४८
गुरुतत्त्व	३४८
श्रीविद्या एवं श्रीविद्योपासना के अंग	३४९
आन्तरिक साधनों की श्रेष्ठता	३५०
बाह्याडम्बरों का खण्डन	३५०
अन्तर्मुखी साधकों की साधना	३५०
जड़ लोगों की साधना	३५०
कामकला एवं मन्त्र	३५०
बाह्यांगों की विवेचना	३५०
मातृका और श्रीविद्या	३५१
वर्ण एवं शक्ति में सम्बन्ध	३५२
परा वाक्, मातृका, पराहन्ता, विमर्श एवं ललिताभट्टारिका	३५२
शक्ति एवं वर्ण	३५२
मातृका के भेद	३५३
वर्णों का वर्ण	३५५
मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोग	३५५
मन्त्र और विद्या	३५६
मन्त्रजप के अंग	३५६
जप के सप्तांग	३५६
व्याहृति या प्रणव	३५७
यन्त्र	३५७
बीज	३५७
जप के अंगभूत तत्त्व	३५८

विंश अध्याय ३५९-३८२

श्रीविद्या का स्वरूप : गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या

गायत्री और पञ्चदशी श्रीविद्या	३५९
गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या में तादात्म्य	३५९

विषय	पृष्ठाङ्क
पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या एवं गायत्री	३६०
शक्तित्रय एवं कूटत्रय	३६५
पञ्चदशी विद्या की सर्वात्मकता	३६६
३६ तत्त्व	३६८
श्रीविद्या का विविध स्वरूप	३६८
बिन्दु की उत्पत्ति	३७०
देवी एवं गुरु के शरीर में अभेद	३७०
माता-विद्या-चक्र-स्वगुरु एवं स्वयं में अभेद	३७०
कुण्डलिनी, श्रीविद्या, ललिता एवं साधक में ऐकात्म्य	३७०
अद्वैतभावना का ग्रहण	३७०
श्रीविद्या एवं तन्निहित अर्थों में अभिन्नता	३७०
देवी के समस्त नाम, एक नाम तथा सम्पूर्ण नाम एवं नाम के एकांश में अभिन्नता	३७१
श्रीविद्या एवं कुण्डलिनी में एकात्मकता	३७३
कामकूट एवं गायत्री का समन्वय	३७५
शक्तिकूट एवं गायत्री का समन्वय	३७६
पञ्चदशी विद्या की अन्तर्निहित शक्तियाँ	३७६
ऋग्वेदीय नासदीय सूत्र में निहित बीजमन्त्र	३७७
श्रीविद्योपासना के अंग	३७८
कूटत्रय का व्यष्टि-समष्टि भेद से चतुर्धा भिन्न स्वरूप	३८०
श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) का जप-काल	३८१
जप के अंग	३८१
एकविंश अध्याय	**३८३-३९६**
श्रीविद्या और कूटत्रय	
भास्करराय द्वारा प्रस्तुत श्रीविद्या का परिचय	३८४
मनोन्मनी	३८५
वर्णों का काल-मान	३८५
वाग्भवकूट	३८६
कामराजकूट	३८६
शक्तिकूट	३८६
हृल्लेखा का स्वरूप	३८६
नाद	३८७
बिन्दु	३८७
अर्धमात्रा	३८७
ह्रींगत नव नाद	३८८
नादसञ्चरण की क्रियाओं के विभिन्न चरण	३८९
अर्धचन्द्र	३८९
निरोधिका या रोधिनी	३८९
नाद और नादान्त	३८९
ह्रीं में अवस्थित नादनवक	३८९
ह्रीं एवं नादनवक	३९०
नाद की अनुभूति	३९१
मात्राकाल का विवरण और श्रीविद्या	३९१
मात्रा	३९१
मात्राओं का आरोहात्मक सूक्ष्म क्रम	३९२
वर्ण और उच्चारणस्थान तथा उच्चारणप्रयत्न	३९३
वर्णों के उच्चारणस्थान	३९३
वर्णोच्चारण में बाह्य प्रयत्न	३९३
वर्णोच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न	३९३
कूटत्रय में मन्त्र का जपकाल	३९४
कूटत्रय (५८ वर्ण)	३९४
मन्त्राक्षरों का उत्पत्तिस्थान एवं यत्न	३९५
जागरण	३९६
स्वप्नावस्था	३९६
सुषुप्ति की अवस्था	३९६
तुरीयावस्था	३९६
तुरीयातीतावस्था	३९६

विषय	पृष्ठाङ्क
द्वाविंश अध्याय	**३९७-४२२**
जपतत्त्व	
सप्तविषुव	३९७
नाद का अन्त और तत्त्वबोध	४००
परमपद	४००
पाँच अवस्थायें	४००
हृल्लेखा के अंग	४०१
अवस्थाओं के स्वरूप	४०१
जप के भेद	४०१
मन्त्रावयवों का रहस्य	४०२
जप	४०२
उच्चारणगत कालतत्त्व	४०३
अनुभव-स्थान	४०३
मन्त्रजप और अर्थभावन	४०४
मन्त्रार्थों के भेद	४०४
श्रीविद्या के १५ अर्थ क्यों?	४०४
योगिनीहृदयप्रतिपादित अर्थ-प्रकार	४०५
पञ्चदशी विद्या की जपांग-स्वरूप अवस्थायें	४०८
पञ्चदशी विद्या-मन्त्र, मात्रा और उसका रहस्य	४०९
मात्रा और उच्चारणकाल	४१०
नाद की अवस्थायें (श्रूयमाणता के आधार पर)	४११
प्रणवस्वरूप महायन्त्र और उसके १२ अवयव	४११
शून्य	४११
नाद की अवस्थायें	४११
मात्रा	४१२
मात्रा और उसका रहस्य	४१२
मात्रा और मन्त्र	४१२
बिन्दु	४१३
अर्धचन्द्र एवं रोधिनी की कलायें	४१४
नादों का उच्चारणकाल	४१४
नाद और वर्ण	४१५
ह्रीं के १२ अवयव	४१५
नौ नाद	४१६
पञ्चदशी मन्त्रजपचिह्न	४१६
पञ्चदशी में स्थित वर्ण	४१६
ॐकार की एकादश कलायें	४१७
प्राथमिक तीन भूमियाँ : अ-उ-म	४१९
प्रणव	४२०
प्रणव के अंग	४२०
मात्राओं के विवरण का सारांश	४२१

चतुर्थ परिच्छेद : अध्याय २३-३३

यन्त्रतत्त्व

विषय	पृष्ठाङ्क
त्रयोविंश अध्याय	**४२७-४३७**
यन्त्रतत्त्व	
यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र	४२७
केन्द्रीयकरण	४२७
यन्त्र के अंग	४२७
रूप और यन्त्र	४२८
यन्त्र का व्युत्पत्त्यात्मक अर्थ	४२९
चक्र, केन्द्र एवं यन्त्र	४३०
परमयन्त्र	४३२
यन्त्रों के विभिन्न प्रकार	४३३
बिन्दु एवं शक्तिकूट या मूल यन्त्र	४३५
यन्त्र का शाब्दिक अर्थ	४३५
यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र	४३६
मन्त्र के विभिन्न तत्त्व	४३७
यन्त्रसाधना की आवश्यकता	४३७
चतुर्विंश अध्याय	**४३८-४६२**
श्रीयन्त्र	
श्रीयन्त्र का अर्थ	४३८

विषय	पृष्ठाङ्क
श्री का अर्थ	४३८
श्री की विश्रमण अवस्था	४३९
मातृका के खण्डत्रय	४४०
श्रीचक्र	४४०
मर्मस्थान	४४०
सन्धिस्थान	४४०
नवयोनिचक्र	४४०
श्रीचक्र के विभिन्न चक्र	४४१
आभ्यन्तर दश कोण	४४१
श्रीचक्र का आविर्भव	४४१
श्रीचक्र का स्वरूप	४४२
यन्त्र के अंग	४४२
श्रीचक्र के आवरण	४४३
मूल चैतन्य के दो पक्ष	४४३
बाह्य दिदृक्षा की उत्तरोत्तर उत्कटता	४४३
श्रीचक्र एवं पिण्डस्थ यौगिक चक्रों का तादात्म्य	४४६
कौलमत	४४६
नव चक्र एवं उनमें अधिष्ठित शक्तियाँ और उनका तादात्म्य	४४७
षट्चक्रों एवं श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में तादात्म्य	४४८
षट्चक्रों एवं श्रीचक्र के नौ चक्रों में तादात्म्य का विवरण	४५२
श्रीयन्त्र में गुरुतत्त्व	४५७
नाड़ीयोग एवं चक्र	४५९
चतुर्दशार के देवता	४६०
बहिर्दशार के देवता	४६०
शक्त्यष्टक	४६०
अष्ट शक्तियाँ	४६०
षोडश शक्तियाँ	४६०
अणिमादिक सिद्धियाँ	४६०
पञ्चबाण	४६०
त्रिकोणाग्र देवता	४६०
अधिदेवता	४६०
श्रीचक्र	४६१
नवरत्नद्वीप	४६१
कल्पतरु	४६१
उद्यान	४६१
षड् ऋतुयें	४६१
पीठ	४६१
इच्छाशक्ति	४६१
होता	४६१
अर्घ्य	४६१
हवि	४६१
श्रीचक्र का पूजन	४६१
कुण्डलिनी	४६१
श्रीचक्र का निर्माण	४६२
पञ्चविंश अध्याय	**४६३-४७७**
श्रीचक्र : श्रीयन्त्र : के नवयोन्यात्मक अवयव	
महाबिन्दु	४६३
बिन्दु	४६३
त्रिकोण	४६३
अष्टकोण	४६३
अन्तर्दशार	४६३
बहिर्दशार	४६४
चतुर्दशार	४६४
अष्टदल	४६५
षोडश दल	४६५
भूपुर	४६५
श्रीयन्त्र का आविर्भाव	४६६
श्रीयन्त्र के प्रादुर्भाव की दार्शनिक दृष्टि	४६७
शान्ता और श्रीचक्र का आविर्भाव	४६७
श्रीचक्र का शिव-शक्तिचक्रात्मक आविर्भाव	४६८
श्रीचक्र का निर्माण	४६९

विषय	पृष्ठाङ्क
संहारक्रम के श्रीयन्त्र का स्वरूप	४७०
सृष्टिक्रम के श्रीयन्त्र का स्वरूप	४७०
मातृका एवं तत्त्वों का सम्बन्ध	४७१
वाग्देवता	४७१
सर्वज्ञादि दश देवता	४७१
महाबिन्दु में सबका अन्तर्भाव	४७१
बिन्दु	४७२
चक्र	४७२
श्रीयन्त्र = त्रिपुरात्मक	४७२
श्रीयन्त्र = त्रिखण्डात्मक	४७३
श्रीयन्त्र शरीरयन्त्र के समतुल्य	४७३
श्रीचक्र = त्रितयात्मक रूपों में	४७३
पिण्ड में सहस्रार	४७३
मन्त्र और चक्र में तादात्म्य	४७४
परमशिव	४७४
अहम्	४७४
स्वात्मविश्रान्ति	४७५
विश्वातीत एवं तत्त्वातीत अवस्था	४७५
आत्मविश्रान्ति एवं शुद्ध अहं	४७६
षड्विंश अध्याय	**४७८-५१६**
श्रीयन्त्र और उसका स्वरूप	
सृष्टिक्रम के अनुसार निर्मित श्रीचक्र	४७८
संहारक्रम के अनुसार निर्मित श्रीचक्र	४७८
९ चक्र : शम्भु की ९ मूल प्रकृतियाँ	४७९
चक्रों के नाम एवं अधिष्ठात्री देवी	४७९
सर्वानन्दमय चक्र	४८०
बिन्दु एवं महाबिन्दु	४८१
श्रीचक्र एवं देवी का अन्तस्सम्बन्ध	४८२
बिन्दुचक्र (पूर्णाहन्ता या शिवभाव)	४८२
पूर्णाहन्ता	४८२
महाबिन्दु और बिन्दु	४८३
सर्वसिद्धिप्रदचक्र	४८४
प्रकृतिसम्बन्धिनी विभिन्न दृष्टियाँ	४८४
त्रिकोणचक्र	४८५
विवर्तवाद	४८५
विमर्श के बिन्द्वाकार से सृष्टि	४८५
त्रिकोणात्मक सृष्टि	४८६
रव : शब्दब्रह्म	४८६
परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी का श्रवण-अधिकार	४८७
बिन्दुरूप परावाक् की सर्वकारणरूपता	४८८
शक्ति के तीन रूप	४८८
बिन्दु से त्रिकोण	४८९
महात्रिकोण एवं वाक्चतुष्टय	४९१
महात्रिकोण (महायोनि)	४९१
यन्त्र और पीठ	४९२
महात्रिकोण एवं पीठ	४९३
पीठतत्त्व	४९३
बिन्दु से महाबिन्दु की यात्रा	४९३
महाबिन्दु	४९३
महाबिन्दु एवं मानवपिण्ड के चक्र	४९३
परम बिन्दु का दशधा विभाजन	४९४
सहस्रारस्थ बिन्दु का अभिव्यक्ति-क्रम	४९४
परमबिन्दु और उसकी चक्रात्मक सृष्टि	४९४
मणिपूर चक्र का जन्म	४९४
अनाहत चक्र का जन्म	४९४
विशुद्धाख्य चक्र का जन्म	४९४
आज्ञाचक्र का जन्म	४९५
सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र	४९६
अष्टार चक्र	४९६
अन्तर्दशार चक्र	४९६
बहिर्दशार चक्र	४९७
चतुर्दशार चक्र	४९७
अष्टदल चक्र	४९७
षोडशार चक्र	४९७
भूपुर	४९७
श्रीयन्त्र की उपासना के मुख्य प्रकार	४९७

विषय	पृष्ठाङ्क
षट्चक्र-श्रीचक्र-अवस्थापञ्चक-श्रीविद्या-पीठ-वर्ण-शक्ति-नाथ-कूट-लिङ्ग आदि का सामरस्यात्मक अन्त:सम्बन्ध	४९८
अक्षरों में तत्त्वों का समावेश तथा चक्रों से सम्बन्ध	५००
अष्टार (नवयोन्यात्मक) चक्र	५०१
प्रमातृपुर	५०२
श्रीचक्र में स्थित त्रिपुटिचक्र	५०३
श्रीचक्र की योनि	५०३
शिवतत्त्व के १० गुप्त भुवन	५०४
शक्तितत्त्व के गुप्त भुवन	५०४
शान्तितत्त्व के १८ गुप्त भुवन	५०५
बिन्दु	५०६
श्रीविद्या एवं श्रीचक्र की एकता	५११
अन्तर्दशार : सर्वरक्षाकर चक्र	५१२
बहिर्दशार : सर्वार्थसाधक चक्र	५१३
चतुर्दशार चक्र	५१४
अष्टदल और षोडश दल	५१४
भूपुर	५१५
सप्तविंश अध्याय	**५१७-५३१**
श्रीचक्र : एक स्वरूपात्मक विवेचन	
चन्द्रबिम्ब ही श्रीचक्र	५१७
श्रीचक्र और उसका कैलासप्रस्तार	५१८
श्रीचक्र और उसका भूप्रस्तार	५१९
श्रीचक्र की उत्पत्ति एवं उसका संघटन	५१९
भगवती के चरणकमलों की स्थिति	५२१
श्रीचक्र और कला विद्या	५२१
श्रीचक्र के साथ पञ्चदशी मन्त्र एवं वर्णमाला का सामरस्य	५२३
श्रीचक्र एवं पञ्चदशी मन्त्र में ऐकात्म्य	५२४
अष्टाविंश अध्याय	**५३२-५३४**
त्रिपुरातापिन्युपनिषत्प्रोक्त नवात्मक चक्रस्वरूप	
श्रीचक्र का अनुलोमक्रम	५३२
प्रतिलोमक्रम से चक्रों की स्थिति और उनका स्वरूप	५३३
एकोनत्रिंश अध्याय	**५३५-५४१**
श्रीचक्र और उसका रहस्यात्मक पक्ष	
शरीर एवं श्रीचक्र में अभिन्नता	५३५
श्रीचक्र की पूजा	५३५
दश सिद्धियाँ : त्रैलोक्यमोहन चक्र	५३६
सर्वाशापरिपूरक चक्र	५३६
सर्वसंक्षोभण चक्र	५३६
चतुर्दशार चक्र	५३६
बहिर्दशार चक्र	५३७
सर्वरक्षाकर अन्तर्दशार चक्र	५३७
सर्वरोगहर अष्टार चक्र	५३७
सर्वसिद्धिप्रद चक्र	५३८
तिथियों एवं नित्याओं में अभिन्नता	५३८
नित्याओं का जगत् एवं स्वस्वरूप के साथ अभिन्नता	५३९
पिता-माता का रहस्यात्मक स्वरूप	५४०
पुरुषार्थचतुष्टय का स्वरूप	५४०
त्रिंश अध्याय	**५४२-५४३**
मानवशरीर और श्रीयन्त्र	
श्रीचक्र एवं शरीरचक्रों में ऐक्य	५४२
एकत्रिंश अध्याय	**५४४-५४७**
मन्त्र-यन्त्र तथा चक्रों का अन्तस्सम्बन्ध	
ऐक्य के प्रकार	५४४
मातृका त्रिपुरा	५४४
श्रीचक्र में बिन्दु का स्थान	५४७
द्वात्रिंश अध्याय	**५४८-५५३**
श्रीचक्र का अर्चन	
दक्षिणामूर्त्ति सम्प्रदाय	५४८
अर्चनाक्रम	५४८

विषय	पृष्ठाङ्क
हयग्रीव एवं आनन्दभैरव सम्प्रदाय	५४८
श्रीचक्रार्चन	५४९
अर्चन की भावना के प्रकार	५४९
अधिकारभेद से भावना के भेद	५४९
बिन्दु और त्रिकोण	५५१
श्रीचक्रार्चन के प्रमुख रूप	५५२
बाह्य पूजा का क्रम	५५२
श्रीयन्त्र की आभ्यन्तर पूजा	५५२
त्रयस्त्रिंश अध्याय	**५५४-५६१**
श्रीयन्त्र का महत्त्व	
श्रीयन्त्र की सर्वात्मकता	५५६
श्रीचक्रराज एवं उपासक में अभेद	५५६
सर्वोत्पादक श्रीचक्रराज	५५६
मानवशरीर के रूप में श्रीचक्र	५५७
श्रीचक्र की शरीरावयवों एवं पिण्डस्थ चक्रों में स्थिति	५६०

पञ्चम परिच्छेद : अध्याय ३४-४७

उपासनातत्त्व

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना	५६७
चतुस्त्रिंश अध्याय	**५६९-५७५**
पूजातत्त्व : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	
विज्ञानभैरव की दृष्टि	५६९
सङ्केतपद्धति का मत	५६९
अभिनवगुप्त का मत	५६९
उत्पल की दृष्टि	५६९
भट्टनारायण का मत	५६९
विज्ञानभैरव का प्रश्नोत्तर	५७०
प्रभाकौल का मत	५७०
कुलार्णवतन्त्र की दृष्टि	५७३
पञ्चत्रिंश अध्याय	**५७६-५८८**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना	
भगवती का स्थूल रूप	५७६
भगवती का सूक्ष्म रूप	५७७
भगवती का पर रूप	५७७
त्रिपुरोपासना के विभिन्न मत	५७७
आन्तर और बाह्य पूजा	५७७
देव्योपासना और उसके अंग	५७९
वरिवस्यारहस्यम् में आन्तरिक एवं बाह्य अंग	५७९
ऋषि-छन्द-देवता आदि के ज्ञान की महत्ता	५८०
कौलावली-प्रोक्त अन्तर्यजन-विधान	५८१
न्यास-विधान	५८४
तान्त्रिक पूजा-विधान	५८४
बहिर्यजन-विधान	५८५
यन्त्र की स्थापना	५८६
भगवती की उपासना की विविध पद्धतियाँ	५८७
बहिर्याग	५८७
देवता के तीन रूप	५८८
साधना के तीन रूप	५८८
श्रीविद्या के अन्तरङ्गावयव	५८८
क्रियोपासना	५८८
श्रीविद्या के बहिरङ्ग अवयव	५८८
सुन्दरी की उपासना	५८८
षट्त्रिंश अध्याय	**५८९-५९३**
भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप और उनकी उपासना	
सूक्ष्मरूपात्मक उपासना-विधि	५९०
लोपामुद्रा विद्या	५९१
लोपामुद्रा विद्या के मूल त्रिक	५९१

विषय **पृष्ठाङ्क**

महात्रिपुरसुन्दरी और षोडशी कला ५९३

सप्तत्रिंश अध्याय ५९४-६०४

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा का आदर्श स्वरूप

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की त्रिविधोपासना ५९५

परा पूजा का स्वरूप ५९९

शाक्त परम्परा में भगवती की पूजा के स्थान ६०१

भगवती और उपासना ६०२

महात्रिपुरसुन्दरी और आत्मा ६०३

तिथियाँ और कलायें ६०३

अष्टात्रिंश अध्याय ६०५-६१२

जप और ध्यान तथा समयमत

शुक्ल पक्ष के दिनों के नाम ६०५

कृष्ण पक्ष के दिनों के नाम ६०५

शक्ति के भेद ६११

चक्रों में श्रीविद्या की अनुस्यूतता ६११

प्रथम कूट ६१२

प्रथम कूट में हृल्लेखान्तर्गत कामकला ६१२

गुरु एवं देवता ६१२

एकोनचत्वारिंश अध्याय ६१३-६२०

भगवती त्रिपुरा की बहिर्यागात्मक उपासना

भगवती की स्थूलोपासना ६१३

वाममार्गी एवं कौल ६१४

त्रिपुरा के सगुण ध्यान का यागरूप में आत्मीकरण ६१५

शक्ति एवं शक्तिमान में ऐकात्म्य ६१५

शिव एवं शक्ति में भेद ६१६

उपासना द्वारा विश्वरूपत्व-प्राप्ति की प्रक्रिया ६१७

विषय **पृष्ठाङ्क**

चत्वारिंश अध्याय ६२१-६२६

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की सरलतमा पूजा

ललितासहस्रनाम के अनुसार भगवती का पूजन-विधान ६२१

ललितासहस्रनाम महास्तोत्र का परिचय ६२१

सहस्रनाम के पाठ की विभिन्न विधियाँ ६२२

स्तोत्रपाठ एवं पूजनहेतु विशिष्ट तिथियाँ एवं दिन ६२३

सहस्रनामस्तोत्र के पुरश्चरण की विधि ६२५

श्रीप्राप्त्यर्थ प्रयोग ६२५

ललितासहस्रनाम में उपदिष्ट पूजाविधि एवं पूजोपकरण ६२५

विष उतारने एवं नारी-वशीकरण के प्रसङ्ग में ६२६

एकचत्वारिंश अध्याय ६२७-६२९

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना : दास्यभाव

ज्ञानार्णव में अन्तर्यागात्मक उपासना-दृष्टि ६२७

द्वाचत्वारिंश अध्याय ६३०-६४८

भावनोपनिषदोक्त भावनाप्रधान भगवती-पूजा

भावनोपनिषदोक्त पूजा का फल ६३०

होमविषयक भावनोपनिषद्-दृष्टि ६३२

विज्ञानभैरव की दृष्टि ६३२

स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि ६३२

योगिनीहृदयदीपिका की दृष्टि ६३२

उपचार ६३५

तन्त्रराजतन्त्र की दृष्टि ६३५

आत्मपूजोपनिषद् के अनुसार मानसोपचार ६३८

सन्त कबीरदास की दृष्टि ६३९

विषय	पृष्ठाङ्क
भगवती त्रिपुरसुन्दरी के पञ्चपुष्पबाण	६४१
धनुष	६४१
पाश	६४१
अंकुश	६४१
भगवान् कामेश्वर का स्वरूप	६४२
भगवती ललिता का स्वरूप	६४२
विमर्श एवं लौहित्य का स्वरूप	६४३
सिद्धि का स्वरूप	६४३
जीवन्मुक्ति	६४३
ऋतुओं का स्वरूप	६४४
मुद्रा का स्वरूप	६४४
ज्ञानशक्ति का स्वरूप	६४५
इच्छाशक्ति का स्वरूप	६४५
मूलाधार में नाड़ियों का स्थितिक्रम	६४५
गुरुतत्त्व	६४६
देह का स्वरूप	६४८
कल्पवृक्ष का स्वरूप	६४८
त्रिचत्वारिंश अध्याय	**६४९-६७५**
महात्रिपुरसुन्दरी का पूजा-विधान एवं पूजाफल	
भगवती की भक्त्युपासना	६४९
पूजा का उद्देश्य देव-तादात्म्य	६५०
समयमार्ग	६५०
बिन्दुस्थान	६५१
समया	६५१
पञ्चविध साम्य	६५१
कौलदर्शन और समयदर्शन में दृष्टि-वैषम्य	६५२
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के सम्प्रदाय	६५२
ऐक्यचतुष्टय	६५३
भगवती का समाराधन	६५३
देवी का स्थूल स्वरूप	६५४
देवी की सपर्या-विधि	६५५
देवी का आन्तर पूजन	६५६
आन्तर पूजा के विधान की अपरिहार्यता	६५६
पूजा की प्रतीकात्मिका दृष्टि	६५६
जीवन्मुक्ति	६५७
भजन और मुक्ति	६५७
वृत्तत्रय	६५९
भगवती की सपर्या	६५९
बिन्दुस्वरूप का विवेचन	६६०
मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान का सर्वोत्पादकत्व	६६१
परमबिन्दु या कारणबिन्दु	६६१
चक्रों की गणना	६६४
मूल दल	६६५
दस दल	६६५
सहस्रार एवं श्रीयन्त्र में ऐक्य	६६६
बिन्दुतत्त्व का त्रिधा विभाजन	६६७
धारणात्मक भजन का स्वरूप	६६८
शंकराचार्य की उपासना-दृष्टि	६६९
आचार्य शङ्कर और कुण्डलिनी	६७०
पूजा-विधान	६७०
सामयिकसम्मत पूजा की विशेषतायें	६७२
चतुश्चत्वारिंश अध्याय	**६७६-६८१**
श्रीदेवी का मन्दिर और उसका पूजन-विधान	
महात्रिपुरसुन्दरी एवं तारा के नित्य धाम में साम्य	६७७
भगवती के मन्दिर की पूजा	६७८
ललिता और पञ्च ब्रह्म में तादात्म्य	६७८
मन्दिरपूजा का विधान	६८०
भगवती का पूजन	६८०
भगवती की चौंसठ उपचारों से पूजा का विधान	६८१

विषय **पृष्ठाङ्क**

पञ्चचत्वारिंश अध्याय ६८२-६८५
मातृकाभेदतन्त्र के अनुसार त्रिपुरसुन्दरी-सपर्या

षट्चत्वारिंश अध्याय ६८६-६९०
योगसाधनात्मक भगवत्युपासना

विषय **पृष्ठाङ्क**

सप्तचत्वारिंश अध्याय ६९१-६९२
हवनादि तत्त्व और भगवती की उपासना

षष्ठ परिच्छेद : अध्याय ४८-६३

❁ उपासना के मुख्य अंग और उनका यथार्थ स्वरूप ❁

अष्टाचत्वारिंश अध्याय ६९९-७०५
पूजातत्त्व और त्रिपुरोपासना

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि ६९९
षट्त्रिंशोपचारानुगत भगवत्युपासना ७०१
श्रीचक्र में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा ७०१
परापूजा ७०३
मध्यमा या परापर पूजा ७०४
अपरा पूजा ७०४
अभिनवगुप्त की दृष्टि ७०५

एकोनपञ्चाशत् अध्याय ७०६-७११
देवतातत्त्व और त्रिपुरोपासना

तुरीया वह्नि-सूर्य-चन्द्र-तूर्य कुण्डलिनी का ध्यान ७०९
पूजाकाल ७०९
पूजा के प्रकार ७०९

पञ्चाशत् अध्याय ७१२-७२४
गुरुतत्त्व और त्रिपुरोपासना

शाक्तदृष्टि में गुरुतत्त्व ७१२
मन्त्र, मन्त्रेश्वर एवं मन्त्रमहेश्वर के रूप में गुरुतत्त्व ७१३
विश्वगुरु परम शिव और गुरुपादुका ७१४
गुरुतत्त्व ७१६
गुरु की महत्ता का रहस्य ७१६
गुरुओं की श्रेणी ७१७
परमात्मा ही सर्वोच्च वास्तविक गुरु ७१८
अकल्पित या सांसिद्धिक गुरु ७१८
अकल्पित कल्पक गुरु ७१८
कल्पित गुरु ७१९
कल्पिताकल्पित गुरु ७१९
ज्ञानी गुरु ७१९
योगवाशिष्ठ का मत ७१९
नवचक्रेश्वरतन्त्र का मत ७१९
गुरुओं के भेद-प्रभेद ७२०
गुरु का सर्वातिशायित्व एवं उसका कारण ७२०
स्पन्दसूत्रकार की दृष्टि ७२१
गुरु की सर्वोच्च महिमा का कारण ७२२
ग्रन्थ का ग्रन्थकार भी गुरु है ७२३
भास्करराय की दृष्टि ७२४

एकपञ्चाशत् अध्याय ७२५-७४१
दीक्षातत्त्व और त्रिपुरोपासना

दीक्षा के भेद ७२५
ज्ञान-दीक्षा के भेद ७२६
दीक्षितों के भेद ७२६
श्रेष्ठता का उत्तरोत्तर क्रम ७२६
सप्तविध दीक्षा ७२७
क्रियावती दीक्षा के प्रकारान्तर से अन्य भेद ७२७
शैवमत में वेधदीक्षा ७२७

विषय	पृष्ठाङ्क
साधकों के भेद	७२८
पुत्र या समयी	७२८
दीक्षा : दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	७२९
दीक्षा के भेद	७३१
समयी दीक्षा	७३१
योगदीक्षा (साधना दीक्षा)	७३१
शिवधर्मिणी, लोकधर्मिणी एवं मोक्षदीक्षा	७३४
क्रिया-दीक्षा	७३५
पुत्रक की कलादीक्षा : कलादीक्षा	७३६
क्रियादीक्षा : शिवत्वयोजन	७३७
शून्य प्रशमन की साधना	७३७
दीक्षा के प्रकार	७३८
समयदीक्षा	७३८
विशेष दीक्षा	७३९
परात्रिंशिका में दीक्षा की दृष्टि	७३९
निर्वाणदीक्षा	७३९
भौतिक दीक्षा एवं नैष्ठिक दीक्षा	७४०
तन्त्रसमाम्नाय में मुक्ति के भेद	७४१
द्वापञ्चाशत् अध्याय	**७४२-७५४**
प्राणतत्त्व, प्राणसाधना एवं त्रिपुरोपासना	
प्राण और मन का सम्बन्ध	७४२
प्राण-साधना के परिणाम	७४३
प्राण के भेद	७४४
प्राणशक्ति एवं प्राणकुण्डलिनी	७४४
प्राणस्पन्द का कारण	७४४
प्राणसञ्चार का स्थान	७४५
प्राणस्पन्द की उत्पत्ति	७४५
प्राण का महत्त्व	७४५
प्राण और विषुव	७४९
प्राणाध्वा (कालाध्वा)	७५१
प्राणोच्चार का विज्ञान एवं प्राण-प्रशमन	७५१
शून्य-प्रशमन	७५२
प्राणायाम	७५३
प्राणायाम की सार्थकता एवं उसकी लक्ष्मण रेखा	७५४
त्रय:पञ्चाशत् अध्याय	**७५५-७५९**
मन्त्रतत्त्व, मन्त्रसाधना और त्रिपुरोपासना	
स्वात्मसंवित् का उल्लास : मन्त्र	७५५
संवित् देवी : मन्त्र	७५५
नाद का उल्लास : मन्त्र	७५५
मन्त्रानुसन्धायक की अवस्थायें एवं मन्त्र	७५६
मन्त्रजप के स्थान	७५८
भगवती का वर्णात्मक एवं मन्त्रात्मक स्वरूप तथा सृष्टि-विधान	७५८
वर्णों का मन्त्रों के साथ सम्बन्ध	७५९
मन्त्र एवं जप-साधना का प्रयोजन	७५९
चतु:पञ्चाशत् अध्याय	**७६०-७८०**
जपतत्त्व, जप-साधना और त्रिपुरोपासना	
जप के भेद	७६१
जप : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	७६१
मन्त्र का स्वभाव, स्वरूप एवं तदनुरूप उनका जपक्रम	७६५
मन्त्र का उदय	७६६
मन्त्र का लय	७६६
जप का स्वरूप	७६८
मन्त्र जप वर्ण एवं भगवती का अन्त:सम्बन्ध	७६९
जप एवं अर्थभावन	७६९
जप के अंग	७७२
त्रिविधात्मक मन्त्र-जप	७७३
विभिन्न प्रकार के जपों के विभिन्न फल	७७३

विषय	पृष्ठाङ्क
जपांग : विषुव	७७४
त्रैपुर दर्शन में जप के लक्षण	७७४
बीजमन्त्र के अवयव	७७५
न्यासों के प्रकार और उनका परिचय	७७५
सत्ता के दो स्तर	७७७
परमात्मा की दो शक्तियाँ	७७७
जप	७७७
आन्तर जप (आभ्यन्तर मन्त्रोपासना)	७७७
प्रणवरूप मूल मन्त्र के अंग	७७८
मन्त्रसाधना के अवयव	७७८
मन्त्रसाधना	७७९
आसन के प्रकार	७८०

पञ्चपञ्चाशत् अध्याय ७८१-७९२

ध्यानतत्त्व, ध्यान-साधना और त्रिपुरोपासना

ध्यान का स्वरूप	७८१
ध्यान के प्रकार	७८१
स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान एवं सूक्ष्म ध्यान	७८५
ध्यानत्रय की उत्कृष्टता का क्रम	७८६
शिवसंहिता की यौगिक ध्यान-प्रक्रिया या राजयोग	७८६
हृत्पद्म में भगवती का ध्यान	७९०
सुधासिन्धु में भगवती का ध्यान	७९०
सूर्यमण्डल में भगवती का ध्यान	७९१
चन्द्रमण्डल में भगवती का ध्यान	७९१
पिण्डस्थ चक्रों में, कुण्डलिनीस्वरूप में, अवतारोत्पादिका के रूप में एवं कूटत्रय एवं कामकला के रूप में भगवती का ध्यान	७९२

षट्पञ्चाशत् अध्याय ७९३-८०३

न्यासविद्या और त्रिपुरोपासना

विषय	पृष्ठाङ्क
न्यास : सोऽहमस्मि की साधना	७९३
न्यास : देवतादात्म्य की साधना	७९३
न्यास : अद्वैतभाव की भावना	७९५
न्यास की आवश्यकता	७९५
न्यास : अद्वैतभाव की साधना	७९५
न्यास : देवोऽहं एवं विश्वतोऽहं की अनुभूत्यात्मक साधना	७९६
कतिपय न्यासों के उदाहरण	७९६
वैष्णवपद्धति के अनुसार अन्तर्मातृका न्यास	७९७
बहिर्मातृका न्यास	७९८
संहारमातृका न्यास	७९९
अङ्गवक्त्रन्यास	८०१
न्यासपञ्चक का द्वितीय न्यास	८०२
त्रितत्त्वन्यास	८०२
अघोराष्टक न्यास	८०२
शिवसद्भाव न्यास	८०२
जीवन्यास	८०२
ऋषिन्यास	८०३
न्यासक्रिया का फल	८०३

सप्तपञ्चाशत् अध्याय ८०४-८२७

पीठतत्त्व और त्रिपुरोपासना

बाह्य एवं आन्तर पीठों में तादात्म्य	८०५
पीठ, शरीर एवं श्रीचक्र में तादात्म्यभाव	८०५
पीठन्यास तत्त्व	८०६
पीठ की उत्पत्ति	८०७
पीठ : देवयोनियों का अधिष्ठान	८०७
पीठ के आविर्भाव की पद्धति	८०७
पीठ के प्रकार	८०८
पीठशुद्धि और उसके उपाय	८०८
पञ्चधा पीठ	८०८
पीठतत्त्व का रहस्य	८०९
कामरूप पीठ	८०९
पूर्णगिरि पीठ	८०९
जालन्धर पीठ	८१०

विषय	पृष्ठाङ्क
उड्डीयान पीठ	८११
वाक्तत्त्व और महात्रिकोण	८११
तन्त्राम्नाय-सम्बद्ध पीठचतुष्टय	८१२
विद्या, मन्त्र, ज्ञानादिक पीठ	८१३
देह के बाहर स्थित पीठ	८१४
देह के भीतर स्थित पीठ	८१४
पीठचतुष्टय और उनका स्वरूप	८१६
पीठों का महाभूतों एवं चक्रों से सम्बन्ध	८१७
पीठस्थ एवं पिण्डस्थ ज्योति-लिङ्गों का स्वस्वरूप	८१९
परलिंग	८१९
परिणामवाद	८२१
षट्चक्रों में शिव-शक्तियोग	८२२
इक्यावन पीठों का इतिहास	८२३
छायासती और इक्यावन पीठ	८२३
पीठ-संख्या	८२३
पीठों का देवी से सम्बन्ध	८२६
अष्टापञ्चाशत् अध्याय	**८२८-८३५**
भावतत्त्व और त्रिपुरोपासना	
भावतत्त्व एवं भावना	८२८
महाभाव एवं भावतत्त्व	८२८
भावों के भेद	८२८
साधना में अधिकारभेद	८२९
भावों में पौर्वापर्यक्रम-विधान	८२९
पशुभाव	८३०
वीरभाव	८३१
दिव्यभाव	८३२
दास्यभक्ति की प्रधानता	८३४
एकोनषष्टि अध्याय	**८३६-८६२**
भक्तितत्त्व और त्रिपुरोपासना	
भक्ति-साधना	८३७
भक्ति का स्वरूप और त्रिपुरासिद्धान्त	८३८
ज्ञान-भक्ति-सामञ्जस्य	८४०
अनुभवसूत्र में अद्वैत भक्ति की दृष्टि	८४४
भक्ति : शक्ति की साधना	८४६
महाभाव एवं भक्ति	८४७
रागात्मिका एवं रागानुगा भक्ति	८४७
भक्ति : अन्त:करण की विशेष वृत्ति	८४७
साध्य भक्ति एवं साधन भक्ति	८४८
साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति	८४९
ह्लादिनी शक्ति और भक्ति	८५०
रसों के भेद	८५३
भक्ति की व्याख्या	८५४
भक्ति और ब्रह्मविद्या में भेद	८५४
भक्ति की परिभाषा	८५४
द्रवीभाव के दो रूप	८५४
भावना	८५५
द्रवीभाव के अन्य रूप	८५५
भक्ति और रस का अन्त:सम्बन्ध	८५६
प्रेमभक्ति के प्रेम की विशेषतायें	८५७
प्रेमरूपा भक्ति के भेद	८५८
साधन भक्ति एवं साध्य भक्ति	८५८
भक्ति के विभिन्न प्रकार	८६१
रूपगोस्वामी का भक्ति का विभाजन	८६१
वोपदेवकृत भक्ति का विभाजन	८६१
नारदभक्तिसूत्रविहित भक्ति के प्रकार	८६२
षष्टि अध्याय	**८६३-८६५**
मनस्तत्त्व, ज्ञानतत्त्व और ज्ञान-साधना	
एकषष्टि अध्याय	**८६६-८६८**
शाक्तदर्शन में ज्ञान का स्वरूप	
द्वाषष्टि अध्याय	**८६९-८७६**
शाक्तदर्शन में प्रतिपादित योग-साधना	
ब्रह्मरन्ध्र के नीचे स्थित षट्चक्रों में बीजमन्त्रों का ध्यान	८७३
चक्र और उसके गुण	८७३
चक्र और उसके देवता, नाद एवं संख्या	८७४

विषय **पृष्ठाङ्क**

समाधि ८७४
तन्त्र के प्रति नव्य दृष्टि ८७५
शाक्त सम्प्रदाय के गुरु ८७६

त्रिषष्टि अध्याय ८७७-८८१

हयग्रीव-प्रतिपादित शाक्तदर्शन में योगस्वरूप की नव्य दृष्टि

चित्तवृत्तियों के सम्बन्ध में पतञ्जलि का मत ८७८

विषय **पृष्ठाङ्क**

पञ्चश्रेणी में विभक्त वृत्तियाँ ८७८
आचार्य हयग्रीवोक्त वृत्ति-विभाजन ८७८
नाड़ीयोग ८७८
कुण्डलिनी शक्ति ८७९
प्राण-सञ्चार एवं प्राणविज्ञान ८७९
प्राणायाम ८८०
क्रम-व्युत्क्रम ८८०

चित्रानुक्रमणी

विषय	पृष्ठाङ्क
अर्द्धनारीश्वर	४
तन्त्र में गुरुतत्त्व	११
कुमारी कुण्डलिनी	३२
योषित् कुण्डलिनी	३३
पतिव्रता कुण्डलिनी	३४
पतिव्रता कुण्डलिनी की लयभूमि	३५
श्रीचक्र	३६
ब्रह्म के दो रूप	४०
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी एवं वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप	४५
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	८८
भगवती का नादस्वरूप	८८
भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप	८८
भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप	८८
भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी का संयुक्त सामरस्यात्मक स्वरूप	८८
भगवती का सूक्ष्म स्वरूप	८९
त्रिपुरसुन्दरी एवं पञ्चमुखी महादेव	११०
शम्भु का शरीर	१४९
त्रिपुरासिद्धान्त और कुण्डलिनी-तत्त्व	१५९
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप	१६५
भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अन्यतम रूप	१६६
सच्चिदानन्द परमशिवस्वरूप	१७१
भगवती का स्वरूप	२०१
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मातृचक्रात्मक (वाक्तत्त्वात्मक) स्वरूप	२४१
शब्दों के स्तर	२४८
महामन्त्र : ॐ	२७६
शक्ति के रूप : वाणी और मन्त्र	३०१
गायत्री और श्रीविद्या	३४४
द्वादशान्त षट्चक्र, अमृत एवं वर्णों का पारस्परिक सम्बन्ध	३५४
कामकला का रूप	३६२
श्रीविद्या (पञ्चदशाक्षरी मन्त्र)	३८२
कूटत्रय	३८३
तत्त्वद्वय	३८४
श्रीयन्त्र : सृष्टिक्रमानुसार	४२४
श्रीयन्त्र : संहारक्रमानुसार	४२४
वाक्तत्त्व	४४५
मूलाधार चक्र	४४९
स्वाधिष्ठान चक्र	४५०
मणिपूरक चक्र	४५१
अनाहत चक्र	४५३
विशुद्धि चक्र	४५४
आज्ञाचक्र	४५५
श्रीयन्त्र	४५६
कुण्डलिनी	४५७
सहस्रार चक्र	४५८
श्रीचक्र का निर्माण	४६९
श्रीचक्र	४७०
बैन्दवगृह	४९५
उपासना का स्वरूप	५६४
पिण्डस्थ चक्रों का रचनातन्त्र	६६३
मूल चक्र	६६४
उपासना के मुख्य अङ्ग और उनका यथार्थ स्वरूप	६९४

श्रीविद्या - साधना

❁ चेतावनी ❁

पाठकों से निवेदन है कि ग्रन्थ को मात्र पढ़कर ही किसी प्रकार का तान्त्रिक प्रयोग न करें; उसके लिये सुयोग्य गुरु की अनुज्ञा आवश्यक होती है।

स्वयम्भू प्रयोग करने पर दुष्परिणाम भी हो सकते हैं।

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्षयेत्।
यदि न स्यात्प्रत्ययस्तत्र तदा मेतन्मृषा वचा ।।

▼

समस्त चिन्ताओं का त्याग करके मात्र एक दिन साधना का परीक्षणात्मक अभ्यास कीजिए, फिर भी आपको विश्वास न हो तो समझियेगा कि मेरा कथन मिथ्या है।

(नारोपाकृत 'सेकोद्देश टीका' एवं गोरक्षनाथकृत 'अमरौघप्रबोध')

प्रथम परिच्छेद

(अध्याय : १-५)

▼

शाक्त मत एवं श्रीसम्प्रदाय

अर्द्धनारीश्वर

॥ श्रीः ॥

प्रथम परिच्छेद

शाक्त मत एवं श्रीसम्प्रदाय

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
शिवापदाम्भोजयुगार्चकाणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

(रुद्रयामलतन्त्र)

न गुरोरधिकं शास्त्रं न गुरोरधिकं तपः।
न गुरोरधिकं मन्त्रं न गुरोरधिकं फलम्।।

न गुरोरधिका देवी न गुरोरधिकः शिवः।
न गुरोरधिका मुक्तिर्न गुरोरधिको जपः।। (गुरुगीता)

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः सन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।। (सौन्दर्यलहरी)

अतस्ते कौलास्ते भगवतिदृढप्राकृतजनाः
इति प्राहुः प्राज्ञाः कुलसमयमार्गद्वयविदः।
महान्तः सेवन्ते सकलजननीं बैन्दवगृहे
शिवाकारां नित्याममृतक्षरिकामैन्दवकलाम्।।

(गौड़पादाचार्य : सुभगोदयस्तुति)

भोगो योगायते सम्यक् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि।। (कुलार्णवतन्त्र)

▼

प्रथम अध्याय

शाक्त सम्प्रदाय : एक विहंगमावलोकन

श्रीविद्या एवं शक्त्युपासना की शाखायें— शाक्तोपासना के अनेक सम्प्रदाय हैं और उसी के अन्तर्गत श्रीसम्प्रदाय भी एक है। भावनोपनिषद्, देवीपञ्चस्तवी, सौन्दर्य-लहरी, ललितासहस्रनाम आदि ग्रन्थ श्रीविद्या के उच्चस्तरीय ग्रन्थ हैं। इस विद्या का तन्त्र या आगमों में बड़े ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। तन्त्रोपासना की विकृतियों ने जब साधनाओं को कलंकित कर दिया, तब इनको परिष्कृत करके तथा वैदिक सिद्धान्तों एवं वैदिक आचारों को स्वीकार करके ऋषियों ने तन्त्र के शुद्धतम रूप को प्रस्तुत किया और वह शुद्धतम रूप 'श्रीविद्या' के नाम से प्रख्यात हुआ।

तान्त्रिक पूजा के अनेक प्रकार हैं। प्रत्येक प्रकार या भेद का नामकरण उपास्य के स्वरूप के आधार पर हुआ है; यथा— 'शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, गाणपत्य सम्प्रदाय, सौर सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय' आदि। मुख्यतया यह तान्त्रिक उपासना तीन भागों में विभक्त हुई, जो निम्नांकित हैं— शैव, वैष्णव एवं शाक्त।

शाक्तोपासना का विकास मुख्यत: श्रीविद्या के रूप में हुआ। यह शाक्तोपासना भी दो शाखाओं में विभाजित हो गई। शक्त्युपासना की एक विधि (या शाखा) बाह्याचारों, बाह्योपकरणों एवं स्थूल पूजा का आश्रय ले कर प्रवृत्त हुई एवं दूसरी परा शक्ति के ध्यान, आन्तर पूजा एवं भावप्राधान्य का आश्रय लेकर प्रवृत्त हुई। बाह्याचारोन्मुखी यह शाक्तोपासना मुख्यत: ६४ तन्त्रों में निहित है, जो कि वेदबाह्य है एवं अन्तरोन्मुखी शक्त्युपासना शुभागमपञ्चक में विहित है। 'शुभागमपञ्चक' वशिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन एव सनत्कुमार के नाम पर विख्यात ५ संहिताओं में निहित है। इसे ही 'समयमार्ग' कहते हैं, जो कि वैदिक अनुशासन, वैदिक शिक्षा एवं वैदिक आचार पर आधारित है। शक्त्युपासना की प्रथम शाखा वेदवाह्य है, इसे ही 'कौलमार्ग' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार शक्त्युपासना की मुख्यत: दो शाखायें या दो मत हैं—

शक्त्युपासना (शाक्त सम्प्रदाय)— कौलमार्ग एवं समयमार्ग।

आचार्य लक्ष्मीधर एवं भास्कर राय ने अपनी अनुभूत्यात्मक एवं वैदुष्यपूर्ण मार्मिक व्याख्याओं द्वारा श्रीविद्योपासना के क्षेत्र में फैलायी गयी विकृतियों का खण्डन करके श्रीविद्या के वास्तविक एवं वैदिक पक्ष का प्रस्तुतीकरण करते हुए श्रीविद्या का उद्धार किया।

आचार्य लक्ष्मीधर ने श्रीविद्या के सन्दर्भ में व्यक्त शांकर दृष्टि से भी अपना यत्किञ्चित् मत-वैभिन्य प्रकट किया है। आचार्य लक्ष्मीधर एवं आचार्य भास्कर की स्थापनाओं एवं मौलिक दृष्टियों ने श्रीविद्या को अपने विशुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

'श्रीविद्या' की साधना एवं सिद्धान्त से अनभिज्ञ उपासकों ने उसे अत्यन्त ही विकृत स्वरूप में प्रस्तुत किया था; अतः उसका शुद्धिकरण इन्हीं आचार्यों द्वारा किया गया। 'श्रीविद्या' योग का उच्चतम स्वरूप, विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम तथा गम्भीर एवं रहस्यात्मक 'परज्ञान' का मूर्तिमान रूप है। शंकराचार्य ने इसके परमाराध्य को 'सुन्दर' के रूप में देखकर ही अपने ग्रन्थ का नाम 'सौन्दर्यलहरी' रक्खा है।

तान्त्रिक उपासना की विभिन्न शैलियाँ हैं—

तान्त्रिक उपासना

- बौद्धतान्त्रिक
  - तिब्बती तान्त्रिक परम्परा
  - मन्त्रयान
  - सहजयान
  - कालचक्रयान आदि
- जैनतान्त्रिक
- शैवतान्त्रिक
  - पाशुपत सम्प्रदाय
  - कापालिक सम्प्रदाय
  - कालामुख सम्प्रदाय
  - रसेश्वर सम्प्रदाय
  - व्याकरण दर्शन
  - वीरशैव सिद्धान्त
  - शैव सिद्धान्त
  - १.प्रत्यभिज्ञादर्शन २.स्पन्ददर्शन ३.क्रमदर्शन
- शाक्ततान्त्रिक
  - कौल
  - समयी
  - मिश्र
- वैष्णवतान्त्रिक
- गाणपत्यतान्त्रिक

तन्त्र : एक विहंगमावलोकन

तन्त्र या आगम की दृष्टियाँ— जितनी भी आगमिक या तान्त्रिक दृष्टियाँ हैं, उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है— द्वैत, अद्वैत एवं द्वैताद्वैत।

शाक्ततन्त्र के प्रमुख लक्षण— आचार्य सोमानन्दपाद ने 'शाक्तविज्ञान' नामक ग्रन्थ में शाक्तविज्ञान के निम्न लक्षण बतलाये हैं—

१. स्थान	६. उत्थापन	१०. अन्तावस्था
२. प्रवेश	७. बोधन	११. विश्राम
३. रूप	८. चक्रविश्राम	१२. परिणाम
४. लक्ष	९. भूमिकागमन	१३. आगमन
५. लक्षण		

कुलार्णवतन्त्र में—

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
मम तत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैतविवर्जितम्।।

कहकर 'कौलमार्ग' को द्वैताद्वैतविवर्जित मत प्रतिपादित किया गया है।

तन्त्र के विभिन्न प्रकार— तान्त्रिक दृष्टियों एवं दर्शनों के आधार पर तन्त्र के विभिन्न प्रकार हैं; यथा—

१. शैवतन्त्र
२. शाक्ततन्त्र
३. वैष्णवतन्त्र
४. बौद्धतन्त्र
५. जैनतन्त्र

तान्त्रिक सम्प्रदाय— शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन तान्त्रिक सम्प्रदाय प्रसिद्ध सम्प्रदाय-भेद हैं। प्राचीन साहित्य में शैव, माहेश्वर या तान्त्रिक सम्प्रदायों के रूप में निम्न प्रकार प्रसिद्ध हैं—

१. कुलमार्ग (कौलमार्ग)
२. पाशुपतमत
३. लाकुलमत
४. कापालिकमत
५. सौममत
६. महाव्रतमत
७. जंगममत
८. कारुणिक (कारुक) मत
९. कालानलमत
१०. कालामुखमत
११. भैरवमत
१२. वाममत
१३. भट्टमत
१४. नन्दिकेश्वरमत
१५. रसेश्वरमत
१६. सिद्धान्तमत (शैव)
१७. सिद्धान्तमत (रौद्र)

त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या के १२ उपासक एवं उनके सम्प्रदाय निम्न हैं—

१. मनु
२. चन्द्र
३. कुबेर
४. लोपामुद्रा
५. मन्मथ
६. अगस्त्य
७. अग्नि
८. सूर्य
९. इन्द्र
१०. स्कन्द
११. शिव
१२. दुर्वासा (क्रोधभट्टारक)

कौल सम्प्रदाय के दो भेद हैं— पूर्वकौल एवं उत्तरकौल।

'समयाचार' के अनुयायी शंकराचार्य हैं। उनका आगम 'शुभागमपञ्चक' कहलाता है।

शाक्तागम की प्रमुख विद्यायें— दो विद्यायें प्रख्यात हैं— कामराजविद्या (कादि विद्या) एवं लोपामुद्रा विद्या (हादि विद्या)। इन्हें ही कामराजसन्तान एवं लोपामुद्रा-सन्तान भी कहते हैं।

तन्त्र के सप्ताचार (विश्वसारतन्त्र)— तन्त्रशास्त्र में 'सप्ताचारों' का वर्णन किया गया है, जो कि निम्नवत् है—

१. वेदाचार
२. वैष्णवाचार
३. शैवाचार
४. सिद्धान्ताचार
५. कौलाचार
६. वामाचार
७. दक्षिणाचार

तन्त्रशास्त्र में ज्ञान-भक्ति की दृष्टि : (ज्ञान-भक्ति समन्वय)—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।।
जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्।
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मनो:।।

(बोधसार-३२.४२.४३)

तन्त्र के भावत्रय— अधिकारियों को ध्यान में रखकर तन्त्रशास्त्र ने तान्त्रिक साधना में साधकों की तीन कोटियाँ एवं तीन भावों का विधान किया है[1]—

१. 'पशु'– पशुभाव (भेदभाव)

२. 'वीर'– वीरभाव (भेदाभेदभाव)

३. 'दिव्य'– दिव्यभाव (अभेदभाव)

तन्त्र में यजन के भेद— अधिकारियों को दृष्टिगत कर आचार्यों ने तान्त्रिक यजनों के दो प्रकार निर्धारित किये हैं— बहिर्याग एवं अन्तर्याग।

तन्त्र के पादचतुष्टय— तन्त्रशास्त्र के चार पाद हैं—

१. ज्ञानपाद	३. क्रियापाद
२. योगपाद	४. चर्यापाद

तन्त्र के आगम— इसके तीन भेद हैं— शैवागम, शाक्तागम एवं वैष्णवागम। (जैनतन्त्र, बौद्धतन्त्र)।

तन्त्र या आगम के तत्त्व— द्वैत शैवागम 'त्रिरत्न' मानते हैं— शिव, शक्ति एवं बिन्दु। काश्मीरीय शैवतन्त्र के अनुसार ३६ तत्त्व हैं, फिर भी अद्वैतवाद है।

शैवागम के स्रोत— शिव का सद्योजात मुख (पाँच शिवागम), वामदेवमुख (पाँच शिवागम), अघोरमुख (पाँच रुद्रागम), ईशानमुख (पाँच रुद्रागम), तत्पुरुष मुख (पाँच रुद्रागम)।

इन २८ आगमों के १९८ विभाग हैं। 'रौद्रागम' = द्वैत-अद्वैत दृष्टि। 'शैवागम' = अद्वैत दृष्टि को अंगीकृत नहीं किया गया है।

तन्त्र के षट् कर्म— तन्त्रशास्त्र में अभिचार कर्मों के अन्तर्गत षट् कर्मों का विधान है, जो कि निम्न है—

१. मारण	३. उच्चाटन	५. स्तम्भन
२. मोहन	४. वशीकरण	६. द्वेषण

कहा भी है— शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटनं तथा।
मारणं तानि संशन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः।। (उड्डीशतन्त्र)

तन्त्र का भोग-मोक्षसमन्वयवाद— तन्त्र में राग-विराग या भोग-मोक्ष में समन्वय स्थापित किया गया है—

योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्नैव योगवित्।
भोगयोगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिकः प्रिये।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मः कुलेश्वरि !।। (कुलार्णवतन्त्र)

---

१. बहुजापात्तथा होमात्कायक्लेशात्तु विस्तरैः।
न भावेन विना चैव तन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः।। (कौलावली तन्त्र)

तन्त्र के पञ्च मकार— ये पञ्च मकार निम्न हैं—

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

शाक्तागम के भेद— शाक्तागम के ३ भेद हैं— सात्त्विक, राजस और तामस। क्रमश: सात्त्विक आगम = तन्त्र, राजस आगम = यामल एवं तामस आगम = डामर कहलाते हैं।

शाक्तोपासना के मुख्य केन्द्र— शाक्तागम की अनुवर्तन करने वाली उपासना के तीन मुख्य केन्द्र भी हैं, जो कि निम्न हैं—

काश्मीर, काञ्ची एवं कामाख्या। इनमें से काश्मीर और काञ्ची 'श्रीविद्या' के केन्द्र हैं तथा कामाख्या 'कौलमत' का केन्द्र है।

शाक्तों के मुख्य सम्प्रदाय— शाक्त तान्त्रिकों के तीन प्रमुख मार्ग हैं, जो कि निम्नवत् हैं— कौलमार्ग, मिश्रमार्ग एवं समयमार्ग।

'सम्मोहनतन्त्र' के अनुसार शाक्त सम्प्रदाय ९ आम्नायों एवं ४ सम्प्रदायों में विभक्त था। ये सम्प्रदाय निम्नांकित हैं— केरल, काश्मीर, गौड़ एवं विलास।

कौल सम्प्रदाय— चक्रपूजा का शाक्त सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्त्व है। इस पूजा की दृष्टि से शाक्तों के मुख्यत: दो वर्ग हैं— कौलिक और समयी। कौलिकों के भी दो वर्ग हैं— पूर्वकौल एवं उत्तरकौल। पूर्वकौल स्त्रीरूप की काल्पनिक पूजा करते हैं, किन्तु उत्तरकौल जीवित सुन्दरी के मांसल योनि की प्रत्यक्ष पूजा करते हैं। कौल पञ्चमकारों— मदिरा, मांस, मधु, मत्स्य एवं मैथुन— को अपनी उपास्या देवी को समर्पित करते हैं और तदनन्तर उसे प्रसादरूप में स्वयं भी ग्रहण करते हैं। यही कही जाती है— 'पञ्चमकारोपासना'।

तन्त्र में गुरुतत्त्व

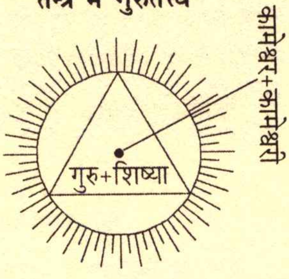

गुरु एवं शिष्या दोनों त्रिकोणबिन्दु में अपृथक् रूप में रहते हैं।

पूर्वकौल एवं उत्तरकौल— पूर्वकौल एवं उत्तरकौल— दोनों ही त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करते हैं।[1] भैरवीचक्र के प्रारम्भ होने पर वर्णभेद नहीं रहता, किन्तु भैरवीचक्र के समाप्त होने पर पुन: वर्णभेद मान्य हो जाने के कारण सभी पृथक्-पृथक् वर्ण के हो जाते हैं। उपांगललिता की भी पूजा की जाती है। इसका पूजन-समय आश्विन शुक्ल पक्ष की पञ्चमी और ललिता की पूजा प्रथम दिनों में सम्पन्न हो जाती है। वैसे उपांग ललिता की पूजा वैधव्य-निवारणार्थ की जाती है।

---

१. वेदादिभ्य: परं शैवं शैवाद्वामं च दक्षिणम्।
दक्षिणाच्च परं कौलं कौलात्परतरं न हि।। (तन्त्रालोक)

श्रीविद्या के सम्प्रदाय— श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय हैं—

१. मनुसम्प्रदाय
२. चन्द्रसम्प्रदाय
३. कुबेरसम्प्रदाय
४. लोपामुद्रासम्प्रदाय
५. मन्मथसम्प्रदाय
६. अगस्त्यसम्प्रदाय
७. अग्निसम्प्रदाय
८. सूर्यसम्प्रदाय
९. इन्द्रसम्प्रदाय
१०. स्कन्दसम्प्रदाय
११. शिवसम्प्रदाय
१२. क्रोधभट्टारकसम्प्रदाय

कहा भी गया है—

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।।

त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या के ये ही द्वादश उपासक हैं।

इन सम्प्रदायों में चौथा एवं पाँचवाँ सम्प्रदाय (कादिविद्या : कामराजविद्या एवं लोपामुद्रा विद्या : हादिविद्या) एवं मन्मथसम्प्रदाय तथा लोपामुद्रा सम्प्रदाय ही सम्प्रति प्रचलित है।

त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड में कामदेव के द्वारा घोर तप करके श्रीविद्यादेवी द्वारा वर प्राप्त करने की कथा वर्णित है। 'लोपामुद्रा' ऋग्वेद की अन्यतम ऋषि हैं (ऋग्वेद : १.१७९.१-२)। ये ऋषि अगस्त्य की भार्या भी थीं। इन्होंने श्रीविद्या की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। जिस मन्त्र की साधना द्वारा इन्होंने सिद्धि प्राप्त की, उसका ही नाम है— लोपामुद्रा विद्या एवं हादिविद्या।

'कामकलाविलास' में कहा गया है कि श्रीविद्यारत्नागम में दो सन्तानें हैं—

श्रीविद्यागम की सन्तानें

कामराजसन्तान लोपामुद्रासन्तान

दश महाविद्याओं में तृतीय विद्या 'षोडशी महाविद्या' ही है। शंकराचार्य के सभी मठों में आज भी 'श्रीयन्त्र' एवं 'श्रीविद्या' की पूजा की जाती है।

देश का वर्गीकरण— तान्त्रिकों ने भौगोलिक दृष्टि से भारत एवं एशिया महाद्वीप को तीन भागों में विभाजित किया है—

१. विष्णुक्रान्ता = भारत का उत्तरपूर्वीय प्रदेश (विन्ध्य से लेकर चट्टग्राम तक)।

२. रथक्रान्ता = विन्ध्य से महाचीन (तिब्बत) तक का प्रदेश।

३. अश्वक्रान्ता = (मतभेद है) शाक्तमंगल तन्त्र के अनुसार विन्ध्य से लेकर दक्षिण समुद्रपर्यन्त के समस्त प्रदेश एवं 'महासिद्धिसार' के अनुसार करतोया नदी से जावा तक का समस्त प्रदेश।

इन तीनों क्रान्ताओं में ६४ प्रकार के तन्त्र प्रचलित हैं।

शाक्त पूजा के प्रधान केन्द्र

काश्मीर — काञ्ची — कामाख्या

काश्मीर, काञ्ची — (श्रीविद्या के केन्द्र)

कामाख्या — (कौलमत का प्रधान स्थान-पञ्च मकारों का उग्र रूप)

काशी में इन तीनों ही सिद्धान्तों का समन्वय है।

शाक्ततन्त्रों का सम्बन्ध अथर्ववेद के सौभाग्यकाण्ड से माना जाता है। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद से सम्बद्ध तान्त्रिक उपनिषद् भी हैं। तान्त्रिक उपनिषदों में प्रसिद्ध तन्त्र निम्नांकित हैं—

कौलोपनिषद्, त्रिपुरामहोपनिषद्, भावनोपनिषद्, बह्वृचोपनिषद्, अरुणोपनिषद्, अद्वैतभावनोपनिषद्, कालिका एवं तारा उपनिषद् आदि। पुराणों में देवीभागवत, कालिका, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड पुराण आदि प्रसिद्ध हैं।

तान्त्रिक आचार्य

शाक्ततन्त्र के आचार्य एवं उनकी रचनायें[१]— श्रीदत्तात्रेय के त्रिपुरातत्त्व से सम्बद्ध 'अष्टादशसाहस्त्री' एवं 'दत्तसंहिता' दुर्बोध थी; अत: उस पर परशुराम ने ५० खण्डों एवं ६००० सूत्रों में एक ग्रन्थ लिखा। हारितायन सुमेधा ने इसे भी संक्षिप्त करके 'परशुरामकल्पसूत्र' लिखा। 'अगस्त्य' ने 'शक्तिसूत्र' (११३ सूत्रों में) लिखा। दुर्वासा-रचित 'शक्तिमहिम्नसूत्र' आज भी प्राप्त है। आचार्य गौड़पाद (श्रीविद्या के महान उपासक) ने 'सुभगोदयस्तोत्र' लिखा। 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' भी उन्हीं की रचना है। आचार्य शंकर (श्रीविद्या के बहुत बड़े उपासक) ने 'सौन्दर्यलहरी' एवं 'ललितात्रिशतीभाष्य' लिखा। लक्ष्मीधर की लक्ष्मीधरा टीका 'समयमार्ग' के रहस्यों को प्रकट करने वाली श्री सम्प्रदाय की उत्कृष्ट टीका है।

---

१. **शैवमत की नादक्रमात्मिका कुल-परम्परा**— आयातिक्रम अर्थात् जिस क्रम से शास्त्र आविर्भूत हुआ—

प्रथम परम्परा— भैरव → भैरवी → लाकुल → अनन्त → गहनेश → ब्रह्मा → इन्द्र → बृहस्पति।

इस परम्परा में ९ गुरु एवं ९ करोड़ मन्त्र हैं।

द्वितीय परम्परा— भैरव → भैरवी → स्वच्छन्द → लाकुल → अणुराट् (अनन्त) → गहनेश → ब्रह्मा → शक्र → गुरु।

इस परम्परा में आगे दक्ष, वामन, भार्गव, वासुकि, रावण, विभीषण, राम, लक्ष्मण आदि शास्ता हैं।

तृतीय परम्परा— दक्ष → चण्ड → हरिश्चन्द्र → प्रमथ भीम → शकुनि → सुमति → नन्द → कृष्ण।

अभिनवगुप्त द्वारा स्वीकृत परम्परा— लक्ष्मण → सिद्धगण → दानव → गुह्यक →

पुण्यानन्दनाथ ने 'कामकलाविलास' एवं नटनानन्दनाथ ने उस पर 'चिद्वल्ली' टीका लिखी। 'योगिनीहृदय' एवं अमृतानन्दनाथ की 'योगिनीहृदयदीपिका' टीका एवं भास्कर राय का 'सेतुबन्ध' (योगिनीहृदय की टीका) तथा 'वरिवस्यारहस्यम्' एवं 'ललितासहस्रनाम' पर लिखा गया भाष्य– 'सौभाग्यभास्कर' उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। भास्कर राय ने कौल, त्रिपुरा और 'भावना उपनिषद्' पर भी टीकायें लिखी। भास्कर के शिष्य उमानन्दनाथ ने 'नित्योत्सव' लिखा। रामेश्वसूरि ने 'सौभाग्यसुधोदय' (परशुरामकल्पसूत्र की टीका) लिखा। कौलमत के आचार्यों में पूर्णानन्द ने 'षट्चक्रनिरूपणम्' तथा 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' लिखा। इन्होंने अन्य ग्रन्थ भी लिखे; यथा— 'श्यामारहस्य, शाक्तक्रम, तत्त्वानन्दतरंगिणी।' सर्वानन्द का 'सर्वोल्लास' अत्यन्त ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

शाक्तों की प्रयोगपद्धति के निरूपणार्थ निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—

१. योगिनी तन्त्र	६. हरगौरी तन्त्र	११. सर्वोल्लास तन्त्र
२. वाराही तन्त्र	७. शाक्तिसंगम तन्त्र	१२. महानिर्वाण तन्त्र
३. कात्यायनी तन्त्र	८. लक्ष्मी तन्त्र	१३. कुलार्णव तन्त्र
४. मरीचि तन्त्र	९. सम्मोहन तन्त्र	१४. निरुत्तर तन्त्र
५. डामर तन्त्र	१०. नेत्र तन्त्र	

शाक्तमत के प्रमुख व्याख्यान-ग्रन्थ मुख्यत: निम्न हैं—

योगीजन → राजा। राजाओं द्वारा शास्त्र जब नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये, तब श्रीकण्ठ की आज्ञा से सिद्ध शैवों का अवतरण हुआ। इनमें त्र्यम्बक, आमर्दक एवं श्रीनाथ त्रिकदर्शनानुयायी अद्वैतवाद के समर्थक हुये। वसुगुप्त, सोमानन्द, कल्लट, उत्पल, रामकण्ठ, क्षेमराज, अभिनवगुप्त, भास्कर आदि आचार्य इसी परम्परा एवं अद्वैतवाद के प्रतिपादक आचार्य हैं।

श्रीकण्ठ की आज्ञा से त्र्यम्बक, आमर्दक एवं श्रीनाथ नामक शैवाचार्यों ने अद्वयवाद, द्वैतवाद एवं द्वयाद्वयवाद का प्रवर्त्तन एवं प्रतिपादन किया। इनमें त्र्यम्बक की वंशपरम्परा प्रवर्द्धित हुई। आमर्दक की पुत्री का वंशक्रम चला। वह सन्तान 'अर्धत्रैयम्बक' रूप से प्रतिष्ठित हुई। इस प्रकार तीन के स्थान पर साढ़े तीन वंशपरम्परा चली। साढ़े तीन मठिकायें हुईं— श्रीसन्तति, आमर्दक, त्रैयम्बक एवं अर्द्धत्रैयम्बक। श्रीकण्ठनाथ ने अद्वयवादी शैवशास्त्र का प्रवर्त्तन किया। त्र्यम्बक अद्वैतवादी परम्परा के प्रवर्त्तक श्रीकण्ठ के पुत्र हैं। आमर्दक द्वैतवादी परम्परा के प्रवर्त्तक थे। त्रैयम्बक सन्तति त्र्यम्बकपरम्परा को संकेतित करता है।

शिवशासन (शैवमत) के उच्छिन्न होने पर श्रीकण्ठ ने कैलास पर्वत पर भ्रमण करते समय दुर्वासा को शैवशासन की रक्षा करने हेतु आदिष्ट किया था—

कैलासाद्रौ भ्रमन्देवो मूर्त्या श्रीकण्ठरूपया। अनुग्रहायावतीर्णश्चोदयामास भूतले ।।
मुनिं दुर्वाससं नाम भगवानूर्ध्वरेतसम्। नोच्छिद्यते यथाशास्त्रं रहस्यं कुरु तादृशम् ।।
ततः स भगवान्देवादादेशं प्राप्य यत्नतः। ससर्ज मानसं पुत्रं त्र्यम्बकादित्यनामकम् ।।
श्रीमच्छ्रीकण्ठनाथाज्ञावशात्सिद्धा अवातरन्। त्र्यम्बकामर्दकाभिख्यश्रीनाथा अद्वये द्वये ।।

१. परात्रिंशिका
२. मालिनीविजय
३. संवित्सिद्धि
४. तन्त्रराज तन्त्र
५. तन्त्रसार
६. तन्त्रवटधानिका
७. षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह
८. विज्ञानभैरव
९. स्पन्दसन्दोह
१०. शिवसूत्रविमर्शिनी
११. स्पन्दकारिका
१२. त्रिपुरारहस्य
१३. योगिनीहृदय
१४. महार्थमञ्जरी
१५. वामकेश्वर तन्त्र
१६. मातृकाचक्रविवेक
१७. शक्तितत्त्वविमर्शिनी
१८. समयमत—
  १. वसिष्ठसंहिता
  २. सनकसंहिता
  ३. शुकसंहिता
  ४. सनन्दनसंहिता
  ५. सनत्कुमारसंहिता

काश्मीरी शैव भी शाक्त ही हैं।

शाक्त युग

फ़र्कुहर ने The Religious Qest of India (पृ०-१६७) में लिखा है कि शाक्त-युग ५०० ई० से ९०० ई० तक है। फ़र्कुहर के मतानुसार कुब्जिकातन्त्र ७वीं सदी का है और यामल साहित्य (ब्रह्मयामल, 'विष्णुयामल', रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल आदि) ९०० से १३५० ईसा के मध्य के हैं। कौलोपनिषद, परशुरामकल्पसूत्र, त्रिपुरातापनीय, त्रिपुरषट्चक्र, भावना उपनिषद्, 'देवी उपनिषद्' एवं शारदातिलक आदि भी इसी युग की रचनायें हैं। इसी युग में वाम मार्ग के विपरीत दक्षिण मार्ग की प्रवृत्ति बढ़ी। आज अधिकतर मन्दिरों में दक्षिणपन्थी शाक्तमत का ही प्रभाव है। १३वीं शताब्दी के बाद से वैदिक आचारों की ओर उन्मुखता एवं शाक्त धर्म में सुधार बढ़ा और शंकराचार्य ने वाममार्गी के स्थान पर दक्षिणमार्गी साधना प्रच-लित की। लक्ष्मीधर (सम्भवतः १२६८-१३७९ ई०) ने सुधारवाद का शंखनाद किया और 'सौन्दर्यलहरी' की अपनी टीका में कौल, मिश्र एवं समय— इन तीन मार्गों का उल्लेख करते हुये समयमत के तन्त्रों को ही शुद्ध तन्त्र घोषित किया। 'कौलमार्ग' वामा-चारी तान्त्रिक पद्धति है। इनमें भोग से मुक्ति प्राप्त करने की दृष्टि स्वीकृत है और 'मिश्रमार्ग' में भोग एवं मुक्ति— दोनों का ही विधान स्वीकृत है। ये लौकिक सिद्धि एवं पारलौकिक सिद्धि— दोनों पर ही बल देते हैं। चन्द्रकला, ज्योत्स्नावती, कलानिधि आदि इनके आठ मार्ग हैं।

काश्मीरी तान्त्रिकों के ग्रन्थ— तन्त्रालोक, प्रत्यभिज्ञासूत्र, महार्थमञ्जरी, स्पन्दकारिका, मालिनीविजय, तन्त्रसार आदि श्रीविद्या (त्रिपुरसुन्दरी) के प्रतिपादक ग्रन्थ माने जाते हैं।

आम्नाय-विभाजन

भगवान् शिव के ६ मुखों से तन्त्रों का आविर्भाव हुआ है और उन्हीं शिवमुखों से देवी-देवताओं का भी आविर्भाव हुआ है; यथा—

आम्नाय— शिव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व एवं अधोमुख से उत्पन्न।

१. पूर्वाम्नाय (मन्त्रयोग एवं सृष्टिरूप पूर्वाम्नाय से)— भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, ललिता, पद्मा, शूलिनी, सरस्वती, त्वरिता, नित्या, अन्नपूर्णा, महालक्ष्मी आदि देवियाँ।

२. पश्चिमाम्नाय (कर्मयोग एवं संहाररूप पश्चिमाम्नाय से)— गोपाल, कृष्ण, नारायण, वासुदेव, नृसिंह, वामन, वराह, रामचन्द्र, अग्नि, यम, सूर्य, हनुमान आदि।

३. उत्तराम्नाय (ज्ञानयोग एवं अनुग्रहरूप उत्तराम्नाय से)— महाकाली, गुह्य-काली, श्मशानकाली, भद्रकाली आदि।

४. दक्षिणाम्नाय (भक्तियोग एवं स्थितिरूप दक्षिणाम्नाय से)— प्रसाद सदा-शिव, वटुक, मञ्जुघोष (बौद्धदेवता), भैरव आदि देवता।

५. अधाम्नाय— देवस्थान, आसन, माला, नैवेद्य, बलिदान, साधना, पुरश्चरण, मन्त्रसिद्धि आदि।[१]

६. ऊर्ध्वाम्नाय— (क) कौलमत (कौलों के मत से)।
(ख) समयमत (समयमार्गियों के मत से)।

शाक्तमत पर प्रकाश डालने वाले विदेशी विद्वानों में ग्लैस्नैल, कोनो, जिमर, हाप-किंस, विलियम वार्ड, विल्सन, मोनियर विलियम्स, बार्थ, विलियम क्रुक, विंटरनिट्ज, पाइने एवं आर्थर एवेलान या सर जान वुडरक़ आदि प्रसिद्ध माने जाते हैं।

हापकिंस, विलियम वार्ड, विलसन, मोनियर विलियम्स, वार्थ, विलियम क्रुक आदि शाक्तमत के निन्दक थे; क्योंकि उन्होंने तन्त्र के वामाचार की दृष्टि से ही तन्त्र को देखा था, न कि समग्र दृष्टि से।

'परशुरामकल्पसूत्र' ने आम्नायों की नूतन व्याख्या प्रस्तुत करके इन्हें 'सृष्टिरूप'– मन्त्रयोगात्मक, 'स्थितिरूप'— भक्तियोगात्मक, 'संहाररूप'— कर्मयोगात्मक, 'अनुग्रह-रूप'— ज्ञानयोगात्मक, गुप्ताम्नाय— सहजावस्थात्मक बतलाया है।

१. पूर्वाम्नाय = अज्ञानावस्था। 'पापोऽहं पाकर्माऽहं' की मानसिकता। आराध्य को स्वामी एवं अपने को दास मानना।

२. दक्षिणाम्नाय = ज्ञान की भूमिका का प्रारम्भ बिन्दु— प्रस्थानबिन्दु।

३. पश्चिमाम्नाय = ज्ञान की उत्तरार्द्ध अवस्था। उपासक-उपास्य में अभेद-प्रतिपत्ति की भावना।

४. उत्तराम्नाय = ज्ञान की पूर्णता की स्थिति।

५. ऊर्ध्वाम्नाय = ज्ञान-भूमिका की पराकाष्ठा (साधक का इस स्तर पर स्वयं सच्चिदानन्द बन जाना)।[२]

---

१. जान वुडरक़— 'शक्ति ऐण्ड शाक्ताज़'।

२. प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं शाक्तदर्शन— दोनों ही अद्वैतवादी हैं तथा दोनों ही के अनुसार शिव-शक्ति का सामरस्य ही अद्वय परमेश्वर या परब्रह्म है :

शाक्तमत और उसका आदिकाल

रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत— भण्डारकर महोदय का कथन है कि मैंने आरम्भ से गृह्यसूत्रों तक वैदिक साहित्य की परीक्षा की, किन्तु मुझे कहीं भी शक्ति-सम्पन्न किसी देवी का उल्लेख नहीं मिला। रुद्राणी, भवानी जैसे कुछ नाम अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे व्युत्पन्नमात्र हैं। इनसे किसी शक्तिसम्पन्न स्वतन्त्र देवी के अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता। उमा भी एक देव की पत्नी ही हैं और प्रभाव में अपने पति से ऊपर नहीं है;[१] किन्तु महाभारत (भीष्म-पर्व, अध्याय-२३) में कृष्ण के परामर्श पर अर्जुन दुर्गा की स्तुति करते हैं और भावी युद्ध में विजयार्थ उनसे प्रार्थना करते हैं। निष्कर्ष यह कि इस समय के पूर्व ही दुर्गा एक शक्तिसम्पन्न देवी हो चुकी थीं। उनकी स्तुति में उनको इन नामों से पुकारा गया है— कुमारी, काली, कपाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, कराला, विजया, कौशिकी, उमा एवं कान्तारवासिनी।

महाभारत के विराट पर्व (अध्याय-६) में युधिष्ठिर ने देवी की स्तुति की है। सम्भवत: यह प्रक्षिप्त अंश है। ये महिषासुरमर्दिनी हैं और सुरा, मांस तथा पशुओं में अनुरक्त हैं। वे यशोदागर्भसम्भूता हैं। कंस के द्वारा पत्थर पर पटकी जाने पर वे स्वर्ग चली गईं। वे नारायण की प्रियतमा एवं वासुदेव की भगिनी हैं और विन्ध्याचल पर्वत पर स्थायी रूप से निवास करती हैं।

हरिवंश पुराण (श्लोक-३२-३६) में विष्णु के पाताललोक जाकर कालरूपिणी निद्रा से यशोदा की पुत्री बनने के अनुरोध का उल्लेख आता है। उन देवी ने कहा कि मैं 'कौशिकी' के नाम से अवतरित होऊँगी, विन्ध्याचल पर स्थायी रूप से रहूँगी, शुम्भ-निशुम्भ का वध करूँगी तथा पशु-बलि से पूजित होऊँगी। यहीं आप्या (दुर्गा) की स्तुति भी उद्धृत की गई है, जिसमें उन्हें सुरा एवं मांस की अनुरागिणी तथा शबरों, पुलिन्दों, बर्बरों एवं अन्य वन्य जातियों की देवी के रूप में चित्रित किया गया है।

मार्कण्डेय पुराण (अध्याय-८२) के अनुसार 'महिषासुरमर्दिनी' देवी शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं विभिन्न देवों के प्रचण्ड तेज से निर्मित हुई थीं। उन्हें 'चण्डी' एवं 'अम्बिका' कहा गया है। श्रीचक्र देवी का स्थूल शरीर है।[२]

श्रीचक्र— श्रीचक्र-स्थित वृत्तत्रय रक्त, शुक्ल एवं मिश्र— बिन्दुत्रय के तेजस्वरूप हैं। ये ही भगवती त्रिपुरसुन्दरी के नेत्रत्रय हैं। 'रक्तबिन्दु' अग्निस्वरूप, 'श्वेतबिन्दु' सोम-स्वरूप, एवं मिश्रबिन्दु सूर्यस्वरूप है। भूपुरत्रय में आदि, कादि, त्रिखण्डा मातृका है।

शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिण:।

१. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर— 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत'।

२. श्रीचक्र श्रीविद्या-सम्प्रदाय की अत्यन्त रहस्यमयी आध्यात्मिक तथा रेखाचित्रात्मक विश्व-कल्पना है।

यहाँ पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी— तीन वाणियाँ हैं। परा वाक् की दो गतियाँ हैं—

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चरणों से प्रसृत करोड़ों रश्मियों से अनन्त ब्रह्माण्डों का जन्म 'पदविक्षेप' है।

'क्रमोदय' के दो रूप हैं— औघत्रय (गुरुत्रय का समूहवर्ग) एवं नवावरणस्थ। समस्त शक्तियाँ भगवती के चरणों का ही प्रसार हैं।

श्रीचक्र भगवती के 'एकोऽहं बहु स्याम' का ही परिणाम है। यह इच्छा ही उन्हें चक्र के रूप में परिणत कर देती है। भगवती के श्रीविग्रह की परिणतियाँ ही समस्त आवरण-शक्तियाँ हैं। भगवती के हाथ में स्थित 'अंकुश' ज्ञानशक्ति,'धनुष-बाण' क्रिया-शक्ति, 'पाश' स्नेह, 'अंकुश' ज्ञान, 'बाण' पञ्चतन्मात्रायें एवं 'धनुष' मन है।

'भूपुर' की प्रथम रेखा में संक्षोभिणी आदि ९ मुद्रायें स्थित हैं। भूपुर की मध्य रेखा में भगवती की त्वचा आदि धातुयें एवं अष्टम सम्पूर्ण विग्रह (ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं के रूप में) स्थित है। भूपुर की अन्तिम रेखा में अणिमा आदि ८ सिद्धियाँ हठयोग आदि आठ विद्याओं के रूप में स्थित हैं। 'पञ्चदशी' मन्त्र भगवती का अपना सूक्ष्म शरीर है। 'मूलाधार' में नादस्वरूप परावाक् शक्ति का प्रथमावतार है। परावाक् यद्यपि मूलाधार में है, तथापि वही नाभि में पश्यन्ती, हृदय में मध्यमा एवं मुख में वैखरी बनकर स्थित है। 'चक्रराज' भगवती का स्थूल रूप एवं 'मन्त्र' सूक्ष्म स्वरूप है। आनन्द की जिस क्षुद्र मात्रा से विश्व के प्राणी जीवित हैं, उस परमानन्द-परिपूर्ण परम तत्त्व का अहंभाव (अहंकारात्मक ज्ञान) परमानन्दस्वरूपा त्रिपुरा हैं। आदि गुरु परमशिव से अभिन्न हैं। काम-कलात्मक जो 'हार्द बिन्दु' है, वह उनका अधिष्ठान है। इसी बिन्दु में आदि दम्पति, ओघत्रय एवं गुरुमण्डल स्थित है। यह बिन्दु ही निष्कल, निराकार परम तत्त्व का प्रथमावतार है। 'श्रीचक्र' भगवती का शरीर एवं 'बिन्दु' ही प्राण है। जब विमर्श शक्ति द्वारा बिन्दु में स्पन्दन क्रिया होती है तब परा शक्ति का आधा भाग 'कामेश्वरी' एवं आधा भाग 'कामेश्वर' के रूप में व्यक्त होता है। एक तत्त्व ही अपने को पति-पत्नी रूप में विभाजित कर लेता है। गुरु 'कामेश्वर' शिष्या 'कामेश्वरी' से अभिन्न हैं। दोनों तत्त्व इसी 'बिन्दु' में अविनाभाव से रहते हैं। स्पष्ट है कि गुरु, आत्मा, कामेश्वर एवं कामेश्वरी अभिन्न हैं। त्रिकोण के मध्य में स्थित 'उड्डीयान पीठ' श्रीपीठ है। यहाँ ज्ञानप्रदाता श्रीगुरुदेव 'शिव' हैं और शिष्या 'कामेश्वरी' हैं। इनका नाम है— श्रीचर्यानन्दनाथ। सत्य-युग के आरम्भ में भगवान् परमशिव ने श्रीविद्याक्रम का उपदेश भगवती कामेश्वरी को दिया था और तभी से यह त्रिपुरा सम्प्रदाय भूतल में प्रचलित है।

शुम्भ-निशुम्भ से पीड़ित देवगण हिमालय पर्वत पर देवी की स्तुति करते हैं। गंगा में स्नान करने हेतु जाती हुई पार्वती के शरीर से शिवा (अम्बिका) का आविर्भाव होता है और वे कहती हैं कि शुम्भ-निशुम्भ के वध के लिए प्रार्थना करने वाले हे देवों ! जिसकी तुम स्तुति कर रहे हो, वह मैं ही हूँ। पार्वती के कोश से उद्भूत होने के कारण

वे 'कौशकी' कहलाईं। पार्वती के शरीर से अम्बिका के निकलने पर पार्वती का शरीर कृष्ण वर्ण का हो गया; अत: कृष्ण वर्ण का होने के कारण उनका नाम 'कालिका' पड़ा। शुम्भ-निशुम्भ के द्वारा उन पर आक्रमण कर देने से उनका मस्तक कृष्ण वर्ण का हो गया और उससे नरमुण्ड, व्याघ्रचर्म एवं खट्वांग धारण की हुईं करालमुखी 'काली' निकलीं। उन्होंने चण्ड-मुण्ड का वध किया; अत: अम्बिका ने उनका नाम 'चामुण्डा' रख दिया। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही एवं नारसिंही तथा ऐन्द्री— ये सप्त शक्तियाँ उनकी विभूति कही गई हैं। देवी कहती हैं कि मैं वैवस्वत मन्वन्तर में पुन: 'विन्ध्यवासिनी' देवी का रूप धारण करके शुम्भ-निशुम्भ का वध करूँगी। वे अपने नन्द-सुता, शाकम्भरी, भीमा, भ्रामरी आदि के रूप में अवतार लेने की भविष्यवाणी भी करती हैं।

(पार्वती → अम्बिका या शिवा = कौशिकी। कृष्णवर्णा पार्वती → कालिका (मस्तक से काली = चामुण्डा) विभिन्न नामों से युक्त ये देवियाँ एक ही देवी के रूपान्तरमात्र हैं। सर्वप्रथम हमें 'उमा' के दर्शन होते हैं, जो कि देवों की रक्षिका हैं। ये शिव की पत्नी भी हैं। फिर हमें 'हैमवती' एवं 'पार्वती' के नाम मिलते हैं। ये सभी उमा के ही विशेषण हैं।

इसके बाद वनों एवं विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाली देवियों के नाम मिलते हैं, जो कि पशुओं एवं मनुष्यों की बलि ग्रहण करती हैं तथा सुरा, मांसादिक ग्रहण करती हैं। ये उग्र देवियाँ हैं तथा पुलिन्द, शबर, बर्बर आदि वन्य जातियों की पूज्या हैं। अग्नि की ७ महाजिह्वाओं में दो 'काली' एवं 'कराली' कहलाती हैं। शक्ति की भावना का योग होने पर उन्हें इच्छा-ज्ञान-क्रिया-सृजन-मोह आदि के प्रतीक के रूप में कल्पित किया गया। शक्ति की भावना के प्रभाव से हमें देवी के तीन रूप मिलते हैं—

१. सौम्य रूप (सामान्यतया पूज्य रूप),

२. प्रचण्ड रूप (कापालिक एवं कालामुखों द्वारा विशेषत: पूज्य) एवं

३. कामप्रधान रूप (शाक्तों द्वारा पूज्य)।

शक्ति के कामप्रधान रूप की विवेचना— इस सम्प्रदाय में देवी के नाम 'आनन्द-भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी, ललिता' आदि हैं। उक्त देवी का गृह सुरम्य है। देवी का धाम कल्प-वृक्ष से परिवृत्त सुधासिन्धु में नीप या कदम्बवृक्षों से घिरा हुआ एक मणिमण्डित मण्डप है। इस मण्डप में ही 'चिन्तामणि गृह' स्थित है।

इसी में त्रिपुरसुन्दरी ईशानी निवास करती हैं। क्रमश: शिव, सदाशिव और महेशान उनके मञ्च, पर्यंक एवं उपबर्हण हैं तथा ब्रह्मदेव, हरि, रुद्र एवं महेश्वर मञ्च के पाये हैं। यहाँ देवी को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

नव व्यूह

आनन्दभैरव या महाभैरव नौ व्यूहों की आत्मा है या वे स्वयं हीनौ व्यूहों से निर्मित हैं। नौ व्यूह निम्नाकित हैं— कालव्यूह, कुलव्यूह, नामव्यूह, ज्ञानव्यूह और चित्तव्यूह (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, महत्)।

महाभैरव ही देवी की आत्मा हैं। देवी भी नौ व्यूहों की आत्मा हैं या उनसे निर्मित हैं। अतः दोनों एक या अभिन्न हैं। जब उनमें सामरस्य होता है तब यह सृष्टि आरम्भ होती है। सृष्टि में 'महाभैरवी' एवं 'संहार' में महाभैरव प्रधान हैं।[1]

नव व्यूहात्मक होने के कारण महाभैरव को 'नवात्मा' कहा जाता है। नव व्यूहों का विवरण निम्नानुसार है—

कालव्यूह— निमेषादिक सूक्ष्म काल से लेकर कल्पान्त तक के सभी काल इसमें अन्तर्भुक्त हैं। सूर्य एवं चन्द्र काल के ज्ञापक हैं; अतः वे भी इसी के अन्तर्गत हैं।

कुलव्यूह— इसके भीतर नील-पीतादिक सभी रूप आ जाते हैं।

नामव्यूह— इसमें संज्ञास्कन्ध अर्थात् नामों के सभी प्रभेद समाविष्ट हैं।

ज्ञानव्यूह (विज्ञान स्कन्ध)— विज्ञान स्कन्ध के दो भाग हैं— सभाग और विभाग। सभाग = सविकल्पक ज्ञान एवं विभाग = निर्विकल्पक ज्ञान[2]।

चित्तव्यूह— इसमें अहंकार पञ्चस्कन्ध अन्तर्भुक्त है, जो निंम्नवत् है— अहंकार, चित्त, बुद्धि, महत् एवं मन।

नादव्यूह— राग, इच्छा, कृति आदि प्रयत्नस्कन्ध एवं मातृकाओं में परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी 'नादव्यूह' में सम्मिलित हैं। प्रयत्नस्कन्ध से माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर एवं सदाशिव भी रागादि के कारण होने से इस व्यूह के ही अन्तर्गत हैं।

बिन्दुव्यूह— मूलाधारादिक षट् चक्रों का समूह ही 'बिन्दुव्यूह' है।

कलाव्यूह— 'अ' से लेकर 'ज्ञ' पर्यन्त ५० वर्णों का समूह ही 'कलाव्यूह' कहलाता है।

जीवव्यूह— भोक्तृस्कन्ध, भोक्तासमूह ही 'जीवव्यूह' कहा जाता है।

नव व्यूह (नव व्यूहात्मक = आनन्दभैरव-आनन्दभैरवी)

भोक्ता	भोग	भोग्य
(जीवव्यूह)	(ज्ञानव्यूह)	(अन्य शेष व्यूह)

आनन्दभैरव ९ युक्तों से युक्त हैं। भगवती आनन्दभैरवी आनन्दभैरव से अपृथक् हैं। आनन्दभैरवी भी नवव्यूहात्मिका हैं।

वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका— ये ४ शक्तियाँ दो-दो प्रकार की हैं और इन आठ शक्तियों से युक्त भगवती नवात्मिका हैं। नवात्मक आनन्दभैरव जब नवात्मिका आनन्दभैरवी के साथ नृत्यरत होते हैं, तभी सृष्टि होती है। प्राणियों के ऊपर अनुग्रहशील होने पर ही वे नृत्य में रत होते हैं। महाभैरव का नृत्य 'ताण्डव' एवं भगवती का नृत्य 'लास्य' कहलाता है। उत्तरकौल → 'पुरुष' से असम्पृक्त प्रधान ही जगत् की उत्पादिका है।

उत्तरकौलों का मत है कि जगत् की सृष्टि में शिव की कोई भूमिका नहीं है। संहार

---

१. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर— 'वैष्णव,शैव और अन्य धार्मिक मत'।

२. लक्ष्मीधर— 'लक्ष्मीधरा'।

के समय भी शिव नहीं, स्वयं शक्ति ही समस्त जगत् को अपने में लीन कर लेती है। इसीलिए इसे 'आधारकुण्डलिनी' कहा जाता है।

मिश्रमार्ग में चन्द्रकला, ज्योत्स्नावती, कलानिधि, कुलार्णव आदि तन्त्र-ग्रन्थ स्वीकृत हैं। इन तन्त्रों में अभ्युदय (जागतिक लौकिक उन्नति) एवं निःश्रेयस् (मोक्षदात्री ब्रह्मविद्या की प्राप्ति)— दोनों का विधान है। इसमें कौलमार्ग एवं समयमार्ग दोनों का सम्मिश्रण है, इसीलिए इस मार्ग को 'मिश्रमार्ग' कहा गया है।

अद्वैतवाद— तान्त्रिकों के मार्गत्रय— कौल मिश्र एवं समय में कौलमार्ग वामाचारी है। कौलमार्ग में महामाया, संवर, ब्रह्मयामल, रुद्रयामल आदि ६४ मान्य तन्त्रग्रन्थ हैं। मत्स्येन्द्र, गोरक्ष आदि नाथों का इसी कौलमार्ग से सम्बन्ध था। कौलमार्ग में अद्वैतवाद सिद्धान्त, साधना एवं आचार तीनों में सञ्चरित किये जाते रहने के लिए सतत् प्रयास किया जाता रहा; इसीलिए समत्व भाव को भी वरेण्य मानकर 'भावचूड़ामणि' में कहा गया कि कर्दम (कीचड़) एवं चन्दन, पुत्र एवं शत्रु, श्मशान एवं भवन, काञ्चन एवं तृण में कोई भेद नहीं है; बल्कि सर्वत्र समभाव है—

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रं शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि ! तथैव काञ्चने तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि ! स कौलः परिकीर्तितः।।

आचार— इसी समभाव द्रष्टा का नाम है— कौल। कौलों के आचार को 'कौलाचार' कहा जाता है। यह वामाचारनिष्ठ हैं। तन्त्र में कुल ७ आचार माने जाते हैं— वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, शाक्ताचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। तन्त्र में सर्वोच्च आचार के रूप में कौलाचार ही प्रतिष्ठित है, क्योंकि यह अद्वैतवादनिष्ठ है और समत्ववादी है।

कौलमार्गी कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करके उसका सम्बन्ध सहस्रार चक्र में स्थित शिव से स्थापित करता है। स्वच्छन्दतन्त्र में कहा भी गया है—

कुलशक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते।।

कुल (शक्ति) + अकुल (शिव) का सम्बन्ध ही है— कौल।

पञ्च मकार— कौलमार्ग में पञ्च मकारोपासना भी स्वीकृत है। ये पञ्च मकार निम्नलिखित हैं—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रां मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्।।

द्वितीय अध्याय

शाक्त सम्प्रदाय एवं श्रीविद्या[1]

आम्नायों मे ऊर्ध्वाम्नाय प्रमुख है। कौल कहते हैं कि 'ऊर्ध्वाम्नाय' कौलाचार में गृहीत है। लेकिन समयमार्गी कहते हैं कि यह आम्नाय 'समयमत' से सम्बद्ध है। आम्नाय पाँच हैं—

१. पूर्वाम्नाय	३. दक्षिणाम्नाय	५. अधाम्नाय
२. पश्चिमाम्नाय	४. उत्तराम्नाय	

कुलार्णवतन्त्र में ऊर्ध्वाम्नाय की प्रशंसा की गई है।

भगवान् शिव के मुखपञ्चक से उपर्युक्त ५ आम्नायों का आविर्भाव हुआ है— शिव के पूर्व मुख से 'पूर्वाम्नाय', शिव के पश्चिमाभिमुख से 'पश्चिमाम्नाय', शिव के उत्तराभिमुख मुख से 'उत्तराम्नाय', शिव के दक्षिणवर्ती मुख से 'दक्षिणाम्नाय' और गुप्त मुख से 'अधाम्नाय'।

श्रीविद्या के सम्प्रदाय— शाक्तसम्प्रदाय तान्त्रिक सम्प्रदाय है। तन्त्रों को तीन विभागों में विभाजित किया गया है— विष्णुक्रान्त, रथक्रान्त और अश्वक्रान्त। प्रत्येक विभाग में ६४ तन्त्र सम्मिलित हैं। तान्त्रिक पूजक भी मुख्यत: तीन वर्गों में विभक्त हैं— शैव, शाक्त और वैष्णव।

सम्मोहन तन्त्र (अध्याय-५) के अनुसार शाक्तों के नौ आम्नाय एवं चार सम्प्रदाय हैं। ये सम्प्रदाय निम्नांकित हैं— केरल, काश्मीर, गौड़ और विलास।

आन्तरिक एवं बाह्य उपासना के आधार पर इनके भी दो-दो भेद हैं।

आजकल बंगाल और आसाम में शाक्तमत का अधिक प्रचार-प्रसार है। बंगाल में दुर्गापूजा और आसाम में देवी कामाख्या की पूजा अधिक प्रचलित है।

आचार-विचार की दृष्टि से शाक्तों के तीन वर्ग हैं— कौल, समयी और मिश्र।

श्रीसम्प्रदाय की कौलशाखा के अनुवर्ती अभिनवगुप्तपाद एवं भास्कर राय दोनों हैं; किन्तु समयमार्ग के उपासक लक्ष्मीधर हैं। शंकराचार्य की दृष्टि कौल और समयी दोनों है।

कौलमार्ग— अयं तु परम: कौलमार्ग: सम्यङ्महेश्वरि !।
असिधाराव्रतसमो मनोनिग्रहहेतुक:।
स्थिरचित्तस्य सुलभ: सकलस्तूर्णसिद्धिद:।। (परशुराम तन्त्र)

---

१. हजारों और करोड़ों वाक्यों एवं करोड़ों जिह्वाओं से भी षोडशाक्षरी श्रीविद्या की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इतनी महत्ता है इस श्रीविद्या की—

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि। वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्याषोडशाक्षरीम्।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का नाम भी श्रीविद्या एवं श्रीषोडशाक्षरीविद्या है । ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता। श्रीषोडशाक्षरीविद्या त्रिकूटा कामकोटिका।।

अर्थात् यही श्रेष्ठ कौलमार्ग है। इसकी साधना तलवार पर चलने के समान दुष्कर है। यह साधना मन को वशीभूत करने के लिए है। यह स्थिर चित्त वालों के लिए सुलभ एवं अस्थिर चित्त वालों के लिए दुर्लभ है। इसमें सफल होने पर शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।

शाक्तमत में 'कौल सम्प्रदाय' एवं 'कौलाचार' का विशेष महत्त्व रहा है। आचारों में कौलाचार अवधूत मार्ग में भी माना गया है।

शाक्तमत और कौलाचार (अन्त:सम्बन्ध)

(शाक्तमत के आचार)

वैदिकाचार — वैष्णवाचार — शैवाचार — शाक्ताचार

(शाक्ताचार:) वामाचार — दक्षिणाचार — सिद्धान्ताचार — कौलाचार

इस प्रकार तन्त्र सम्प्रदाय में कुल सात आचार प्रसिद्ध हैं—

१. वेदाचार
२. वैष्णवाचार
३. शैवाचार
४. शाक्ताचार
५. वामाचार
६. सिद्धान्ताचार
७. कौलाचार

षट्साम्भवरहस्य नामक ग्रन्थ में कौलाचार को श्रेष्ठतम आचार के रूप में स्वीकार किया गया है। महत्ता की दृष्टि से इन आचारों का उत्तरोत्तर क्रम इस प्रकार है—

वैदिक आचार से श्रेष्ठ 'वैष्णवाचार', दक्षिणाचार से श्रेष्ठ 'गाणपत्य आचार', गाणपत्य आचार से श्रेष्ठतर 'सौर आचार', सौर आचार से श्रेष्ठतर 'शैवाचार', शैवाचार से श्रेष्ठतर 'शाक्ताचार', शाक्ताचारों में भी क्रमश: वामाचार से श्रेष्ठतर 'दक्षिणाचार' और दक्षिणाचार से श्रेष्ठतर है— 'कौलाचार'। यह कौलाचार ही श्रेष्ठतम आचार है। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह के अनुसार समस्त शाक्ततन्त्रों को नाथसम्प्रदाय का अनुवर्ती स्वीकार किया गया है। तान्त्रिक समाम्नाय में कौल या अवधूत मत को श्रेष्ठतम मत कहा गया है। तान्त्रिकों का श्रेष्ठतम आचार कौलाचार को ही अवधूतमार्ग स्वीकार करके नाथों ने इसे अपना मत माना है— 'अस्माकं मतं त्ववधूतमेव।'[१]

प्राचीन कौल सम्प्रदाय— मत्स्येन्द्रनाथ ने कौलज्ञाननिर्णय के चौदहवें पटल में अनेकानेक कौल सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जो निम्नांकित हैं—

१. रामकूपादि कौल
२. वृषणोत्थकौलिक
३. वह्निकौल
४. कौल सद्भाव
५. पदोत्तिष्ठ कौल

---

१. गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह— १. पूर्वाम्नाय = सृष्टिरूप मन्त्रयोग, २. दक्षिणाम्नाय = स्थितिरूप भक्तियोग। ३. पश्चिमाम्नाय = संहाररूप कर्मयोग। ४. उत्तराम्नाय = अनुग्रहरूप ज्ञानयोग।

प्रबोधचन्द्र बागची महोदय ने कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका में इन सभी कौलशाखाओं को कौल सम्प्रदाय स्वीकार किया है। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'नाथ सम्प्रदाय' के पृष्ठ-६० पर इन्हें सम्प्रदाय के स्थान पर 'सिद्धि' कहते हैं। इनमें मन्त्र, प्राणायाम और चक्रध्यान की आवश्यकता नहीं पड़ती, लेकिन फिर भी ये सिद्धियाँ प्रदान करते हैं।

अन्य कौल सम्प्रदाय— 'कौलज्ञाननिर्णय' के सोलहवें पटल में निम्न सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है— १. कौलज्ञान, २. महत्कौल, ३. सिद्धामृत कौल, ४. मत्स्योदर कौल = (क) सतयुग : 'कौलज्ञान', (ख) त्रेतायुग : 'महत्कौल', (ग) द्वापर युग : 'सिद्धामृत' और (घ) कलियुग : 'मत्स्योदर कौल'।

भक्तियुक्ताः समत्वेन सर्वे शृण्वन्तु कौलिकम्।।

महाकौलात् सिद्धकौलं सिद्धकौलात् मसादरम्।
चतुर्युगविभागेन अवतारं चोदितं मया।।

ज्ञानादौ निर्णितिः कौलं द्वितीये महत्संज्ञकम्।
तृतीये सिद्धामृतं नाम कलौ मत्स्योदरं प्रिये।।

ये चास्मिन्निर्गता देवि ! वर्णयिष्यामि तेऽखिलम्।
एतस्माद्योगिनीकौलात् नाम्ना ज्ञानस्य निर्णितौ।।

महाकौल सम्प्रदाय के अनन्तर सिद्धकौल एवं सिद्धकौल के बाद मत्स्योदर कौल सम्प्रदाय का अविर्भाव हुआ।

शिव ने चार युगों में चार बार अवतार ग्रहण किया और इन सभी अवतारों में भिन्न-भिन्न कौल सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया।

चारों युगों में शिव-प्रवर्तित चार कौल सम्प्रदाय निम्न हैं—

१. कौलज्ञान : आदि युग
२. सिद्धकौल : त्रेतायुग
३. सिद्धामृत कौल : द्वापर युग
४. मत्स्योदर कौल : कलियुग

मत्स्योदर सम्प्रदाय से विनिर्गत कौलमत है— 'योगिनी कौल।'

कौलज्ञाननिर्णय के इक्कीसवें पटल में अनेक कौलमतों का उल्लेख किया गया है।

डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का मत— मत्स्येन्द्रनाथ 'सिद्ध' या 'सिद्धामृत मत' के अनुयायी थे। मत्स्येन्द्र ने स्वयं एक कौलमार्ग का प्रवर्तन किया, जिसका नाम है— 'योगिनी कौलमार्ग'। मत्स्येन्द्रप्रवर्तित कौलज्ञान कामरूप की योगिनियों के घर-घर में विद्यमान था। कामरूप की योगिनियों के घर में पूर्व से विद्यमान इसी कौलमार्ग का सन्धान करके मत्स्येन्द्रनाथ ने इन्हें संकलित किया था—

तस्य मध्ये इमं नाथ सारभूतं समुद्धृतम्।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे।।

मत्स्येन्द्रनाथ पहले सिद्ध या सिद्धामृत मार्ग के अनुवर्ती थे, किन्तु इसके उपरान्त वे कामरूप में वाममार्गी साधना करने लगे और वहीं से उन्होंने 'कौलज्ञान' का उद्धार किया। उनकी पुस्तक का नाम है— 'कौलज्ञाननिर्णय'। अत: संकेत यह मिलता है कि सम्प्रदाय का नाम 'कौलज्ञान' रहा होगा।

'सिद्धमत' कौल सम्प्रदाय का वह मार्ग है, जो ब्रह्मचर्य पर आश्रित था और जिसमें नारी-संसर्ग पूर्णत: निषिद्ध था। मत्स्येन्द्र पहले इसी के अनुवर्ती थे और इसी का त्याग करके वे कामरूप में विद्यमान 'कौलज्ञान' के अनुवर्ती बन गए थे तथा बाद में इसका भी त्याग करके पुन: 'सिद्धमत' के अनुयायी बन गए।

अघोरशिवाचार्य ने मृगेन्द्रवृत्तिदीपिका के विद्यापाद में कहा है कि 'हिरण्यगर्भकपिल-मत्स्येन्द्रादयो वेदसाङ्ख्यकौलादितन्त्राणाम्' अर्थात् हिरण्यगर्भ वेद के, कपिल सांख्य के एवं मत्स्येन्द्रनाथ कौलमार्ग के प्रवर्तक हैं।

आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने 'तन्त्रालोक' में मत्स्येन्द्रनाथ को 'सकलकुलशास्त्रावतारक' के रूप में नमन किया है। उन्होंने इन्हें 'मच्छन्दविभु' कहा है। कौल दर्शन के सम्प्रदायों में 'नाथ'-नामान्त अनेक आचार्य हुए हैं। कौल सम्प्रदाय से ही सौभाग्यविद्या सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ। इसमें अनेक 'आनन्दनाथ'-नामान्त आचार्य उत्पन्न हुए और उन्होंने भी ललिता मन्त्र को देशभेदात्मक माना।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में 'तवाज्ञाचक्रस्थ' इत्यादि श्लोकषट्क द्वारा सामयिक मत का निरूपण करने के अनन्तर कौलमत का भी निरूपण किया है। कौलमत के दो प्रकार हैं।

त्रिपुरोपासना के उपसम्प्रदाय

- कौलमत
  - पूर्वकौल
    - १. मूलाधारनिष्ठ
    - २. स्वाधिष्ठाननिष्ठ
    - ३. उभयनिष्ठ
  - उत्तरकौल
    - १. मातंगी
    - २. वाराही
    - ३. कौलामुखी
    - ४. तन्त्रनिष्ठा
- मिश्रमत
- समयमत

आचार्य लक्ष्मीधर के अनुसार आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी के—

१. शरीरं त्वं शम्भोश्शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्। (श्लोक-३४)

२. मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्। (श्लोक-३५)

—इन दोनों श्लोकों में 'कौलमत' का प्रतिपादन किया है।

योनि के दो प्रकार हैं। एक तो श्रीचक्रस्थित नवयोनि-मध्यवर्तिनी योनि है और दूसरी सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्षभूता योनि होती है। 'पूर्वकौल' श्रीचक्र में स्थित नवयोनि-मध्यगत योनि को भूर्ज-हेमपट्ट-वस्त्र-पीठ आदि पर अंकित करके उसकी पूजा करते हैं— 'श्रीचक्रस्थितनवयोनिमध्यगतयोनिं भूर्जहेमपट्टवस्त्रपीठादौ लिखिता पूर्वकौलाः पूजयन्ति।'

'उत्तरकौल' तरुणी के प्रत्यक्ष योनि की पूजा करते हैं।

कौलमत में 'त्रिकोण' ही बिन्दुस्थान है और वही बिन्दु वहाँ पूजित होता है— 'अत्र कौलमते त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम्। स एव बिन्दुः तत्र आराध्यः।'

अतः कौल त्रिकोण में ही नित्य 'बिन्दु' की उपासना करते हैं— 'अतएव कौलाः त्रिकोणे बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति।'

यह योनि दो प्रकार की होती है।

जिस त्रिकोण की 'कौल' पूजा करते हैं, वह दो प्रकार का है—

१. श्रीचक्रान्तर्गत नवयोनिमध्यवर्तिनी योनि।

२. सुन्दरी नारी की प्रत्यक्ष मांसल योनि।

कौलों की समाराधित दोनों योनियाँ बाह्य हैं। इसीलिए कौल आधारचक्र की पूजा करते हैं। यहाँ अवस्थित कुण्डलिनी शक्ति 'कौलिनी' कही जाती है। त्रिकोणपूजक कौलों की वही उपास्या है।

यह 'कुण्डलिनी' शक्ति बिन्दुरूपिणी है और कौलों द्वारा उसकी निद्रावस्था में ही पूजा की जाती है, क्योंकि वह मूलाधार चक्र में निद्रास्वभावा है। कौलों की यह पूजा 'तामिस्रपूजा' है।

जैसे ही कुण्डलिनी प्रबुद्ध होती है, कौल तत्क्षण मुक्त हो जाते हैं और क्योंकि कौलों की यह मुक्ति क्षणिक होती है, इसीलिए कहा भी गया है—

'अतएव क्षणमुक्ताः कौला इति व्यवहारः।'

कौल मतावलम्बी भी वामाचारियों की भाँति मांस, मधु, मत्स्य आदि स्थूल द्रव्यों के द्वारा समाराधना करते हैं।

कौल प्रत्यक्ष त्रिकोण में बिन्दुस्थान (मन्मथच्छत्र) की पूजा करते हैं।

कौल अधोमुखी त्रिकोण (अधोमुख छत्र) की पूजा करते हैं।

दिगम्बर क्षपणक आदि स्त्री को उत्तान करके उसके ऊर्ध्व त्रिकोण की पूजा करते हैं।

आधारचक्र एवं स्वाधिष्ठानचक्र 'तामिस्रलोक' हैं। यहाँ कौलों का ही अधिकार है, क्योंकि 'समयी' यहाँ आराधना नहीं किया करते। इसके विपरीत समयमत में भगवती की आराधना आधार— स्वाधिष्ठान में न की जाकर 'सहस्रकमल' में ही की जाती है।

कौलों द्वारा त्रिकोण में 'आनन्दभैरवी' एवं 'आनन्दभैरव' की पूजा की जाती है। साधक उससे तादात्म्य स्थापित किये रहते हैं। अतएव कौलबिन्दुपूजा के अवसर पर

भैरवाकार अर्थात् दिगम्बरत्व धारण करके स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ पूजा करते हैं। गुरु ही स्वयं भगवती एवं भगवान् दोनों होता है।[१]

'सर्वानन्दमय' चक्र के 'त्रिकोण' में जो श्रीपीठ (उड्डीयान पीठ) है, उसमें भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी बिन्दुरूप में अपृथक् रूप से गुरु एवं शिष्य के रूप में अवस्थित हैं।

सहस्त्रारावस्थित परमशिव हृत्पद्मस्थ जीवात्मा एवं मूलाधारस्थ कुण्डलिनी परम ज्ञातव्य तत्त्व हैं। जीवात्मा परमशिव से तो चैतन्य ग्रहण करता है, किन्तु कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। इसीलिए कुण्डलिनी को 'जीवशक्ति' कहा गया है।

योगसाधनाओं से कुण्डलिनी को निद्रा से जागृत करके मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्नानाड़ी के मार्ग से सहस्त्रारचक्र में अवस्थित 'परमशिव' तक ले जाना ही कौल-साधकों का प्रधान लक्ष्य होता है। वहीं शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही 'परमानन्द' कहलाता है। परमानन्द की इस उच्चोपलब्धि के अनन्तर कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

त्रिकोण के भेद— त्रिकोणस्वरूप मूलाधार चक्र में 'बिन्दु' का अवस्थान है। कौल-साधक इसी त्रिकोण को 'बिन्दुस्थान' स्वीकार करते हैं। यह त्रिकोणस्थ बिन्दु ही कौलों का उपास्य है। कौलमतावलम्बी त्रिकोणावस्थित बिन्दु की ही उपासना करते हैं। यह 'त्रिकोण' दो प्रकार का होता है। श्रीचक्र की ९ योनियों में से मध्यवर्ती योनि ही प्रथम त्रिकोण है और सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्ष योनि द्वितीय त्रिकोण है।

द्वितीय त्रिकोण (नारी की प्रत्यक्ष योनि) की पूजा मात्र उत्तरकौल करते हैं। समस्त कौल 'मूलाधार चक्र' की उपासना करते हैं। मूलाधारस्थिता कुण्डलिनी शक्ति को अपने कुल की प्रधान उपास्या मानने के कारण कौल इसे 'कौलिनी' कहते हैं। कौलिनी त्रिकोणोपासकों की आराध्या है। बिन्दुस्वरूपा यह 'कुलकुण्डलिनी' शक्ति निद्रावस्था में पूजनीया है। कुण्डलिनी के जागरण होने को कौल 'मोक्ष' मानते हैं। 'क्षणमुक्ता: कौला:' कहकर समयमार्गियों ने इनकी मुक्ति को शाश्वत नहीं, बल्कि क्षणिक माना है।

पूर्वकौल यह मान्यता रखते हैं कि आनन्दभैरवी ही 'शक्ति' है। आनन्दभैरवी शिव (आनन्दभैरव) का शरीर है। सूर्य एवं चन्द्र इनके स्तन हैं तथा नवात्मक शम्भु इनकी आत्मा हैं। शम्भु (आनन्दभैरव) नवव्यूहात्मक हैं ।

आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी दोनों प्रधान (शेषी) एवं गौण (शेष) हैं। सृष्टिकाल

---

१. 'गुरुतत्त्व' योगिनीहृदय में इस प्रकार बताया गया है—

त्वामिच्छाविग्रहां देवीं गुरुरूपां विभावयेत्।
त्वन्मयस्य गुरो: शेषं निवेद्यात्मनि योजयेत्।।

यह भी कहा गया है कि—

स्वप्रकाशशिवमूर्त्तिरेकिका तद्विमर्शतनुरेकिका तयो:।
सामरस्यवपुरिष्यते पदा पादुका परशिवात्मनो: गुरो:।।

में 'आनन्दभैरवी' शेषी या प्रधान रहती हैं, किन्तु संहारकाल में 'शिव' प्रधान रहते हैं अर्थात्—

क. सृष्टि-काल = आनन्दभैरवी प्रधान किन्तु आनन्दभैरव गौण।

ख. संहार-काल = आनन्दभैरव प्रधान, किन्तु आनन्दभैरवी गौण।

इस नवव्यूहात्मकता के कारण ही आनन्दभैरव (महाभैरव) को 'नवात्मा' की संज्ञा दी गई है।

ललिता-मन्त्र के दश भेद प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, जिनके सम्बन्ध में ब्रह्माण्ड-पुराण (४.३८.८-१०) में इस प्रकार कहा गया है—

तेभ्योऽपि ललितामन्त्रा दशभेदविभेदिताः।
वै तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन।।

लोपामुद्रा कामराज इति ख्यातिमुपागतौ।
हादिस्तु लोपामुद्रा स्यात्कामराजस्तु कादिका।।

ज्ञानार्णवतन्त्र (द्वादश पटल) में विद्या के १२ भेद वर्णित हैं। ज्ञानार्णव की व्याख्या-पद्धति में शंकरानन्दनाथ ने 'सुन्दरी महोदय' में बारह विद्याओं का उल्लेख किया है। वहाँ उन्होंने लोपामुद्रा को 'हादिविद्या' और कामराजोपासिता विद्या को 'कादिविद्या' के अभिधान से उल्लिखित किया है। पुण्यानन्दनाथ और अमृतानन्दनाथ 'हादिविद्या' के अनुयायी थे तथा भास्कर राय 'कादिविद्या' सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

यह सौभाग्य विद्या सम्प्रदायपरम्परा बहुकालव्यापिनी एवं बहुशाखान्विता है।

गुरुतत्त्व को शाक्त साधना एवं शैव-शाक्त दर्शन में अचिन्त्य महिमान्वित माना गया है। भावनोपनिषद् में तो प्रथम सूत्र गुरु के विषय में ही है— 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः।'

तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि गुरु ही आद्या शक्ति है— विमर्शमयी शक्ति है और 'आद्या' (सर्वकारणभूता) शक्ति है—

गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता। नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।

शिवसूत्र में भी कहा गया है कि—

गुरुरेव परा शक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका। अवकाशप्रदानेन सैव यायादुपायताम्।
अकृत्रिमाह मामर्शस्वरूपाद्यन्तवेदनात्। परमेष्ठिसमत्वेन परमोपायता गुरोः।।

'कौलमार्ग' वामाचारी तान्त्रिकों का मार्ग है।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि में कौलमार्ग— आचार्य लक्ष्मीधर ने शाक्तों के तीन सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जो कि कुलमार्ग या कौलमार्ग, मिश्रकमार्ग और समय-मार्ग के नाम से जाने जाते हैं। इन तीनों मार्गों में से केवल 'समयमार्ग' को ही उन्होंने ग्राह्य स्वीकार किया है तथा शेष दोनों मार्गों— 'कौलमार्ग' एवं 'मिश्रमार्ग' को त्याज्य माना है।

सौन्दर्यलहरी के इकतीसवें श्लोक की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि—

चन्द्रकलाविद्याष्टक कौल एवं समय— दोनों मार्गों का प्रतिपादन करने वाला है, अत

यह 'मिश्रकमार्ग' का प्रतिपादक है। इनके अनुवर्ती ही 'मिश्रकमार्गी' हैं।

चौंसठ तन्त्रों का अनुवर्तन करने वाले शाक्त 'कौलमार्गी' हैं।

शुभागमपञ्चक को मानने वाले शाक्त 'समयमार्गी' हैं।

इनमें से मिश्रमार्ग एवं कौलमार्ग त्याज्य है—

मिश्रकं कौलमार्गं च परित्याज्यं हि शाङ्करी।

ईश्वरवचनात् मिश्रकमतं कौलमार्गं च परित्याज्यम्।[१]

कौलमार्ग एवं कौलमत कौलों द्वारा स्वीकृत मार्ग एवं मत हैं—

कौलैः मृग्यते अवलम्ब्यत इति कौलमार्गः कौलमतम्।[२]

कुल, अकुल और कौल

शिवसंहिता (श्लोक-५५) के अनुसार 'कुल' परमेश्वर का नाम है—

चित्तवृत्तिर्यदा लीना कुलाख्ये परमेश्वरे।।

शिवसंहिता में ही कहा गया है की 'कुल' कुण्डलिनी शक्ति का नाम है—

अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लयं याति कुलाभिधा।
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लयते परमात्मनि।।

सौभाग्यभास्कर में कहा गया है कि 'कुल' कुण्डलिनी शक्ति का एवं 'अकुल' शिव का नाम है। कुल से अकुल का सम्बन्ध-स्थापन ही 'कौलमार्ग' है—

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते ।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ।।

अकुल (परमशिव) और कुल (शक्ति) को मिलाकर समरस बनाना ही कौल-साधना का लक्ष्य है तथा कुल एवं अकुल का सामरस्य (समरसत्व) ही 'कौलज्ञान' है।

सिद्धसिद्धान्तसंग्रह (४.१२-१३) में कहा गया है कि चूँकि शक्ति निखिल विश्व की उद्भाविका एवं प्रपञ्च-प्रवर्तिका है; अतः विश्वरूपी कुल की प्रसवित्री होने के कारण इसी शक्ति को 'कुल' कहा जाता है—

सा चापरम्परा शक्तिराज्ञेशस्यापरं कुलम्।
प्रपञ्चस्य समस्तस्य जगद्रूपप्रवर्तनात्।।

वर्ण, गोत्र आदि से रहित होने एवं अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, अनिर्धर्मक एवं अनंग होने के कारण ही शक्तिमान शिव को 'अकुल' कहा जाता है—

वर्णगोत्रादिराहित्यादेक एवाकुलं मतम्।
अनन्त्वादखण्डत्वादद्वयत्वादनाशनात् ।
निर्धर्मत्वादनङ्गत्वादकुलं स्यान्निरन्तरम्।।

१. लक्ष्मीधर : सौन्दर्यलहरी टीका : 'लक्ष्मीधरा'— श्लो. ३१।

२. लक्ष्मीधरा : श्लोक- ३१।

कुल की अन्य व्याख्यायें— 'कुल' शब्द के निम्न रहस्यार्थ हैं—

१. वंशानुगत। २. योगानुगत। ३. दर्शनानुगत।

'कुल' का वंशानुगत अर्थ— कुल या वंश दो प्रकार के होते हैं— बिन्द्वात्मक और नादात्मक। 'बिन्दुक्रम' से सम्बद्ध 'कुल' स्थूल शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता से सम्बद्ध है और 'नादक्रम' से सम्बद्ध 'कुल' गुरुपरम्परा से सम्बद्ध है। इसी प्रकार सृष्टि भी द्विविधात्मिका है— 'बिन्दुरूपा' और 'नादरूपा'। परमशिव से लेकर अपने दीक्षागुरु तक चली आ रही गुरुपरम्परा ही 'विद्याक्रम' है और इससे सम्बद्ध कुल ही वास्तविक 'कुल' है। इस विद्याक्रमानुगत 'कुल' के अनुयायी ही 'कौल' हैं।

'कुल' का योगशास्त्रानुगत अर्थ— आचार्य भास्कर राय ने 'सौभाग्य-भास्कर' (ललितासहस्रनाम की टीका) में 'कुल' शब्द की विशद विवेचना करते हुए इसके अनेक अर्थ दिये हैं; यथा—

१. कुल = सजातीय समूह (कुलस्य सजातीयसमूहस्य)—

'सजातीयैः कुलं यूथम्।' (कोश)

२. कुल = परमशिव से स्वगुरुपर्यन्त गुरुपरम्परा—

'परमशिवादि स्वगुरुपर्यन्तो वंशो वा कुलम्।'

३. 'सङ्ख्या वंश्येन'— इस पाणिनिसूत्र के अनुसार 'वंश' के दो प्रकार हैं— विद्यया एवं जन्मना : 'नादक्रम' एवं 'बिन्दुक्रम'।

'आचार' या 'कुल' (महाभाष्य)।

४. कुल = आचार— 'न कुलं कुलमित्याहुराचारकुलमुच्यते।'

५. कुल = सुषुम्ना मार्ग— 'सुषुम्नामार्गो वा कुलम्।'

६. योगपरक अर्थ— भास्कर राय कहते हैं कि 'कुल' का अर्थ है— मूलाधार चक्र। 'कु' अर्थात् पृथ्वीतत्त्व में 'ल' अर्थात् लीन होना। जिस चक्र में पृथ्वी तत्त्व लीन है, वह चक्र ही है— 'मूलाधार चक्र।' 'कु पृथ्वीतत्त्वं लीयते यस्मिंस्तदाधारचक्रम्।'

चूँकि सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्रस्थ 'कन्द' से निःसृत होती है और इसी पश्चिम पथ से कुण्डलिनी देवी यात्रा करती हुई 'अकुल' शिव तक जाती है; अतः सुषुम्ना नाड़ी को भी 'कुल' अभिधान प्राप्त है।

७. सिद्धसिद्धान्तसंग्रह (४.३०) में निखिल सृष्टि को ही 'कुल' की आख्या प्रदान कर दी गई है; क्योंकि 'कुण्डलिनी' सृष्टिरूपा है एवं सृष्टि कुण्डलिनी का स्थूल विकास है। कहा भी गया है— 'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।'

'कुल' शब्द का दर्शनानुगत अर्थ— विश्व के समस्त पदार्थ तीन भागों में विभक्त हैं— ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञाता = ज्ञान का कर्ता। ज्ञेय = ज्ञान का विषय। ज्ञान = जानने की क्रिया।

संसार के समस्त पदार्थ ज्ञाता के ज्ञान के विषय हैं। 'मैं' ज्ञान का कर्ता है। 'मैं जानता हूँ'— यह जानने की क्रिया 'ज्ञान' है और 'मैं घट को जानता हूँ'— इसमें 'घट' मुझ ज्ञाता के ज्ञान का विषय है।

'ज्ञान' की व्यापकता— 'ज्ञान' समवाय सम्बन्ध से 'ज्ञाता' में व्याप्त है। यही 'ज्ञान' विषयत्व के सम्बन्ध से 'ज्ञेय' में व्याप्त है और यही 'ज्ञान' तादात्म्य सम्बन्ध से 'ज्ञान' की क्रिया में व्याप्त है।

घट को जानने के लिए तो ज्ञान की आवश्यकता है, किन्तु स्वप्रकाश ज्ञान को जानने के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि ज्ञान स्वप्रकाश है। अत: उसके प्रकाशन के लिए परप्रकाश की आवश्यकता नहीं है। सुदीप्त दीपक को दीप्त करने के लिए अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जगत् ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान की समष्टि है। इस त्रिपुटीगत जगत् के समस्त पदार्थ ज्ञान की दृष्टि से सजातीय हैं; इसीलिए समस्त जगत् भी 'कुल' है। इस कुलज्ञान के ज्ञाता ही 'कौल' हैं और कौलों का ज्ञान ही कौलज्ञान है। निखिल विश्व के समस्त वैश्विक पदार्थों का त्रिपुटीभाव से अवबोध होना ही 'कौलज्ञान' है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहकर श्रुति भी ब्रह्म को ज्ञानस्वरूप स्वीकार करती है। जगत् भी ब्रह्ममय है— 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। ज्ञाता भी यथार्थत: ब्रह्म ही है— 'अहं ब्रह्मास्मि'। यह अद्वैत-ज्ञान ही 'कौलज्ञान' है और इस ज्ञान के साधक ही 'कौल' है।[१]

कुण्डलिनी शक्ति

शाक्त-साधना के मेरुदण्ड कुण्डलिनी के जागरण के विना आत्मसिद्धि सम्भव नहीं है। गुरुतत्त्व को शरीर के नव रन्ध्रों में व्याप्त माना गया है—

'तेन नवरन्ध्ररूपो देह:।' (भावनोपनिषद्-२)

'देहरन्ध्रनवत्वेन गुरोर्नवत्वं भासत। स्वदेहगतनवरन्ध्राणि नव नाथा इति यावत्।' (भास्कर)

गुरुतत्त्व— मालिनीतन्त्र में कहा गया है कि गुरु भगवत्स्वरूप है—

स गुरु: मत्सम: प्रोक्तो मन्त्रवीर्यप्रकाशक:।
आदिमान्यविहीनास्तु मन्त्रा: स्यु: शरदभ्रवत्।
गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं निवेदयेत्।।

भास्कर राय गुरु को पारिभाषित करते हुए भावनोपनिषद्भाष्य में कहते हैं— 'ईश्वरानुग्रहवशेन जायमानो विवेक एव सर्वसंशयभेदनेन मन्त्रवीर्यप्रकाशनेन तात्त्विकपदार्थानामवकाशप्रदानाद्विमर्शपदाभिधेयो गुरु:।'

---

१. कौलमार्गरहस्य : नाथसम्प्रदाय।

कुण्डलिनी के विभिन्न स्वरूप

कुमारी कुण्डलिनी और उसका अवस्थान

'कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते। यस्मिन् चक्रे कुमारी कौमारावस्थामापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति, कुण्डलिन्या: सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वरं करोति।' (लक्ष्मीधर)

कुमारी कुण्डलिनी

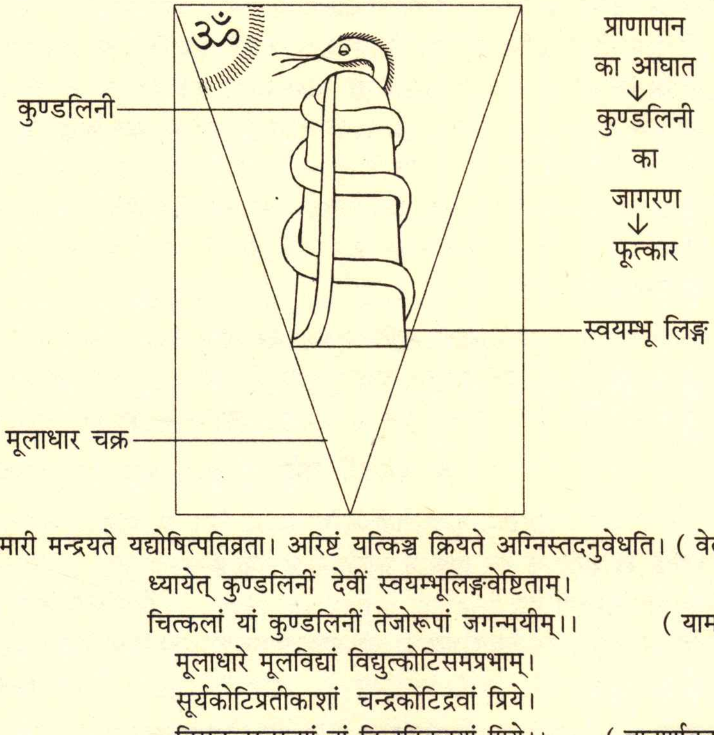

यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषित्पतिव्रता। अरिष्टं यत्किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति। (वेद)

ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।। (यामल)

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये।
बिसतन्तुस्वरूपां तां बिन्दुत्रिवलयां प्रिये।। (ज्ञानार्णवतन्त्र)

शक्ति: कुण्डलिनीति या तु गदिता आईम् संज्ञा जगन्निर्माणे। सततोद्यतां प्रविलसत् सौदामिनीसन्निभाम्। शङ्खावर्तनिभां प्रसुप्तभुजगाकाराम्। (त्रिपुरासारसमुच्चय)

देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते। सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति। तन्मध्ये तडित्कोटिसमानकान्त्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्माङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धाऽस्ति। तां दृष्ट्वा मनसैव नर: सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति। (अद्वयतारकोपनिषद्)

भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेज:कूटरूपं तारकं ब्रह्म। तदुपायलक्ष्यत्रयावलोकनम्। मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा। मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी। तत्र तमोनिवृत्ति:। तद्दर्शनात् सर्वपापनिवृत्ति:। (मण्डलब्राह्मणोपनिषद्-प्रथम ब्राह्मण)

योषित् कुण्डलिनी और उसका यात्रापथ

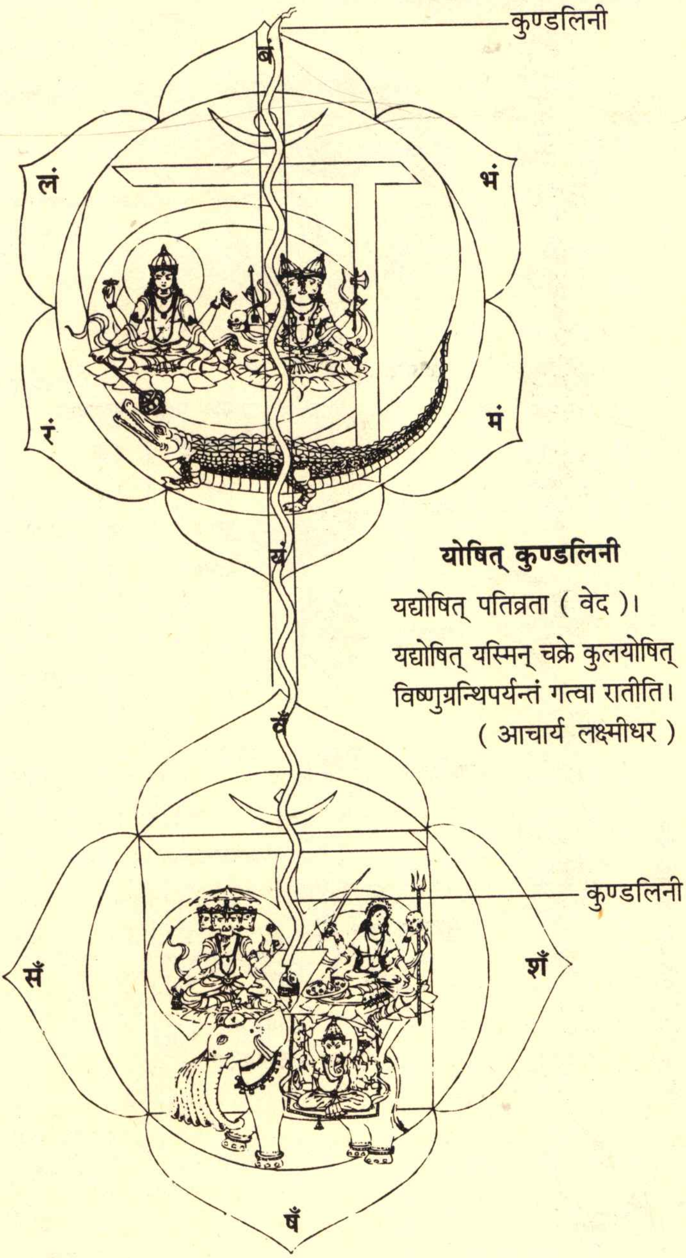

योषित् कुण्डलिनी

यद्योषित् पतिव्रता (वेद)।

यद्योषित् यस्मिन् चक्रे कुलयोषित्
विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा रातीति।
(आचार्य लक्ष्मीधर)

पतिव्रता कुण्डलिनी और यात्रा-पथ— **पतिव्रता कुण्डलिनी**

यद्यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धं सहस्त्रदलकमले विहरमाणा। (लक्ष्मीधर)

यद्योषित्पतिव्रता (वेद)।

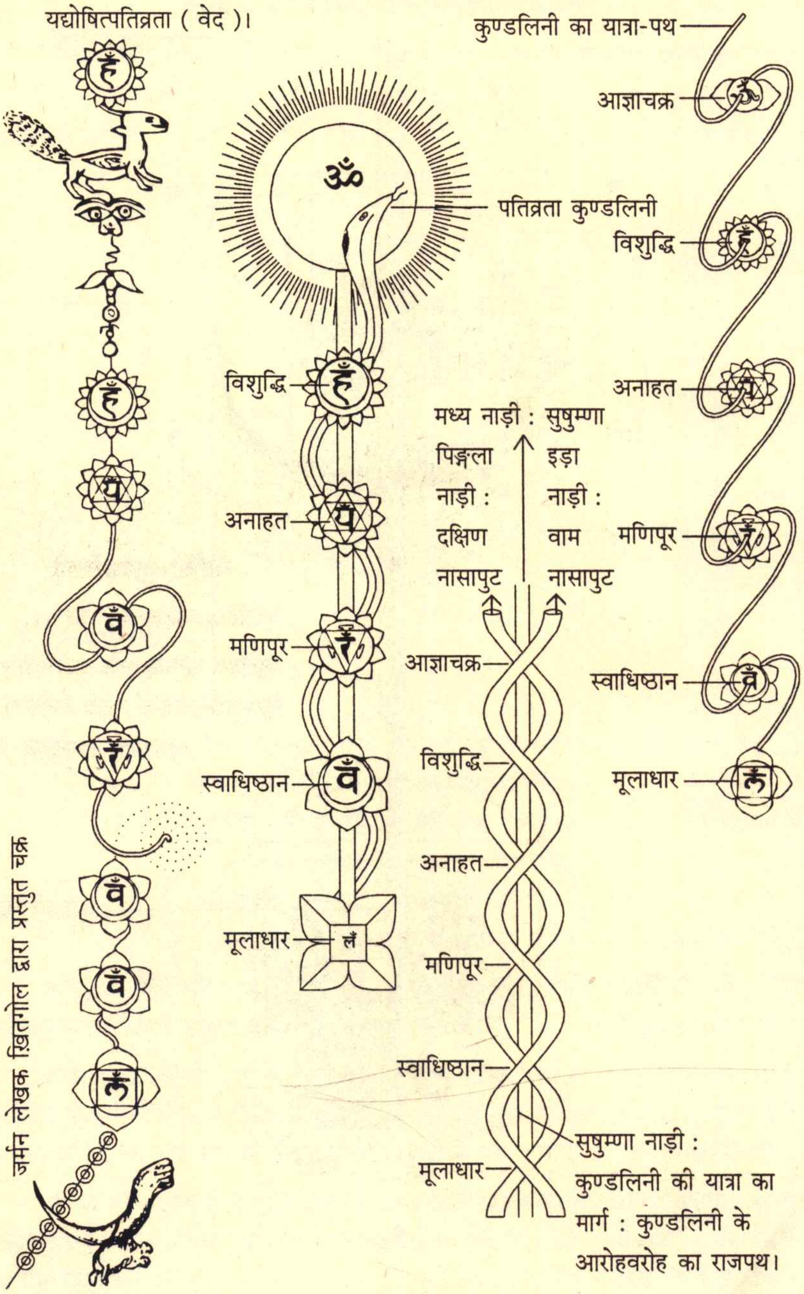

पतिव्रता कुण्डलिनी की लयभूमि— **सहस्रारचक्रम्** (सहस्रदलपद्म)

बैदवस्थाने सहस्रारे सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपे चिन्तामणिगृहे। (लक्ष्मीधर)

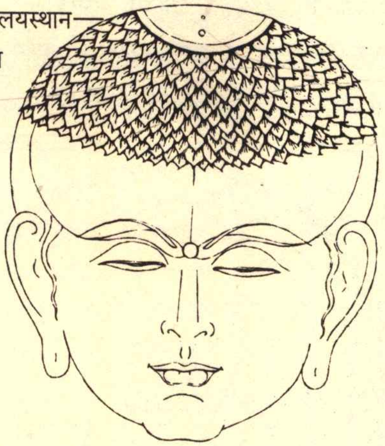

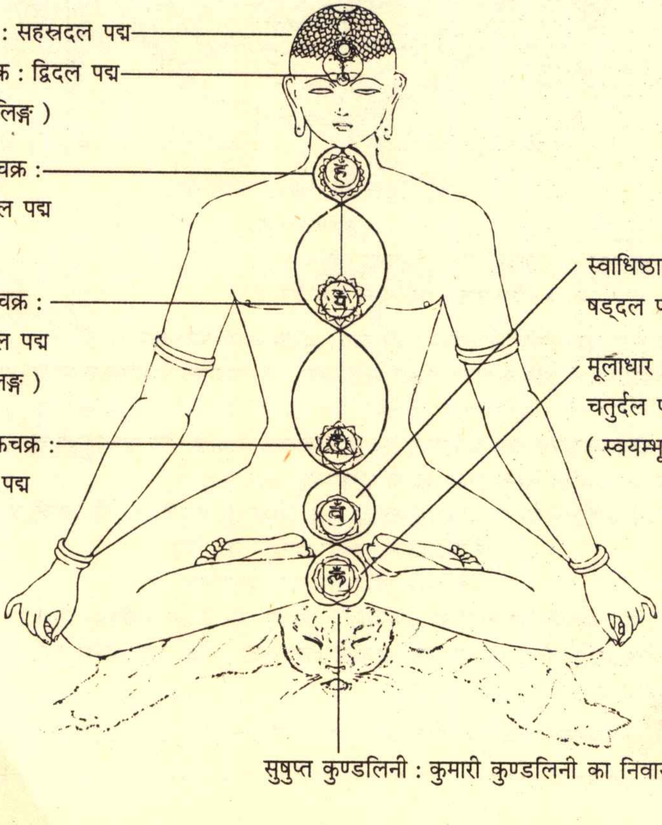

कौलमत के अनुसार : **श्रीयन्त्र** : कौलाचार के अनुसार

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

विश्वसर्जनस्वरूप एवं आत्मनिष्ठ अपनी स्फुरत्ता का दर्शन → **श्रीचक्र**।

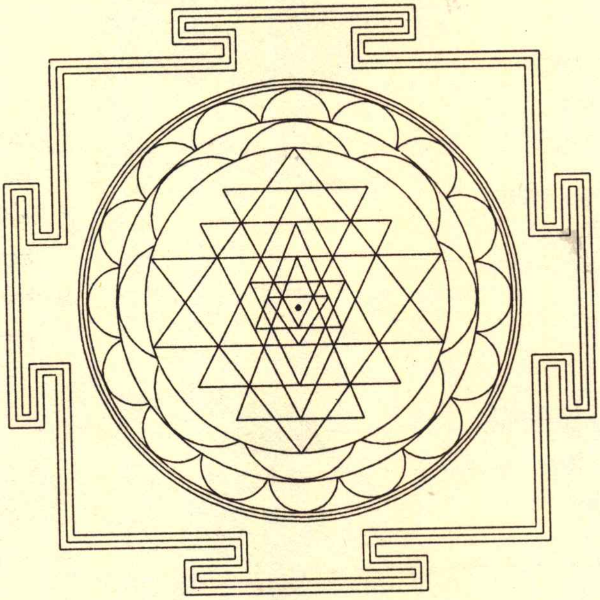

श्रीचक्रक्रम

१. सृष्टिक्रम— नवयोन्यादि पृथिव्यन्त सृष्टिक्रम है।

२. संहारक्रम— पृथिव्यादि नवयोन्यन्त संहारक्रम है।

इन दोनों की समष्टि 'त्रिपुराचक्र' है। अतः श्रीचक्र सृष्टि-प्रलयरूप भी है।

● कौलमत में श्रीचक्र का संहारक्रम के अनुसार एवं समयमत में सृष्टिक्रम के अनुसार लेखन होता है।

● कौलमतानुसार चार अधोमुखी त्रिकोण शिवचक्र हैं और पाँच ऊर्ध्वमुखी चक्र शक्तिचक्र हैं। (श्रीचक्र के मध्य-स्थित बिन्दु को ही सुधासिन्धु माना जाता है)।

● पाँच शक्ति एवं चार वह्नि (शिवचक्र) के संयोग से ही श्रीचक्र की उत्पत्ति होती है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्ति-चतुर्वह्नि-संयोगात् चक्रसम्भवः।।

● सृष्टि : पाँच त्रिकोण : शक्ति (अधोमुखी); संहार : चार त्रिकोण : शिव (ऊर्ध्वमुखी) = ९ योनि = धर्माधर्म, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, जीव, ग्राह्य प्रमा। इसीलिये श्रीचक्र नवयोन्यात्मक है।

कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगते बिन्दुः, समयचक्रे चतुष्कोणमध्यगतो बिन्दुः।

इसी महाचक्र में महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा हुआ करती है। इसी में ९ शक्तियाँ भी स्थित हैं।

वामकेश्वर तन्त्र में भी कहा गया है—

तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता ।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा।। (भैरव यामल)

इसमें 'शिवार्कमण्डल' के 'शिवा' का अर्थ है— कुण्डलिनी। कुण्डलिनी शक्ति अर्कमण्डल हृदयकमल के ऊपर स्थित सूर्यमण्डल का भेदन करके, अर्कमण्डल के ऊपर स्थित ब्रह्मद्वार को आच्छादित करके सहस्रदल कमल में स्थित इन्दुमण्डल को डसती है और उसे द्रवीभूत कर देती है; अत: कुलयोषित् कुण्डलिनी शक्ति कुल (कुलमार्ग = सुषुम्ना मार्ग) का त्याग करके और 'इन्दुमण्डल' में स्थित रहकर ७२ हजार नाड़ियों में अमृत की उत्कृष्ट वर्षा करती है। वही कुण्डलिनी पुन: अपने स्थान— स्वाधिष्ठान में आकर शयन करती है।[१]

कुण्डलिनी का स्वस्थान— आधारचक्र के मध्य-स्थित सुषिर के अन्तर्गत बिसतन्तु-निभा कुण्डलिनी का निवास है—

'आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा तत्र कुण्डलिनी शक्ति: वर्तते।'

'सा कुण्डलिनी पुन: स्वस्थानमेत्य स्वाधिष्ठानं प्राप्य स्वपिति।'

इन दो कथनों द्वारा लक्ष्मीधर ने कुण्डलिनी का स्वगृह एक स्थान पर तो स्वाधिष्ठान बताया, किन्तु दूसरे स्थान पर मूलाधार चक्र बताया— ऐसा क्यों?

कुण्डलिनी तत्त्व और शक्ति-जागरण

शाक्त साधना एवं शाक्त दर्शन का मुख्य लक्ष्य है— सुषुप्त शक्ति का जागरण। चूँकि शक्ति के जागृत होने के पूर्व मुक्ति सम्भव नहीं है; अत: शाक्त सम्प्रदाय की समस्त शाखाओं में शक्तिजागरण की साधना प्रधान है।

'कुलशक्ति' पाताल लोक में अवस्थित है और 'अकुल' तत्त्व मुक्तिलोक में। कुल-शक्ति (कुण्डलिनी) अकुल (शिव) की प्रियतमा है; किन्तु अनन्त काल से अपने प्रियतम से वियुक्त है और साधक का लक्ष्य है— इस वियुक्त दम्पति का मिलन कराना। गोरक्षनाथ ने 'पाताल की गंगा' को ब्रह्माण्ड में चढ़ाने का जो उपदेश दिया है, वह पाताल की गंगा कुण्डलिनी ही है। गोरखनाथ कहते हैं—

'पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढाइबा, तहाँ बिमल जल पीया।'

कुमारी कुण्डलिनी— कुण्डलिनी शक्ति की तीन अवस्थायें हैं— 'कुण्डलिनी-शक्तेरवस्थात्रयं विद्यते'। कुण्डलिनी शक्ति की 'कुमारी अवस्था' वह है, जिस अवस्था में वह कुमारी (कौमारावस्था में स्थित) रहती है और सोकर उठने पर प्रथमत: मन्द्र स्वर

---

१. लक्ष्मीधरा।

में ध्वनि करती है। यह ध्वनि सर्प होने के कारण सोकर उठने पर करती है; क्योंकि प्रत्येक सर्प सोकर उठने पर मन्द्र स्वर ध्वनित करता है— 'यस्मिन् चक्रे कुमारी कौमारावस्थापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति, कुण्डलिन्या सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वरं करोति, तद्वदित्यर्थ:।[१]

यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किञ्च अग्निस्तदनुवेधति।।[२]

योषित् कुण्डलिनी— जब कुण्डलिनी विष्णुग्रन्थिपर्यन्त जाकर ध्वनि करती है तब उसे 'योषित् कुण्डलिनी' कहते हैं— 'यद्योषित यस्मिन् चक्रे कुलयोषित् विष्णुग्रन्थि-पर्यन्तं गत्वा रातीति शेष:।'

कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा राति विष्णो: प्रभेदने। (सनत्कुमार)

पतिव्रता कुण्डलिनी[३]— जब कुण्डलिनी अपने पति सदाशिव के साथ सहस्रदल कमल में विहार करती है तब उसे 'पतिव्रता कुण्डलिनी' कहते हैं— यद्यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धसहस्रदलकमले विहरमाणा।

यह कुण्डलिनी जो अरिष्ट (अमृतास्वादरूप शुभ उपलब्धि) प्राप्त करती है, उसे प्राप्त कराने में स्वाधिष्ठान चक्रगत अग्नि उसकी सहायता करती है। अभ्यासवश वायु के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करके अग्निशिखा से अनुविद्ध चन्द्रमण्डल से पीयूषधारा चूने लगती है और इसे पीकर २५ तत्त्वों से अतीत यह परमेश्वरी सहस्रार चक्र में विहार करती है।

शक्तिकुण्डलिनी

'अ' नाम की पराशक्ति ही 'अमा' एवं 'सप्तदशी कला' है। यह तिरोधान से मुक्त होने के कारण नित्योदित है। यही 'अमृत कला' है। षोडश कलाओं की यही उद्भाविका है। प्रमाता, प्रमेय एवं प्रमाण तीनों 'अमा कला' से एकीभूत (अभिन्न) हैं। जब 'अमा कला' विसर्गहीन हो जाती है (जब वह बहिर्मुखी नहीं रहती) तब उसकी आख्या होती है— 'शक्ति कुण्डलिनी'। यह प्रसुप्त, सर्पाकार, स्वात्मविश्रान्त 'परासंवित्' है। 'विसर्ग'

---

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक-११) २. लक्ष्मीधरा (श्लोक-११)

३. कुण्डलिनी के कुमारी, योषित, पतिव्रता आदि स्वरूप गौडपादाचार्य ने भी कहा है—

कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिदपरा।
कुलं त्यक्त्वा रौति स्फुटति च महाकालभुजगा।।
तत: पातिव्रत्यं भजति दहराकाशकमले।
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्काररसिका।।

—शाक्ताचार्य गौड़पाद दहराकाश में स्थित पतिव्रता कुण्डलिनी की साधना एवं साक्षात्कार करने का परामर्श देते हैं।

के दो प्रान्तों में दो कुण्डलिनियाँ हैं, जो कि निम्न हैं—

कुण्डलिनी

आदि कोटि में स्थित	अन्त कोटि में
कुण्डलिनी = 'प्राण कुण्डलिनी' (बहिर्मुखी, कारणभूता संवित्) प्रथमत: प्राण के रूप में ही उन्मिषित होती है— 'संवित् प्राक् प्राणे परिणता।'	स्थित = स्वात्म विश्रान्त, अन्तर्मुखी परा संवित् = 'परा कुण्डलिनी'

विसर्ग

आणव विसर्ग	शाक्त विसर्ग	शाम्भव विसर्ग
(भेदप्रधान स्थूल सृष्टि) 'स्थूल विसर्ग' (संकुचित ज्ञान वाले चित्त का विसर्ग) बहिर्मुखावस्था।	(भेदाभेदप्रधानप्रधान सूक्ष्म सृष्टि) चित्त का सम्बोध। इस अवस्था में चित्त अपने निष्कल रूप में आत्मसमर्पणार्थ प्रस्तुत रहता है। 'इसके अखण्ड प्रकाश में समस्त विश्व की आहुति हो रही है।' ऐसी अनुभूति होती है। यही अवस्था है— 'शक्ति की अवस्था'।	(अभेदात्मक सूक्ष्माति-सूक्ष्म सृष्टि) इस शैव विसर्ग में न भेद रहता है। न भेदाभेद, न विश्व रहता है, न उसकी अनुभूति। चित्त प्रलीन रहता है और मात्र संवित् तत्त्व रहता है।

'विसर्ग शक्ति' खण्डविहीन एकीभूत प्रकाश की परा शक्ति है। यह 'परप्रमाता' के साथ अभिन्न रूप से अवस्थित रहती है। इसे इच्छातत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो यही 'कामकला' भी है।

'कामकला' अर्थात् तात्त्विक सृष्टि की प्रथमावस्था। यही इच्छा बहिर्मुखी होने पर 'विसर्ग' कहलाती है।

'कुण्डलिनी' का अपरपर्याय है— आधारशक्ति। इसका जागरण चैतन्यसम्पादन है। इसका चैतन्य-सम्पादन करने से यह निरालम्ब होकर शुद्ध चित्स्वरूप में स्थित हो जाती है। कुण्डलिनी के आधारशून्य होते ही संसार की समस्त वस्तुयें निराधार हो जाती हैं।

कुण्डलिनी जब प्रबुद्ध होने पर चिन्मयत्व आयत्त करती है, तब समस्त विश्व भी चैतन्य रूप धारण करता है। कुण्डलिनी का जागरण एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की अनुभूति अभिन्न है। यही है— पूर्णाद्वैत और तन्त्रशास्त्र का 'पूर्णाहन्ता'।

श्रीविद्या सम्प्रदाय का वर्ण-विज्ञान और उसका रहस्य

वर्ण का शक्तित्व और शिवत्व— शाक्त उपासना शत-प्रतिशत 'शक्ति' की उपासना है। शाक्तों ने 'मन्त्र' को भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप कहा और मन्त्रों के तथा वर्णमाला के समस्त वर्णों एवं मातृकाओं को 'शक्ति' का अवतार— शक्ति की

ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति— शक्ति का नादात्मक रूकार एवं भगवती का सूक्ष्म शरीर कहा। शाक्तों ने यह भी माना कि प्रत्येक मातृका एवं वर्ण की अपनी-अपनी विशिष्ट शक्ति भी है और वर्णों की ये सभी व्यष्टि शक्तियाँ 'पराशक्ति' में मिलकर महात्रिपुरसुन्दरी-स्वरूप हो जाती हैं। 'अ' वर्णमाला का प्रथमाक्षर एवं 'ह' अन्तिमाक्षर है। 'अ' शिव है और 'ह' शक्ति; अत: सभी वर्ण शिव एवं शक्ति हैं। इसीलिये कहा भी गया है—

सर्वे वर्णात्मका: मन्त्रा: ते च शक्त्यात्मका: प्रिये।

'नाद' चित् शक्ति का स्वरूप है और प्रत्येक वर्ण के मूल में चेतन नाद तत्त्व मणिमाला में सूत्रवत् पिरोया हुआ है—

एको नादात्मको वर्ण: सर्वनादविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इतीरित:।।

शब्द या वर्ण को 'ब्रह्म' कहा गया है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दमक्षरसंज्ञितम्।

या— अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

ब्रह्म के दो रूप

शब्द ही रूपान्तरित होकर पदार्थ बन जाता है। वाक्यपदीय में कहा भी गया है—

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।

'शब्द' का परिणाम ही 'जगत्' है, ये ही ३६ तत्त्व हैं एवं इसका विस्तार ही समस्त सृष्टि है। सारी सत्ताये शब्द के ही रूपान्तर हैं और शब्द 'शक्ति' का रूपान्तर है। अत: सब कुछ 'शक्ति' ही है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी स्वयमेव 'शब्दब्रह्म' है—

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।

समस्त मन्त्र वर्णात्मक और शक्त्यात्मक हैं। शक्ति ही मातृका (वर्ण) है और वही शिवात्मिका भी है—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मका: प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

वर्ण या मातृकायें परम तेज से समन्वित हैं और उन्होंने आब्रह्म भुवनपर्यन्त सभी को व्याप्त कर रक्खा है—

या सा तु मातृका लोके परतेज:समन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वं आब्रह्मभुवनात्मकम्।।

वाक् एवं उसके अर्थ दोनों ही शिव-शक्तिमय हैं—

वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं शक्तिशिवमयावेतौ।

श्रीविद्या (मन्त्र) एवं देवता (भगवती त्रिपुरसुन्दरी) में रञ्चमात्र भी भेद नहीं है।

कामकलाविलास में कहा भी गया है—

विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः।

भगवती स्वयं मातृका हैं—

विश्वं व्याप्य निजात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके। (दुर्वासा)

'श्रीविद्या' (मन्त्र) भी भगवती का ही स्वरूप है—

विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी। (कामकलाविलास)

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र स्वयं देवी त्रिपुरसुन्दरी ही हैं, अन्य कोई नहीं—

अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात्त्वं तु पञ्चदशाक्षरी। (चिदम्बररहस्य)

मन्त्र में 'वाच्य' एवं 'वाचक' दो शक्तियाँ रहती हैं। वाच्य शक्ति मन्त्र की आत्मा है। यह ज्योतिर्मयी है। 'शब्दब्रह्म' ही परा वाक् है और परा वाक् तथा शब्दब्रह्म दोनों ही 'शक्ति' के रूप हैं। शक्ति सबका उपादान कारण है। मन्त्रों (वर्णों) की जीवभूता शक्ति 'विमर्श शक्ति' है, जो परमशिव से अभिन्न है—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फला शरदभ्रवत्।।
(शिवसूत्रविमर्शिनी)

वर्णात्मक मन्त्र 'मन्त्र' नहीं, प्रत्युत वर्णों में निहित शक्ति ही मन्त्र है; उसमें निहित नाद का उल्लास ही मन्त्र है—

वर्णात्मको न मन्त्रो नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः। (महार्थमञ्जरी)

(भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का रूप = शब्द का चरम रूप = परा वाक्। ईक्षणात्मक मातृका = पश्यन्ती वाक्। मातृका का हृदयस्थ सूक्ष्म स्वरूप = मध्यमा वाक्। नववर्गवती स्थूल मातृका = भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्थूल मातृका शरीर है।)

कुण्डलिनी शक्ति और भगवती महात्रिपुरसुन्दरी

त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति।

'कुण्डलिनी शक्ति' वर्णशरीरात्मिका है। वर्ण और नाद ही उसका शरीर है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी कुण्डलिनी ही हैं।

पराकुण्डलिनी— 'नाद' से ही सम्पूर्ण विश्व का सृजन होता है। नाद ही प्राण एवं जीवनी शक्ति है। यही अनन्त विश्व को गर्भ में धारण करके प्रसुप्त सर्पाकार में रहता है। जब वह विश्व को गर्भ में धारण करके स्थित रहता है, तब इसे 'परा कुण्डलिनी' कहते हैं।

वर्णकुण्डलिनी— जब परा कुण्डलिनी का नादात्मक रूप में स्फुरण होता है, तब इसे 'वर्णकुण्डलिनी' कहते हैं।

प्राणकुण्डलिनी— जब यह नादरूप भी गम्भीर सुषुप्ति में लीन हो जाता है, तब इसे 'प्राणकुण्डलिनी' कहते हैं। यह प्राण ही 'हंस' है। हकार विमर्शन रूप से हान (त्याग) करता है और सकार विमर्श रूप से समादान (ग्रहण) करता है। त्याग एवं ग्रहण ही इसका स्वभाव है। यही नादात्मक हंस का नित्योच्चारण है।

ऊर्ध्व कुण्डलिनी— ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व में ऊर्ध्व कुण्डलिनी स्थित है। उसका स्वरूप प्रसुप्त भुजंगी के समान है और वही सकल भुवनों का आधार है। यही 'ऊर्ध्व कुण्डलिनी' शक्ति अपनी स्वरूपात्मक भित्ति पर समग्र विश्व का स्फुरण करती है। इसी कुण्डलिनी शक्ति से शक्तितत्त्व का आरम्भ होता है। समग्र भुवनों एवं तत्त्वों का मुख्याधार यही कुण्डलिनी शक्ति है।

शक्ति कुण्डलिनी— माया के ऊपर शक्ति का सञ्चार होता है। इसके नीचे 'शक्ति कुण्डलिनी' का स्थान है। माया शक्ति ही नाद-बिन्दु एवं अनन्त विश्व के आकार में स्फुरित होती है। 'शक्ति कुण्डलिनी' के गर्भ में समग्र विश्व अवस्थित रहता है।

जब 'अमाकला' विसर्गहीन हो जाती है अर्थात् जब वह बहिरुन्मुख नहीं रह जाती, तब उसका नाम— 'शक्ति कुण्डलिनी' हो जाता है। यही प्रसुप्त, भुजंगाकार, स्वात्ममात्र विश्रान्त 'परासंवित्' है।

विसर्ग के दो प्रान्तों में दो कुण्डलिनियाँ हैं। आदि कोटि में जो कुण्डलिनी है, उसका नाम है— 'प्राणकुण्डलिनी'; क्योंकि बहिरुन्मुख 'कारण संवित्' प्रथमतः प्राण के रूप में प्रकट होती है। जो अन्त कोटि में कुण्डलिनी है, उसका नाम है— 'परा कुण्डलिनी'। यह स्वात्मविश्रान्त परासंवित् है; जो कि अन्तरुन्मुख है।

महामाया का ही नामान्तर है— कुण्डलिनी शक्ति। परा शक्ति ही कुण्डलिनी[१] है और उसके विविध विकासात्मक चरण या सोपान हैं—

१. इस कुण्डलिनी शक्ति को 'यामल' में चित्कला भी कहा गया है—

ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।।

'महानिर्वाणतन्त्र' में कुण्डलिनी को 'परब्रह्म' भी कहा गया है—

ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म कुण्डलिनीस्वरूपिणे।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः।।

'देवीभागवत' पुराण में इसे 'सच्चिदानन्दरूपिणी' एवं 'प्राणाग्नि' कहा गया है—

महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्दरूपिणी।
प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके।।

'त्रिपुरातापित्युपनिषद्' में त्रिपुरा को 'महाकुण्डलिनी' भी कहा गया है—

त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्।।

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराकारेति कीर्तिता।
हृद्बिन्दुं वेष्टयित्वा तु सुषुप्ता भुजगाकृतिः।।

तत्र सुप्तो महायोगी न किञ्चिन्मन्यते यमी।
चन्द्रार्कानिलनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश।।

व्याप्तोदरे तु सा देवी विषवन्मूढतां गता।
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणी।।

मथिता चोदरस्थेन बन्धनादपि वह्निना।
तावद्वै भ्रमयोगेन मन्थनं शक्तिविग्रहे।।

भेदात्तु प्रथमोत्पन्नाद् बिन्दुर्नादत्वमीयते।
समुत्थिता यथा तेन कालसूक्ष्मा तु कुण्डली।।

चतुष्कलमयो बिन्दुः शक्तेश्चोत्तरगः प्रभुः।
मध्यमन्थनयोगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये।।

ज्येष्ठा शक्तिः स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यमा।
बिन्दुनादत्वमायाता रेखयाऽमृतकुण्डली।।

लाकिनी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दू यथागतौ।
त्रिपदा सा समाख्याता रौद्री नाम्ना तु गीयते।।

रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात्।
शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चार्धचन्द्रिका।।

एकैवेत्थं परा शक्तिः त्रिधा सा तु प्रजायते।
आभ्यो युक्ता विविक्ताभ्यः सञ्जातो नववर्गकः।।
नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता।। (चिद्वल्ली)

परमेश्वर की बोधरूपा शक्ति विश्व को गर्भ में धारण करके अपने 'परा कुण्डलिनी' स्वरूप में स्थित है। जब वह विमर्शात्मिका होने के कारण नादात्मिका स्वरूप में अवतरित होती है, तब उसे 'वर्णकुण्डलिनी' कहते हैं। यह विश्वगर्भा कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्ता सर्पिणी के समान है। यह स्वभावतः अपने नादात्मक या विमर्शात्मक स्वरूप का त्याग करके प्राणात्मक स्वरूप को ग्रहण किए हुये है। यह 'वर्णकुण्डलिनी' के स्वरूप को दबाकर 'प्राणकुण्डलिनी' के रूप में अवतरित होती है। प्राण ही 'हंस' है, जो कि स्वभावतः ऊर्ध्वाधः सञ्चरण करता है। इसके इस सञ्चरण से हकार एवं सकार के विमर्शरूप में उसकी प्रतीति होती है। 'ह' त्यागपक्ष है और 'स' ग्रहणपक्ष है। यह नादरूपी हंस का स्वाभाविक उच्चार ही स्फुट 'वर्णोच्चार' है। यही वर्णोच्चार योगियों के भ्रूमध्य में 'बिन्दु' के रूप में अनुभव में आता है। भ्रूमध्य का यह बिन्दु 'अ' 'उ' 'म'

(अकार = जाग्रतावस्था, उकार = स्वप्नावस्था, मकार = सुषुप्त्यवस्था) को मिलाकर उन्हें एकाकार करके ज्योतिर्मय ज्ञान के रूप में उदित होता है। अ, उ, म— तीनों को मिलाकर या एकाकार कर देने से जो अविभाज्य ज्योतिर्मय ज्ञान उदित होता है, उसी की आख्या है— 'बिन्दु'। यह तीनों मात्राओं (अ, उ, म = जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त अवस्थाओं) की अविभक्त एवं ज्योतिर्मय ज्ञानावस्था है। बिन्दुरूप ईश्वर का स्थान भ्रूमध्य में है। 'ब्रह्मा'— हृदय, 'विष्णु'— कण्ठ एवं 'रुद्र'— तालुमध्य में रहते हैं। सदाशिव ललाट से मूर्धापर्यन्त रहते हैं। 'शिव' की अंगभूता शक्ति 'व्यापिनी' एवं 'समना' मूर्धा के मध्य से ऊर्ध्व देश में है। बिन्दु अर्धचन्द्र एवं निरोधिका तक एवं नाद नादान्त तक व्याप्त है। आनन्दमयी स्पर्शानुभूति के बाद शक्ति एवं निर्विषयक मननमात्र का अनुभव होने के बाद 'समना' का त्याग हो जाता है। 'उन्मना' परमेश्वर की समवायिनी शक्ति है।

चित् शक्ति अकुल की आदि शक्ति कुलशक्ति ही है, जिसे 'कुलकुण्डलिनी'[१] भी कहते हैं। यह 'विसर्ग शक्ति' का ही सूक्ष्मतम स्वरूप है। इसी शक्ति से निखिल विश्व स्फुरित होता है।

---

१. **गोरक्षनाथ की दृष्टि**— यद्यपि कुण्डलिनी स्वरूपत: एक ही है, तथापि स्थान एवं स्थूल-सूक्ष्मभेद की दृष्टि से उसके तीन भेद किये गये हैं— अध:कुण्डलिनी, मध्यशक्ति कुण्डलिनी और ऊर्ध्वशक्ति कुण्डलिनी—

मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी = अध:शक्तिकुण्डलिनी
मणिपूर चक्र में स्थित कुण्डलिनी = मध्यशक्ति कुण्डलिनी
सहस्रदल चक्र में स्थित कुण्डलिनी = ऊर्ध्वशक्ति कुण्डलिनी।

१. मध्यशक्तिप्रबोधेन अध:शक्तिनिकुञ्चनादूर्ध्वशक्तिनिपातेन प्राप्यते परमं पदम्।
२. एकैव सा मध्योर्ध्वाध:प्रभेदेन त्रिधा भिन्ना शक्तिरभिधीयते।
३. बाह्येन्द्रियव्यापारनानाचिन्तामया सैवाध:शक्तिरित्युच्यते। (सि० सि० पद्धति)

कुण्डलिनी के दो भेद हैं— अप्रबुद्ध और प्रबुद्ध (सि० सि० प०)।

गोरक्षनाथ की दृष्टि— कुण्डलिनी प्रबुद्धा अप्रबुद्धा चेति द्विधा।
अप्रबुद्धा कुण्डलिनी = मूलाधार में स्थित एवं कुटिलस्वभावा।
प्रबुद्धा कुण्डलिनी = ऊर्ध्वगामिनी (सहस्रारस्था) = बन्धन, विनाशिनी, मुक्तिदा।
'अप्रबुद्धेति कुटिलस्वभावा कुण्डलिनी ख्याता। सैव योगिनां तत्तदविलसितविकाराणां निवारणोद्यमस्वरूपा कुण्डलिन्यूर्ध्वगामिनी प्रसिद्धा भवति।'

स्थूल कुण्डलिनी और सूक्ष्म कुण्डलिनी—
स्थूल कुण्डलिनी— साकार स्थूल।
सूक्ष्म कुण्डलिनी— निराकार, संवित्स्वरूपा।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी-स्वरूप

वाग्देवता कुण्डलिनी का स्वरूप

भगवती कुण्डलिनी वर्णविग्रहा एवं नादात्मा हैं। वे मन्त्रमयी हैं। वाग्देवता के अंग वर्ण-(शब्द)-मय हैं। यह वर्णतनु हैं। समस्त वर्ण अग्नीषोमात्मक हैं।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी एवं वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप

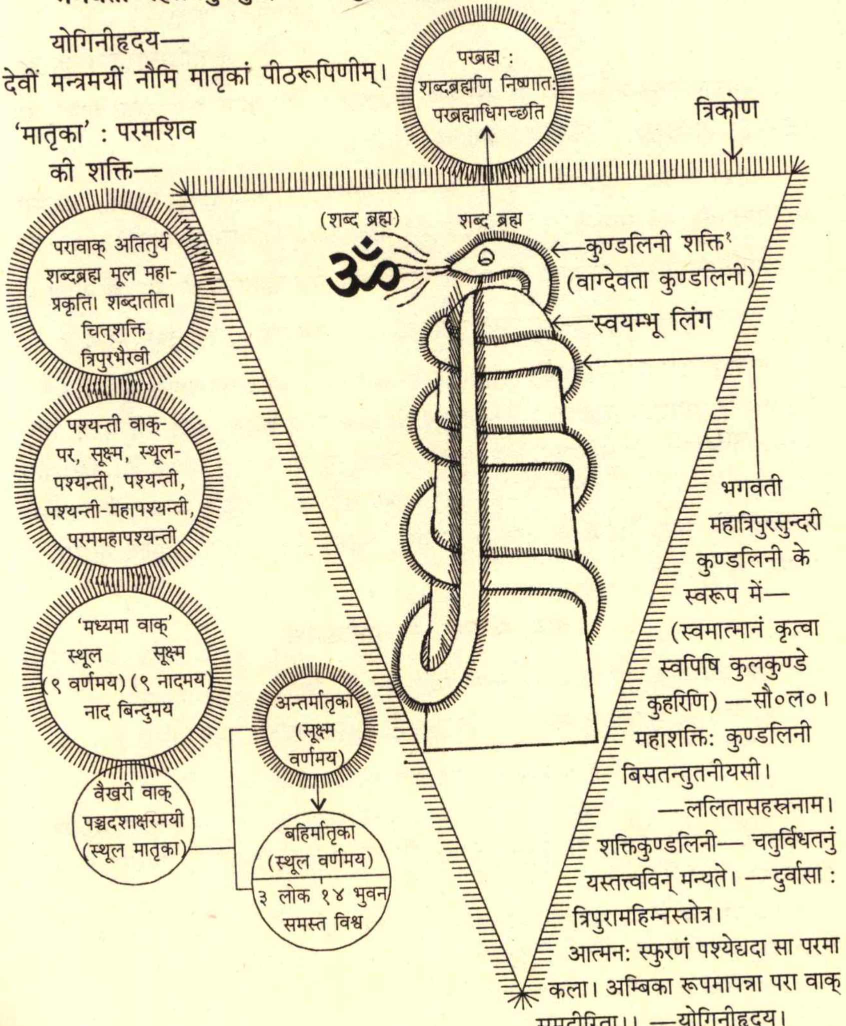

---

१. भगवती ललिता (महात्रिपुरसुन्दरी) वाग्देवता हैं, वे वाणी के चारो रूप हैं— वे परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी चारो हैं—

चिच्छक्तिरेव पराख्या चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिता माया निष्पन्दा परा वाक्।
(पदार्थादर्श)

एका परा इति सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यरूपा। (लक्ष्मीधरा)

परावाक् = चिति शक्ति। परमात्मा की अघटन घटनापटीयसी स्वातन्त्र्य शक्ति = 'महासत्ता'= परमेश्वर का 'हृदयसार' = विमर्शशक्ति 'त्रिपुरसुन्दरी।'

प्रकृतिः निश्चला परा वाग्रूपिणी परप्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्तिः।
(प्रपञ्चसारतन्त्रविवरण)

प्रपञ्चसारविवरण— बैन्दव तत्त्वरूप शब्दब्रह्म से भी ऊपर तत्त्व संज्ञा नामक परा वाक् है। शब्दब्रह्म— शब्दत्व + ब्रह्मत्व।

वाणी के भेद : पद्मपाद : ७ प्रकार— १. शून्य, २. संवित्, ३. सूक्ष्मा, ४. परा, ५. पश्यन्ती, ६. मध्यमा, ७. वैखरी। परा वाक् शब्द की चरमावस्था है।

अभिनवगुप्त ने पश्यन्ती का महापश्यन्ती और परममहापश्यन्ती रूप भी माना है।

परा वाक् = शुद्ध प्रकृति। मूल महाप्रकृति। 'प्रतिभादेवी'। परा वाक् नित्य है।

प्रत्येक वर्ण एक शक्ति है। सोमानन्द के अनुसार पश्यन्ती ज्ञानशक्ति है एवं अभिनवगुप्त के अनुसार इच्छाशक्ति है। मातृका के पर रूप में इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया तीनों शक्तियाँ स्थित हैं। अभिनवगुप्त एवं भर्तृहरि मध्यमा का पर रूप भी मानते हैं। तन्त्रालोक में मध्यमा के तीन भेद वर्णित हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। पद्मपाद के मत में पश्यन्ती नादमयी है। शारदातिलक के अनुसार मध्यमा नादमय है। आचार्य पद्मपाद के मत से मध्यमा बिन्दुमय है।

पञ्च मकारों के प्रतीकार्थ

पञ्च मकारों के प्रतीकार्थ भी ग्रहण किए गए हैं; यथा—

१. मद्य = सहस्रदल कमल के चन्द्रमा से क्षरित मधुरूप अमृत।

परा प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती पर देवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।। (ललितासहस्रनाम)

भवगती मूलमन्त्रात्मिका भी हैं— 'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।'

वे नादरूपा भी है— 'नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।' (ललितासहस्रनाम)

वे मातृकावर्णरूपिणी भी हैं— 'माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी।'

वे विद्यास्वरूपा भी हैं— 'विमर्शरूपिणी विद्या ।' (ललितासहस्रनाम)

वे भाषारूपा भी हैं— 'भाषारूपा बृहत्सेना।'

वे वर्णस्वरूपा भी हैं— 'उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।'

वे नादात्मिका हैं— 'नैष्कर्म्या नादरूपिणी।' (ललितासहस्रनाम)

२. मांस = ज्ञानरूपी तलवार से पुण्य-पापरूप पशु के वध से निर्मल किया गया मन।

३. मत्स्य = गंगा-यमुना (इड़ा-पिङ्गला) में प्रवहमान श्वास-प्रश्वासरूप मत्स्य।

४. मुद्रा = असत्संग का परित्याग।

५. मैथुन = कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रारस्थ शिव के साथ मिलन। यह आचार एवं मार्ग योगप्रधान है।

कल्पसूत्र में इस सम्बन्ध में कहा भी गया है—

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्च मकारास्तैरथार्चनम्।।

१. मदिरा— ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा।
सा हाला पिबतामनर्थकलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता
यामित्वा मुनयः परार्थकुशला निर्वाणमुक्तिङ्गताः।।

२. मांस— कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः।
ते विज्ञानपरा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नरा
नाश्नीयात्पशुमांसमात्मविमतेर्हिंसापरं सज्जनः।।

३. मीन— अहङ्कारो दम्भो मदपिशुनतामत्सरद्विषः
षडेतान्मीनान् वै विषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याग्नौ द्यनियमितकृतिर्धीवरकृतिः
सदा खादेत्सर्वान्त्र च जलचराणां तु पिशितम्।।

४. मुद्रा— आशा-तृष्णा-जुगुप्सा-भय-विशद-घृणा-मान-लज्जा-प्रकोपाः
ब्रह्माग्नावष्टमुद्राः परसुकृतिजनः पाच्यमानाः समन्तात्।
नित्यं सम्भक्षयेत्तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा।।

५. मैथुन— या नाडी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्।।

अथवा

१. मद्य— यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्।।

२. मांस— माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिये।
सदा यो भक्षयेद्देवि ! स एव मांससाधकः।।

३. मत्स्य— गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।

अथवा

मत्समानं सर्वमूले सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्त्विकं ज्ञानं तन्मत्स्यः परिकीर्तितः।।

४. मुद्रा— सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रितश्चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि ! केवलः पारदोपमः।।

सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते।।

* * * * *

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असत्सङ्गमुद्रणं यत्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता।।

५. मैथुन— रेकस्तु कुङ्कुमाभास कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दुरूपः महायोनौ स्थितः प्रिये।।

अकारहंसमारूह्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।।

* * * * *

कुलकुण्डलिनी शक्तिः देहिनी देहधारिणी।
तथा शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्तितम्।।

'मा' = वाक्संयमी— 'मांससाधक'। कुम्भक प्राणायामपरायण = 'मत्स्यसाधक'। सात्त्विक ज्ञान = 'मत्स्य'। सहस्रदल महापद्म में मुद्रित कर्णिका के भीतर पारदवत् आत्मा का कुण्डलिनी से संयुक्त होने का ज्ञान = 'मुद्रासाधक'। कुसंग-त्याग = 'मुद्रा'। ब्रह्मविषयक प्रमदन ज्ञान = 'मद्य'।

पञ्चमकारोपयोगविषयक भ्रामक दृष्टि का निराकरण

तान्त्रिक साधना मात्र आभिजात्य वर्ग या कुलीनों के लिए नहीं; अपितु मुख्यतः समाज के सबसे निचले, उपेक्षित एवं पददलित लोगों को आध्यात्मिक साधना में सत्पात्रता एवं अधिकार प्रदान करने के उद्देश्य से उपदिष्ट हुई थी; अतः इस वर्ग के आचार-विचार, खान-पान आदि सभी को ध्यान में रखकर साधनोपायों का भी इनसे

सामञ्जस्य स्थापित किया गया था; किन्तु ये सम्पूर्ण तन्त्रोक्त विधान सभी वर्गों के लिए अनिवार्य नहीं थे। मांस खाने वाले, मदिरा का सेवन करने वाले, बलि चढ़ाने वाले एवं वन्य जीवन के अभ्यस्त गोंड़, भील, सन्थाल, कोल आदि जातियों के लिए पूर्ण दक्षिण-मार्गी आचार की शिक्षा तो व्यर्थ ही हो जाती; अत: उनको भी साधना-समाज में स्थान दिलाने के लिए तन्त्र ने उनके आचार-विचार से सम्बद्ध साधना-पद्धति का प्रवर्तन करके पञ्च मकारों के सेवन की छूट दे दी; किन्तु इसे सभी वर्णों के लिए न तो शुभ माना गया और न ही अनिवार्य। पञ्च मकारों की व्याख्या एवं उसका उपयोग तीन प्रकार से विहित स्वीकार किया गया—

१. वन्य जीवन-याजन करने वाले एवं समाज के आपन्न, पददलित एवं आचार-विचार आदि के ज्ञान से शून्य तथा श्रेष्ठ समाज द्वारा त्याज्य निम्नतम वर्ग के लिये अभिधेयार्थ में पञ्च मकारों का उपयोग।

२. उच्च वर्ग के लिए अपनी वर्णव्यवस्थागत धर्मानुसार।

३. उच्च अधिकारियों के लिए प्रतीकात्मक अर्थ के अनुसार।

पञ्च मकारों का प्रयोग एवं उपयोग मोक्षदायक माना गया है—

मद्यमांसश्च मीनश्च मुद्रामैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्।।

पञ्च मकारों का प्रतीकात्मक उपयोग— इन पञ्च मकारों को प्रतीकात्मक उपयोग करने का उपदेश भी है; यथा—

मैथुन— सहस्रारोपरि बिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे।
मैथुनं परमं द्रव्यं यतीनां परिकीर्तितम्।।

मद्य— व्योमपङ्कजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिन:।।

ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा।।

मीन— मानसादीन्द्रियगुणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स मीनाशी भवेद्देवि ! इतरे प्राणहिंसका:।।

मुद्रा— आशा-तृष्णा-जुगुप्सा-भय-विषय-मान-लज्जाप्रकोपा:।
ब्रह्माग्नावष्टमुद्रा परसुकृतिजन: पच्यमान: समन्तात्।।

मैथुन— या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सां कान्तालिङ्गनार्हा न मनुज-रमणी-सुन्दरी-वारयोषित्।

कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्य: सुखमयभवने तां परिष्विज्य नित्यम्।।

'महानिर्वाणतन्त्र' ७-११० पञ्च मकार अग्नि-वायु-जल-पृथ्वी-आकाश हैं।

'कौलतन्त्र' 'मद्य' कोई पेय पदार्थ नहीं; प्रत्युत योगसाधना द्वारा भौतिक जगत् के सुख-दु:खों का विस्मरण एवं परम तत्त्व का अनवरत चिन्तन है। कर्मफल के बन्धन से मुक्त होना ही 'मांसभक्षण' है।

समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीयता का भाव— मत्स्य, राग, काम-क्रोधादि दोषों से मुक्त रहना एवं मूलाधार-स्थित कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रार में शिव के साथ सामरस्य ही मैथुन है।

आगमसार— सहस्रदल कमल से नि:सृत सोमसुधा ही मद्य है।
पुण्य-पाप जैसे कर्मफलों से मुक्त रहना मांस है।

इड़ा-पिङ्गला नाड़ियों में श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रवाहित वायु एवं प्राणायाम के अवसर पर कुम्भक क्रिया करना ही मत्स्य है।

असत् के संग का त्याग ही मुद्रा है।

सहस्रार में शिव के साथ कुण्डलिनी का महामिलन ही मैथुन है।

ज्ञानरूपी खड्ग से पाप-पुण्यरूपी पशुओं का वध करके चित्त को परम तत्त्व में लीन कर देना ही मांसभक्षण है।

आशा, तृष्णा, जुगुप्सा आदि अष्ट पाशों को ब्रह्माग्नि में भस्म कर देना ही मुद्रा है।

अपने मन एवं इन्द्रियों को संयमित करके उन्हें आत्मतत्त्व में नियोजित करना ही मत्स्यभक्षण है।

चन्द्रमा एवं सूर्यरूपिणी इड़ा-पिंगला नाड़ियों के मध्य स्थित सूक्ष्मा सुषुम्णा का सेवन ही मैथुन है, न कि किसी रमणी के साथ आलिंगन।

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं देव्यास्तु विनिवेदयेत्। (गो० ह०)

साधकों के जो तीन प्रकार— पशु, वीर एवं दिव्य हैं, उन सभी के लिए साधना-द्रव्यों के उपयोग का भिन्न-भिन्न विधान है—

१. पशुसाधकों के लिए पञ्च तत्त्वों का— 'अनुकल्प रूप' उपदिष्ट है।
२. वीरसाधकों के लिए पञ्च तत्त्वों का— 'प्रत्यक्ष रूप' उपदिष्ट है।
३. दिव्यसाधकों के लिए पञ्च तत्त्वों का— 'दिव्य रूप' उपदिष्ट है।

प्रत्यक्षोपयोगी वीर भी भ्रष्ट नहीं होता; प्रत्युत वही हो सकता है, जो निम्न लक्षणों वाला है— जितेन्द्रिय: सत्यवादी नित्यानुष्ठानतत्पर:।
कामादिवलिर्दानश्च स वीर इति गीयते।।

बौद्ध साधिका लक्ष्मीकरा ने कहा था कि बन्धन एवं मुक्ति— दोनों के मार्ग एक ही हैं; केवल दृष्टिमात्र का भेद है; अत:—

येनैव बध्यते जन्तुस्तेनैव हि विमुच्यते।।

वर्ण एवं आश्रम धर्म के अनुकूल पञ्च मकारों का उपयोग— कुलचूड़ामणि तन्त्र में कहा गया है कि प्रत्येक वर्ण के लिए इन पञ्च मकारों के पृथक्-पृथक् स्वरूपों की कल्पना की गई है। यथा—

१. ब्राह्मणों के लिए 'मद्य' का उपयोग दूध के रूप में विहित है।
२. क्षत्रियों के लिए 'मद्य' का उपयोग घृत के रूप में विहित है।
३. वैश्यों के लिए 'मद्य' का उपयोग शहद के रूप में विहित है।
४. शूद्रों के लिए 'मद्य' का उपयोग चावलनिर्मित पेयरूप में विहित है।

महानिर्वाणतन्त्र (५,२३-२४) में कहा गया है कि पञ्च तत्त्वोपासना के विना शक्ति-साधना निष्फल एवं निरर्थक है। शिलाखण्ड पर वपित बीज की भाँति शक्तिसाधना विना पञ्चतत्त्व-साधना के निरर्थक है; किन्तु ये पञ्चतत्त्व क्षिति-जल-पावक-समीर एवं गगन हैं।

भैरवीतन्त्र में भी उपदेश दिया गया है कि—

क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः।
माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः।।

ब्राह्मणों के लिए— क्षीर, क्षत्रियों के लिए— घृत, वैश्यों के लिए— मधु और शूद्रों के लिए— आसव के उपयोग का विधान है।

कुलचूड़ामणि में भी कहा गया है कि—

यत्रावश्यं विनिर्दिष्टं मदिरादानपूजनम्।
ब्राह्मणास्ताम्रपात्रे तु मधु मद्यं प्रकल्पयेत्।।

ब्राह्मणों को मदिरा के स्थान पर ताम्रपात्र में मधु रखकर उसे ही मद्य मान कर शाक्तोक्त विधान की पूर्ति करनी चाहिए। ज्ञानार्णवतन्त्र में ठीक ही कहा गया है कि—

वर्णानुक्रमभेदेन द्रव्यभेदाः भवन्ति वै।

अर्थात् वर्णों के अनुक्रम से ही शास्त्रों में द्रव्यों के भेद निर्दिष्ट हैं; इसीलिये महाकालसंहिता में भी कहा गया है—

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम्।

अर्थात् ब्राह्मणों को चाहिए कि वे सात्त्विक द्रव्यों से ही शक्ति की पूजा करें।

समयी इन पञ्च मकारात्मक द्रव्यों का पञ्च मकारोपासना या पञ्च मकारोपयोग के नाम पर कथमपि प्रयोग नहीं करते; बल्कि इन द्रव्यों को हेय एवं वर्जित मानते हैं।

त्रिपुरा देवी[1] के संकेतत्रय

चक्रसंकेत | मन्त्रसंकेत | पूजासंकेत

१. त्रिपुरा शक्ति ने ही सृष्टि-विधान के द्वारा जगत् को ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय के रूप में कल्पित किया है। ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृरूप त्रिपुटीकृत जगत् की पुरोवर्तिनी आदिभूता होने के

योगिनीहृदय में भगवती त्रिपुरा के ये ही तीन संकेत (रहस्यात्मक स्वरूप) बताए गए हैं—

चक्रसङ्केतको मन्त्रपूजासङ्केतकौ तथा।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्याः सङ्केतः परमेश्वरि।।

अमृतानन्द योगी कहते हैं कि प्रकाशविमर्शसामरस्यरूपिणी परा देवी के ये ही तीन संकेत हैं। धामत्रय, तत्त्वत्रय, पीठत्रय, लिंगत्रय एवं मातृकात्रय आदि अनेक त्रय समष्टियाँ हैं— 'त्रिभ्योऽपि पुरा या विद्यते सा त्रिपुरादेवी।' जो इसे नहीं जानता, वह त्रिपुरा का 'परमाज्ञाधर' नहीं हो सकता। योगिनीहृदय में कहा भी है—

यावदेतन्न जानाति सङ्केतत्रयमुत्तमम्।
न तावत्त्रिपुराचक्रे परमाज्ञाधरो भवेत्।।

संकेतत्रय के ज्ञान से साधक ब्रह्म बन जाता है— सङ्केतत्रयज्ञाने ब्रह्म भवति।

16396

कौलाचार

कुलाचार में बाह्यपूजा का विधान है— कुलाचारो नाम बाह्यपूजारतिरिति रहस्यम्।

वियच्चक्र की पूजा :'कौलपूजा': बाह्याकाशज पूजा स्वीकृत है। यह पूजा बाह्याकाशावकाश में पीठ, भूर्जपत्र, शुद्ध पट, हेम-रजत आदि के पट्टतल पर लिखकर की जाती है। इसे ही 'कौलपूजा' कहा जाता है। (श्लोक-८)

श्रीचक्र के अधोमुख चार त्रिकोण शिवात्मक हैं तथा ऊर्ध्वमुख पाँच त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं।

कौलमार्ग में नव त्रिकोणात्मक चक्र का लेखन संहारक्रम से किया जाता है।

'कौलमतेन संहारक्रमेण नवयोनिचक्रलेखने

समयाचार

समयाचार में आन्तर पूजा का विधान है[1]— समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः।

वियच्चक्र की पूजा :'समयपूजा': दहराकाशज पूजा स्वीकृत है। यहाँ हृदयावकाश (दहराकाश) में श्रीचक्र की पूजा का विधान है। इसे समयी 'समयपूजा' कहते हैं। (श्लोक-८)

सामयिकों के मत में समय या 'सादाख्य तत्त्व' की सपर्या 'सहस्रदल' में ही विधेय (अनुष्ठेय) है; न कि पीठादिक बाह्य वस्तुओं पर। कौल पीठादिक बाह्य वस्तुओं पर पूजा किया करते हैं।

'समयमार्ग' में सृष्टिक्रम स्वीकृत है।

कारण ही यह शक्ति 'त्रिपुरा' कही जाती है—
त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृतनिःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी।
तस्यां परिणातायान्तु न कश्चित्पर इष्यते।। (वाम० तन्त्र०)

१. लक्ष्मीधर : 'लक्ष्मीधरा', पृ० २२।

ऊर्ध्वाधोमुखतया अवस्थितेः प्रभिन्नत्व ज्ञेयम्।'[१]

'कौलमत' में संहारक्रम स्वीकृत है।

'कौलचक्र' में बिन्दु त्रिकोण के मध्य में होता है।[२]

कौलचक्र में कोणसंख्या नहीं होती, क्योंकि वह नवत्रिकोणात्मक होता है।

६४ विद्याओं के अन्तर्भूत 'चन्द्रज्ञान विद्या' में १६ नित्यायें प्रधानतया प्रतिपादित हैं। उनका प्रतिपादक तन्त्र ही 'कौलमार्ग' है, किन्तु सामयिकों का मार्ग तो 'समयमार्ग' है, जो उनके मार्ग से भिन्न है।

सामयिकों का 'समयमार्ग' ६४ तन्त्रों पर आधारित नहीं है, प्रत्युत शुभागमपञ्चक पर आश्रित है, जो कि निम्न हैं—

१. वासिष्ठसंहिता ३. शुकसंहिता

२. सनकसंहिता ५. सनत्कुमारसंहिता।

समयमार्ग की उपासना में 'समयाचार' के उपर्युक्त पाँच ग्रन्थ ही मान्य हैं, किन्तु 'कौलमार्ग' में नहीं।

'समयाचारोनाम आन्तरपूजारतिः।' समयाचारी अमावास्या को पूजन नहीं करते, लेकिन कौलों को यह प्रतिषेध मान्य नहीं है—

यदा चामावास्या भवति नहि पूजा समयिंनाम्।
(गौड़पाद)

'समयमत' में श्रीचक्र ऊर्ध्वमुख लिखे जाते हैं— 'अस्मिन् चक्रे त्रिकोणमूर्ध्वमुखं लेखनीयम्।'

नौ त्रिकोणों के मेलन में मर्मसन्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

जो जीवन्मुक्त, योगीश्वर समयी संसारयात्रा का अनुवर्तन करते हुए एवं 'सादाख्य तत्त्व' का ध्यान करते हुए साधना करते हैं, उन आत्मैकप्रवण समयी साधकों की सपर्या का स्वरूप निम्नांकित प्रकार का हुआ करता है—

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्म विलसितम्।।

जो समयी योगीश्वर विजन गुहान्तर में बद्ध पद्मासन होकर तथा इन्द्रियों का निग्रह करके सादाख्य तत्त्व के ध्यान में एकनिष्ठ रहते हैं, उनके लिए वक्ष्यमाण चतुर्विध एवं षड्विध ऐक्यानुसन्धान (देवी के साथ भक्त का ऐक्यानुसन्धान) ही सपर्या या पूजा है।

आचार्य शंकर 'सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।' कहकर इसी प्रकार की सपर्या का विधान करते हैं।

'चन्द्रज्ञान विद्या' में देवी के ध्यान का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशांकुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।

श्रीचक्र का उद्धार— सबसे ऊर्ध्व में अष्ट दल पद्म, फिर षोडशदल पद्म, फिर मेखलात्रय, फिर चतुर्द्वारयुक्त भूपुर।

---

१. 'कौलमतानुसारेण अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि ऊर्ध्वमुखानि पञ्च त्रिकोणानि शक्त्यात्मकानि। कौलमते संहारक्रमेण लेखने नवत्रिकोणात्मकं श्रीचक्रम्।' (लक्ष्मीधरा)

२. कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगतो बिन्दुः।

समयिमत— त्रिकोणादि षट्चक्रों के रूप में परिणत हो जाते हैं, अर्थात् श्रीचक्र के विभिन्न त्रिकोण आन्तर षट्चक्रों से सम्बद्ध हैं या तादात्म्य भाव से एकीकृत हैं। इनमें श्रीचक्र का त्रिकोण 'बैन्दवस्थान' है।

तीन त्रिकोणों द्वारा अष्टकोण के निर्माण में त्रिकोण से ही बिन्दुस्थान का निर्माण होता है। वह चतुष्कोण ही है। वह सहस्रकमल के भीतर स्थित 'चन्द्रमण्डल' है। इसी चतुष्कोण के मध्य बैन्दवस्थान 'सुधासिन्धु' या 'सरघा' स्थित है। यह चतुष्कोणमध्यस्थित बिन्दुस्थान भी बाह्य पूजा ही है; फिर तरुणी के त्रिकोण की पूजा की तो बात ही क्या? इसलिए समयमतावलम्बियों की पूजा तो सहस्रकमल में समया एवं समय की पूजा है।

क. 'एतच्चतुष्कोणमध्यं बिन्दुस्थानमिति बाह्यपूजा तरुणी-त्रिकोणपूजा च दूरत एव निरस्या।।'

ख. 'समयिनां सहस्रकमले समयायाः समयस्य च शम्भोः पूजा।'[१]

'समया' वह होती है, जो शिव के साथ पञ्चविध साम्य रखती हो (समयानाम शम्भुना साम्यं पञ्चविधं याति समया)। यह समयत्व शम्भु का भी होता है।

पञ्चविध साम्य— १. अधिष्ठानसाम्य, २. अवस्थासाम्य, ३. अनुष्ठानसाम्य, ४. रूप-साम्य और ५. नामसाम्य। पञ्चविध साम्य यही है।

१. 'तवाधारे' (सौन्दर्यलहरी) में 'अधिष्ठानसाम्य' है, क्योंकि दोनों का अधिष्ठान आधारचक्र है।

२. 'जनकजननी मज्जगदिदम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'अनुष्ठानसाम्य' है, क्योंकि उत्पादन क्रिया में दोनों का व्याप्रियमाणत्व है।

३. 'लास्यताण्डव' (सौन्दर्यलहरी) में 'अवस्थानसाम्य' है, क्योंकि इसमें अवस्थान को लास्य ताण्डव द्वारा प्रतिपादित किया गया है। लास्य एवं ताण्डव (नृत्य की दृष्टि से देखने पर) दोनों नृत्य होने के कारण एक ही हैं।

४. 'आरुण्य' (सौन्दर्यलहरी) वाले श्लोक में 'आरुण्य' शब्द द्वारा 'रूपसाम्य' प्रतिष्ठित किया गया है, क्योंकि दोनों में आरुण्य है; अतः रूपसाम्य है। तन्त्रान्तर में कहा भी कहा गया है—

जपाकुसुमसङ्काशौ मदघूर्णितलोचनौ।
जगतः पितरौ वन्दे भैरवीभैरवात्मकौ।।

५. 'नवात्मानं' (सौन्दर्यलहरी) में 'रूपसाम्य' एवं 'नामसाम्य' दोनों प्रतिष्ठित हैं।

६. 'तटित्त्वन्तम्' (सौन्दर्यलहरी) वाले श्लोक में 'तटित्वान्' 'तटित्त्वती' में नाम-साम्य एवं रूपसाम्य दोनों है।

७. 'मणिपूरैकशरणं' (सौन्दर्यलहरी) शब्दप्रयोग 'अधिष्ठानसाम्य' का द्योतक है।

---

१. लक्ष्मीधरा।

८. 'स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'वर्षन्तं' शब्द प्रावृषेण्य के कारण अवस्थानसाम्य का द्योतक है।

९. 'तव स्वाधिष्ठाने' (सौन्दर्यलहरी) में 'स्वाधिष्ठाने' 'अधिष्ठानसाम्य' का सूचक है।

१०. 'महतीं' (सौन्दर्यलहरी) महासंवर्तात्मक रूप-नामसाम्य का द्योतक है। स्वाधिष्ठानगताग्निसंश्रयण में अवस्थानसाम्य है।

११. 'लोकान् दहति' (सौन्दर्यलहरी) 'अनुष्ठानसाम्य' का प्रतिपादक है।

१२. अनाहत चक्र में अनाहत अधिष्ठान है; अतः यहाँ 'अधिष्ठानसाम्य' है।

१३. हुतभुक्कणिका रूप से रूपसाम्य, 'नामसाम्य' दोनों प्रतिपादित हैं।

१४. 'निवातदीप' (सौन्दर्यलहरी) 'अवस्थानसाम्य' का द्योतक है।

१५. 'विशुद्धिचक्रमधिष्ठानम्' (सौन्दर्यलहरी) 'अधिष्ठानसाम्य' सूचित करता है।

१६. 'शुद्धस्फटिकविशदं' (सौन्दर्यलहरी) 'रूपसाम्य' द्योतित करता है।

१७. 'व्योमजनकं' (सौन्दर्यलहरी) 'अनुष्ठानसाम्य' द्योतित करता है।

१८. 'शिवं सेवे' (सौन्दर्यलहरी) 'नामसाम्य' प्रतिपादित करता है।

१९. 'शशिकिरणसारूप्यसरणेः' (सौन्दर्यलहरी) 'अवस्थानसाम्य' द्योतित करता है।

२०. 'तवाज्ञाचक्रस्थं' (सौन्दर्यलहरी) 'अधिष्ठानसाम्य' द्योतित करता है।[1]

इसी प्रकार 'तपनशशिकोटिद्युतिधरम्' (सौन्दर्यलहरी) में 'रूपसाम्य', 'परं शम्भुं' (सौन्दर्यलहरी) में 'नामसाम्य' और 'यमाराध्यन् भक्त्या' (सौन्दर्यलहरी) में 'अवस्थानसाम्य' है। यह साम्यपञ्चक मुक्तिप्रद है।[2]

भगवती का पूजा-विधान— भगवती की पूजा के तीन प्रकार हैं—

भगवती की पूजा के प्रकार

- परा पूजा
  - १. अद्वैतभावस्था पूजा
  - १. (ज्ञानमयी पूजा)
- परापरा पूजा
  - २. ज्ञानमयी पूजा
- (ज्ञानमयी पूजा)
- अपरा पूजा
  - चक्रपूजा

१. उत्तमा पूजा : परा पूजा

२. मध्यमा पूजा : परापरा पूजा

३. स्थूला पूजा : चक्र पूजा

साधना एवं पूजा के अन्य भेद

- अनुपायजन्य पूजा
- शिवोपायजन्य पूजा
- शाक्तोपायजन्य पूजा
- आणवोपायजन्य— क्रियोपायजन्य पूजा।

१. लक्ष्मीधरा (श्लोक ४१) २. लक्ष्मीधरा

चूँकि भगवती सभी की आत्मा हैं; अतः आत्मपूजा भी उनकी ही पूजा है। 'भगवती आत्मा हैं' इस सम्बन्ध में भावनोपनिषद् में कहा भी गया है—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना।।

इसी प्रकार 'दीक्षा' का विधान भी त्रिविधात्मक है—

त्रिविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवीपरा।
शाक्तेयी शाम्भवी चेति सद्यो मुक्तिप्रदायिनी।।

परमशिव द्वारा अनुष्ठित देवी की नित्योदिता पूजा का स्वरूप— भगवान् शिव देवी की तीन प्रकार से नित्य पूजा करते हैं—

भगवान् परम शिव परमेश्वरी से कहते हैं कि हे भगवति ! आपकी पूजा के तीन भेद हैं, जिनका स्वरूप निम्नांकित है—

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता।
परा चाप्यपरा गौरी तृतीया च परापरा।।

'प्रथमा' द्वैतभावस्था सर्वप्रवरगोचरा।
'द्वितीया' चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।
एवं ज्ञानमये देवी 'तृतीया' च परापरा।।

'उत्तमा' च परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्।

परापूजा का स्वरूप—

महापद्मवनान्तस्थां कारणानन्दविग्रहाम्।
तदङ्गोपाश्रयां देवी वाग्भवे गुरुपादुकाम्।।

आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम्।
सञ्चिन्त्य परमाद्वैतभावनामदघूर्णितः।।

दहनान्तर-सम्पर्क-नादालोकन-तत्परः ।
विकल्पसत्यसङ्कल्पविमुखोऽन्तर्मुखस्सदा ।।

चित्कल्लोलाभिललितसङ्कोचस्त्वतिसुन्दरः।
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजाकः ।
न्यासं निवर्तयेद्देवि ! षोढान्यासपुरस्सरम्।। आदि।

द्वितीया 'चक्रपूजा' सदा निष्पाद्यते मया।

परमशिव ने स्वयमेव बाह्यवर्ती वरिवस्या करने का विधान सम्मानित करके और स्वयमेव इसे निष्पादित करके चक्रपूजा की प्रशंसा की है।[1]

---

१. चिद्वल्ली : नटनानन्दनाथ।

'समयमत' में समय (सादाख्य तत्त्व) की सपर्या केवल सहस्रदल कमल में होती है, बाह्यवर्ती पीठादिक पर नहीं— 'समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ।।'[१]

जो-जो 'समयी' योगीश्वर होते हैं, वे जीवन्मुक्त महापुरुष संसारयात्रानुवर्ती रहकर भी सादाख्यतत्त्वानुशीलन में तत्पर, आत्मैकप्रवण रहते हैं तथा 'जपो जल्पश्शिल्पम्' ही उनकी सपर्या-पद्धति होती है।

ये योगीश्वर समयी विजन गुहान्तर में या बद्धपद्मासन होकर, इन्द्रियों का निग्रह करके तथा सादाख्यतत्त्वैकनिष्ठ होकर जीवन व्यतीत करते हैं; साथ ही चतुर्विध एवं षड्विध ऐक्यानुसन्धान के द्वारा भगवती के साथ एकाकार होकर रहते हैं और यही उनकी पूजा होती है— 'चतुर्विधषड्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः सपर्या इति उक्तं भवति।'

समयी-साधकों को बाह्य पूजा का कष्ट नहीं उठाना पड़ता— 'बाह्यपूजायां तत्क्रियाकलापे च तत्सम्पादनायां च क्लेशो नास्ति।।'

हाँ भगवती की बाह्य पूजा का विधान शास्त्रों में पाया जाता है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत्।।[२]

किन्तु यह समयैकदेशिमत है।[३] सौन्दर्यलहरी में कहा भी गया है—

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरम्।
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।। आदि।

आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि उक्त श्लोक में आया 'तवाज्ञाचक्रस्थं' वाक्य में आगत 'चक्र' शब्द साधक के भ्रूमध्यान्तरगत श्रीचक्रान्तरगत शिवचक्रचतुष्टय के लिए आया है, न कि 'द्विदलपद्म' के लिए।

यहाँ स्वाधिष्ठान के आगे अग्निमण्डल, अनाहत चक्र के आगे सूर्यमण्डल एवं आज्ञा चक्र के आगे चन्द्रमण्डल की विद्यमानता का प्रतिपादन किया गया है। अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र की किरणें, जो तीन सौ साठ हैं, आधारचक्र आदि आज्ञाचक्रपर्यन्त परिभ्रमण करती हैं। आज्ञाचक्र में स्थित चन्द्रमा भी समयमत में ध्येय नहीं है; क्योंकि श्रीचक्रात्मक चन्द्रमा तो सहस्रकमल में स्थित है और वही सामयिकों की पूजा का विधान है।

आज्ञाचक्रस्थित चन्द्र से अन्य ही सहस्रकमलस्थित चन्द्र है, जो कि श्रीचक्रात्मक है, नित्यकल है और उपास्य है।[४]

भगवती की पूजा सहस्रदल में तो होती ही है, किन्तु उन्हें वहाँ से उतार कर और

---

१. सौन्दर्यलहरी (लक्ष्मीधरा)
२. चन्द्रज्ञान विद्या।
३. लक्ष्मीधरा
४. लक्ष्मीधरा

हृदयकमल में स्थापित करके भी पूजा की जाती है—

'भवतीं सहस्रदलकमलात् अवरोप्य हृत्कमले संस्थाप्य।'[१]

पुरश्चरणात्मक क्रिया में 'संवित् कमल' में त्रिकोण को आरोपित करके (सहस्रदल-कमल के वैन्दव स्थान में स्थित कामेश्वरी को संवित् कमल में प्रतिष्ठित करके) पुरश्चरण करना भी समयिमत का एक रहस्यात्मक पक्ष है।[२]

(पुरश्चरणात्मकक्रियायां संवित्कमले त्रिकोणमारोप्य सहस्रकमलात् वैन्दवस्थानस्थां कामेश्वरीमवरोप्य पुरश्चरणं कार्यमिति समयिमतरहस्यमिति आचार्याणां आशय इति।)

'शिवाग्नौ जुह्वन्तः' (सौन्दर्यलहरी : श्लोक-३३) कहकर शंकराचार्य ने जिस हवन का विधान किया है, वह भी बाह्य नहीं है; क्योंकि यह हवन शिवाग्नि में करना है। 'त्रिकोण' (वैन्दवस्थान) में स्वाधिष्ठानाग्नि को निक्षिप्त करके, पाशांकुश से निरुद्ध करके अग्नि का जो जातकर्मादिक षोडश संस्कार किया जाता है, उसे ही 'शिवाग्नि' कहते हैं।[३]

सहस्रदल कमल की पूजा

समयपूजक ही समयी कहलाते हैं— 'समयपूजकाः समयिनः।'

इन समयी-साधकों की सपर्या-विधि में षट्चक्रपूजा का विधान नहीं है; प्रत्युत समयमत में मात्र सहस्रदल कमल की पूजा ही स्वीकृत है— 'तेषां षट्चक्रपूजा न नियता', अपितु 'सहस्रदल कमल' की पूजा ही पूजा है।'

▼

---

१. लक्ष्मीधरा

२. लक्ष्मीधरा

३. लक्ष्मीधरा

तृतीय अध्याय

शाक्तदर्शन एक विहंगमावलोकन

शाक्त दर्शन का दार्शनिक पक्ष एवं सृष्टि— शाक्तों का विधि-विधान शाम्भव दर्शन पर आधारित है। शाक्त दर्शन के सिद्धान्त निम्नांकित हैं—

'शिव' एवं 'शक्ति' आद्य तत्त्व हैं। इनमें 'शिव' प्रकाशस्वरूप है और 'शक्ति' विमर्श-स्वरूप एवं स्फूर्तिस्वरूप। प्रकाश विमर्श में प्रविष्ट होता है और वह 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है। 'शक्ति' शिव (प्रकाश) में प्रविष्ट होती है; फलस्वरूप 'बिन्दु' संवर्द्धित होता है। परिणामतः उससे 'नाद' (नारी तत्त्व) का आविर्भाव होता है।

क. 'प्रकाश' (शिव) का 'विमर्श' (शक्ति) में प्रवेश— बिन्दु।

ख. 'विमर्श' (शक्ति) का 'प्रकाश' (शिव) में अनुप्रवेश— 'बिन्दु' का संवर्धन— 'नाद' का आविर्भाव।

ग. बिन्दु एवं नाद मिलकर 'मिश्रबिन्दु' बन जाते हैं। मिश्रबिन्दु = नर-नारी शक्तियों का योग =काम।

घ. श्वेतबिन्दु (पुरुष), रक्तबिन्दु (नारी) = पुरुष-नारी तत्त्व के प्रतीक हैं।

ङ. श्वेतबिन्दु, रक्तबिन्दु एवं मिश्रबिन्दु मिलकर एक हो जाते हैं और संयक्त बिन्दु बन जाते हैं।

कामकला तत्त्व— श्वेत + रक्त + मिश्र बिन्दु मिलकर एकीकृत हो जाने पर— 'कामकला'। बिन्दुत्रय का सामरस्य (एकीकरण) ही 'कामकला' कहलाता है। यहाँ शक्तिचतुष्टय का सामरस्य है।

क. मूल बिन्दु = विश्व का मूलोपादान।

ख. नाद = जिसके आधार पर बिन्दु-संवर्द्धन से जन्म लेने वाले तत्त्वों का नामकरण होता है। यद्यपि बिन्दु एवं नाद दोनों में उत्कट प्रेम होता है तथापि सृष्टि का आरम्भ नहीं हो पाता। ये मात्र वाक् एवं अर्थ के उपादान होते हैं।

ग. इनके साथ (बिन्दु + नाद के साथ) 'श्वेत पुरुषबिन्दु' एवं 'रक्त स्त्रीबिन्दु'— दो उत्पादक शक्तियों का योग होता है। निष्कर्ष—

मूलबिन्दु, नाद, श्वेत पुरुषबिन्दु, एवं रक्त नारीबिन्दु— ये चारो ही तत्त्व मिलकर 'कामकला' का निर्माण करते हैं।

'कामकला'— वागर्थमय सृष्टि।

कतिपय प्रमाण यह भी प्रतिपादित करते हैं कि—

क. जब नारीतत्त्व प्रथम बार 'बिन्दु' में प्रविष्ट होता है तब 'नाद' के साथ 'हार्ध-कला' नामक नव्य तत्त्व विकसित होता है।

ख. ग्रन्थान्तर के अनुसार— उच्चतमा देवी तो 'कामकला' है।

१. सूर्य (संयुक्त बिन्दु) कामकला का मुख है।

२. अग्नि एवं चन्द्रमा (रक्त एवं श्वेत बिन्दु) कामकला के स्तनद्वय हैं।

३. हार्धकला कामकला की योनि है।

४. हार्धकला = योनि ही सृष्टि करने वाली एवं सृष्टि का आरम्भ है।

५. यह सर्वदेवोपरि शक्ति ही 'परा, ललिता, भट्टारिका एवं त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती है।

अहंतत्त्व— शिव 'अ' एवं शक्ति 'ह' है। 'ह' अर्धकला-संयुक्त है। अ + ह = 'अहं' (अ से ह तक की समस्त वर्णमाला की समष्टि एवं 'मैं')।

नारीतत्त्व या योनि 'ह' के आकार का अर्धभाग है। अर्धकला या 'ह' शिव के प्रतीक 'अ' से मिलकर कामकला या त्रिपुरसुन्दरी का प्रतीकात्मक रूप है और शिव + शक्ति के संयोग का परिणाम है। वह 'अहं' से युक्त भी है और 'अहं' कहलाती भी है। परिणामत: उसकी नि:शेष सृष्टि अहंकार से युक्त है।

अद्वैतवाद— समस्त आत्मायें त्रिपुरसुन्दरी की रूपमात्र हैं। जब ये आत्मायें देवीचक्रों के साथ कामकला विद्या एवं ज्ञान का अभ्यास कर लेती हैं तो 'त्रिपुरसुन्दरी' हो जाती हैं। 'अहं' के 'अ' एवं 'ह' के मध्य सम्पूर्ण वाक् निहित है।

त्रिपुरसुन्दरी = समस्त अर्थ, एवं अर्थ के व्यञ्जक समस्त शब्द। इसीलिए त्रिपुरसुन्दरी 'परा' कहलाती है।

तत्त्व

शाक्त दर्शन के मत में मूल तत्त्व छत्तीस हैं। परम तत्त्व परा शक्ति है। काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त— दोनों छत्तीस तत्त्व मानते हैं। न्यायशास्त्र सोलह, सांख्य पच्चीस, वैशेषिक छ: या सात, अद्वैत वेदान्त एक, द्वैतवादी वेदान्त दो एवं विशिष्टाद्वैतवादी वेदान्त तीन तत्त्व मानते हैं, किन्तु त्रिक दर्शन छत्तीस तत्त्व मानता है।

कश्मीरीय शैवमत मानता है कि ३६ तत्त्व 'परमशिव' की अभिव्यक्तियाँ हैं— उनके आभास हैं (शिव अपने को ३६ तत्त्वों के रूप में अभिव्यक्त करता है और उसकी षट्त्रिंशदात्मक अभिव्यक्ति ही जगत् है— सृष्टि है)। ये सभी आभास शिव से अभिन्न हैं— चेतन हैं— चेतन का आभास होने के कारण ये चेतन आभास हैं और माया के विकासात्मक विभिन्न रूप हैं। इनका शिव से जो सम्बन्ध है, उसका आधार है— शक्ति। शुद्धाध्वा का सृजन (शिवतत्त्व से विद्यातत्त्व) शिव द्वारा (विना माया के) स्वयं प्रत्यक्षत: किया जाता है और इसका संस्पर्श माया नहीं करती। 'शैवसिद्धान्त' के मत में शुद्धाध्वा की सृष्टि शुद्ध माया द्वारा निष्पादित की जाती है। यहाँ तक मलों का स्पर्श नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि—

क. 'शुद्धाध्वा' की सृष्टि— माया का कोई प्रभाव नहीं (का० शैव दर्शन)।

—'शुद्धाध्वा' की सृष्टि 'शुद्ध माया' द्वारा की जाती है, किन्तु यह सृष्टि मलों से असंस्पृष्ट है (शैव सिद्धान्त)।

ख. सदाशिव एवं ईश्वर— महेश्वर एवं सद्विद्या—

१. सदाशिव तत्त्व में— इच्छाशक्ति का प्राधान्य है (का० शै० द०)।

२. सदाशिव तत्त्व में— ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की साम्यावस्था है (शैवसिद्धान्त)।

३. ईश्वर तत्त्व में— ज्ञानशक्ति का प्राधान्य है (का० शै० द०)।

४. ईश्वर तत्त्व में— ज्ञान और इच्छाशक्ति पर क्रियाशक्ति का प्राधान्य रहता है (शैवसिद्धान्त)।

५. सद्विद्या तत्त्व में— क्रियाशक्ति का प्राधान्य होता है (का० शै० द०)।

६. सद्विद्या तत्त्व में— क्रिया और इच्छाशक्ति पर ज्ञान का प्राधान्य रहता है (शैव सिद्धान्त)।

७. माया तत्त्व— विकासक्रम में षष्ठस्थानीय है (का० शै० द०)।

८. माया तत्त्व— यह किसी का विकास नहीं, नित्य सत्ता है; अपनी सत्ता के लिए पराश्रित नहीं, स्वाश्रित है (शै० सि०)।

९. माया— शिव की यह परिग्रह शक्ति मोह एवं भ्रमात्मक ज्ञान का कारण है; माया विभ्रम द्वारा बन्धन उत्पन्न करती है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)।

१०. माया अपने विभ्रमों के द्वारा बन्धनों को दूर करने के उपायों का सृजन करती है (शैवसिद्धान्त)।

'शैवसिद्धान्त' तीन तत्त्वों को नित्य मानता है। काश्मीरीय दर्शन केवल एक तत्त्व ही मानता है।

विमर्श— परमशिव की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' ही 'विमर्श' है। 'प्रकाश' की शक्ति की ही आख्या 'विमर्श' है। हकार ही विमर्श है—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यकुलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।।

शिव— कोई भी ऐसी अवस्था है ही नहीं; जो शिव नहीं है—

'न साऽवस्था न यः शिवः।'

विश्व भगवान् का शरीर है— 'भगवान् विश्वशरीरः।' (शक्तिसूत्र)

'विमर्श' प्रकाश का स्वभाव है, उसका धर्म है, उसकी शक्ति है या उसका निर्मल दर्पण है। नटनानन्द 'चिद्वल्ली' में कहते हैं कि जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-लय का मूलभूत कारण एवं अकृत्रिम अहम्भाव का परामर्श ही 'विमर्श' है—

जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताकृत्रिमाहम्भावपरामर्शो विमर्शः।

नागानन्द ने विमर्श को दूसरी दृष्टि से देखकर कहा कि विमर्श विश्वाकार, विश्व-

प्रकाश एवं विश्वोपसंहार द्वारा विमर्श कहलाता है या अकृत्रिम अहं स्फुरण के रूप में विमर्श की आख्या पाता है—

विमशों नाम विश्वाकारेण वा विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्।

विश्व— शिव की आत्मा (शिव के स्वरूप) से विश्व अभिन्न है— श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं; एवं भगवान् विश्वशरीरः। विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव।

परम सत्ता (ब्रह्म या परम शिव)— शाक्त दृष्टि से सर्वोपरि सत्ता शक्ति है। शैवों के मत में परम सत्ता या शिव अद्वितीय है— इस बात को अद्वैत वेदान्त, शैव सिद्धान्त एवं काश्मीरीय शैव दर्शन तीनों ही स्वीकार करते हैं; किन्तु अद्वैत वेदान्त यह स्वीकार करता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता ही नहीं है, शैवसिद्धान्त यह मानता है कि शिव के समान अन्य कोई नहीं है (यद्यपि शिव के अतिरिक्त दो अन्य नित्य सत्तायें हैं अवश्य) तथा काश्मीरीय शैव दर्शन यह मानता है कि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई उससे पृथक् सत्ता नहीं है, जीव और जगत्— ये शिव के ही रूप हैं, मिथ्या नहीं हैं।

परमशिव सक्रिय है (ब्रह्म की भाँति निष्क्रिय नहीं)— शक्ति भी सक्रिय है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् का स्रष्टा ब्रह्म नहीं है, प्रत्युत माया है; क्योंकि ब्रह्म निष्क्रिय है। उसमें क्रिया मानना उसे अपूर्ण सिद्ध करना होगा। कोई भी क्रिया किसी ईहा से सम्बद्ध होती है, किन्तु ब्रह्म निरीह है— निराकांक्ष है— अकाम है। काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार जगत् (सृष्टि) शिव का कर्म या कार्य नहीं, स्पन्द है— क्रिया है— उसकी स्फुरत्ता है। वेदान्त में मान्य क्रिया की अवधारणा काश्मीरीय शैव दर्शन की अवधारणा से पृथक् है। वेदान्त की क्रिया सायास, सप्रयोजन, सकाम, अभीष्ट-सम्पादक एवं इच्छापूर्ति का साधन है; अतः वह निरीह ब्रह्म में रह ही नहीं सकती, किन्तु परमशिव में समवेत क्रिया इच्छापूर्ति का साधन या कामना-निष्पादक नहीं, प्रत्युत परमशिव का स्वाभाविक धर्म है— स्वभाव है— स्वात्मानन्द-स्फुरण है— एक आनन्द-क्रीड़ा है। जिस प्रकार एक बालक किसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर नहीं खेलता, उसी प्रकार परमशिव किसी कामना की पूर्ति के लिए क्रिया नहीं करता। सृजनरूप क्रिया किसी कामना की पूर्ति के लिए निष्पादित नहीं की जाती, प्रत्युत आनन्दानुभूति के लिए की जाती है। इस सृष्टिरूप क्रिया में शिव का कोई प्रयोजन निहित नहीं है।

जगत् का स्रष्टा शिव है और जगत् शिव का स्पन्द है— शिव पञ्चकृत्यकारी है; अतः वह जगत् का स्रष्टा है। ब्रह्म में क्रिया की सत्ता न रहने से वह निष्क्रिय, शक्ति-व्यतिरिक्त, तटस्थ एवं आत्म-चेतना-विमुक्त है, जबकि शिव आत्म-चेतना-संवलित, शक्तिसमवेत स्रष्टा, सक्रिय एवं शक्तिस्वरूप है। शिव और शक्ति में चन्द्रमा एवं चन्द्रिका की भाँति अभेद है। क्रिया शिव की अपनी शक्ति है। शैवसिद्धान्त में भी परमात्मा को

जगत् का स्रष्टा माना गया है, किन्तु वहाँ सृष्टि परमात्मा से पृथक् है; लेकिन काश्मीरीय शैव दर्शन में सृष्टि या जगत् शिवरूप है।

परमसत्ता में इच्छा-ज्ञान-क्रिया-स्वातन्त्र्य-चैतन्य-आनन्द का समावेश है— काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त दोनों मानते हैं कि परमसत्ता में इच्छा, ज्ञान, क्रिया, स्वातन्त्र्य, चैतन्य एवं आनन्द आदि गुण सन्निविष्ट हैं। अद्वैत वेदान्त ब्रह्म में गुण, क्रिया, इच्छा आदि स्वीकार नहीं करता।

चिति शक्ति की अवधारणा शिवाद्वैत एवं शाक्ताद्वैत दोनों दर्शनों में एक ही है। शाक्त दर्शन में भी शिव-शक्ति के अभिन्नत्व, अखण्डत्व एवं अद्वयत्व का प्रतिपादन किया गया है। शक्तिसूत्र (प्र० हृ०) में 'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:' कहकर इसी शक्ति को विश्वमूल स्वीकार किया गया है। वेदान्त के ब्रह्म एवं शाक्तों के परम शिव में यह भेद है कि परमशिव शक्तिमय है (ब्रह्म की भाँति शक्तिशून्य नहीं)। परमशिव भी पञ्च-कृत्यकर्ता है, वेदान्तियों के ब्रह्म की भाँति निष्क्रिय नहीं है।

शैव एवं शाक्त दोनों आगमों में ३६ तत्त्व माने गये हैं। परशुराम कल्पसूत्र में कहा गया है कि 'षट्त्रिंशत्तत्त्वानि विश्व:' (१.४) अर्थात् विश्व इन्हीं ३६ तत्त्वों से युक्त है। ये ३६ तत्त्व तीन वर्गों में विभाजित हैं—

१. आत्मतत्त्व (पृथ्वी से माया तत्त्व तक)।

२. विद्यातत्त्व (शुद्ध विद्या। ईश्वर। सदाशिव)।

३. शिवतत्त्व (शक्ति-शिव)।

परम तत्त्व में शिव एवं शक्ति का सामरस्य है— परम तत्त्व शिव-शक्ति-सामरस्यपूर्ण है; इसे काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त दोनों मानते हैं; किन्तु वेदान्ती ब्रह्म में इस सामरस्य को स्वीकार नहीं करते।

परम शिव एवं विश्व का सम्बन्ध— विश्व परमात्मा से अभिन्न है— 'श्रीपरम-शिव: स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वम्', 'भगवान् विश्वशरीर:' 'विश्वशरीर: शिवभट्टारक एव' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)।

आदि शक्ति एवं परतत्त्व— मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती की दृष्टि से समस्त देवियों का मूल, समस्त शक्तियों का अधिष्ठान एवं सर्वेश्वरी मात्र महालक्ष्मी हैं। वे ही आदिशक्ति एवं परतत्त्व हैं।

महालक्ष्मी का स्वरूप (वैकृतिक रहस्य)—

सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मी: साक्षान्महिषमर्दिनी।।

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा।।

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी।।

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात्।।

अवतारक्रम

चतुर्भुजा महालक्ष्मी (मूल प्रकृति)

चतुर्भुजा महाकाली — ब्रह्मा और लक्ष्मी — चतुर्भुजा महासरस्वती

चतुर्भुजा महाकाली → शंकर-सरस्वती

चतुर्भुजा महासरस्वती → विष्णु और गौरी

भगवती महालक्ष्मी— देवी के समस्त अवतारों की प्रकृति महालक्ष्मी ही हैं। वे समस्त प्रपञ्च का आदि कारण हैं। वे गुणत्रय की साम्यावस्था हैं। वे स्थूल-सूक्ष्म, दृश्या-दृश्य एवं व्यक्ताव्यक्त समस्त प्रपञ्च का कारण हैं। वे अस्ति-भाति-प्रिय-नाम एवं रूप हैं। वे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिस्वरूप, सर्वोच्च शक्ति एवं नित्य हैं। वे सच्चिदान्द परमेश्वरी हैं। वे साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, व्यक्त-अव्यक्त एवं सर्वरूप हैं। वे सर्वसत्त्वमयी, सर्वसत्त्वाधीश्वरी, महामाया एवं सर्वेश्वरी हैं। वे परा शक्ति हैं। वे ही सत्, चित्, आनन्द, सत्य, ज्ञान एवं सम्पूर्ण ऐश्वर्य हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है—

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च कर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्।।[1]

आदि शक्ति— देवी की नौ मूर्तियाँ : नव दुर्गा—

१. शैलपुत्री	४. कूष्माण्डा	७. कालरात्रि
२. ब्रह्मचारिणी	५. स्कन्दमाता	८. महागौरी
३. चन्द्रघण्टा	६. कात्यायनी	९. सिद्धिदात्री

अथर्वशीर्षोक्त[2] आत्मशक्ति : श्रीमहाविद्या (ब्रह्म) का स्वरूप—

१. प्रकृति-पुरुष। समस्त दृश्य जगत्।
२. शून्याशून्य। वेदावेद।
३. विज्ञानाविज्ञान। आनन्दानन्द। विद्याविद्या।
४. ब्रह्माब्रह्म। अजानजा। ऊपर-नीचे। अगल-बगल।
५. पञ्चीकृत-अपञ्चीकृत महाभूत। रुद्र-वसु। आदित्य-विश्वेदेव। मित्र-वरुण।
६. सोम-त्वष्टा-पूषा-भग। त्रिदेव। जगदीश्वरी। गुणसाम्या। विष्णुशक्ति। स्कन्दमाता। देवमाता।

१. दुर्गासप्तशती (मध्यम चरित्र)। २. एषाऽत्मशक्तिः 'एषा श्रीमहाविद्या'।

७. मूलविद्या–पञ्चदशाक्षरी मन्त्र : 'कामो योनिः कमला विश्वमाता दिवि द्योम' स्वरूप ।

८. प्रजापति।

महात्रिपुरसुन्दरी महाविद्या का स्वरूप— वही भगवती ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, विश्वेदेव, यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, त्रिगुण, त्रिदेव, ग्रह, नक्षत्र, काल आदि सभी हैं।

१. योगनिद्रा : दशभुजी भगवती महाकाली (मार्कण्डेय पुराण : प्रथम चरित्र)— भगवती के दश हाथों में धृत अस्त्र इस प्रकार हैं—

१. खड्ग	३. गदा	५. धनुष	७. शूल	९. मस्तक
२. चक्र	४. बाण	६. परिघ	८. भुशुण्डि	१०. शंख

२. अष्टादशभुजी महालक्ष्मी (मार्क० पुराण : मध्यम चरित्र)— अष्टादश-भुजी भगवती महालक्ष्मी के द्वारा अट्ठारह हाथों में धारण किये गये अस्त्र निम्नवत् हैं—

१. अक्षमाला	६. पद्म	११. खड्ग	१६. शूल
२. परशु	७. धनुष	१२. ढ़ाल (चर्म)	१७.पाश
३. गदा	८. कुण्डिका	१३. जलज (शंख)	१८.चक्र
४. बाण	९. दण्ड	१४. घण्टा	

३. अष्टभुजी महासरस्वती (मार्क० पुराण : उत्तर चरित्र)— आठ भुजाओं वाली भगवती महासरस्वती के हाथों में धारित आठ अस्त्र निम्नवत् हैं—

१. घण्टा	३. हल	५. मूसल	७. धनुष
२. शूल	४. शंख	६. चक्र	८. बाण

चतुर्भुजी महालक्ष्मी (प्राधानिक रहस्य के अनुसार)

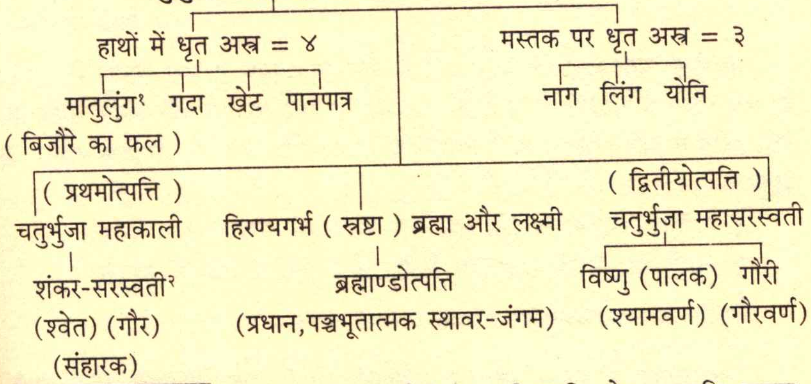

१. भुवनेश्वरी संहिता के अनुसार मातुलुंग— कर्मराशि, गदा– क्रियाशक्ति, खेट– ज्ञानशक्ति, पानपात्र– सच्चिदानन्दमय स्वरूप में स्थिति (तुरीय वृत्ति) का सूचक है। नाग- काल का, योनि– प्रकृति का एवं लिंग– पुरुष का सूचक है। महालक्ष्मी- प्रकृति, पुरुष एवं काल का अधिष्ठान।

२. सरस्वती के नाम— त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा।

चतुर्भुजा महालक्ष्मी

महालक्ष्मी द्वारा जगत् को शून्य देखे जाने पर उनके द्वारा की गई सृष्टि — शुद्ध सत्त्व गुण से — चन्द्रवत् गौर वर्ण वाली महासरस्वती[1]

तमोगुण उपाधि से

चतुर्भुजी महाकाली (काजल की भाँति काला वर्ण : तामसी देवी)[2]

ढाल तलवार चषक कटा मस्तक (चार हाथों में) — कबन्ध (वक्षस्थल पर) — नरमुण्ड की माला (गले में)

भगवती का स्वरूप एवं उनका नाम— प्राधानिक रहस्य के अनुसार—

१. महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत्।।

२. नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित्।।

(एक नाम से उनको नहीं पुकारा जा सकता। उनके अनेक नाम हैं; अत: (महामाया, चिति आदि) नामान्तरों से इनको पुकारा जाना चाहिए।)

अष्टभुजी सरस्वती— (पार्वती के शरीर से प्रकट) → शुम्भ का वध

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी।।१४।।
दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत्।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलञ्च कार्मुकं वसुधाधिप।।१५।।

(वैकृतिकरहस्य)

चतुर्भुजा 'महालक्ष्मी' के किस हाथ में कौन-सा आयुध है; इस सन्दर्भ में मतभेद है। इस दिशा में मुख्यत: दो मत हैं— रेणुकामाहात्म्य का मत और प्रथम चरित्र एवं उत्तर चरित्र में वर्णित महाकाली-महासरस्वती का वर्णनसम्बन्धी मत। रेणुकामाहात्म्य के अनुसार—

१. दाहिनी ओर के नीचे के हाथ में पानपात्र एवं ऊपर के हाथ में गदा।

२. बायीं ओर के ऊपर के हाथ में खेट तथा नीचे के हाथ में श्रीफल।

वैकृतिकरहस्य के अनुसार (दक्षिणाध: करक्रमात्)—

---

१. महासरस्वती के नाम— महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा, धीश्वरी (बुद्धिस्वामिनी)।

२. महाकाली (तामसी देवी) के नाम— महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि, दुरत्यया।

१. दाहिनी ओर के निचले हाथ में मातुलुंग एवं ऊपर वाले हाथ में गदा।

२. बायीं ओर के ऊपर वाले हाथ में खेट एवं नीचे वाले हाथ में पानपात्र।

चतुर्भुजा महालक्ष्मी

(महाकाली की चार भुजा एवं महासरस्वती की चार भुजा)

तमोगुण से	सत्त्वगुण से
(महाकाली)	(महासरस्वती)

सप्तशती (प्रथम, उत्तर चरित्र) में वर्णित महाकाली-महासरस्वती—

महाकाली की दश भुजायें एवं महासरस्वती की आठ भुजायें।

वैकृतिकरहस्य के अनुसार महाकाली का स्वरूप इस प्रकार है— १० मुख, १० भुजायें, १० पैर, कज्जल वर्ण और ३० नेत्र। उनके द्वारा अपने हाथों में धारण किये गये आयुध हैं— खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शंख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष एवं रक्तरंजित कटा सिर। कहा भी गया है—

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया।।

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः।।

खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत्।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ।।

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम्।।

महालक्ष्मी का स्वरूप निरूपित करते हुये वैकृतिकरहस्य कहता है कि—

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात्।।

अक्षमाला च कमलं बाणोऽग्निः कुलिशं गदा।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः।।

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्।।

सर्वदेवीमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप।।

मूर्तिरहस्य के अनुसार देवी की अंगभूता शक्तियाँ छः हैं— नन्दा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, भीमा, दुर्गा और भ्रामरी।

दुर्गासप्तशती (मार्कण्डेय पुराण) के प्रधान देवता[1]

महाकाली — महालक्ष्मी — महासरस्वती

जगत्— शाक्तों की दृष्टि में 'जगत्' भगवती का अपना ही विराट् स्वरूप है। आगमिक परम्परा के विविध दर्शनों की प्रमुख विशेषता यह रही है कि वे जगत् को भावात्मक दृष्टि से देखते हैं। वैदिक परम्परा का प्रमुख दर्शन अद्वैत दर्शन है, जो कि जगत् के प्रति निषेधात्मक दृष्टि रखता है। 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की दृष्टि रखने एवं एकमात्र परम सत्ता का ही अस्तित्व मानने के कारण अद्वैतवादी दर्शनों के सामने यह समस्या थी कि वे जगत् को सत्य कैसे मानें। जगत् का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करने पर 'एको ब्रह्म' को मानना सम्भव नहीं था, क्योंकि इसके कारण परा सत्ता एवं जगत् में भेद मानना पड़ता, जो कि द्वैतवाद की पुष्टि करता और परा सत्ता मात्र को ही सत्य मानने की अद्वैत दृष्टि बाधित होती। अद्वैत वेदान्त जगत् का निषेध करते हुए उसे मिथ्या कहता है— जगन्मिथ्या अर्थात् 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

काश्मीरीय शैव दर्शन और उसकी प्रत्यभिज्ञा, क्रम एवं स्पन्द आदि समस्त शाखायें जगत् को भावात्मक दृष्टि से देखती हैं और उसे सत्य मानती हैं। द्वैतवादी शैव सिद्धान्त भी जगत् के प्रति भावात्मक दृष्टि रखते हुए उसे सत्य मानता है। दोनों में अन्तर यह है कि काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को 'आभास' मानता है, जबकि शैवसिद्धान्त उसे आभास नहीं; प्रत्युत 'पृथक् स्वतन्त्र' सत्ता मानता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन आभासवादी (Idealistic) है, किन्तु शैवसिद्धान्त यथार्थवादी (Realistic) है। कश्मीरीय शैव दर्शन एकमात्र परम सत्ता (परमात्मा) का ही स्वतन्त्र अस्तित्व मानकर जगत् को उस सत्ता का आभास कहकर जगत् के प्रति भावात्मक दृष्टि की पुष्टि कर सकता है, किन्तु शैवसिद्धान्त ऐसा नहीं कर सकता; क्योंकि वह द्वैतवादी है।

अद्वैतवादी दर्शन जगत् का निषेध करता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को शिवरूप मानता है। शैव सिद्धान्त भी जगत् को सत् एवं शिवस्वरूप मानता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन की भाँति उसे 'आभास' नहीं मानता। अद्वैत वेदान्त एवं काश्मीरीय शैव दर्शन दोनों जगत् को 'आभास' मानते हैं, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन उसे 'सत्याभास' एवं अद्वैत वेदान्त उसे 'मिथ्याभास' मानता है। अद्वैत दर्शन जगत् को 'मिथ्या' एवं 'बन्धन का कारण' तथा 'मायात्मक' मानता है; जबकि काश्मीरीय शैव दर्शन उसे 'सत्य' एवं 'लीला' मानता है। वेदान्त भी 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' कहकर 'लीलावाद' का ही समर्थन करता है, किन्तु उसकी लीलासम्बन्धी दृष्टि काश्मीरीय शैव दर्शन के विपरीत है।

१. ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवता

शाक्त दर्शन जगत् को एक 'चित्र' या 'क्रीड़ा' मानता है— 'एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः। जगच्चित्रं समालिख्य'।

काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को 'चेतन' (चेतन शिव से आभासित होने के कारण) या 'शिव का चेतनाभास' मानता है, किन्तु शैव सिद्धान्त उसे 'जड़' मानता है, क्योंकि जड़ माया (कारण) का कार्य भी जड़ तो रहेगा ही।

अद्वैत वेदान्त में जगत् को 'बन्धन' माना गया है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त में जगत् बन्धन या बन्धन का कारण नहीं माना जाता; बल्कि बन्धन के कारण अन्य तत्त्व हैं; यथा— काश्मीरीय शैव दर्शन में 'पञ्चकञ्चुक' एवं शैवसिद्धान्त में 'आणवमल।'

अद्वैत वेदान्त में जगत् एक 'अध्यारोप' है, वह ब्रह्म में पृथक् सत्ता का एक मिथ्या आरोपण है— आवरण है— विक्षेप है; अतः अग्राह्य है, त्याज्य है; किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन में जगत् को अपनी सत्ता से पृथक् समझना ही अज्ञान एवं बन्धन है। शैव-सिद्धान्त में भी जगत् को मुक्ति का साधन स्वीकार किया गया है। अतः वेदान्त की भाँति ही जगत् को त्याज्य नहीं माना गया है। काश्मीरीय शैव दर्शन जगत् को 'शिव का आभास' मानकर भी उसे सत्य मानता है तथा शैवसिद्धान्त उसे शिव से पृथक् मानकर भी सत्य मानता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार जगत् को शिव से पृथक् मानने पर इसका ज्ञान होना भी सम्भव नहीं हो सकता। काश्मीरीय शैव दर्शन में आत्मा से पृथक् किसी भी अनात्म पदार्थ की सत्ता ही स्वीकार नहीं की गयी है।

अद्वैत वेदान्त में जगत् हेय एवं महत्त्वहीन माना जाता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त में उसे महत्त्वपूर्ण एवं सोद्देश्य माना जाता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् 'रज्जु में सर्प की भ्रान्ति' है; अतः जगत् का ब्रह्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्यस्वरूप ब्रह्म असत् जगत् से सम्बद्ध कैसे हो सकता है?

काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त दोनों जगत् को शिव से सम्बद्ध मानते हैं। दोनों में जगत् का शिव के साथ अद्वैत सम्बन्ध होना स्वीकृत है। शिव का 'आभास' होने एवं शिव से अभिन्न होने के कारण अद्वैतवादी शैव दर्शन में जगत् का एवं शिव का अद्वैत सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। शैवसिद्धान्त मानता है कि यद्यपि शिव एवं जगत् में नित्य द्वैत है (दोनों भिन्न हैं); तथापि शिव की शक्ति जगत् की प्रत्येक सत्ता में विद्य-मान है; अतः वह अपनी शक्ति की अन्तर्भूतता के कारण प्रत्येक जागतिक सत्ता या जगत् के साथ अद्वैत सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है।

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार जगत् शिव की स्वाभिव्यक्ति है। शिव ही जगत् के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है; अतः जगत् शिवमय है। चूँकि शिव अपनी आनन्दाप्ति

के लिए ही सृष्टि करता है, इसीलिए जगत् आनन्दस्वरूप है। जगत् शिव के आनन्द या भोग की वस्तु है।

शैवसिद्धान्त की दृष्टि में शिव जगत् का सृजन करता है और जगत् भोग की वस्तु होते हुये भी मात्र आनन्दाप्ति के लिए नहीं; प्रत्युत आत्मा के लिए एक साधन है, न कि साध्य। जगत् के अनुभव आत्मा के मल का परिपाक करते हैं और उससे मोक्षाप्ति होती है। जगत् काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैव सिद्धान्त दोनों में ग्राह्य है, निषेध्य नहीं। ग्राह्य इसलिए है कि काश्मीरीय शैव दर्शन की दृष्टि में वह शिवस्वरूप है और शैव सिद्धान्त की दृष्टि से इसलिए ग्राह्य है, क्योंकि वह आत्मा के लक्ष्य का साधन है।

शैव सिद्धान्त की दृष्टि में जगत् शिव से भिन्न है। काश्मीरीय शैव दर्शन में शिव एवं जगत् का तात्त्विक अद्वैत मान्य है। शैव सिद्धान्त में शिव एवं जगत् का सम्बन्ध अद्वैतपूर्ण है। भक्तिभावना एवं ज्ञान दोनों में मान्य है।

चूँकि शिव जगत् से परे भी है; अत: वह जगत् शिव का आभास है। शैव सिद्धान्त में शिव जगत् से भिन्न है। दोनों में शिव जगत् में समाहित है।

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार शिव जगत् में अन्तर्निहित है, क्योंकि जगत् शिव का आभास है; अत: शिव के जगत् में अन्तर्निहित न होने पर जगत् का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। शैव सिद्धान्त के अनुसार शिव जगत् में इसलिये व्याप्त है, क्योंकि शिव आत्माओं से प्रेम करता है।

जगत् का उपादान कोई अन्य नहीं, स्वयं शिव ही है; क्योंकि वह जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। शैव सिद्धान्ती शिव को जगत् का 'उपादान कारण' मानने से इन्कार करते हैं; क्योंकि जगत् का 'उपादान' माया है। शिव से जगत् को अभिन्न मानने के प्रयोजन से काश्मीरीय शैव दार्शनिक शिव को ही उपादान मानते हैं। काश्मीरीय शैव दर्शन की दृष्टि के अनुसार शिव के ही जगत् का उपादान होने के फलस्वरूप जगत् शिव की बाह्याभिव्यक्ति है। शैव सिद्धान्त भक्तिभाव को, तो काश्मीरीय शैव दर्शन ज्ञानमीमांसा को प्रधानता देता है। शैव सिद्धान्त के अनुसार शिव जगत् का नियन्त्रक है, स्वामी है, किन्तु जगत् नहीं है और केवल निमित्त कारण है, न कि उपादान कारण।

काश्मीरीय शैव दर्शन का शिव अपने अनुग्रह के द्वारा दूसरों को नहीं; बल्कि अपने-आपको ही अनुगृहीत करता है तथा अपने को ही मोक्ष प्रदान करता है। मोक्ष भी उसकी अपनी ही 'लीला' है। जगत् एवं उसकी सृष्टि शिव का सहज कर्म है, उसका 'अनुग्रह' ही उसका सहज कर्म है। वही अपने अनुग्रह द्वारा 'शिव' भी बन जाता है तथा चाहता है तो अपने को भुलाकर 'जीव' भी बन जाता है। जगत् की सृष्टि का प्रयोजन कोई और नहीं है; प्रत्युत यह स्वयं अपने लिए है। शैव सिद्धान्त की सृष्टि एवं जगत्— दोनों ही सोद्देश्य है, क्योंकि सृष्टि द्वारा जीव को मुक्ति प्राप्ति होती है। आत्मा के मोक्ष के लिए

ही शिव सृष्टि करता है। शिव प्रेमस्वरूप है; अत: आत्माओं के कष्टों को सहन नहीं कर सकता; इसीलिये आनन्दाप्ति हेतु वह आत्माओं को शरीर एवं जगत् प्रदान करता है। शैव सिद्धान्त का शिव प्रतिक्षण अनुग्रह करता रहता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन का शिव आत्मरमण, आत्मविनोद एवं आनन्द के सहजोच्छलन के लिए सृष्टि करता है; अत: उसकी सृष्टि निरुद्देश्य है, जबकि शैवसिद्धान्त का शिव जीवों के प्रति प्रेम एवं उनकी मुक्ति के लिए सृष्टि करता है; अत: उसके द्वारा की गयी सृष्टि या तो आनन्दविलास है; या तो वह मोक्ष, अनुकम्पा, शक्तिपात एवं आत्माओं के कल्याण के लिए की गयी एक रचना है।

जगत् शक्ति का 'परिणाम' है। अमृतानन्द 'दीपिका' में कहते हैं कि जिस प्रकार दूध का रूपान्तरण दही होता है, उसी प्रकार परा सत्ता का 'परिणाम' जगत् है— 'अत एव शिवादिक्षित्यन्तरूपेण परिणमत इत्यर्थ:, यथा क्षीरं दध्याकारेण परिणमते तथा चिच्छक्तिरेव सर्वाकारेण परिणमते'। तदुक्तं प्रत्यभिज्ञायाम्— 'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:'। इस सिद्धान्त को 'परिणामवाद' कहते हैं। भास्कर भी 'परिणामवाद' के पक्षधर हैं। वे कहते हैं— 'विवर्तवादं वेदान्तिसम्मतं परिणामवादी तान्त्रिको दूषयति। त्वयि परिणतायाम्' (सौन्दर्यलहरी) में तो 'परिणामवाद' शांकरमत के अनुसार भी प्रतिपादित है— 'त्वयि परिणतायाम्' इति स्वाभिमत: परिणामवाद एव स्फुटीकृत:'। आचार्य शंकर भी कहते हैं— 'तस्यां परिणतायां तु न कश्चित् पर इष्यते'। इससे भी 'परिणामवाद' की ही पुष्टि की गई है।

जीवात्मा— शैवसिद्धान्त, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत एवं द्वैत वेदान्त की दृष्टि में जीवात्मा एवं शिव दोनों आत्मस्वरूप होते हुए भी पृथक्-पृथक् हैं। यही बात न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य एवं मीमांसा भी मानता है। जैनी भी आत्माओं के द्वैत को स्वीकार करते हैं।

अद्वैत वेदान्त और काश्मीरीय शैव दर्शन अद्वैतवादी होने के कारण परम सत्ता एवं जीवात्माओं में तात्त्विक अभेद, पारमार्थिक एकात्मता एवं अद्वैत मानते हैं। जहाँ अद्वैत वेदान्त 'यद् दृष्टं तन्नष्टम्' की दृष्टि होने के कारण जीव एवं जगत् को तुच्छ मान कर उसके प्रति उदासीन रहता है, वहीं अद्वैतवादी काश्मीरीय शैव एवं द्वैतवादी शैवसिद्धान्ती जगत् के प्रति आकर्षण, प्रेम एवं उल्लासात्मक दृष्टि रखते हैं; क्योंकि जहाँ काश्मीरीय शैव दर्शन में मोक्ष की अवस्था में भी सांसारिक क्रियायें करना सम्भव माना जाता है, वहीं शैव सिद्धान्त में जगत् को जीवों के उद्धार का सोपान माना जाता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन में जीव एवं शिव तत्त्वत: अभिन्न माने जाते हैं। अद्वैत वेदान्त की भी यही दृष्टि है— 'जीवो ब्रह्मैव नापर:'। इस प्रकार दोनों ही शिव एवं आत्मा में अद्वैत मानते हैं। शैव सिद्धान्त द्वैतवादी होते हुए भी दोनों में व्यापक-व्याप्य सम्बन्ध द्वारा अद्वैतवाद स्वीकार करता है। अशेष विश्व की समस्त आत्माओं में दूध में

स्थित घृत की भाँति शिव व्याप्त है। शैवसिद्धान्त मानता है कि यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से जीव एवं शिव नित्य एवं भिन्न तत्त्व हैं, तथापि शिव समस्त आत्माओं में व्याप्त होकर उनसे अपना अद्वैत सम्बन्ध सदा बनाये रखता है। दोनों के अद्वैत की व्याख्या भी भिन्न-भिन्न है।

अद्वैतवादी काश्मीरी शैव मानते हैं कि परमशिव आनन्दविलास, जगन्नाट्य या आत्मविनोद के लिए अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति द्वारा अणुत्व धारण करके स्वेच्छा से जीव (जीवात्मा) बन जाता है। इसके अनुसार शिव एवं आत्मा में विशुद्ध अद्वैत है। अद्वैत की यही दृष्टि शांकर वेदान्त की भी है।

अपनी स्वेच्छा से बन्धन के आच्छादन को ग्रहण करने वाला यह शिव परम शिव से अभिन्न है, किन्तु 'पञ्चकञ्चुकों' से अपने को आबद्ध करके 'जगन्नाट्य' में अभिनय करने वाला यह शिव बाद में अपने शिवत्व (सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञातृत्व, पूर्ण परितृप्ति, सर्व-व्यापकत्व आदि शक्तियों) को भूल जाता है और 'मित, अणु या जीवात्मा' कहा जाने लगता है। शिव से तत्त्वत: अभिन्न होने पर भी वह व्यवहारत: भिन्न हो जाता है। चूँकि इस स्थिति में भी आत्मा और परम शिव में तात्त्विक अभेद बना रहता है; अत: दोनों में तात्त्विक अद्वैत सम्बन्ध है।

जीव इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चेतना, शक्ति, व्यापकत्व आदि की अनन्त शक्तियों से वञ्चित होकर अल्पज्ञत्व, अल्पकृतित्व, अल्पतृप्तित्व, अल्पव्यापकत्व एवं अल्पशक्तित्व आदि के कारण संकुचित हो जाता है। 'पञ्चकञ्चुक' का पाश उसे शुद्ध शिवत्व से च्युत करके आबद्ध 'जीव' बना देता है। इन सबके होने पर भी शिव का इन आत्माओं के साथ तादात्म्य एवं ऐकात्म्य तो बना ही रहता है। इस प्रकार तात्त्विक दृष्टि से दोनों में ही अद्वैत स्थित रहता है।

यदि कर्मों की दृष्टि से विचार किया जाय तो अद्वैतवादी शैव एवं शैवसिद्धान्ती दोनों ही जीवों में कर्मस्वातन्त्र्य एवं अपने कर्मों के लिए स्वयं के दायित्व को स्वीकार करते हैं। काश्मीरीय शैवों के विपरीत शैव सिद्धान्ती यह मानते हैं कि जीवों की सृष्टि कर्म करने के लिए ही होती है; किन्तु अद्वैतवादी शैव यह नहीं मानते। काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार मूलत: तो शिव एवं आत्मा में कोई भेद नहीं है, किन्तु शिव द्वारा अपनी स्वेच्छा से मायोपहित जीवस्वरूप ग्रहण करने पर शिव एवं आत्मा में भिन्नता आ जाती है, क्योंकि आत्मा इस स्थिति में अपने वास्तविक स्वरूप का विस्मरण कर देती है। शिव की इस बन्धनावस्था में मुक्ति हेतु उसे भक्तिसाधना करने का विधान है, जिसे काश्मीरीय शैव दर्शन स्वीकार करता है। शिव की भक्ति से शिवानुग्रह प्राप्त होता है और उससे आत्मा को स्वस्वरूप की प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। इससे जीव शिव बन जाता है। काश्मीरीय शैव दर्शन में 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' का भी विधान है। ज्ञानोदय होने पर 'अद्वैत भक्ति' शैवी लीला का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

शैवसिद्धान्त के अनुसार यद्यपि शिव एवं आत्मा दोनों ही नित्य तत्त्व हैं, तथापि जीवात्मा ससीम है; जबकि 'शिव' असीम हैं। आत्मा 'आणव मल' से आबद्ध है; अत: स्वस्वरूप से अनभिज्ञ है। वह अपने मोक्ष हेतु शिवाश्रित है और शिवानुग्रह से स्वरूपज्ञान प्राप्त कर लेता है। 'ज्ञान' साधन है और 'भक्ति' साध्य है; अत: साधना की उच्चतम अवस्था में भी वर्तमान रहती है। 'आणव मल' से मुक्ति केवल शिवानुग्रहसाध्य है। आत्मा के दो भेद हैं— मित और अमित। अजड़प्रमातृसिद्धि में उत्पलदेवाचार्य ने कहा भी है—

द्विधा स एष एवात्मा मितोऽपरिमितस्तथा।
प्राणादिना निरुद्धोऽणुः परमात्मा त्वखण्डितः।।

पुरुष और प्रकृति तत्त्व तथा शिव और शक्तितत्त्व

परम शिव ही स्वेच्छया 'पुरुषतत्त्व' के रूप में अवभासित होता है। अपने वास्तविक शिवस्वरूप का विस्मरण कर देने के कारण ही वह 'पुरुषतत्त्व' कहलाने लगता है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)

माया के पञ्चकञ्चुकों से आच्छादित होने से उत्पन्न अज्ञान के कारण ही शिव 'पुरुष' बन जाता है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)

आत्मा जब पञ्चकञ्चुकों से संसृष्ट आवरण को ग्रहण कर लेता है तब वही आत्मा पुरुषतत्त्व कहा जाने लगता है। (शैवसिद्धान्त)

पुरुष अपने पारमार्थिक एवं तात्त्विक रूप में शिव ही है। (काश्मीरीय शैवदर्शन)

'पुरुष' तात्त्विक दृष्टि से शिव नहीं, केवल आत्मा है। (शैवसिद्धान्त)

सांख्य दर्शन के पुरुषतत्त्व से इसकी तुलना की जाय तो दोनों में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। सांख्य दर्शन की भाँति शैव-शाक्त दर्शन का शिव एवं शक्ति नहीं है। यहाँ शिव पञ्चकृत्यकारी है और शक्ति चेतन है; प्रकृति की भाँति जड़ एवं अस्वतन्त्र नहीं है।

'पुरुष' निष्क्रिय एवं उदासीन है। (सांख्य)

'पुरुष' सक्रिय तथा आसक्त है। (काश्मीरीय शैव दर्शन, शैवसिद्धान्त)

'पुरुष' अपने अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा है तथा अपनी विमुक्ति हेतु प्रकृति पर आश्रित है। प्रकृति ही उसे बन्धन एवं मोक्ष दोनों प्रदान करती है। पुरुष-प्रकृति का संयोग ही इसीलिए हुआ है। सांख्यकारिका में कहा भी गया है—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पंग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष अपने मोक्ष के लिए कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि वह निष्क्रिय एवं उदासीन है। शाक्त दर्शन का 'शिव' सक्रिय है। वेदान्त एवं सांख्य के

'ब्रह्म' एवं 'पुरुष' की भाँति वह निष्क्रिय नहीं है।

'पुरुष' अपने मोक्ष के लिए स्वयं अध्यवसाय एवं प्रयत्न करता है। मोक्ष के लिए 'पुरुष' शिव पर निर्भर अवश्य है, किन्तु एतदर्थ कर्म करने का स्वातन्त्र्य तो उसे प्राप्त है ही। (काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त)

प्रकृति स्वतन्त्र है। वह पुरुष से पृथक् है। 'पुरुष' और 'प्रकृति' दोनों अनादि हैं, किन्तु 'प्रकृति' पुरुष के अधीन नहीं है। दोनों नित्य तत्त्व हैं। 'प्रकृति' किसी का भी विकास या परिणाम (संसृष्ट तत्त्व) नहीं है। 'प्रकृति' ही समस्त तत्त्वों के प्रादुर्भाव एवं विकास का मूल कारण है। (सांख्य दर्शन)

'प्रकृति' सृष्टि का मूल कारण नहीं है और सृष्टि-विकास के ३६ तत्त्वों में से प्रकृति भी एक तत्त्व है। (शैवसिद्धान्त, काश्मीरीय शैव दर्शन)

शाक्त दर्शन में सांख्य का पुरुष मान्य नहीं है; बल्कि शाक्त दर्शन में 'शिव-शक्ति' ही मूल तत्त्व हैं।

सृष्टि का मूल कारण प्रकृति नहीं, शिव है। (काश्मीरीय शैव दर्शन)
सृष्टि का मूल कारण प्रकृति नहीं, माया है। (शैवसिद्धान्त)
प्रकृति गुणों की साम्यगवस्था है। (सांख्यदर्शन)
प्रकृति गुणों का कारण है। (शैवसिद्धान्त)

शाक्तों की दृष्टि में 'महामाया' 'माया' एवं 'प्रकृति' तथा 'शक्ति' अभिन्न हैं; ये एक ही 'परा शक्ति' की विभिन्न अवस्थायें हैं।

ईश्वरादि की सहायता के विना ही सृष्टि होती है, किन्तु गुणों में विक्षोभ होने पर। (सांख्यदर्शन)

'प्रकृति' शिव की प्रेरणा से ही सृष्टि का विकास करती है। (काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त)

सांख्यदर्शन, काश्मीरीय शैव दर्शन एवं शैवसिद्धान्त तीनों में ही प्रकृत्योत्तर तत्त्वों का स्वरूप एवं विकास स्वीकार्य है। इस विषय में मतभेद नहीं है।

शिव और शक्ति— 'शक्ति' शिव की स्वसमवायिनी एवं अभिन्न परा शक्ति है। शिव अर्थात् 'परमशिव' परब्रह्म तत्त्व है। यह यौगिक एवं तान्त्रिक दृष्टि से 'सामरस्यापन्नावस्था' में महाबिन्दुस्वरूप में 'सहस्रार' में अवस्थित है। शिव और शक्ति उसकी 'सकलावस्था' है। 'परमशिव' एवं उसकी 'पराशक्ति' निष्कल है। 'शिव' प्रकाशस्वरूप है और उसकी 'शक्ति' विमर्शस्वरूप है। कामकलाविलास में कहा भी गया है—

सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः।
अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः।।

शिव एवं शक्ति अभिन्न हैं—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।
शिवाभिन्ना परा शक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।।

जगत् शिव-शक्ति की लीला है—

नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया।

जगत् शिव द्वारा अपनी आत्मा के फलक पर स्वेच्छा तूलिका से निर्मित 'चित्र' है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।

सृष्टि और उसका प्रयोजन : क्रीडा-लीला-चित्र-स्वेच्छा— कश्मीरी अद्वैतवाद परम तत्त्व द्वारा ही सृष्टि-विधान किया जाना स्वीकार करता है, किन्तु शांकर अद्वैत ब्रह्म में क्रिया न मानने के कारण ब्रह्म को स्रष्टा नहीं, अपितु माया को स्रष्टा माना जाता है। एक ओर काश्मीरीय शैवाद्वैतवाद सृष्टि को 'आभासवाद' की नींव पर स्थित मानता है तो दूसरी ओर शैवसिद्धान्त (सांख्यों की भाँति) 'सत्कार्यवाद' पर। सृष्टि-प्रतिपादन की दोनों की दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हैं। शाक्त दर्शन सृष्टि को लीला, क्रीड़ा, विनोद या आत्म-भित्ति पर स्वेच्छा-तूलिका से निर्मित चित्र मानता है।

'कारण-कार्यवाद' (Cause and effect = Causation theory) की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो 'शिव' सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। शांकर अद्वैत का ब्रह्म भी अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। 'शिव' विश्व का मूल कारण है और वह अपनी स्वसमवेत शक्ति के माध्यम से सृष्टि-प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करता है। शैवसिद्धान्त शिव को 'उपादानकारण' नहीं मानता, अपितु मात्र 'निमित्तकारण' मानता है।

शैवसिद्धान्त मानता है कि सृष्टि (जगत्) का मूल उपादान तथा 'उपादान कारण' माया है और शिव मात्र 'निमित्तकारण' है। चेतन शिव से अचेतन जगत् की सृष्टि सम्भव नहीं है; अतः 'शिव' जगत् एवं सृष्टि का उपादान कारण नहीं हो सकता। काश्मीरीय शैव दर्शन मानता है कि 'परमशिव' अपनी इच्छाशक्ति द्वारा अपने ही स्वरूप में स्थित पदार्थों या पदार्थों के संघात जगत् को विना किसी बाह्य उपादान की अपेक्षा किये प्रकट कर देता है। उसकी इच्छामात्र से ही सृष्टि हो जाती है— 'जगत्' बन जाता है। 'स्वभित्तौ विश्व-मुन्मीलयति' कहकर 'शक्तिसूत्र' भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।

शैव सिद्धान्त की मान्यता है कि शिव अपनी शक्ति द्वारा माया को सञ्चालित करके मायाशक्ति द्वारा जगत् की रचना करता है, किन्तु काश्मीरीय शैव दर्शन की मान्यता है कि शिव किसी की रचना या सृजन नहीं करता; क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई अन्य है ही नहीं तो वह सृष्टि किसकी करेगा। 'शिव' अपने भीतर स्थित स्वस्वरूपात्मक, अपने

से अभिन्न जगत् को अन्दर से बाहर प्रकट कर देता है। उसके द्वारा अपनी शक्ति का बाह्याभास (बाह्याभिव्यक्ति) ही सृजन, सृष्टि एवं जगत् है तथा इसका निगरण ही प्रलय एवं संहार है। यह सृष्टि एवं प्रलय नहीं है; प्रत्युत शिव का 'उन्मेष-निमेष' है— 'यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ'। काश्मीरीय शैव दर्शन सृष्टि या जगत् को शिव की सांकल्पिक सृष्टि (Ideation) मानता है।

शैवसिद्धान्त, काश्मीरीय शैव दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त— तीनों मानते हैं कि परा सत्ता परिवर्तनशील नहीं है; अपितु नित्य है, एक है, सर्वोच्च है, आद्यन्तशून्य है, सच्चिदानन्दस्वरूप है, अक्षय एवं शाश्वत है। वह अमर्त्य एवं अद्वितीय है तथा सर्व-शक्तिशाली, अनन्त और असीम है।

परा सत्ता अपरिवर्त्य क्यों है? इस सम्बन्ध में काश्मीरीय दर्शन कहता है कि 'सृष्टि' शिव की कल्पना है। अतः कल्पनाओं का परिवर्तन कल्पना करने वाले का परिवर्तन तो नहीं कर सकता। वेदान्त कहता है कि ब्रह्म परिवर्तनशील जगत् का कर्ता ही नहीं है। अतः जगत् के साथ उसके भी परिवर्तित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। शैवसिद्धान्त मानता है कि चूँकि शिव उपादान कारण न होकर, मात्र निमित्तकारण है और वह केवल शक्ति के माध्यम से ही जगत् से सम्बन्ध स्थापित करता है; अतः वह 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों होने के कारण जगत् के विकारों, मालिन्यों एवं दोषों से प्रभावित नहीं होता।

सृष्टि का प्रयोजन : लीलावाद एवं अनुग्रह

सृष्टि के प्रयोजन की दृष्टि से काश्मीरीय शैव दर्शन, शैवसिद्धान्त आदि दार्शनिक सम्प्रदायों में मतभेद है। काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार 'सृष्टि' शिव की लीला है। शिव 'लीला' के लिए ही सृष्टि करता है। शैवसिद्धान्त के अनुसार शिव आत्माओं के कल्याण एवं उनकी मुक्ति हेतु सृष्टि करता है।

काश्मीरीय शैव दर्शन सृष्टि को किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया कोई समारम्भ नहीं मानता। उसके अनुसार सृष्टि निष्प्रयोजन है। शिव स्वात्मोल्लास, स्वानन्दाभिव्यक्ति, आत्मानन्दोच्छलन के लिए सृष्टि करता है। सृष्टि और प्रलय अर्थात् 'सृजन' और 'संहार' शिव का स्वभाव है। जिस प्रकार स्वभाव कभी भी सोद्देश्य नहीं होता, बल्कि सत्ता का अभिन्न अंग होता है, उसी प्रकार सृष्टि-प्रलय अर्थात् सर्जन एवं संहार भी शिव की स्वभावाभिव्यक्तियाँ हैं। 'सृष्टि' शिव की आनन्दक्रीड़ा है, लीलाविलास है। सृष्टि निराकांक्ष, आनन्दकन्द शिव के आत्मविनोद की मधुर क्रीड़ा है। शिव का अपने लिए सृष्टि करना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि शिव स्वयं में अपूर्ण तो है नहीं कि वह अपनी कमी को पूरा करने के लिए सृष्टि करता।

शैव सिद्धान्त मानता है कि चूँकि अपने आनन्द, अपने कल्याण एवं अपनी मुक्ति के लिए आत्माओं को शिव की आवश्यकता है; अतः कल्याणस्वरूप शिव इन अनन्त

भटकती, बन्धनग्रस्त एवं माया से सन्त्रस्त तथा मल-परिबद्ध आत्माओं के कल्याण, उनकी मुक्ति एवं उनके प्रति अपने करुणाजन्य वात्सल्य के लिये सृष्टि करता है। यही सृष्टि का उद्देश्य है। अद्वैतवादी शैव दर्शन में सृष्टि शिव के आत्मविनोद का परिणाम है तो शैव सिद्धान्त में प्रेम का।

सृष्टि का प्रेरणा-केन्द्र— सृष्टि करने के लिये कौन-सी प्रेरणा प्रभविष्णु होती है? सृजन का मूल उत्स क्या है? सृष्टि क्यों की जाती है?— इन सभी प्रश्नों का उत्तर विभिन्न दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया है। शाक्त दर्शन इसका मूल तत्त्व आत्म-विनोद, स्वभाव, स्वेच्छा, लीला, क्रीड़ा एवं चित्र-सृजन को मानता है।

शैवसिद्धान्त इसका मूल उत्स प्रेम या करुणा को मानता है। यह प्रेम, करुणा या अनुग्रह ही सृष्टि के मूल में निहित है। शिव आत्माओं से प्रेम रखने के कारण सृष्टि करता है।

काश्मीरीय शैवमत सृष्टि की व्याख्या 'स्वातन्त्र्यवाद' के आधार पर करता है। शिव सृष्टि करने, न करने एवं अन्यथा करने आदि सभी में समर्थ है।

शैवसिद्धान्ती मानते हैं कि जगत् अपने मूल रूप में माया के गर्भ में रहता है और शिवेच्छा से व्यक्त होता है। यह शिवेच्छा की मान्यता तो शैवसिद्धान्तियों को भी 'स्वातन्त्र्यवाद' के निकट ला देती है, किन्तु वे सृष्टि की व्याख्या शिव के अनुग्रह एवं प्रेम के सिद्धान्त के आधार पर करते हैं। प्रेम में भी स्वातन्त्र्य तो निहित है ही, क्योंकि प्रेमजन्य कार्य करने के लिए प्रेमी बाध्य नहीं होता। काश्मीरीय शैव दर्शन आभासवादी है। शिव स्वतन्त्र, शक्तिसंवलित, विश्वमय, विश्वोत्तीर्ण, इच्छा-ज्ञान-क्रियारूप एवं चेतन है।

काश्मीरीय शैव दर्शन में ज्ञान के प्रति विशेषाग्रह है। इसका लक्ष्य है— शिवज्ञान की प्राप्ति और शैव सिद्धान्त में शिव के सामीप्य के प्रति विशेषाग्रह है; अतः शिवभक्ति इसका प्रधान साधन है। शिव की प्रत्येक क्रिया प्रेम के कारण है, जबकि काश्मीरीय शैव दर्शन में शिव की प्रत्येक क्रिया 'लीला' है।

योगिनीहृदय में कहा गया है कि षट्त्रिंशदात्म जगत् एक उल्लेख (चित्र) है। इसे भगवती स्वेच्छा-तूलिका से आत्मभित्ति पर निर्मित करती है—

स्वेच्छाविश्वमयोल्लेखखचितं विश्वरूपकम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं निसर्गानन्दसुन्दरम्।।

इसी भाव को अन्यत्र भी प्रस्तुत किया गया है—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणति भगवान् शिवः।।

जगत एक क्रीडा है। स्पन्दकारिका में कहा भी गया है—

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीड़ात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।।

इन तीनों उदाहरणों में चित्र या क्रीड़ा का जो उदाहरण दिया गया है, उसका उद्देश्य क्या है? उसका उद्देश्य है— आत्मानन्द या आनन्दलीला। इसीलिए कहा गया है कि 'इसे देखकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उठते हैं। सृष्टि का उद्देश्य भी यही आत्मतुष्टि या आत्मानन्द है।

लीलावाद एवं इच्छा सृष्टिवाद— रहस्यगुरुओं ने कहा है कि चिदात्मा अपने अन्दर स्थित एवं अपने से अभिन्न जगत् को अपनी इच्छा (स्वेच्छा) के कारण बाहर प्रकट कर देता है और बाहर प्रकट वही विस्तार 'जगत्' कहलाता है; अतः सृष्टि का उद्देश्य या प्रयोजन तो कोई है ही नहीं। सृष्टि तो लीलामात्र है—

१. चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।

२. अतएव ईश्वरस्य जगत्सृष्ट्यादिकं लीलामात्रम्; न प्रयोजनमस्ति।।
(चिद्वल्ली : नटनानन्द)

३. स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति। (प्रतिज्ञाहृदयसूत्र)

४. स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि।

५. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।

६. इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः।

७. जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।

८. हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका।
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया।।

९. सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः।। (कामकलाविलास)

शाक्त सम्प्रदाय की मुक्तिसम्बन्धिनी अवधारणा
(The Shakta Conception of Mukti)

आचार्य क्षेमराज अपने शक्तिसूत्र (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्) में कहते हैं कि 'विकल्पक्षय, शक्तिसंकोच, विकास, वाहच्छेद, आदि-अन्त कोटि के परिशीलन' द्वारा 'मध्य के विकास' से चिदानन्द की प्राप्ति होती है और यह चिदानन्दलाभ ही परमयोगियों का समावेश, समापत्ति एवं समाधि है— 'मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः, स एव परमयोगिनः समावेश-समपत्त्यादिपर्यायः समाधिः'।

हयग्रीवप्रणीत शाक्तदर्शनम् की दृष्टि— विशुद्ध सत्त्व से निर्मित 'मणिद्वीप' या

'चिन्तामणि द्वीप' की प्राप्ति ही शाक्त साधकों की 'मुक्ति' है। भगवती भुवनसुन्दरी का अनन्य एवं प्रगाढ़ ध्यान करते हुए 'तत्त्वमसि' एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' के अपरोक्षानुभूतिस्वरूप ज्ञान के द्वारा ही यह मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् साभासा भुवनसुन्दरी के स्वस्वरूप में साधक के मन का पूर्ण लय ही मुक्ति है। साधक यह मुक्ति प्राप्त करके संसारचक्र (Cycle of rebirth and creation) से मुक्त हो जाता है, दु:खों से मुक्ति पा जाता है और 'समाधि' के द्वारा पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है। यह पूर्णत्व की सम्प्राप्ति उस समाधिमात्र के द्वारा सम्भव हो पाती है, जिसमें साधक का मन निर्भासा शक्ति (Absolute power) में पूर्णत: लय हो जाता है।

सूत्रकार ने कहा है कि मूल अविद्या के नाश द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है—

मूलाविद्यानाशद्वारा ब्रह्मप्राप्तिर्मुक्ति:।

उपनिषदों में प्रतिपादित मुक्ति की अवधारणा से शाक्तों की मुक्तिसम्बन्धिनी अवधारणा में भिन्नता यह है कि—

शाक्तों की 'निर्भासा मुक्ति' में चित् तत्त्व (चैतन्य शक्ति) अभिव्यक्त नहीं होती, जबकि औपनिषदिक मुक्ति की अवधारणा में साधक की आत्मा चेतनस्वभाव है; अत: इसमें चैतन्य अभिव्यक्त रहता है। 'निर्भासा मुक्ति' में शक्ति की प्रकृति (स्वस्वरूप = स्वभाव) न तो अनुभविता (संवेदक) है और न ही असंवेदक। यह मुक्ति की अवधारणा शून्यवादी बौद्धों के 'निर्वाण' से साम्य रखती है। बौद्ध कहते हैं कि निर्वाण शून्यात्मक है। इसे 'नि:शेष पूर्णता की अवस्था' भी कह सकते हैं, जिसे उपनिषदों में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।[१]

जीवन्मुक्ति— आचार्य क्षेमराज द्वारा शक्तिसूत्र में मुक्ति को 'जीवन्मुक्ति' का पर्याय स्वीकार करके कहा गया है कि 'चिदानन्दलाभे देहादिषु चैत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्य-प्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्ति:' अर्थात् चिदानन्द की प्राप्ति के अनन्तर देहादिक के अनुभूत होने पर भी चित् शक्ति के साथ एकात्मता-प्रतिपत्ति की दृढता ही 'जीवन्मुक्ति' है।

विश्व के साथ अभिन्नतारूप समावेशात्मक चिदानन्द के उपलब्ध होने पर 'व्युत्थान दशा' में केंचुल की भाँति देह प्राण नील एवं सुख आदि के आभासित रहने पर भी जिस अभेदापत्ति के संस्कार-बल से उद्दीप्त अविचल चिदैक्य प्रथित होता है, वही 'जीवन्मुक्ति' है। स्पन्दकारिका में कहा गया है कि समग्र जगत् मेरा ही स्वरूप है। इस प्रथा का जिसको ज्ञान है, वह सारे जगत् को क्रीड़ा के समान देखता हुआ सतत् योगयुक्त होने

१. महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर— शाक्तदर्शनम् की भूमिका।

से 'जीवन्मुक्त' कहलाता है।[१]

आचार्य हयग्रीव की मुक्तिसम्बन्धिनी दृष्टि— आचार्य हयग्रीव अपने शाक्त-दर्शनम् में मोक्ष (मुक्ति) के विषय में निम्न दृष्टियाँ प्रस्तुत करते हैं—

क. दुःखस्वरूप संसरणचक्र का अन्त ही 'मोक्ष' है— 'जन्ममरणादिदुःखरूपसंसृतिनाशो मोक्षः।' (५.४.१)

अर्थात् जन्म एवं मृत्यु आदि दुःखरूप संसृति का ध्वंस ही मोक्ष है। भाव यह है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त जीवन की समस्त अवस्थायें, दशायें एवं समस्त व्यापार मात्र दुःखमय हैं और यही संसरणचक्र भी है। अतः इसका आत्यन्तिक क्षय ही 'मोक्ष' है।

यह कथन बौद्धों के 'दुःखं अरिय सच्चं' का तथा जन्मचक्र की द्वादश शृंखलाओं तथा उनके आत्यन्तिक ध्वंसस्वरूप निर्वाण का स्मारक है।

ख. 'मूलाविद्या' के नाश के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होना ही 'मुक्ति' है। आचार्य हयग्रीव कहते भी हैं— 'मूलाविद्यानाशद्वारा ब्रह्मप्राप्तिर्मुक्तिः।' (५.१.८)

ग. आत्मा को शक्तिस्वरूप अनुभव करना या जानना ही 'मुक्ति' है। आचार्य हयग्रीव कहते हैं कि जो साधक देहत्रय (स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर) से अतीत आत्मा को शक्तिस्वरूप जानता है, उसे 'मुक्त' कहते हैं— 'देहत्रयातीतमात्मानं शक्तिरूपतया ज्ञाता मुक्तः।' (५.१.२०)

घ. मणिद्वीपवास ही 'मुक्ति' है— 'मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।[२]' (९.३.१९)

प्रजापति का मत— ब्रह्मलोक में वास करना ही 'मुक्ति' है और यह मुक्ति ब्रह्मज्ञान

---

१. इति वा यस्य संवित्तिः क्रीड़ात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।। (स्पन्दकारिका)

२. भगवती का निवास मणिद्वीप में है; अतः उनके लोक की प्राप्ति ही मुक्ति है। भैरवयामल में इस मणिद्वीप का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।।

शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलीम्।
तदुद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता।।

से ही प्राप्त होती है, न कि शक्तिलोक में निवास करने से—

'न शक्तिलोकवासो मुक्तिः।' (९.१.१)

'ब्रह्मलोकवासैव मुक्तिरिति प्रजापतिः।' (९.२.२)

बादरि का मत— 'मणिद्वीप' में निवास करने से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती और 'भुवनेश्वरी' साभासा माया हैं—

'न मुक्तिर्मणिद्वीपवासः।' (९.३.१)

'भुवनेश्वरी साभासा माया।' (९.३.२)

जैसे प्रलय के समय समस्त जीव प्रकृति में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार मणिद्वीपवासी भी—

'प्रलये जीवाः प्रकृतिङ्गताः। तन्मणिद्वीपगाः।' (९.३.७-८)

'न तेन मुक्तिरिति बादरिः।' (९.३.११)

हयग्रीव ने उक्त दोनों मतों का खण्डन करके यही प्रतिपादित किया कि सर्वलोकमणिद्वीपवास ही मुक्ति है—

'सर्वलोकमणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।' (९.४.१४)

'मणिद्वीप' क्या है? इस विषय में आचार्य हयग्रीव कहते हैं कि कार्येश्वर तो ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र हैं और उनका लोक 'ब्रह्मलोक' है, किन्तु कारणेश लोक तो मात्र 'मणिद्वीप' ही है, जो कि ब्रह्मलोक से भिन्न है। कार्येशों का लोक = ब्रह्मलोक। कारणेश लोक = मणिद्वीप। कहा भी है—

'कार्येश्वरा ब्रह्मविष्णुरुद्राः।' (९.२.१३)

'कारणेशलोको मणिद्वीपम्।' (९.२.१४)

'पतनं ब्रह्मलोकात्, न क्वचिन्मणिद्वीपात्।' (९.२.१७-१८)

आशय यह है कि 'ब्रह्मलोक' से भी पतन होता है, किन्तु 'मणिद्वीप' से नहीं। आचार्य हयग्रीव यह भी कहते हैं— 'सर्वलोको मणिद्वीपम्। सर्वे लोका यस्यां संस्काररूपेण प्रकृत्यात्मकास्तन्मयः सर्वलोकः। तत्रेश्वरी परा शक्तिः।' (८.४.१-३)

अर्थात् सर्वलोक के नाम से जो ब्रह्मलोक विख्यात है, वस्तुतः वह सर्वलोक तो 'मणिद्वीप' ही है। समस्त लोक गुणत्रयात्मक प्रकृति के रूप में संस्काररूप से इसी मणिद्वीप में रहते हैं। यहीं भगवती परा शक्ति भी निवास करती है।[1]

---

१. शङ्कराचार्य सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी सुधासिन्धु के मध्य स्थित मणिद्वीप के चिन्तामणिगृह के शिवाकार मञ्च पर आसीन हैं—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

'शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्' (भैरवयामल) में 'शिवा' शब्द कुण्डलिनी

गर्ग का भी यह मत है कि 'चिन्तामणि द्वीप' में निवास मुक्ति नहीं है; किन्तु आचार्य हयग्रीव ने गर्ग के मत का भी प्रत्याख्यान करते हुए प्रतिपादित किया है कि चिन्तामणि द्वीप (मणिद्वीप) में निवास करना ही मुक्ति है।

पूर्वपक्ष— 'प्रपञ्चत्रयवासनायुक्तमणिद्वीपवासो न मुक्तिरिति गर्गः।'
(१०.३.१७)

गर्ग 'मणिद्वीप' में प्रपञ्चत्रय की वासना का विस्तार देखते हैं।

गाणपत्य सम्प्रदायवादी चिन्तामणि गृह को ही 'चिन्तामणि द्वीप' मानते हैं— 'चिन्तामणिगृह एव चिन्तामणिद्वीपमिति गाणपाः।' (१०.४.१)

किन्तु वे कहते हैं कि उसमें प्रपञ्चत्रय-वासना स्थित है और कारणप्रपञ्च की दो आदि वासनाओं से रहित हो जाना ही 'मुक्ति' है। आचार्य हयग्रीव इसका भी प्रत्याख्यान करते हुए कहते हैं कि 'मणिद्वीप' आनन्दस्वरूप है और इस मणिद्वीप में निवास करना ही मुक्ति है— 'तदानन्दं मणिद्वीप एव।' (१०.४.१५)

अतो मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः।' (१०.४.१८)

'निर्वाणदीक्षिता परोक्षज्ञानी मुक्तः।' (१५.४.१) कहकर सूत्रकार ने 'निर्वाणदीक्षा' को भी मुक्ति का एक साधन स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि निर्वाण-दीक्षित साधक राजयोगी होते हैं। राजयोग-साधना मुक्ति-साधना का उत्तम मार्ग है।

हयग्रीवमार्ग ब्रह्मविद्या का मार्ग है, अद्वैतपरायण मार्ग है— 'अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव।' (१७.३.१६)। इसके अनुसार आत्मातिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। ज्ञान के पूर्व भी आत्मा मात्र ब्रह्म ही तो था। उसका देह से कोई तादात्म्य नहीं है और वह सदा मुक्त है; क्योंकि आत्मा एवं ब्रह्म में कोई भिन्नता है ही नहीं। कहा भी है—

'आत्मातिरिक्तमिदं मिथ्या।' (७.२०.१७)

'ज्ञानात्पूर्वमपि आत्मा ब्रह्म।' (७.२.१९)

'न भेदो ब्रह्मात्मनोः।' (७.२.२२)

मणिद्वीप कारणलोक है— 'कारणलोको मणिद्वीपम्।' (१.४.८) और सबका कारण स्वयं शक्ति है; अतः 'कारणं शक्तिरेवेति हयग्रीवः।' (३.२.९) 'कारणं शक्तिः। भुवनेश्वरी।' (४.१.१ एवं ४.१.२)[१]

का बोधक है। लक्ष्मीधर कहते भी हैं— 'शिवा नाम शक्तिः कुण्डलिनी, अर्कमण्डलं हृत्कमलोपरि स्थितं भित्वा भिन्नं कृत्वा, अर्कमण्डलोपरि स्थितं ब्रह्मद्वारं पिधाय इन्दुमण्डलं दशति'।

१. मणिद्वीप में स्थित भगवती के स्वरूप का ध्यान-विधान भी किया गया है और उन्हीं का ध्यानयोगसहित जप करने का भी उपदेश दिया गया है—

सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्डपमध्यगाम् । बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् ।।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रियम् । ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम् ।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् जपमाचरेत् ।।

अद्वैतावस्थान के ही मुक्ति होने के कारण मुक्ति का साधन जो ज्ञान है वह भी अद्वैतात्मक है— 'जीवेशाभेदबोधकं ज्ञानम्।' (५.४.२) अर्थात् जीव एवं ईश्वर में अभेद की अनुभूति या अवबोध ही 'ज्ञान' है। ज्ञान के विना कोई सिद्धि (मुक्ति आदि) प्राप्य नहीं है— 'न सिद्धिर्ज्ञानं विना।' (७.१.११) तथा अद्वैतावस्थान समाधिस्थ साधक ही ज्ञानी है।

निर्विकल्पक समाधि में अवस्थित ज्ञानी सिद्ध ही मुक्त है—

'निर्विकल्पसमाधिपरो ज्ञानी सिद्धो मुक्तः।' (१०.१.२)

इस ज्ञान के लिए भेदनाश आवश्यक है; क्योंकि अभेदभावनास्वरूप ज्ञान तभी प्राप्य है, जब— 'अभेदभावनाद्भेदनाशः।' (७.४.२३)

शाक्तज्ञानियों के लिए अपना मुक्तिस्वरूप परमगेहमात्र 'चिन्तामणिगृह' है— 'शाक्तज्ञानिनश्चिन्तामणिगेहम्।' (१०.२.१०)

क्योंकि यहीं उनकी परमाराध्या भगवती पराशक्ति निवास करती हैं—'चिन्तामणिगृहान्तःस्था तेन शक्तिः।' (१०.२.१०) 'चिन्तामणिगेहः शक्तेः।' (१०.३.१)

ज्ञान के द्वारा ही मुक्ति मिलती है तो ज्ञानी कौन है— 'अद्वैतावस्थानसमाधिस्थो ज्ञानी।' अर्थात् अद्वैतावस्था में अवस्थित समाधिमग्न योगी ही 'ज्ञानी' है। सविकल्प समाधि के बाद निर्विकल्प समाधि होती है। इस निर्विकल्प समाधि में स्थित योगी ही 'सिद्ध' एवं 'मुक्त' कहलाता है— 'सविकल्पान्निर्विकल्पम्, तत्सिद्धो मुक्तः।' (१३.२.२०-२१)

समाधि को मुक्ति का पर्याय क्यों माना गया? इसलिये कि हयग्रीव विद्या अद्वैतात्मक ब्रह्मविद्या है, जीव-परमात्मा में ऐक्यानुसन्धान की विद्या है और 'समाधि' भी वही है—

'ऐक्यानुसन्धानं समाधिः।' (१५.१.३३)

'ऐक्यभावनं समाधिः।' (१५.१.२३)

'इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी।' (१८.१४.२४)

'अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव।' (१७.३.१६)

ब्रह्मविद्या द्वैपायन-प्रणीत है और शाक्तदर्शन भी उसी के अन्तर्गत है (१८.२.२६-२७)। हयग्रीव अपने दर्शन को शाक्त दर्शन कहते हैं— 'हयग्रीवविद्या शाक्तसिद्धान्तदर्शनमिति।' (१५.३.२६)

ब्रह्ममीमांसा एवं शाक्तदर्शन का अपृथक् सम्बन्ध है— 'ब्रह्ममीमांसा द्वैपायनेन। २६' 'तदन्तर्गतानि शाक्तदर्शनादीनि।' (१८.२.२७)

'शक्तिसूत्रम्' के अनुसार मुक्ति का स्वरूप

आचार्य अगस्त्य की दृष्टि— आचार्य हयग्रीव की भाँति ही आचार्य अगस्त्य ने भी दुःखध्वंस को परम पुरुषार्थ मानते हुये सर्वदुःखोपरम को मोक्ष स्वीकार किया है।

समस्त दु:खों का उपशम ही परम श्रेयस्कर 'मोक्ष' है। आचार्य अगस्त्य कहते हैं— 'सर्वदु:खोपरम: श्रेयान् मोक्ष:।' (२.५३)

प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि पहले प्रकृति को और फिर अपने को आत्मस्वरूप में लय करके जब द्वैतभाव से अद्वैतभाव में अवस्थान होता है तब अकेला एक तत्त्व ही शेष रह जाता है और वहाँ दो के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता; इसी अद्वैतावस्थान में साधक प्रत्यगात्मस्वरूप स्थिति में प्रत्यगात्मा शुद्ध, पूर्ण एवं मुक्त होकर अवस्थान करता है। वह शुद्ध, पूर्ण, प्रत्यगात्मा एवं मुक्त हो जाता है—

१. 'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते।' (३.५३)

२. 'मुक्त: शुद्ध: पूर्ण: प्रत्यगात्मैव भवति।' (३.५४)

यह प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है।

'तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्' कहकर योगसूत्रकार पतञ्जलि ने भी आत्मावस्थान को ही मुक्ति माना था।

ब्रह्मीभाव ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि संसार-सागर से मुक्ति पाने वाले मुक्त पुरुष का लक्षण यह है कि वह मुक्त एवं ब्रह्म हो जाता है—

१. यत्प्रसादाज्जीवन्मुक्तो जीव: परं ब्रह्मैव भवति। (२.३८)

२. नित्यमुक्त: पूर्णो भवति। (२-४२)

३. स वै ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति। (२.१२६)

यह मुक्ति ही 'जीवन्मुक्ति' है। (२.३४,२.३८)

आत्मज्ञान ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि जो आत्मवित् हो जाता है, वह मुक्त होकर संसार-सागर से तर जाता है—

'विदित्वैवं तरति, य आत्मवित्।' (शक्तिसूत्र-२.१-२)

अविद्या के क्षय से प्रकृति शक्ति में लीन हो जाती है; अत: शक्ति एवं साधक दोनों ब्रह्म ही कहलाने लगते हैं— 'अविद्याक्षयेण ब्रह्माभिधेयम्।' (२.७)

इस मुक्ति के सहायक तत्त्वों में धर्म की भी भूमिका है— 'अधर्मान्बन्ध:।' (१.११८) 'धर्मो निवृत्तौ' (२.११९)।

अर्थात् अधर्म से बन्धन होता है और धर्म से बन्धनमुक्ति होती है। 'विदित्वैवं तरति' (२.१) के द्वारा आचार्य अगस्त्य ज्ञान को मुक्ति का प्रधान साधन स्वीकार करते हैं। 'धर्मान्मोक्षोऽधर्मान्बन्ध:' (३.३) कहकर वे धार्मिक कार्यों की महनीयता को भी स्वीकार करते हैं; जबकि अन्य दार्शनिक पुण्यापुण्य, धर्माधर्म सभी के त्याग को मुक्ति का मार्ग मानते हैं। बन्धन एवं मोक्ष का कारण प्रकृति भी है—

'प्रकृतिर्द्विधा।' (३.१) 'सा बन्धमोक्षयोर्हेतुः।' (३.२)

इस दृष्टि पर सांख्य दर्शन का पूर्ण प्रभाव है।

त्रिक दर्शन 'जीवन्मुक्ति' को, प्रत्यभिज्ञा दर्शन 'प्रत्यभिज्ञा' को, पतञ्जलि 'स्वरूपावस्थान' को, सांख्य 'कैवल्य' को, नाथयोगी 'पिण्डपदसमरसीकरण' को, आचार्य लक्ष्मीधर 'सायुज्य' को एवं शंकराचार्य 'अद्वैतभाव' या 'धारणा' को मुक्ति मानते हैं।

'धारणा' क्या है? इस पर आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि धारणाओं की संख्या ३६० है— 'धारणा नाम वायोः कमलेषु नादकलाभ्यां निरोधः। स च षट्कमलेषु षोढा सप्तमे समयशब्दाभिलप्येन सार्धं सप्तविधः। एकैकस्मिन् कमले पञ्चाशदिति षष्ट्युत्तरत्रिंशतं धारणा।'

धारणा पिण्डस्थ कमलों में नादकला के द्वारा वायु का निरोध करना है। इसके ३६० भेद हैं।

धारणा का फल क्या है? आधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत-विशुद्धाख्यादि चक्रों में यथाक्रम मति-स्मृति-बुद्धि-प्रज्ञा-मेधा-प्रतिभा-संविद्रूप निष्पत्ति ही 'धारणा' का फल है। भगवत्पाद ने धारणा से जीवन्मुक्ति प्राप्त होने की पुष्टि की है— 'धारणा परिज्ञानान्मुक्तिः।'[1]

शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में कहा है—

परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्।

भजन के दो भेद हैं— षट्चक्रात्मक भजन (षट्चक्रसेवात्मक) एवं धारणात्मक।

१. आधारस्वाधिष्ठान— तामिस्रलोक है; अतः उपास्य नहीं है।

२. मणिपूरप्रभृति सहस्र कमलपर्यन्त ५ चक्र पूज्य हैं।

३. मणिपूरचक्र की उपासना— 'सार्ष्टिरूपा मुक्ति' (सार्ष्टिनाम देव्याः पूरः समीपे पुरान्तरं निर्माय सेवां कुर्वाणस्य अवस्थितिः)।

४. संवित्कमलपूजा— 'सालोक्य मुक्ति' (सालोक्यंनाम देव्याः पट्टणे निवासः)।

५. विशुद्धि चक्र की उपासना— 'सामीप्य मुक्ति' (सामीप्यंनाम अङ्गसेवकत्वम्)।

६. आज्ञाचक्रोपासना— 'सारूप्य मुक्ति' (सारूप्यं नाम समानरूपत्वम्)।

इनमें से सारूप्य मुक्ति ही यथार्थ मुक्ति है।[2]

▼

१. लक्ष्मीधरा।

२. लक्ष्मीधरा— परं तु सायुज्यात्मिकैव शाश्वती मुक्तिः सहस्रकमलोपासकानामेवेति।

चतुर्थ अध्याय

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

वैसे तो भगवती के तो अनन्त एवं अचिन्त्य रूप हैं, तथापि उन्हें वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया जाय तो उनके निम्न तीन रूप मुख्य दृष्टिगोचर होते हैं—

१. निर्गुण रूप[1]— भगवती का एक चक्रात्मक रूप भी है, जो कि श्रीचक्र के रूप में प्रतिष्ठित है। श्रीचक्र का महत्त्व इतना है कि हजारों एवं करोड़ों तीर्थस्नान करने पर भी जो फल प्राप्त नहीं होता, उतना मात्र 'श्रीचक्र' का पादोदक लेने से ही प्राप्त हो जाता है। कहा भी गया है—

'तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम्।'

२. पुरुष रूप— भगवती के पुरुष रूप का विवेचन विभिन्न पुराणों में इस प्रकार किया गया है—

पुंरूपं वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्।
अथवा निष्कलं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम्।।

ममैव पौरुषं रूपं गोपिकाजनमोहनम्।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कदाचिल्ललितादेवी धृतश्रीकृष्णविग्रहा।
वेणुनादविनोदेन मोहयत्यखिलं जगत्।।

अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः।
अहञ्च ललितादेवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा।।

आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद।
इदं वृन्दावनं नाम रहस्यं मम वै गृहम्।। (पद्मपुराण)

सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमब्धौ ललिते तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्।।

३. नारी रूप— भगवती के नारीरूप का विवेचन इस प्रकार प्राप्त होता है—

न मातुः परमस्ति दैवतम्।

अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम्।

सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम्।

---

१. श्रीविद्या का स्वरूप : वरिवस्यारहस्य में भास्कर राय कहते हैं—
नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपाऽस्यम् वर्तते शक्तिः। तद्विज्ञानार्थमेव चतुर्दश विद्या स्थानानि तेष्वपि सारभूता वेदाः। तेष्वपि गायत्री, तस्या रूपं द्वितयम्।
तत्रैकं स्पष्टं द्वितीयं परं गोपनीयं श्रीविद्यारूपम्।।

कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसम्।

उपर्युक्त स्वरूप के अतिरिक्त भगवती के अन्य रूप भी हैं; यथा—

भगवती के अन्य रूप

- स्थूलरूप (कायिकी- श्रीचक्ररूप)
- सूक्ष्मरूप (वाचिकी- जपरूप, मन्त्ररूप, श्रीविद्यारूप)
- पररूप (मानसी- (भावनोपनिषद् भावना के अनुरूप रूप)

श्रीविद्या की निरतिशय महत्ता— कोई भी मनुष्य अपने उसी अन्तिम जन्म में 'श्रीविद्या' का उपासक बन पाता है, जब उसकी मुक्ति का काल आता है—

'चरमे जन्मनि यथा श्रीविद्योपासको भवेत्।'

इतना ही नहीं— 'यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम्।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी।।'

यह 'श्रीविद्या' ही आत्मविद्या एवं ब्रह्मविद्या है और सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही इसका यथार्थ स्वरूप हैं। उन भगवती के तीन रूप हैं— मन्त्रात्मक (श्रीविद्या) यन्त्रात्मक (श्रीयन्त्र) विग्रहात्मक (शरीरावयवों से युक्त)। कहा भी गया है—

'मन्त्रात्मकं रूपं पञ्चदशी षोडशी महाषोडशी।'

'षोडशी' तो अवर्णनीया है; अतः करोड़ों वाक्यों एवं करोड़ों जिह्वाओं से भी उनका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है—

'वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्या षोडशाक्षरीम्।।

एकोच्चारेण देवेशि ! वाजपेयस्य कोटयः।
अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।।

काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विताः।
तुलां नार्हन्ति देवेशि ! नात्र कार्या विचारणा।।

अपि प्रियतमं देयं सुतदारधनादिकम्।
राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी।।'

श्रीविद्या का महत्त्व— सैकड़ों यज्ञ करने से जो पुण्यार्जन होता है, वह एक क्षण में ही 'श्रीचक्र' के दर्शनमात्र से प्राप्त हो जाता है—

सम्यक् शतं क्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

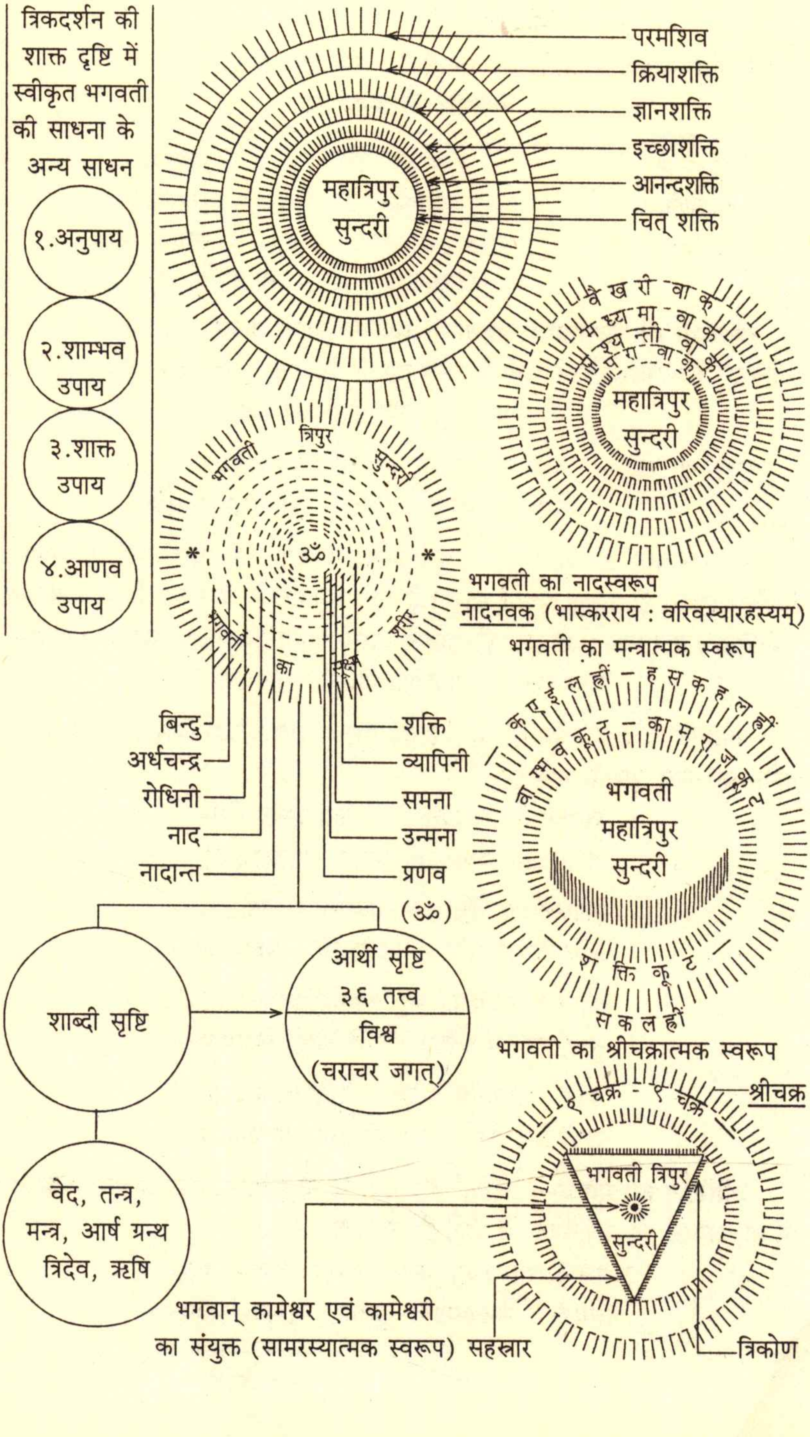
त्रिकदर्शन की शाक्त दृष्टि में स्वीकृत भगवती की साधना के अन्य साधन
१.अनुपाय
२.शाम्भव उपाय
३.शाक्त उपाय
४.आणव उपाय
परमशिव
क्रियाशक्ति
ज्ञानशक्ति
इच्छाशक्ति
आनन्दशक्ति
चित् शक्ति
महात्रिपुर सुन्दरी
महात्रिपुर सुन्दरी
त्रिपुर
भगवती
ॐ
का
बिन्दु
अर्धचन्द्र
रोधिनी
नाद
नादान्त
शक्ति
व्यापिनी
समना
उन्मना
प्रणव (ॐ)
भगवती का नादस्वरूप
नादनवक (भास्करराय : वरिवस्यारहस्यम्)
भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप
भगवती महात्रिपुर सुन्दरी
स क ल ह्रीं
भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप
शाब्दी सृष्टि
आर्थी सृष्टि ३६ तत्त्व
विश्व (चराचर जगत्)
वेद, तन्त्र, मन्त्र, आर्ष ग्रन्थ त्रिदेव, ऋषि
श्रीचक्र
भगवती त्रिपुर सुन्दरी
भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी का संयुक्त (सामरस्यात्मक स्वरूप) सहस्त्रार
त्रिकोण

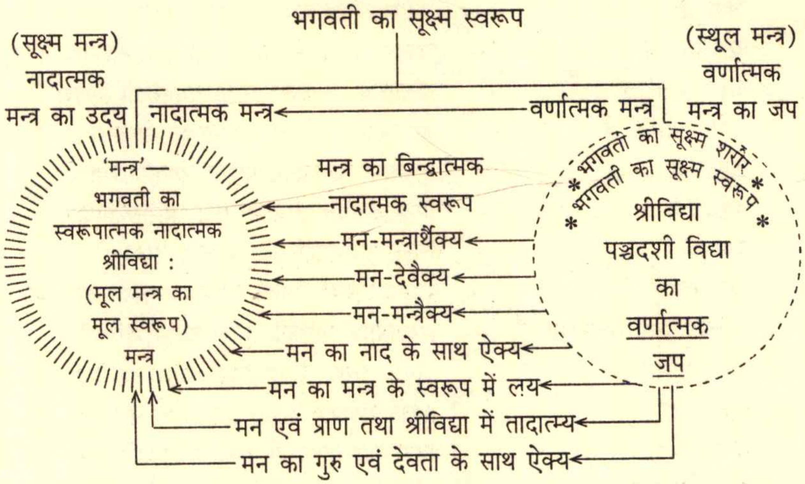

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप— भगवती त्रिपुरा आत्मतत्त्व हैं, शक्तितत्त्व हैं, विद्यातत्त्व हैं, श्रीचक्र हैं, समस्त जीव-जगत् हैं। 'नित्याषोडशिकार्णव' में उन्हें गणेश, नक्षत्र, योगिनी, राशि, मातृका एवं पीठ सभी कुछ कहा गया है—

'गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।'

भगवती त्रिपुरसुन्दरी माता, श्रीविद्या, स्वगुरु एवं साधक से अभिन्न हैं। चक्र एवं देवता में अभिन्नता है। नित्या षोडशिकार्णव में कहा भी गया है—

'चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधैः।
संस्थिताऽत्र महाचक्रे महात्रिपुरसुन्दरी।।'

श्रीविद्या एवं श्रीसम्प्रदाय में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही प्राणतत्त्व हैं। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही—

'देवता' हैं — देवता ललितातुल्या यथा नास्ति घटोद्भवा।
'तत्त्व' का अर्थ हैं — तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।
'विश्वमाता' हैं — विश्वमाता जगद्धात्री विशालाक्षी विरागिणी।
'नाद' हैं — वीरगोष्ठीप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी।[१]

---

१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी नाद हैं; आहत नाद, अनाहत नाद, ध्वनि, शब्द, ओंकार, १० नाद, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, मन्त्र, भारती, वाणी, अक्षर, मातृका, वर्ण आदि सभी कुछ हैं और इन सबके मूल केन्द्रबिन्दु का स्वरूप भी वही हैं। वे ही परा वाक् एवं शब्दब्रह्म भी हैं एवं वे ही इच्छा-ज्ञान-क्रिया भी हैं।
त्रिकोण = योनि। बिन्दु = शिव। जगत् की उत्पत्ति इसी त्रिकोण एवं बिन्दु से हुई है। बिन्दु शक्त्यात्मक है।

'वर्ण' हैं	—	उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।[१]
'मन्त्रसार' हैं	—	छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी।
'परम सत्य' हैं	—	सत्यव्रता सत्यरूपा सर्वान्तर्यामिणी सती।
'परम ज्योति' हैं	—	परं ज्योतिः परं धाम परमाणुः परात्परा।
'प्राण' हैं	—	प्रत्यग्रूपा पराकाशा प्राणदा प्राणरूपिणी।
'मुक्ति' हैं	—	मिथ्याजगदधिष्ठाना मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी।
'प्रेम' हैं	—	चित्कलानन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियङ्करी।
'गुरुमण्डल' हैं	—	सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी।
'सच्चिदानन्द परमात्मा' हैं	—	सर्वार्थदात्री सावित्री सच्चिदानन्दरूपिणी।
'ब्रह्मात्मैक्य' हैं	—	अन्नदा वसुदा वृद्धा ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी।
'ब्रह्मानन्द' हैं	—	वृहती ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मानन्दा बलिप्रिया।
'भाषा' हैं	—	भाषारूपा वृहत्सेना भावाभावविवर्जिता।
'राजराजेश्वरी' हैं	—	राजराजेश्वरी राज्यदायिनी राज्यवल्लभा।
'सम्प्रदाय की ईश्वरी' हैं	—	सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी।
'शक्तित्रय' हैं	—	इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी।
'विश्वगर्भा' हैं	—	विश्वगर्भा स्वर्णगर्भा वरदा वागधीश्वरी।
'सत्यानन्द' हैं	—	सर्ववेदान्तसंवेद्या सत्यानन्दस्वरूपिणी।
'ज्ञान का विग्रह' हैं	—	ध्यानगम्या परिच्छेद्या ज्ञानदा ज्ञानविग्रहा।
'श्रीमाता' एवं 'श्रीमहाराज्ञी' हैं	—	'श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी।'

परम शिव = परब्रह्म = सर्वातीतावस्था। परमशिव = विश्वोत्तीर्ण। परमशिव— प्रकाश एवं विमर्श। प्रकाश = अम्बिका शक्ति। विमर्श = शान्ता शक्ति। इनका सामरस्य— इच्छा (वामा), ज्ञान (ज्येष्ठा), क्रिया (रौद्री) = पूर्ण गिरिपीठ, जालन्धर पीठ, उड्डीयान पीठ = पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक् एवं वैखरी वाक्। ॐकारस्वरूप त्रिपुरा—

अ (पश्यन्ती) = सृष्टि, 'वामा' इच्छा।

उ (मध्यमा) = रक्षा-पालन, 'ज्येष्ठा' ज्ञान।

म (वैखरी) = नाश-प्रलय, 'रौद्री' क्रिया।

= ॐ— अ, उ, म।

१. चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि बिन्दुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति चतुर्थी वाचो मनुष्याः वदन्ति।।
कहकर वेद में जिन चार वाणियों का उल्लेख किया गया है, उनमें तीन नादात्मक हैं— परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा और चतुर्थ वाक् वैखरी है, जिसे मनुष्य बोलते हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरी चारो वाणियों का समष्टिस्वरूप हैं। वे समस्त नादों, वाणियों, मातृकाओं, मन्त्रों, वर्णों आदि की महासमष्टि एवं उनकी मूर्ति हैं।

'शुद्ध विद्या' हैं	—	'शुद्धविद्याङ्कुराकारा।'
'मूल मन्त्र' हैं	—	'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।'
'कुण्डलिनी' हैं	—	'महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।'
'समस्त मन्त्रों का स्वरूप' हैं	—	'सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।'
'समस्त यन्त्रों का स्वरूप' हैं	—	'सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।'
भगवती गुरु हैं	—	'त्वामिच्छाविग्रहां देवीं गुरुरूपां विभावयेत्। त्वन्मयस्य गुरोः शेषं निवेद्यात्मनि योजयेत्।।'

भगवती 'व्यापिनी, सुमना, कुण्डली, कामिनी, कमला, ललिता' आदि सभी कुछ हैं। चर्चास्तव में कहा भी गया है—

'त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति।
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाः।।'

भगवती ही शिव एवं शक्ति दोनो हैं। वही आत्मा भी हैं। वही दीक्षा भी हैं। साथ ही वही विद्या एवं अविद्या भी हैं—

'शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी।
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।।
सकलजननीस्तव .... ।।'

गुरु ही आद्या शक्ति है। तन्त्रराज एवं शिवसूत्र में कहा भी गया है—

'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।'
'गुरुरेव परा शक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका।'

मुक्ति— भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सम्यक् ज्ञान ही मुक्ति का स्रोत है— 'विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपा।'

मुक्ति का क्या स्वरूप है? 'जीवन्मुक्ति'। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में 'जीवन्मुक्ति' को ही मुक्ति का पर्याय माना गया है। जीवन्मुक्ति क्या है? इस सन्दर्भ में कहा गया है कि 'चिदैकात्म्य-प्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः।'

इस सम्प्रदाय में शक्ति के साथ एकात्मता या स्वरूपबोध ही मुक्ति है— 'सम्यक् स्वरूपज्ञानात् यतो मुक्तिः। असम्यक् तु संसारः (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)। 'जीवन्मुक्ति' ही यथार्थ मुक्ति है। चित् शक्ति के साथ एकात्मता-प्रतिपत्ति की दृढ़ता ही 'जीवन्मुक्ति' है।

श्रीसम्प्रदाय में श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र), श्रीयन्त्र एवं श्रीदेवी (महात्रिपुरसुन्दरी) प्रधान हैं।

श्रीयन्त्र, श्रीविद्या एवं श्रीदेवी में ऐक्य या समरसता-स्थापन ही साधना व्यापार की सर्वोच्च उपलब्धि है।

नाद एवं बिन्दु— १. नाद के साथ बिन्दु का, २. बिन्दु के साथ कला का ३. कला के साथ नाद का, ४. इन तीनों का परस्पर ऐक्य और ५. कला के साथ नाद का ऐक्य। इस प्रकार छः प्रकार के ऐक्य हैं। 'षोढ़ैक्य' तो भगवती की यथार्थ सपर्या ही है। षोढ़ा ऐक्य के अनुसन्धान के अनन्तर दशभुजा भगवती श्रीविद्या मणिपूरक चक्र में प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती है। उसका साक्षात्कार ही यथार्थ सपर्या है। सपर्या क्या है? इस सन्दर्भ में लक्ष्मीधर कहते भी हैं— 'ऐक्यानुसन्धानमेव सपर्येति।'

'नाद' = श्रीचक्र। 'बिन्दु' = मूलाधारादि षट्‌चक्र। 'बिन्दु' = जगत् की उत्पत्ति-लय का कारण एवं शिव का शक्तिविशेष है। बिन्दु एक है, किन्तु वही सहस्र कमलान्त चतुर्द्वारात्मक कर्णिकामध्यगत चतुष्कोणात्मक शक्ति तत्त्व है। उसके मध्य स्थित शिवतत्त्व ही 'नाद' है। उसके ४ प्रकार हैं। दोनों में कलात्मकता है। उनका मेलन नाद-बिन्दु-कलातीत है। एक ही बिन्दु दस प्रकार से विभाजित हो जाता है—

'दशधा भिद्यते बिन्दुरेका एव परात्मकः।
चतुर्धाऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे।।'
'उभयाकाररूपत्वादितरेषां तदात्मता।'

शैव-शाक्त सम्प्रदाय में अद्वैत सामरस्यावस्था ही 'मुक्ति' है। शिव एवं जीव में अभेद ही परमोपलब्धि है। इस ज्ञान को ही मुक्ति कहते हैं एवं इसके अज्ञान को बन्धन कहते हैं। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहा भी गया है— 'शिवजीवयोरभेद एव उक्तः। एतत्तत्त्व-परिज्ञानमेव मुक्तिः। एतत्तत्त्वापरिज्ञानमेव च बन्धः।'

▼

पञ्चम अध्याय

श्रीविद्योपासना

सनत्कुमारसंहिता में बाह्य पूजा का प्रतिषेध करते हुए इस प्रकार कहा गया है—

'बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः ।
सा क्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात् ।।

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः ।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः ।।

आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः ।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा ।।'

श्रीविद्या भगवती त्रिपुरा का सूक्ष्म शरीर है। श्रीविद्या 'श्री' है। 'षोड़शी कला' में शकार, रेफ, ईकार एवं बिन्दु है। 'श्रीं' मन्त्र है। इसी बीज का नाम है— श्रीविद्या। लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरी की व्याख्या में कहते हैं— 'षोड़शी कला नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वतो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।' (लक्ष्मीधरा)। ककारादिक वर्ण षोड़श नित्याओं की प्रकृति के हैं— 'एवं षोड़शनित्यानां प्रकृतिभूताः ककारादयः।'

चान्द्रकलायें	**तिथियाँ**	**देवी का नाम (कला का नाम)**	**सर्वानुस्यूत कला**
प्रथमा	प्रतिपदा	त्रिपुरसुन्दरी कला	
द्वितीया	द्वितीया	कामेश्वरी कला	
तृतीया	तृतीया	भगमालिनी कला	
चतुर्थी	चतुर्थी	नित्यक्लिन्ना कला	समस्त विधियों
पञ्चमी	पञ्चमी	भेरुण्डा कला	में उपास्या कला =
षष्ठी	षष्ठी	वह्निवासिनी कला	चिद्रूपा षोड़शी कला
सप्तमी	सप्तमी	महावज्रेश्वरी कला	
अष्टमी	अष्टमी	रौद्री कला	
नवमी	नवमी	त्वरिता कला	
दशमी	दशमी	कुलसुन्दरी कला	
एकादशी	एकादशी	नीलपताका कला	
द्वादशी	द्वादशी	विजया कला	
त्रयोदशी	त्रयोदशी	सर्वमंगला कला	
चतुर्दशी	चतुर्दशी	ज्वाला कला	
पञ्चदशी	पञ्चदशी	मालिनी कला	

प्रतिपदा तिथि की अधिष्ठात्री कला 'त्रिपुरसुन्दरी' चिद्रूपात्मिका नहीं है; क्योंकि उसका चिद्रूपात्मिका मूल विद्या से पृथक् रूप से अनुष्ठान किया जाता है। इस दिशा में मन्त्रभेद भी है। इन षोड़श नित्याओं का, जो कि चन्द्रकलात्मिका हैं, 'विशुद्धिचक्र' (षोड़शार) में स्थान है। उसके नीचे स्थित द्वादशार (संवित् कमल) में द्वादश सूर्य-मण्डल प्रादक्षिण्य क्रम से परिक्रमा या भ्रमण करते हैं। इन द्वादश सूर्यों का बारहों मासों पर अधिकार है। सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है कि सूर्य एवं 'चन्द्रमा' देवयान-पितृयानात्मक इड़ा-पिंगला मार्ग से अहोरात्र सञ्चरण करते हैं। चन्द्रमा वामनाड़ी मार्ग से सञ्चरण करता हुआ ७२००० नाड़ियों के मार्ग को अमृत से सिञ्चित करता है। 'सूर्य' दक्षिण नाड़िमार्ग द्वारा तदुत्थित अमृतबिन्दुओं का उपाहरण करता है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का 'आधारचक्र' में समावेश होता है तब अमावस्या तिथि उत्पन्न होती है। पुनः उससे कृष्णपक्ष की तिथियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव 'कुण्डलिनी शक्ति' आधारकुण्ड में सूर्यकिरण के सम्पर्क के कारण विलीन चन्द्रमण्डल के मध्य गलते (स्रवित होते) हुये पीयूष से परिपूरित (तृप्त) होकर सोती है। कुण्डलिनी की यह सुषुप्ति की अवस्था ही 'कृष्णपक्ष' कहलाती है—

'स्वापावस्थैव कृष्णपक्ष इत्युच्यते।'[१]

जब योगी समाहित चित्त होकर चन्द्रस्थान में चन्द्रमा को एवं सूर्यस्थान में सूर्य को वायु के द्वारा निरुद्ध करने में सक्षम हो जाता है तब सूर्य-चन्द्र अमृताहरण में अशक्त हो जाते हैं और कुण्डलिनी निराहार रहने के कारण क्रोधित होकर जग उठती है और चन्द्रमा को डसती है। उससे चन्द्रमा से अमृतपात होता है। उससे वह 'आज्ञाचक्र' पर स्थित 'चन्द्रमण्डल' को आप्लावित करती है और पीयूषप्रवाहों से वह समस्त शरीर को आप्लावित करती है। फिर आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमा की पन्द्रह कलायें अपने अधोवर्ती विशुद्धिचक्र का आश्रय लेकर विवर्तन करती हैं।

त्रिपुरसुन्दरी— सहस्रदल कमल के मध्य स्थित 'चन्द्रमण्डल' को 'बैन्दवस्थान' कहते हैं। उसकी चिन्मयी एवं आनन्दरूपा कला ही 'आत्मा' कहलाती है। वही त्रिपुर-सुन्दरी भी कहलाती है— 'सहस्रदलकमलान्तस्थितश्चन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम्। तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते। सैव त्रिपुरसुन्दरी।'

समस्त शुक्लपक्ष की तिथियाँ पौर्णमासी हैं— 'सर्वाः शुक्लपक्षतिथयः पौर्णमासी-संज्ञकाः।' इसीलिये योगी लोग मात्र शुक्लपक्ष की तिथियों में ही कुण्डलिनी का उद्बोधन करने में सफल हो पाते हैं। समस्त कृष्णपक्ष की तिथियाँ 'अमावास्या' में अन्तर्भुक्त हैं। एक ही अमावास्या कृष्णपक्ष कही जाती है; इसीलिए 'मूलाधार' को 'अन्धतामिस्र' कहा गया है।

---

१. लक्ष्मीधरा

श्रीविद्या— 'सादाख्या कला' का अपरपर्याय ही 'श्रीविद्या' है। लक्ष्मीधर ने अपनी लक्ष्मीधरा में कहा भी है—

'सादाख्या कला श्रीविद्यापरपर्याया नादबिन्दुकलातीता।'

ककारादि लकारान्त शब्दों को 'कला' कहना गौण है; क्योंकि सारे 'व्यञ्जन' स्वरों के अंग हैं और कलायें स्वरप्रधान हैं।

१६ स्वर, क से त तक के १६ वर्ण और थ से स तक के १६ वर्ण अर्थात् षोडश त्रिक षोड़श नित्याओं में अन्तर्भुक्त हैं। 'हकार' आकाशबीज है और बैन्दवाकाश में निलीन है। 'ळकार' अन्त:स्थ में अन्तर्भूत है। 'क्षकार' ककार और षकार का समुच्चय है। क से स तक के समस्त वर्ण स्वरसहित नित्याओं में अन्तर्भूत हैं। अ से क्ष पर्यन्त शब्दों की समष्टि ही 'अक्षमाला' कही जाती है। अत: क्षकार से (क्ष = क + ष। क से ष तक के सभी वर्ण) समस्त वर्णों का ग्रहण हो जाता है। लक्ष्मीधरा में कहा भी गया है— 'क्षकारेण सर्वा मातृका: संगृहीता भवन्ति।'

अत: अन्तिम खण्ड 'स क ल ह्रीं' है। ककार एवं लकार के योग से 'कला' शब्द निष्पन्न हुआ है। क + ष = 'क्ष'। इस प्रकार क्ष से समस्त मातृकाओं एवं मन्त्र से भी समस्त मातृकाओं का ग्रहण होता है।

ऐक्यचतुष्टय

षोडश नित्यायें— श्रीविद्या के षोडश वर्णों से युक्त हैं।
षोडश वर्ण— ५० वर्णों से युक्त हैं।
५० वर्ण— सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि कला से युक्त हैं।
सूर्य-चन्द्र-अग्नि— खण्डत्रय से युक्त हैं।

इसी प्रकार चक्रों एवं मन्त्रों में भी ऐक्य है।

चक्र एवं श्रीविद्यात्मक मन्त्र— 'एवं चक्रमन्त्रयोरपि।' (लक्ष्मीधरा)।

श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में तदात्मकता

श्रीविद्या के मन्त्राक्षर और उनका रहस्य—

- श्रीविद्या मन्त्र के तीन ककार सकल, प्रलयाकल एवं विज्ञानाकल के वाचक हैं।
- बिन्दुत्रय रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक हैं।
- तीनों नाद शान्ति, शक्ति एवं शम्भु के वाचक हैं।
- जगत् एवं विद्या में ऐक्य है; जैसे कि ब्रह्म एवं जगत् में अभेद है—

  'ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थ:।'

- दीक्षागुरु और परमशिव में अभेद है।
- अपने एवं परमशिव में अभेद है।

● देवीं गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्।।

● माता गणेशी है; क्योंकि इच्छा-ज्ञान-क्रिया, गुणत्रय और अग्नि-सोम-सूर्य— इन नौ के संयोग के कारण 'ग्रहरूपिणी' है।

● माता तेजोमयी अपने मरीचिरूप आवरण देवताओं की स्वामिनी होने के कारण 'गणेशी' है।

● माता १० इन्द्रियों, ४ अन्त:करणों, १० ऐन्द्रिय विषयों, प्रकृति, पुरुष, गुण-तत्त्वों के योग से २७ संख्या वाली 'नक्षत्ररूपिणी' है।

● माता योगिनी है। वह १६, १२, १०, ४, २ संख्या वाले अ, क, ड, ब, व, ह अक्षरों से आरम्भ होने वाली छः आकिनियों से घटित विग्रह वाली 'योगिनी' कहलाती है।

● माता राशिस्वरूपा है। नाग, कूर्म आदि ५, प्राणादि ५ एवं जीवात्मा तथा परमात्मा के साथ १२ संख्या वाली माता 'राशिस्वरूपिणी' है।

श्रीविद्या का स्वरूप

● श्रीविद्या गणेशरूपिणी है; क्योंकि यह अ, क, थ वर्गों से आरम्भ होने वाले क्रमशः शक्तिकूट, कामराजकूट एवं वाग्भवकूटों के १६ वर्णों एवं परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूप वाक्चतुष्टय द्वारा घटित होती है।

● ३ बिन्दुओं, ३ नादों एवं ३ कूटों के शेषांशों से घटित होने के कारण विद्या 'ग्रहस्वरूपा' है। व्यञ्जनों से १० अक्षरों के पृथक् न होने से २७ अक्षरों वाली यह (विद्या) 'नक्षत्ररूपिणी' भी है।

● ३ ह्रीं और उससे भिन्न ३ कूटों के योग से विद्या 'योगिनीरूपा' भी है।

● तीनों ह्रीं एवं पूर्ववर्ती 'ल' वर्णों के योग से घटित होने के कारण श्रीविद्या 'राशिरूपा' भी है।

● विद्या एवं देवी के सारूप्य के कारण विद्या एवं देवी में अभेद है।

● विद्या 'ग्रहरूपा' है। रेखाओं, दलों एवं कोणों के गणों द्वारा घटित होने के कारण विद्या का गणेशत्व एवं नव चक्रों से निर्मित होने के कारण इसका ग्रहत्व सिद्ध है।

● ३ वृत्तों, ३ भूगृहरेखाओं एवं १४ कोणों तथा सात अन्य चक्रों की पृथक्-पृथक् गणना द्वारा इसका 'नक्षत्रत्व' भी सिद्ध है।

श्रीयन्त्र का स्वरूप

● स्थिति एवं संहारनामक २ चक्र, २ पद्म, २ अन्य वृत्त तथा एक भूगृह आदि ६ के योग से श्रीचक्र 'योगिनीरूप' है।

● ५ शक्ति, ४ अग्नि, १ बिन्दु एवं १ वृत्त तथा एक भूगृह आदि १२ के योग से श्रीचक्र 'राशिरूप' है।

● श्रीविद्या के अक्षरों द्वारा निर्मित होने के कारण चक्र इससे अभिन्न है। मातृका के वर्णों की संख्या के बराबर ५१ पीठ हैं। ५५ पीठ भी हैं।

● बिन्दु की उत्पत्ति ३ ककारों और ३ इकारों से हुई है।

श्रीयन्त्र की उत्पत्ति

सर्वरक्षाकार, सर्वार्थसाधक एवं सर्वसौभाग्यदायक— क्रमश: दो हकारों एवं एकार से आगे के दो चक्र (सर्वसंक्षोभण एवं सर्वाशापरिपूरक), दो सकारों से (चतुरस्र) त्रैलोक्यमोहन चक्र २ लकारों से उत्पन्न हुए हैं।

● अभेद-भावना की दृढ़ता के कारण अपना गुरु उक्त तीनों विद्या, देवता एवं श्रीचक्र से अभिन्न है। अत: वह गणेशादिमय होता है। शिष्य स्वयं भी तद्रूप हो जाता है।

● माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं— इन पाँचों में अभेद है। कहा भी है— 'इत्थं माता-विद्या-चंक्र-स्वगुरु: स्वयञ्चेति पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।'

कुण्डलिनी और श्रीविद्या

● सूर्य की तपिनी आदि १२, चन्द्रमा की अमृत आदि १६ एवं अग्नि की १० कलाओं से युक्त ५० वर्णों से अभिन्न देह वाली मृणालतन्तुवत् क्षीणकाय विद्युत् के समान भासित कुलीन कुण्डलिनी मूलाधार चक्र की कर्णिका में विद्यमान त्रिकोण के ऊपर से मूलाधार, अनाहत एवं आज्ञाचक्रों में विद्यमान अग्नि, सूर्य एवं सोममण्डलों का उद्भेदन करती है।

उपर्युक्त आकाशगत चन्द्रमण्डल के केन्द्र में अकुल कुण्डलिनी से मिलती हुई एवं अमृतपूर का स्रवण करती हुई स्वयं भी सुखपूर्वक शयन करती है। यह कुण्डलिनी साक्षात् श्रीविद्या एवं महात्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का रहस्यार्थ है—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्या: स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थ:।।

● वाणी, मन एवं इन्द्रियों द्वारा अगम्य ३६ तत्त्वों से आतीत महत्तम एवं सूक्ष्मतम, व्योम से भी ऊपर स्थित, विश्वाभिन्न, चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म में अपने-आपको ब्रह्म के साथ अभेद की प्राप्ति हेतु नियुक्त करना चाहिये; यही श्रीविद्या का 'महत्तत्त्वार्थ' है।

● वाग्भव कूट	—	माता का किरीट से कण्ठ	त्रिपुरसुन्दरी
कामराज कूट	—	कण्ठ से कटि	का
शक्ति कूट	—	कण्ठ से पादाग्र	शरीर

'वाक्कामशक्तिकूटैकरवयवशो विग्रहो मातु:।
प्रतिपाद्योऽत्राकण्ठादामध्यादा च पादाग्रात्।।'

● प्रथम कूट के ६ वर्ण, जिनके अन्त में 'र' है, क्रमशः ब्रह्मा = भारती, विष्णु = लक्ष्मी और रुद्र = पार्वती के द्योतक हैं।

● प्रत्येक अक्षर में शक्ति है और अक्षरों के साथ वामा-इच्छा एवं अन्य शक्तियों में अभेद है। यही 'शाक्तार्थ' है—

'अन्वयितव्योऽक्षरशः शक्तेः शाक्तैर्विभाव्यत्वात्।'

● क, ह, ल और स का अर्थ शक्ति है। 'ह्रीं' का अर्थ है— शिव-शक्ति का सामरस्यरूप परब्रह्म।

तीनों कूटों में से प्रत्येक का अर्थ है— 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है।' यही श्रीविद्या का 'सामरस्यार्थ' है।

'ककार' का अर्थ है— प्रकाश। 'एकार' का अर्थ है— अध्ययन का साधन बुद्धि। 'क + ए' (दोनों का सम्मिलित) अर्थ है— प्रकाशिका बुद्धि। 'ई' का अर्थ है— व्याप्ति। 'क' = कामिनी आदि काम्य विषय। 'ह' का अर्थ है— भोगसाधनों की प्राप्ति। 'ईकार' का अर्थ है— सभी दिशाओं में प्रकाशित होने के कारण कीर्ति। 'म' का अर्थ है— ल + ई का प्रजनन। 'वाग्भव कूट' का अर्थ है— सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति। 'कामराज कूट' का अर्थ है— शौर्य, धन, नारी एवं कीर्ति का आधिक्य।

कूटत्रय का अर्थ

वाग्भव कूट

१. सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति।
क=ब्रह्मा, ए=विष्णु, अ=ईश।
प्रथम कूट = ऋग्वेदात्मक।
द्वितीय कूट = यजुर्वेदात्मक।
तृतीय कूट = सामवेदात्मक।
'ह स क' का अर्थ = हँसता हुआ मुख।
'ह स'= आनन्द। 'क'= सूर्य। 'ह'=चन्द्रमा।
'क' एवं 'ह'= सूर्य एवं चन्द्र। 'ल'= नेत्र।
'कहल'= सूर्य एवं चन्द्रमारूप नेत्रों वाला।

कामराजकूट

१. शौर्य-धन-नारी एवं कीर्ति का आधिक्य।
विधि, हरि एवं रुद्र द्वारा ब्रह्म के स्तुत्य होने में हेतु हसत्व + कहलत्व- ये दोनों ही हैं।
द्वितीय कूट का अर्थ हुआ—
ब्रह्म अति आनन्दस्वरूप एवं चिद्रूप है।

सृष्टि-स्थिति-संहार के अधिष्ठाता विधि, हरि एवं शिव के वाचक हैं— ककार, एकार एवं अकार। ये सृष्टि आदि के कार्य में लाक्षणिक अर्थ रखते हैं।

ईकार = ईश्वरवाची। डकार = सदाशिव। (तिरोधान एवं अनुग्रह)। 'ह स'= आनन्द। 'क'= सत्य। 'ह'= अनन्त। 'ल'= ज्ञान। तृतीय कूट = ब्रह्म एवं जीव का तादात्म्य। 'स क ल'= जीव। (जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति— ३ कलायें हैं)।

शक्तिबीज 'ह्रीं'= ब्रह्म। तृतीय कूट के 'स क ल' का अर्थ है— 'यह सब ब्रह्म है।' जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप का लाक्षणिक वाक्यों द्वारा वर्णन करके उनका अभेद स्थिर किया गया। यही महावाक्यार्थ है।

श्रीविद्या के अंग (उपासनांग)

- अन्तरंग (दुर्लभ)
  - श्रीविद्या के वर्णों की संख्या
  - उद्धार
  - काल (मात्रा)
  - उच्चारण
  - स्थान
  - प्रयत्न
  - रूप
  - विभिन्न स्थितियाँ
  - आकार
- बहिरंग (प्राणहीन शरीर)
  - ऋषि
  - छन्द
  - देवता
  - विनियोग
  - बीज
  - शक्ति
  - कीलक
  - न्यास
  - ध्यान
  - नियम
  - पूजा आदि।

कामकला बीज → मूलमन्त्र का विकास।

गुरुनाद— विना गुरु के अपनी बुद्धिमात्र से उत्पन्न यह विद्या अपनी कन्या की भाँति पाप को जन्म देती है— 'निजबुद्धिमात्रजन्या पापं कन्या यथा स्वीया।'

गुरु का ध्यान— सहस्रार पद्म की कर्णिका के मध्यगत त्रिकोण रेखा 'अ-क-थ' से युक्त हैं, उनके कोणों में ह-ल-क्ष त्रिभुज के कोणों पर गुरु समासीन है। भगवती त्रिपुर-सुन्दरी का स्वरूप क्या है? उनका ध्यान कैसे किया जाय? ऐसी जिज्ञासा होने पर उनका स्वरूप निम्नानुसार बताया गया है—

आब्रह्माण्डपिपीलिकान्ततनुभत्सूज्जृम्भमाणा स्फुटम्
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभासकतया सर्वत्र या दीव्यति।
सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी
श्रीविद्या करुणानिधिः शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे।।

शाक्त दर्शन के दार्शनिक विचार

ह्रींकारत्रय— ह्रींकारत्रय एवं श्रीबीज शिवचक्रचतुष्टयात्मक त्रिकोण में बिन्दुरूप से अन्तर्भूत है।

स क ल— स-क-ल— ये तीन श्रीविद्या के मन्त्राक्षर (मातृका) अक्षमालाा-त्मिका हैं और यथायोग्य चक्र में अन्तर्भूत हैं।

सुभगोदय की दृष्टि के अनुसार श्रीचक्र एवं श्रीविद्या मन्त्र में ऐक्य स्थापित है—
क. चार अन्तःस्थ और चार ऊष्म— ये आठ वर्ण अष्टकोणात्मक हैं।
ख. कादि-मान्त पाँच वर्गों को छोड़कर शेष वर्ण 'दशारयुग्म' में अन्तर्भूत हैं।
ग. पञ्चवर्गात्मक वर्ण अनुस्वाररूप में 'बिन्दु' में अन्तर्भूत है।

पूर्णोदयमत के अनुसार कला, यन्त्र एवं मन्त्र में ऐक्य है। श्रीचक्र के तीन खण्ड हैं। इसी प्रकार मन्त्र (श्रीविद्या) के भी तीन खण्ड हैं; जो कि निम्नवत् हैं—

इन्दुखण्ड	भानुखण्ड	आग्नेय खण्ड
चन्द्रमा की १६ कलायें इन्दुखण्ड में अन्तर्भूत हैं। यह इन्दुखण्ड इन्द्वात्मक यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।	सूर्य की २४ कलायें भानु खण्ड में अन्तर्भूत हैं, वह खण्ड यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।	अग्नि की १० कलायें हैं। ये आग्नेय खण्ड में अन्तर्भूत हैं। यह आग्नेय खण्ड यन्त्रखण्ड में अन्तर्भूत है।

सुभगोदय की दृष्टि के अनुसार तिथियाँ, उनके नाम एवं कलायें— सुभगोदय में तिथियाँ, उनके नाम और कलाओं का विवेचन करते हुए इस प्रकार कहा गया है—

दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

दर्शाद्याः अर्थात् 'दर्शा' से 'पूर्णिमा' तक की समस्त तिथियाँ। दर्शा = अमावस्यानन्तर भाविनी प्रतिपत्कला। चूँकि यह बहुत थोड़ी दिखती है; अतः इसका नाम है—दर्शा (ईषद्दर्शनात् दर्शा)।

तिथियों के नाम— दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी (दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च तिथयः।)।

१. पन्द्रह (तिथिरूप) कलाओं के अधिदेवता यथाक्रम पन्द्रह 'नित्यायें' हैं।

२. सोलहवीं कला 'षोडशी' चिद्रूपात्मिका कला है और सादाख्य तत्त्वस्वरूपा है, उसका कोई अधिदेवान्तर नहीं है; क्योंकि षोडशी स्वयमेव सभी की अधिदेवता हैं। इन सभी नित्याओं का अभिमानिनी देवता एकमात्र 'कामदेव' है तथा अधिष्ठानदेवता भी एक ही है और वह है— कामेश्वरी।

३. मूलविद्यागत पन्द्रह वर्णों की दर्शा आदि कलायें नित्या कला आदि की विग्रहान्तरमात्र हैं।

दर्शादि कलाओं का खण्डत्रय-विभाजन

आग्नेय खण्ड	सौरखण्ड	चान्द्र खण्ड
दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना।	आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सुनृता, इरा।	आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी।

इन कलाओं का नित्याओं से ऐक्य है।

दर्शा आदि कलाओं का स्वरूप

आग्नेय खण्ड : (पञ्चतत्त्वात्मक) कलायें—

१. दर्शा कला = शिवतत्त्वात्मिका

२. दृष्टा कला = शक्तितत्त्वात्मिका
३. दर्शता कला = मायातत्त्वात्मिका
४. विश्वरूपा कला = शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका
५. सुदर्शना कला = जलतत्त्वात्मिका

यह आग्नेय खण्ड क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर— इन पाँच महाभूतों से सम्बद्ध है। जैसा कि लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'पञ्चतत्त्वात्मकं खण्डमाग्नेयम्।'

इस 'अग्निखण्ड' के अधिदेवता अग्निदेव हैं। कामदेव सर्वत्र अधिदेवता हैं और कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री हैं।

सौरखण्ड : कलायें—

१. आप्यायमाना कला = तेजस्तत्त्वात्मिका
२. आप्यायमाना कला = वायुतत्त्वात्मिका
३. आप्याया कला = मनस्तत्त्वात्मिका
४. सूनृता कला = पृथ्वीतत्त्वात्मिका
५. इरा कला = आकाशतत्त्वात्मिका
६. आपूर्यमाणाकला = विद्यातत्त्वात्मिका

सौरखण्ड का देवता— सूर्य।
सर्वत्र देवता— कामदेव।
सर्वत्र अधिष्ठात्री देवी— कामेश्वरी।

आपूर्यमाणा कला का 'चन्द्रखण्ड' में स्थित रहने पर भी 'सौरखण्ड' में ही अन्तर्भाव है। इरा एवं आपूर्यमाणा में ऐक्य है।

सौम्यखण्ड (चान्द्र खण्ड) : कलायें—

१. आपूर्यमाणा कला = महेश्वरतत्त्वात्मिका
२. पूरयन्ती कला = परतत्त्वात्मिका
३. पूर्णा कला = आत्मतत्त्वात्मिका
४. पौर्णमासी कला = सदाशिवतत्त्वात्मिका

सौम्य खण्ड का अधिदेवता— सोम।
सर्वत्र देवता— कामदेव।
सर्वत्र अधिष्ठात्री— कामेश्वरी।

नित्या कला सादाख्य तत्त्वात्मिका है। ये सभी कलायें विशुद्धि चक्र— षोडशार में प्रागादि क्रम से १६ दिशाओं में परिभ्रमण करती हैं।

आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल की १६ कलायें हैं। वे 'षोडशार' की १५ कलाओं में परिभ्रमण करती हैं। (लक्ष्मीधरा)

षोडशी कला का अवस्थान सहस्त्रदल कमल में है— 'षोडश्या: कलाया: सहस्त्रदलकमल एवावस्थानं, तत्रावस्थिताया: नित्याया: कलाया: प्रभापटलं षोडशारे स्फुरन्ति।'[1]

इस प्रकार १५ नित्याओं के समुदायात्मक मन्त्र का १५ तिथियों में अनुष्ठान विहित है। पृथक् नित्यानुष्ठान प्रतिदिन पृथक्-पृथक् नियत है।

सादाख्या चन्द्रकला—

'इयं वाव सरघा' (तै० ब्रा० ३.१०.१०)

'तस्या अग्निरेव सारघं मधु' (तै० ब्रा०)

'ता मधुकृत:' (तै० ब्रा०)

'सरघा वत मधुस्यन्दिनी।'

श्रीचक्रात्मक चन्द्र भी 'सरघा' है— अमृतस्यन्द है।

बाह्यपूजा का खण्डन

'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्' अर्थात् श्रीचक्रात्मक नगर में प्रवेश नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि बाह्यपूजा नहीं करनी चाहिये—

'एनमृषिं मन्मथं विदित्वा नगरं श्रीचक्रात्मकं न प्रविशेत्, ऋषिज्ञानपूर्वकं श्रीचक्रात्मकं न पूजयेत्। बाह्यपूजां न कुर्यात् इति निषेधविधि:। बाह्यपूजायामेव ऋषिछन्दप्रभृतिज्ञानपूर्वकत्वम्। आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायां ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव।'[2]

---

१. लक्ष्मीधरा २. लक्ष्मीधरा

श्रीविद्या का स्वरूप (श्रीविद्या एवं गायत्री मन्त्र में एकता)

वाग्भव कूट (प्रथम कूट)

क

क = कामेश्वरशिव, ब्रह्म, कं ब्रह्म कामयते कामी जायते स एव निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृम्भते कामोऽभिधीयते। कामः ककार व्याप्नोति।

गायत्रीमन्त्र की समतुल्यता

तत् = ब्रह्म। ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। तदिति ब्रह्म शाश्वतम्।

अकार + हकार= शिव + शक्ति। स्फुरण + प्रकाश बिन्दु = सिसृक्षायुक्त ब्रह्म शक्ति को देखकर बिन्दु रूप धारण करता है। जिसमें शक्ति रक्तबिन्दु के रूप में प्रवेश करती है।

ए

ए= कामेश्वरी त्रिकोणा शक्तिरेकाकारेण महाभगेन प्रसूते तस्मादेकार एव गृह्यते। यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयात्मकम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते। (वा० के० त०)

गायत्री मन्त्र की समतुल्यता

सवितुर्वरेण्यम्– सविता= प्राणिप्रसवकारण योनि। षूञ् प्राणिप्रसवे, सविता प्राणिनः सूते= जगज्जननी कामेश्वरी देवी।

हकाराद्व्योमसम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः। रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः। लकारात्पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा।

ई

ई=आप्तवान् तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येवमीकारः (श्रुति)।

गायत्रीमन्त्र की समतुल्यता

भर्गो देवस्य धी। (सर्वान्तर्यामी सर्वपोषक) भर्ग= सर्वान्तर्यामी सर्वाधार शिव। धरो धीत्येवं धार्यते। (श्रुति)

ल

ल = पृथ्वी। ल= पृथ्वी बीज।

गायत्री मन्त्र= धीमहि= मही = पृथ्वी, धियो यो नः प्रचोदयात्।

ह्रीं

ह्रीं = (माया)

गायत्री के चतुर्थ चरण के समतुल्य परोरजसे सावदो म = रज से परे = निर्मल, निर्गुण, त्रिगुणातीत।

कामराज कूट (द्वितीय कूट)

ह स क

(गायत्री मन्त्र तत्सवितुः वरेण्यम् की समतुल्यता) सकार= सविता। क = वरेण्य।

चारो प्रकारों के स्पर्श = ३ काम कलाओं एवं तृतीय ईकार से उत्पन्न है।

ह ल

(गायत्री के भर्गो देवस्य धी के समतुल्य) हकाराक्षरं शिवरूपम्।

ह्रीं

श्रीविद्या के १५ वर्ण= पञ्चभूतों के ५, ४, ३, २, १ गुणों के प्रतिनिधि हैं।

शक्तिकूट (तृतीय कूट)

स क

१. तत्सवितुः वरेण्यम्।
२. भर्गो देवस्य धी के समतुल्य।

ल ह्रीं

ह, क, र, स, ल = वर्णों से श्रीविद्या पञ्चभूतों को जन्म देती है, अतः पञ्चभूतमयी है।

कूटत्रय

ब्रह्मा + भारती	हरि + क्षिति	शिव + अपर्णा
(वामा + इच्छा)	(ज्येष्ठा + ज्ञाना)	(रौद्री + क्रिया)

इनकी ३ समष्टियाँ— शान्ता एवं अम्बिका रूप में ३ ईकारों द्वारा जानी जाती हैं।

गायत्री एवं श्रीविद्या के प्रथम कूट का अर्थ— सर्वजगत् सिसृक्षारूपकामनावान् कामेश्वरः जग-त्कारणरूपा कामेश्वरी, शिवः सर्वान्तर्यामी सर्वाधारः पञ्चमहाभूताद्यात्मना परिणतः परवस्तुमात्रविषयकनिर्विकल्पकज्ञानजनको निरञ्जनो निर्गुणो वेदैर्लक्षणया गम्यः शक्त्या त्वगम्यो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मा परतत्त्वमिति। (भास्करराय : वरिवस्यारहस्यम्)

विमर्शांश— इच्छा-ज्ञान-क्रिया = भारती, पृथ्वी, रुद्राणी।

प्रकाशांश— वामा, ज्येष्ठा, रौद्री। ३ शक्तियाँ : ब्रह्मा, विष्णु रुद्र = पुरुषरूप। उनकी समष्टि = शान्तात्मिका शक्ति (तुरीया)।

श्रीचक्र का विभाजन

शक्तिचक्र	शिवचक्र
(त्रिकोण-अष्टकोण-दशारद्वय-चतुर्दशार)	(बिन्द्वष्टदलकमल-षोडशदलकमल-चतुरस्रत्रय)

'चतुर्भि: श्रीकण्ठै: शिवयुवतिभि: पञ्चभिरपि।'

'चतुर्भि: शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभि:।'

श्रीयन्त्र का विभाजन

सृष्टिचक्र	स्थितिचक्र	संहारचक्र
(भूपुर-त्रिवृत्त-षोडशदल-अष्टदल का समूह)	(चतुर्दशार-बहिर्दशार-अन्तर्दशार का समूह)	(अष्टार-त्रिकोणबिन्दुओं का समवायात्मक समूह)

श्रीचक्र एवं सत्यलोकादि लोकों में ऐक्य

श्रीचक्र	लोक	श्रीचक्र	लोक
१. बिन्दुचक्र	सत्यलोक	५. बहिर्दशार	स्वर्लोक
२. त्रिकोण	तप:लोक	६. चतुर्दशार	भुवर्लोक
३. अष्टकोण	जनलोक	७. प्रथम वृत्त	भूलोक
४. अन्तर्दशार	महर्लोक		

श्रीचक्र एवं सुतल, वितल, पातालादि में ऐक्य

श्रीचक्र	लोक	श्रीचक्र	लोक
१. अष्टदल	अतल	५. भूपुर की प्रथम रेखा	महातल
२. अष्टदल का बहिर्वृत्त	वितल	६. भूपुर की द्वितीय रेखा	रसातल
३. षोडशदल कमल	सुतल	७. भूपुर की तृतीय रेखा	पाताल
४. वृत्तत्रय	तलातल		

पिण्ड एवं श्रीचक्र में ऐक्य

शरीरांग	श्रीचक्र	शरीरांग	श्रीचक्र
१. ब्रह्मरन्ध्र	बिन्दु	८. नाभि	अष्टदल
२. मस्तक	त्रिकोण	९. कटि	अष्टदल-बहिर्वृत्त
३. ललाट	अष्टकोण	१०. स्वाधिष्ठान	षोडशदल
४. भ्रूमध्य	अन्तर्दशार	११. मूलाधार	बहिस्त्रिवृत्त
५. कण्ठ	बहिर्दशार	१२. जानु	भूपुर की प्रथम रेखा
६. हृदय	अन्तर्दशार	१३. जंघा	भूपुर की द्वितीय रेखा
७. कुक्षि	वृत्त	१४. पैर	भूपुर की तृतीय रेखा

श्रीविद्या मन्त्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य

मन्त्र	यन्त्र	मन्त्र	यन्त्र
लकार	भूपुर	ककार	अष्टार
सकार	षोडशदल	अर्धचन्द्र	त्रिकोण
हकार	अष्टमूर्त्यात्मक अष्टदल	नादरूप अर्धमात्रा	त्रिकोणयोनि
एकार	चतुर्दशार	बिन्दु	बिन्दुचक्र
(भुवनेश्वरी)			
एकार बहिर्दशार	दशावतारात्मक	मन्त्रगत 'लं' पृथ्वीतल	कामेश्वरस्वरूपात्मक
हृल्लेखागत रकार	अन्तर्दशायें	मन्त्रगत सकार	चन्द्र-नक्षत्र-ग्रह-राशि आदि का उद्भव

सहस्रदल कमल सहस्रदल कर्णिकायुक्त है। इस कमल के १००० दल हैं।

बैन्दव स्थान कर्णिका के मध्य चतुर्द्वारोपेत है— 'एवं प्रासादन्यायेन श्रीचक्रस्य कमलानां चैक्यमनुसन्धेयम्।'

नाद-बिन्दु का ऐक्य

पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐक्य

नाद— 'नादोनाम श्रीचक्रम्।' **बिन्दु**— बिन्दुर्नाम षट्कमलम्। (सौभाग्यभास्कर)				
पिण्डस्थ चक्र	**दल**	**कर्णिका के कोण**		**श्रीचक्र**
आधार चक्र	४	त्रिकोणात्मिका		त्रिकोण
स्वाधिष्ठान चक्र	६	अष्टकोणात्मिका		अष्टकोण
मणिपूर चक्र	१०	दशकोणात्मिका	शक्तिचक्र	दशार (प्रथम)
अनाहत चक्र	१२	द्वितीय दशकोणात्मिका।	ऐक्य	दशार (द्वितीय)
विशुद्धि चक्र	१६	चतुर्दश कोणात्मिका		चतुर्दशार
आज्ञा चक्र	०२	अष्टकोण+षोडशकोण= द्विधा कर्णिका।		शिवचक्रचतुष्टय

'तत्त्वमसि' महावाक्य में 'तत्' शब्द का अर्थ निर्गुण ब्रह्म अर्थात् महाकामेश्वर है और 'त्वं' शब्द संविद्रूप, साक्षी, कूटस्थ महाकामेश्वरी है तथा दोनों का अभेदात्मक सामरस्य ही 'तत्त्वमसि' का रहस्यार्थ है। यह ज्ञाता-ज्ञेय, अहन्ता-इदन्ता, प्रकाश-विमर्श में अभेद का भी बोधक है। आकाश के बीज 'हं' एवं भुवनेश्वरीबीज ईकार से १४ भुवनों की उत्त्पत्ति हुई है। 'एकार' विष्णु के दशावतार एवं वैष्णवी शक्ति से एकाकार है। 'रं' बीज परम ज्योतिर्मयी परा शक्ति का वाचक है। 'ककार' सर्वेच्छाप्रदायिनी कामदा शक्ति का द्योतक है। 'अर्धचन्द्र' विश्वयोनि एवं 'बिन्दु' महाकामेश्वरी का द्योतक है। 'बिन्दु' सर्वानन्दमय चक्र या ब्रह्म है। वहाँ महाकामेश्वर एवं महाकामेश्वरी का निवास है।

पिण्ड में जो मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा आदि चक्र हैं; वे सभी श्रीचक्र में अन्तर्भूत हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाक् भी श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में अन्तर्भूत हैं।

भूपुर, वृत्त एवं त्रिकोण गुणत्रय, कालत्रय, अवस्थात्रय एवं लोकत्रय के बोधक माने जाते हैं। बिन्दु तुरीय एवं तुरीयातीत के बोधक हैं। चूँकि पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में भी एकता है; अत: 'श्रीचक्र' का ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड दोनों से ऐक्य है। प्रणवस्वरूप 'शब्दब्रह्म' भी श्रीचक्र का ही प्रतीक है। इस दृष्टि से प्रणव के अ, उ एवं म मन्त्राक्षर अवस्था, वाक् के ४-४ रूपों एवं श्रीचक्र के सृष्टि, स्थिति, संहार एवं अनाख्या— ४ रूपों से एकाकार है और सभी का श्रीचक्र के इन्हीं चार स्वरूपों में अन्तर्भाव है।

श्रीचक्र एवं त्रिपुरा के त्रिपुरात्व में अन्त:सम्बन्ध— बिन्दु से आरम्भ करके अष्टदल = सृष्टिचक्र तक, 'चतुर्दशार' से आरम्भ करके 'अन्तर्दशार' तक और अष्टार से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त संहारचक्र है। चक्र के ३ भाग हैं और त्रिपुरा भी त्रयात्मिका हैं।

श्रीचक्र का अर्चन क्रम— श्रीचक्र के अर्चनक्रम में दो सम्प्रदायों की पृथक्-पृथक् दृष्टियाँ हैं— दक्षिणामूर्ति और हयग्रीव। हयग्रीव-आनन्दभैरव सम्प्रदाय में स्थिति-क्रम में बिन्दु-त्रिकोण-कामेश्वरी आदि नित्या, गुरुपंक्ति का पूजन एवं फिर भूपुर से आरम्भ करके क्रमश: अष्टार-त्रिकोण आदि का पूजन होता है। अन्य पूजन दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय के अनुसार ही है।

अर्चनक्रम

दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय के अनुसार | 'हयग्रीव' आनन्दभैरव सम्प्रदाय के अनुसार

१. बिन्दु से आरम्भ करके भूपुरपर्यन्त
अर्चनाक्रम— सृष्टिक्रम में।

२. भूपुर से आरम्भ करके अष्टारपर्यन्त,
पुन: बिन्दु से चतुर्दशार तक— स्थितिक्रम में।

३. भूपुर से आरम्भ करके बिन्दुपर्यन्त
अर्चन— संहारक्रम में।

पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में ऐकात्म्य

चन्द्रबिम्ब श्रीचक्र है— 'चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्' (लक्ष्मीधरा)। कला ही 'सादाख्या' है। नादबिन्दु कलात्मक और श्रीचक्र त्रिखण्डात्मक है। सादाख्या कला श्रीविद्या का अपर पर्याय है तथा नादबिन्दु कलातीत है।

भावनोपनिषद् में कहा गया है कि 'नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्'। श्रीचक्र को 'शिवयोर्वपु:' (शिव एवं शक्ति का शरीर) भी कहा गया है; क्योंकि शिवचक्र एवं शक्तिचक्र के संयोग से ही श्रीचक्र का निर्माण हुआ है। पिण्डस्थ चक्र एवं श्रीचक्र में सामरस्य है—

पिण्डस्थ चक्र	चक्र का स्तर	श्रीचक्र के अंगभूत चक्र
१. मूलाधारचक्र	अन्धतामिश्र : अन्धतामिश्र लोक।	त्रिकोण
२. स्वाधिष्ठानचक्र	सूर्य की किरणों के सम्पर्क में आने के कारण : मिश्रलोक।	अष्टकोण
३. मणिपूरकचक्र	अग्नि स्थान में रहने पर भी वहाँ जल के स्थित रहने से सूर्यकिरणों के प्रतिबिम्ब के कारण : मिश्रकलोक।	दशार (प्रथम दशार)
४. अनाहतचक्र	ज्योतिर्लोक।	द्वितीय दशार
५. अनाहतचक्रपर्यन्त	ज्योतिस्तमोमिश्रक लोक है— 'ज्योतिस्तमो लोक:'।	
६. विशुद्धिचक्र	चान्द्र लोक।	चतुर्दशार
७. आज्ञाचक्र	चन्द्रस्थान में रहने के कारण यह सुधालोक है। चूँकि यहाँ दोनों ही लोकों से सूर्य की किरणों का सम्पर्क है; अत: यहाँ चाँदनी नहीं है। यह है— सुधालोक।	शिवचक्रचतुष्टय (आज्ञाचक्र में १६हवीं कला का प्रतिफलन १५कलायें हैं।)
८. सहस्रदल कमल	यह ज्योत्स्नामय लोक है। यहाँ स्थित चन्द्रमा नित्य कलाओं से युक्त चन्द्रमा है।	बिन्दुस्थान चतुरस्र

आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल में सोलह कलायें हैं। (सुभगोदय)

१५ कलाओं का षोडशार में परिभ्रमण होता रहता है। सोलहवीं कला का अवस्थान सहस्रदल कमल में है। वहाँ स्थित नित्याओं (कलाओं) का प्रभामण्डल षोड़शार में स्फुरित होता रहता है (लक्ष्मीधरा) = ज्योत्स्नामय लोक।

श्रीचक्ररूप चन्द्रबिम्ब में केवल एक ही कला है और वह है— 'परमा कला'। सभी मिलकर १६ कलायें हो जाती हैं। लक्ष्मीधरा में कहा भी गया है—

षोडशेन्दो: कला भानो: द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृका चक्ररूपिणी।।

१५ कलायें ५० वर्णों से युक्त हैं। ये पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में अन्तर्भूत हैं—

'एता: पञ्चाशत्कला: पञ्चाशद्वर्णात्मका: पञ्चदशाक्षरीमन्त्रेऽन्तर्भूता:।'

यथा श्रीविद्या के आदि वर्ण 'क' तथा अन्तिम वर्ण 'ल' प्रत्याहत होकर उनके मध्यवर्ती सभी वर्णों के ग्राहक बन जाते हैं। यह लकार, एकार पूर्वबर्ती अकार से प्रत्याहत होकर ५० वर्णों का ग्राहक बन चारो अनुस्वार बिन्दु के लक्षक हैं। ऊपर स्थित बिन्दु नाद का लक्षक है। (लक्ष्मीधरा)

द्वितीय परिच्छेद

(अध्याय : ६-१५)

▼

देवता-तत्त्व

राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी

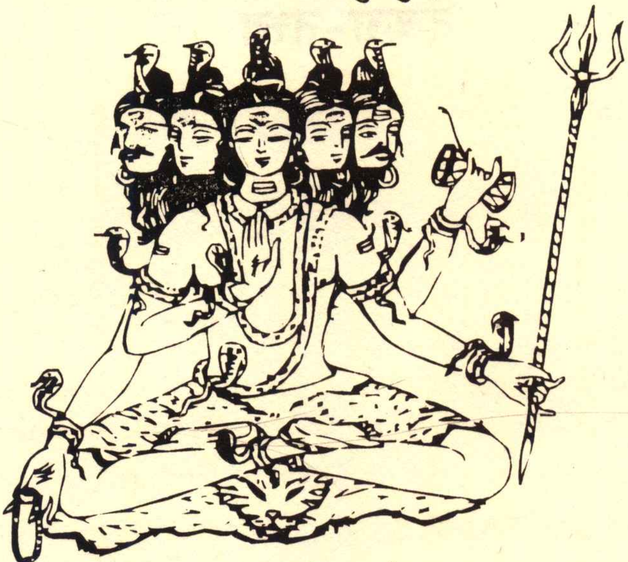

पञ्चमुखी महादेव

॥ श्रीः ॥

द्वितीय परिच्छेद

देवता-तत्त्व

स्फुटशिवशक्तिसमागमबीजाङ्कुररूपिणी परा शक्तिः।
अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भाति।।

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरूपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः।।

(कामकलाविलास)

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपरम्ये सुकल्पद्रुमाकल्पकादम्बसंस्थे।
स्फुरत्स्वर्णसिंहासने रत्नपीठे भवाङ्के निषण्णां भजाम्यन्नपूर्णाम्।।

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृत-निश्शेष-तत्त्वग्रामस्वरूपिणी।। (वामकेश्वरतन्त्र)

तन्मयीं परमानन्दनन्दितां स्पन्दरूपिणीम्।
निसर्गसुन्दरीं देवीं ज्ञात्वा स्वैरमुपासते।।

(योगिनीहृदयम्)

सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वञ्चाहञ्च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत्सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताऽऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।

सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति।

यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दम्। तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।

सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गात् महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः।

(बह्वृचोपनिषद्)

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः।। (चतुश्शती)

षष्ठ अध्याय

श्रीविद्या में देवता तत्त्व

भगवत्योपासना में स्तोत्रादि का जो पाठ किया जाता है, उसके कई अंग हैं; यथा—

१. ऋषि	३. देवता	५. कीलक
२. छन्द	४. शक्ति	६. विनियोग

इन सभी में प्रमुख अंग या तत्त्व 'देवता' है।

श्रीविद्यामत में 'भगवती महात्रिपुरसुन्दरी' ही 'देवता' हैं। ललितासहस्रनाम के अनुसार उनका स्वरूप इस प्रकार है—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीतवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम्।।

ललितासहस्रनामस्तोत्र के पाठ में छन्दादि अंगों का देवता के साथ इस प्रकार सन्निवेश है—

१. अस्य श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य वशिन्यादिवाग्देवता ऋषयः।
२. अनुष्टुप् छन्दः।
३. श्रीललिता परमेश्वरी देवता।
४. श्रीमद्वाग्भवकूटेति बीजम्।
५. मध्यकूटेति शक्तिः।
६. शक्तिकूटेति कीलकम्।
७. श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीप्रसादसिद्धिद्वारा चिन्तितफलावाप्त्यर्थे जपे विनियोगः।

योगिनीहृदय के टीकाकार अमृतानन्द अपनी टीका 'दीपिका' में कहते हैं कि भगवती के चक्रसङ्केत, मन्त्रसङ्केत एवं पूजासङ्केत की मीमांसा करने वाले योगिनीहृदय का अनुबन्धचतुष्टय इस प्रकार है—

अनुबन्धचतुष्टय

अधिकारी	विषय	प्रयोजन	सम्बन्ध
मुमुक्षुरधिकारी	स्वसंविद् देवताविषयः	मोक्षः प्रयोजनम्	प्रतिपाद्य-प्रतिपादक-भावः सम्बन्धः

सेतुबन्ध (योगिनीहृदय की टीका : श्लोक— १,४१-४३) में भास्कर राय कहते हैं कि—

देवता

इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता	वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका	परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी	} 'चतस्रो देवता' (भास्कर राय)

कामकलाविलास में शक्ति (देवता) को 'विमर्श' आख्या दी गई है और उन्हें 'दर्पण' कहा गया है।

विमर्शदर्पण (देवता)

परशिवरविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे।
प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः।।

अर्थात् 'विमर्श' एक दर्पण है, जिसमें परमशिव अपनी अभिज्ञा हेतु अपना मुख देखता है। प्रकाशैकस्वभाव 'परशिवभट्टारकरूप' सूर्य की रश्मियों के पुञ्ज का विमर्श-रूपी स्वच्छ मुकुर में प्रतिफलन होने से प्रतिप्रकाश द्वारा सुरम्य चित्तरूपी दीवार पर 'महाबिन्दु' प्रकाशित होता है।

देवता श्रीविद्यास्वरूपा है। कामकलाविलास (११) में कहा गया है कि जिस प्रकार प्रकाश-विमर्शात्मक बिन्दुद्वय में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार 'विद्या' एवं 'देवता' में भी कोई भेद नहीं है—

बिन्दुद्वितयं यद्वदभेदविहीनं परस्परं तद्वत्।
विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः।।

भगवती श्रीचक्र में संवित्ति रूप से निवास करती है—

चक्रे संवित्तिरूपा च महात्रिपुरसुन्दरी। (यो. हृ.-३.१६६)

(अ) देवता तत्त्व

'देवृ देवने', 'दिवि प्रीणने', 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्न-कान्तिगतिषु' और 'दिवु परिकूजने' धातुओं से पचाद्यच् प्रत्यय लगकर 'देव' शब्द व्युत्पन्न होता है। देव शब्द से स्वार्थे तल् (५.४.२७) और स्वार्थे प्रज्ञाद्यण् (५.४.३८) का संयोग होने पर 'देवता' शब्द निष्पन्न होता है। देवता शब्द में देवता शब्दघटक सभी धातुओं के अर्थों का सन्निवेश हुआ है। प्रसन्न करना, प्रकाश करना, खेलना, विजयेच्छा— ये सभी धात्वर्थ देवता के द्योतक हैं।

शुक्ल यजुर्वेद 'वाजसनेय माध्यन्दिन संहिता' के मन्त्रों में 'अग्निर्देवता, वातो देवता' मन्त्र द्वारा अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि 'देवता' शब्द से सम्बोधित किये गये हैं।

देवताओं के तीन स्वरूप— देवता के तीन रूप हैं— आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक। उदाहरणार्थ अग्नि देवता को लें—

क. आधिभौतिक अग्नि देवता— भौतिक अग्नि।

ख. आध्यात्मिक अग्नि देवता— बुद्धि, उदान, चक्षु, पाद आदि।

बुद्धिरुदानयोगेन चक्षुर्द्वारा रूपगुणः पादाधिष्ठितोऽग्नौ तिष्ठदग्निस्तिष्ठति।

(त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्)

ग. आधिदैविक अग्निदेवता— आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक अग्नि की अद्भुत शक्ति पर नियन्त्रण रखने के लिए भगवान् ने आधिदैविक अग्नि देवता को नियुक्त किया है; किन्तु ये सभी भगवान् के भय से नियन्त्रित एवं शक्तिमान हैं। कठोपनिषद् (२.३.३) मे कहा भी गया है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।

देवताओं के वर्ण

क्षत्रिय वर्ण के देवता (शासक देवता)— इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि।

ब्राह्मण वर्ण के देवता— अग्नि।

वैश्य वर्ण के देवता— धन के देवता— अष्टवसु।

शूद्र वर्ण के देवता— पूषा।

चन्द्रमा = ब्राह्मण वर्ण का देवता : 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा' (वेद का मन्त्रभाग)। देवजातियाँ दश हैं— विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत।

परम देवता केवल एक है— 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः, स सुपर्णो गरुत्मान्, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।'

परमात्मा सर्वदेवमय है।

समस्त विश्व आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक रूप में विभक्त है। आधिदैविक जगत् में देवता का आधिपत्य है। देवताओं के शरीर होते हैं। मीमांसा दर्शन की एक साम्प्रदायिक दृष्टि यह भी है कि देवताओं का विग्रह नहीं होता, बल्कि वे 'शब्दमय' होते हैं। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के 'देवताधिकरण' में पर्याप्त प्रकाश डाला है। शंकराचार्य का कथन है कि देवताओं का विग्रह होता है, अन्यथा उन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता; जबकि इन्द्र सौ वर्षों तक प्रजापति के पास ब्रह्मविद्या के प्राप्त्यर्थ ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे एवं वरुण के पुत्र भृगु ने वरुण से ब्रह्मज्ञान-प्राप्त्यर्थ निवेदन किया था। (छा०- ८.११.३, तै०- ३.१)

देवता शब्द का अर्थ है— 'जायमानो वै जायते, सर्वाभ्य एताभ्य एव देवताभ्यः' (ऐतरेय)। देवता विश्व का उपादान कारण है।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि 'दानाद् देवः', 'यो देवः सा देवता।' इस प्रकार स्पष्ट है कि देवता ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्माण्डान्तर्गत वस्तुओं की सृष्टि हेतु अपने-अपने अंशों का दान करते हैं; इसीलिए वे 'देव' या देवता' कहलाते हैं।

देवताओं का दान अतुल्य है; जैसे कि वायु का दान—

आक्सीजन, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान आदि दश वायु का दान।

अग्नि का दान— ताप, बड़वानल, महानसाग्नि, जठराग्नि आदि।

यदि ताप नहीं होता तो ब्रह्माण्ड सिकुड़कर नष्ट हो जाता। शीत → सिकुड़न (Contraction) ताप → (Expansion)। अग्नि का अभाव → ब्रह्माण्ड का सिकुड़न → विनाश आदि आदि।

'प्राण वाव देवता:।' देवता सृष्टि के प्राण हैं। देवतारूप प्राण सात हैं— ऋषि प्राण, पितरप्राण, देवप्राण, असुरप्राण, गन्धर्वप्राण, मानवप्राण और पशुप्राण। इनमें से स्वयम्भू-मण्डल का प्राण 'ऋषिप्राण', परमेष्ठिमण्डल का प्राण 'पितरप्राण', सौरप्राण 'देवप्राण', चन्द्रमाप्राण 'गन्धर्वप्राण' और पृथ्वी का प्राण 'असुरप्राण' है। आगम की भाषा में जो शक्ति है, वही वेदों की भाषा में 'प्राण' या 'देवता तत्त्व' है। पदार्थ प्राणों का ग्राम है। पदार्थ यदि 'शक्तिग्राम' है तो 'प्राणग्राम' भी है।

साधक देवस्वरूप बनने की दृष्टि से ही देवोपासना करता है—

'इन्द्र ! ओजिष्ठ। ओजिष्ठस्त्वं देवेषु असि, ओजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्' (यजु: ८.३९) अर्थात् हे इन्द्र ! तुम जिस प्रकार देवों में अति तेजस्वी हो, उसी प्रकार मैं भी मर्त्यों में ओजस्वी हो जाऊँ।— यही देवोपासना का चरम लक्ष्य है।

देवों की व्यापकता— सूतसंहिता (४.७.२४-२८) के अनुसार—

१. समस्त प्राणियों का शरीर देवतामय ही है।

२. सम्यग् ज्ञानवानों के शरीर में सभी देवता प्रत्यगात्म रूप से स्फुरित होते हैं।

३. सन्मार्ग में स्थित कर्मनिष्ठ वैदिकों के विशुद्ध शरीर में देवता देवतारूप में स्फुरित होते हैं।

४. वेदों में अनधिकृत तान्त्रिकों के मलिन मन्दसत्त्वात्मक शरीर में देवता मन्द स्फुरण के साथ स्फुरित होते हैं।

५. प्राकृतों के जीवन में देवता तिरोभूत रहते हैं—

सम्यग्ज्ञानवतां देहे देवता सकला अमू:।
प्रत्यगात्मतया भान्ति देवतारूपतोऽपि च।।

वेदमार्गैकनिष्ठानां विशुद्धानां तु विग्रहे।
देवतारूपतो भान्ति द्विजा न प्रत्यगात्मना।।

तान्त्रिकाणां शरीरे तु देवता: सकला अमू:।
वर्तन्ते न प्रकाशन्ते द्विजेन्द्रा: शुद्ध्यभावत:।।

यथाजातजनानां तु शरीरे सर्वदेवता:।
तिरोभूततया नित्यं वर्तन्ते मुनिसत्तमा:।।

अतश्च भोगमोक्षार्थी शरीरं देवतामयम्।
स्वकीयं परकीयं च पूजयेत्तु विशेषतः।।
(सूतसंहिता-४.७.२४-२८)

सभी का शरीर देवतामय है— 'शरीरं देवतामयम्।'

१. सम्यक् ज्ञानियों के शरीर में देवता प्रत्यगात्मतया स्फुरित होता है।

२. वेदमार्गैकनिष्ठ विशुद्ध शरीर में देवता देवतारूपतया स्फुरित होता है।

३. शुद्धिभावरहित तान्त्रिकों के शरीर में देवता का मन्द स्फुरण होता है।

४. प्राकृतजनों के शरीर में देवता तिरोहित रहता है।

देवता का मूल स्वरूप— 'देवता' मन्त्रशक्ति का स्थूल स्वरूप है, जो प्रलयकाल में समग्र जगत् को अपने में लीन करके स्वात्मानन्द सुख में आनन्दित रहता है या प्रकाशित होता है और वही परमशिव देवता है—'यः सर्वोपरमे काले सर्वान् आत्मनि उपसंहृत्य स्वात्मानन्दसुखे मोदते प्रकाशते वा स देवः।'

देवता की परिभाषा

'महर्षि यास्क' के अनुसार देवता शब्द का निर्वचन—

१. 'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा' अर्थात् दान, दीपन या द्योतन करने के कारण देवता कहा जाता है।

२. 'द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता।' (निरुक्त-७.४.१५) अर्थात् 'द्युलोक' में निवास करने के कारण उसे 'देवता' कहा जाता है।

'दिव्यतीति देवः' अर्थात् जो प्रकाशित होता है वह देवता है।

'प्रकाशलक्षणा देवाः।' (महाभारत, आश्वमेधिक पर्व-४३.२१)
'एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म।' (बृहदारण्यक-३.९.९)
'आत्मा देवः' (गौडपादीय मा० कारिका-१२)

देवता तो एक ही है— प्राण, आत्मा या ब्रह्म। इसी एक देवता को कोई 'अग्नि', कोई 'प्रजापति', कोई 'इन्द्र' एवं कोई 'ब्रह्म' कहता है। मनुस्मृति (१२.१२२-१२३) में कहा भी गया है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।

एक ही देवता अग्नि, जल, ओषधि, वनस्पति एवं समस्त विश्व में व्याप्त तथा अनुप्रविष्ट है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (२.१७) कहता है—

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः।।

महर्षि यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड में देवों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया है। इस प्रकार केवल तीन देवों को ही यथार्थ देवता माना गया है, जो कि अग्नि, वायु और इन्द्र हैं—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। (निरुक्त-७.२.५)

अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा। (शतपथब्रा०-१४.३.२५)

अग्निर्वै सर्वा देवताः। (ऐतरेय ब्रा०-१.१.२.३)

किन्तु मूल में तो एक ही सत्ता है—

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। (निरुक्त-७.१)

दा, दीप, और द्युत् धातु से निष्पन्न 'देवता' शब्द दान, दीपन एवं द्योतन के समस्त ऐश्वर्यों से मण्डित है। जो कुछ परमात्मा में है, वह सब कुछ हममें भी है; केवल मात्रामात्र का भेद है—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।

योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम्।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

जायमानो वै जायते सर्वाभ्य एताभ्य एव देवताभ्यः।

यदि साधक देवतामय बन जाता है तो सर्वमय एवं भगवन्मय बन जायेगा।

देवताओं के भेद— देवताओं की संख्या तैंतीस कोटि कही गयी है। 'कोटि' शब्द अनन्त अर्थ का वाचक है। मैत्रायणी संहिता, काण्वसंहिता एवं निरुक्त में देवों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार है— 'अग्निः पृथ्वीस्थानः', 'वायुर्वा इन्द्रो वा मध्यमस्थानः' एवं 'सूर्यो द्युस्थानः'।

अग्नि 'पार्थिव' देवता है और इस अग्नि के अंशरूप सभी अग्नियाँ भी पार्थिव देवता हैं। वायु एवं सूर्य के अंशरूप जितने देवता हैं, वे सभी 'अन्तरिक्ष' देवता हैं। देवयोनियाँ सात हैं; इस सन्दर्भ में अमरकोष का निम्न वचन द्रष्टव्य है—

विद्याधराप्सरो यक्ष रक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।।

देवताओं के प्रकार

आजानदेवता | मर्त्यदेवता | अधिष्ठातृदेवता

आजानदेवता— ये महासर्ग से महाप्रलयपर्यन्त एक कल्प तक रहने वाले देवता होते हैं। इनके दो वर्ग हैं—

क. ईश्वर कोटि के देवता शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और विष्णु; ये पाँचों देवता

एवं ईश्वर दोनों हैं और ये पाँचों ही ईश्वरकोटिक हैं।

ख. साधारण देवता : इन्द्र, वरुण, मरुत्, रुद्र, आदित्य, वसु आदि हैं।

मर्त्य देवता— जो मानव यज्ञादि सुकृत करके स्वर्ग में पहुँचते हैं और पुण्य क्षीण होने पर लौट आते हैं, वे मर्त्यलोक के देवता कहलाते हैं; कहा भी गया है—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम्।
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।

अधिष्ठातृदेवता— सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई स्वामी होता है और वही होता है— अधिष्ठाता देवता। नक्षत्र, तिथि, वार, मास, वर्ष, युग, चन्द्र, सूर्य, वार, मास, समुद्र, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि के अधिष्ठातृ देवता 'आजानदेवता' भी बनते हैं।

परम देवता तो केवल एक है और वही अनेक रूप धारण कर लेता है—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। (बृहदारण्यक-२-५.१९)

देवोपासना का फल भी सुनिश्चित है; यथा— सुन्दर लोकों की प्राप्ति और इह लोक में धन-धान्य की प्राप्ति । विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा भी गया है—

नित्यं नराणां सुरपूजकानां लोका मनोज्ञाः सुलभा भवन्ति।
लोके तथाऽस्मिन् धनधान्ययुक्ताः समृद्धिभाजश्च नरा भवन्ति।।

एक ही देवता सर्वरूप हो गया है— 'सोऽकामयत, बहुस्यां प्रजायेयेति' (तै.उ.- २.६)

एकदेववाद

शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि 'देवता कितने हैं?' तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि 'तीन हजार तीन सौ छः देवता हैं।' शाकल्य द्वारा पुनः प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'तैंतीस देवता हैं'— अड़तीस वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र एवं प्रजापति। पुनः याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'छः देवता हैं, तीन देवता हैं, दो देवता हैं, डेढ़ देवता हैं, एक देवता हैं' (बृहदारण्यक उपनिषद्-३.९.१)।

निष्कर्ष— बहुदेववादी हिन्दू धर्म एकदेववादी (एकेश्वरवादी) है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्-६.११)

त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयं त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
(गणपति उपनिषद्)

'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

वस्तु-विभाग एवं देव-विभाग— ऋषियों ने संसार के समस्त पदार्थों (वस्तुओं)

को तीन भाग में वर्गीकृत किया, जो निम्नानुसार है—

आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक। देवों के भी ये तीन रूप हैं। नेत्रेन्द्रिय का विषय अधिभूत है। नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है। सूर्य अधिदेव हैं। सूर्यादि ग्रहों के अग्नि, जल, कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, शची एवं ब्रह्मा अधिदेवता हैं। यज्ञभाग लेने वाले देवता भी देवता हैं। मन्त्रों के भी देवता हैं। पञ्चभूतों के भी देवता हैं; जैसे कि आकाश के विष्णु, वायु के सूर्य, अग्नि की देवी दुर्गा, जल के गणेश, पृथ्वी के शंकर। ये देवता परमेश्वर के नित्य स्वरूप हैं।

छन्द— जिस प्रणाली के द्वारा जिस छन्द से जिस भाव का कम्पन उत्पन्न करके उद्देश्य सिद्ध होता है, वह उस निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का 'छन्द' होता है।

देवता— 'दिव्' धातु से द्योतन एवं क्रीडा अर्थ व्यक्त होता है। इसी धातु से 'देवता' शब्द व्युत्पन्न हुआ है।

प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में विभिन्न स्तरों पर चैतन्य परमात्मा किस प्रकार प्रकाशित और लीलारत है— यह देवतातत्त्व के अन्तर्गत है। भगवत् चैतन्य के विभिन्न प्रतिविम्ब या विभूति, विभिन्न भाव के लीलाभाव का नाम 'देवता' है।

विनियोग— कौन साधना किस भाव से अनुष्ठित हुईं एवं उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? यही विनियोगतत्त्व का विषय है।

जो व्यक्ति ऋषि, छन्द, देवता, योग आदि को विना जाने हुये अध्यापन या जप करता है, वह पापी हो जाता है—

अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेद् जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।।

(बृहद्देवता-८.१३६)

मान लीजिये कि हम देवता के स्वरूप को नहीं जानते तो उसके स्वधर्म, स्वलक्षण, शक्ति एवं स्वभाव के रूप में उसके दान, दीपन, विजय, क्रीडा, द्योतन आदि स्वरूप को कैसे जान पायेंगे? उसके विविध स्वरूप हैं—

'यतो दीप्यति क्रीडति सर्गादिभिः, विजिगीषतेऽसुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्र गच्छति तस्माद्देवः; 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः' (श्वेताश्वतर-६.११) इति मन्त्रवर्णात्।' (विष्णुसहस्रनाम : ५४वाँ श्लोक : शाङ्करभाष्य)

विष्णुपुराण की दृष्टि से देवता का स्वरूप— इस दृष्टि से देवता समस्त मनु, सप्तर्षि, मनुपुत्र एवं इन्द्र भगवान् विष्णु की विभूति है—

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः।।

(विष्णुपुराण-३.१.४६)

देवताओं के गण— इनके नौ गण हैं— आदित्य, तुषित, विश्वेदेव, साध्य, आभास्वर, मरुत्, महाराजिक, रुद्र और वसु। (शब्दरत्नावली)

देवताओं के मुख्य स्थान— इनके मुख्य स्थान तीन हैं— द्युस्थानीय, अन्तरिक्ष-स्थानीय और पृथ्वीस्थानीय।

देवता की उत्पत्ति— देवता की उत्पत्ति 'बीजतत्त्व' से होती है—

देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्। (यामल; शा.त.-९.९६)

जप एवं देवता तथा नौ तत्त्व (अन्तस्सम्बन्ध)— कामधेनुतन्त्र में कहा गया है कि नौ तत्त्वों को जाने बिना जप निरर्थक है। ये नौ तत्त्व निम्नांकित हैं और उनमें प्रथम तत्त्व देवतत्त्व है—

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं बिन्दुतत्त्वं च सुन्दरि।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च।।
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये।।(शाक्ता. त.-९.८७)

देवताओं की उत्पत्ति ककार से हुई है—

सर्वासां देवतानां च ककारं मूलमेव च। (शाक्ता. त.-९.५७)

ककार से ही सबकी उत्पत्ति हुई है—

ककारात् सर्वमुत्पन्नं कामकैवल्यमेव च। (शाक्ता. त.-९.५६)

ककार 'कादिविद्या' या 'पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या' का प्रथमाक्षर है।

मन्त्राधीनश्च देवता— देवता मन्त्र के अधीन हुआ करते हैं; क्योंकि देवताओं का सूक्ष्म रूप मन्त्ररूप एवं मन्त्र का स्थूल रूप देवता हुआ करता है। सूक्ष्मस्तरीय मन्त्र की डोर से स्थूलस्तरीय देवतारूपी पतंग तो पकड़ में आ ही जायेगी। देवता मन्त्राधीन हैं। देवता मन्त्रमय हैं— 'मन्त्रा एव तु देवताः' (मेरुतन्त्र)। उपासकों के कार्यनिष्पादनार्थ भले ही वे विभिन्न रूप क्यों न धारण कर लें, किन्तु उनका मूल स्वरूप मन्त्रस्वरूप ही है।

'मन्त्र' ध्वनिरूप हैं और (अ से ज्ञपर्यन्त) समस्त ध्वनियाँ शक्तिरूप हैं। प्रत्येक अक्षर में स्वतन्त्र शक्ति होती है। भिन्न-भिन्न अक्षरों के संयोग से भिन्न-भिन्न शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

किस उद्देश्य के पूर्त्यर्थ किस-किस ध्वनि (मातृका) का मिश्रण किया जाय और किन-किन अधिकारियों को दिया जाय, इसका सम्यक् ज्ञान मात्र ऋषियों को ही था। देवता 'मातृका' की शक्तियाँ हैं।

देवता मन्त्रसाधना का सर्वोच्च तत्त्व है। वही तो साधना के केन्द्र में रहता है। उसके नाम की साधना ही तो मन्त्रसाधना है। उसका नाम ही 'मन्त्र' है।

देवता की परिभाषा— कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्च पार्वति।
तापत्रयादिशमनाद्देवता परिकीर्तिता।।

देवता भक्तों के शरीर में निवास करता है। भक्तों को वरदान देकर उनका अभीष्ट पूरा करता है एवं तापत्रय (आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक) का शमन करता है। इसीलिए इसे देवता कहते हैं। देवता तत्त्व संवित् स्वरूप होता है—

स्वसंवित्त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्। (योगिनीहृदयम्, पृ०-३०२)

बीज और देवता— प्रत्येक चक्र में पृथक्-पृथक् तत्त्व एवं उनके 'बीजमन्त्र' होते हैं। 'बीजमन्त्र' तत्त्वों के बीज हैं। तत्त्व बीजों से उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। जो मातृका स्थूलत: उच्चरित होती है, उसके सूक्ष्म रूप को जो शक्ति उत्पन्न एवं चालित करती है, वही उन तत्त्वों का कारण है। जैसे कि 'मणिपूर चक्र' का तत्त्व अग्नि है और बीजमन्त्र 'र' है। अग्नि जिन शक्तियों का सम्मिलित बाह्य रूप है, उन्हीं शक्तियों से जो सूक्ष्म शब्द निर्मित होता है, उसी का स्थूल (वैखरी) शब्दरूप 'रं' अक्षर है। (बीजमन्त्र → तत्त्व। यथा— 'रं' (बीजमन्त्र) → अग्नितत्त्व)।

बीज से ही देवता का प्रादुर्भाव होता है—

तस्माद्बीजात् समाकृष्य देवतारूपमुद्भवम्।(काम. ११ पटल)

तस्माद्बीजाद्वरारोहे देवता जायते ध्रुवम्।(काम. ११ पटल)

बीजात्तु जायते विष्णुरवतारवर: प्रिये।
बीजात्तु जायते रामो बीजात् कृष्ण: प्रजायते।।
स्थावरं जङ्गमं देवि ! सर्वं बीजात् प्रजायते।।(काम. १३ पटल)

साक्षात् श्री प्रकृतिर्देवि बीजरूपा सनातनी।(काम. १३ पटल)

बीजात्तु जायते देवि रामकृष्णादयश्च ये।
ते सर्वे चञ्चलापाङ्गि बीजात्तु जायते ध्रुवम्।।(काम. १३ पटल)

बीजसाधन— पहले बीज का जप करना चाहिए और बाद में बीज का ध्यान करना चाहिये—

प्रजपेत् प्रथमं बीजं बीजध्यानं तत: परम्।
एतत्तु प्रथमं बीजसाधनं दुर्लभं प्रिये।।(काम. १३ पटल)

भावयेन्मन्त्रबीजानि यस्य या इष्टदेवता।
भावयेत् प्रथमं बीजं वराटोपरि पार्वति।
दशधा दशधा देवि प्रजपेद्बीजमुत्तमम्।।(काम. १३ पटल)

बीजमध्ये तु ध्यायेदिष्टं सुलोचने।
तस्माद्बीजाद्वरारोहे देवता जायते ध्रुवम्।।(काम. १३ पटल)

शक्तिर्वा विष्णुदेवो वा शिवो वा सूर्य एव वा।
बीजादुत्पाद्यते देवि परब्रह्म निरञ्जनम्।
बीजध्यानं विना देवि ! कथमुत्पद्यते हरि:?
सदाशिवो महादेव: कथमुत्पद्यते स्वयम्।
सदाशिवस्य जननी बीजरूपा सनातनी।।
(कामधेनुतन्त्र, पटल १३[1])

इसीलिए कहा गया है कि—

सर्वेषां चैव बीजानामेवं ध्यानं समाचरेत्।। (काम० तन्त्र-१३)

देवतातत्त्व में साधक के भीतर-बाहर के समस्त देहादिक तत्त्वों द्वारा भगवत् चैतन्य को पूर्णतया परिणत करके उस साधक जीव को पुरुषोत्तम में परिणत किया जा सकता है। इसमें इसका रहस्य एवं इसकी सम्भावना अन्तर्निहित है। समस्त तत्त्वों में भगवत् चैतन्य को प्रस्फुटित करना, उपलब्ध करना एवं देवमय हो जाना— यह भी देवतातत्त्व का निहितार्थ है। भगवत् चैतन्य प्रकृति के समस्त स्तरों में प्रतिबिम्बित होकर किस प्रकार प्रकाशित है— लीला कर रहा है— इसका समावेश भी देवता तत्त्व में है।

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्' के अनुसार साधक का स्वयं देवता बनकर अपूर्णता से पूर्णता के स्तर पर आरूढ होना भी 'देवता तत्त्व' का निहितार्थ है। 'अहं देवी न चान्यो-ऽस्मि' की अनुभूति भी देवता तत्त्व का व्यंग्यार्थ है। देवता का साक्षात्कार करना एवं देवमय बनना, देव में लय हो जाना एवं स्वयं देवस्वरूप हो जाना— ये सभी 'देवता तत्त्व' के निहितार्थ हैं।

मन्त्र के अंग (प्रणव) के भीतर भगवान् के 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों पक्ष सन्निहित हैं। मन्त्र के अंगीभूत बीजतत्त्व से ज्ञात होता है कि हमारा प्रकृत स्वरूप क्या है? हमारा भगवान् के साथ क्या सम्बन्ध है? भगवान् ने सृष्टि का उद्देश्य क्या नियत किया है? हमारे भीतर अन्तर्निहित कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं?

मन्त्र का जप इस प्रकार किया जाना चाहिये कि मन्त्र का देवता स्वयमेव आने के लिए बाध्य हो जाय। शुद्ध मन्त्र का शुद्ध उच्चारण किये जाने पर मन्त्र जागृत होकर अभीष्ट पदार्थ को खींचकर सामने ला सकता है। शब्द के उच्चारण का जो स्तर होगा, वह उसी स्तर तक पहुँचता है। देवता का नाम ही है— मन्त्र। जिस नाम के पुकारने से देवता आविर्भूत होकर अभीष्ट-पूर्ति करता है, वही देवता का आविर्भाव है। मन्त्र चिच्छक्ति का प्रकाश है— 'मन्त्राश्चिन्मरीचय:'। 'मन्त्र' चैतन्य की घनीभूत मूर्ति या देवता का आत्म-प्रकाश है। 'बीज' ही मूल मन्त्र है। मन्त्र और देवता अभिन्न हैं।

भगवती गुरु भी हैं; अत: देवी एवं गुरु में अभिन्नता है। चतु:शती में कहा भी गया है—

(कामधेनु०, २१वाँ पटल)

---

१. बीजादुत्पद्यते देवो देवी वा कमलेक्षणे।।

निष्कलतत्त्वे शिवे बुद्ध्वा तद्रूपत्वं गुरोरपि।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।।

(श्वेताश्वतरोपनिषत्)

गुरु के शरीर में स्वयं भगवान् स्थित होकर गुरुत्व के दायित्व का निर्वाह करते हैं और दीक्षा देते हैं।

भगवत् सत्ता एवं गुरु में ऐकात्म्य

शिव एव सदा साक्षादास्थाय गुरुविग्रहम्।
दीक्षां करोति विश्वात्मा शम्भुशक्त्यनुवेधतः।।

अर्थात् गुरु के शरीर में भगवान् शिव ही गुरुत्व का दायित्व निभाते हैं।

देवतास्वरूपिणी भगवती विमर्श शक्ति है— 'विमर्श' क्या है?

जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का हेतुभूत अकृत्रिम अहंभाव परामर्श ही विमर्श है— 'जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताकृत्रिमाहम्भावपरामर्शो विमर्शः'। (नटनानन्द)

विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा, विश्वप्रकाशेन वा, विश्वोपसंहारेण वाऽकृत्रि-मोऽहमिति स्फुरणम्। तस्यां तल्लीनत्वंनाम अन्तर्मुखत्वम्। (नागानन्द)

(अन्तर्लीनोऽन्तर्मुखीभूतो) विमर्शः पूर्णाहम्भावना।

विमर्शः प्रपञ्चः। (नटनानन्द)

माहेश्वरतन्त्र (नारदपाञ्चरात्र— पटल-३०.३६) में कहा गया है कि परानन्दविग्रह भगवान् का शरीर शब्दनिर्मित है अर्थात् मन्त्र ही देवता है— 'शाब्दं वपुः परानन्दवपुषः परमेश्वरि'।

मन्त्र और देवता में अभेद— मन्त्र 'वाचक' है और देवता 'वाच्य' है। यदि वाचक वाच्य का सन्धान न कर सके या न करा सके तो वाचक की उपयोगिता ही क्या है? यदि 'शरीर' शब्द से शरीर पदार्थ का बोध ही न हो तो 'शरीर' शब्द की सार्थकता ही क्या है? योगसूत्रकार पतञ्जलि ने 'तस्य वाचकः हि प्रणवः' कहकर महामन्त्र को वाचक एवं परमात्मा को वाच्य कहते हुए मन्त्र एवं परमात्मा में वाच्य-वाचक सम्बन्ध माना है। पतञ्जलि ने 'वैखरी वाक्' को वाचक नहीं कहा; क्योंकि वैखरी वाक् 'जड़' है, जबकि परमात्मा चेतन है। मन्त्र में चैतन्य का आधान करके ही परमचेतन (परमात्मा) तक पहुँचा जा सकता है। यदि 'मन्त्र' मन्त्र के वाच्य देवता का साक्षात्कार न करा सके तो मन्त्र की सार्थकता ही क्या है?

तान्त्रिक पद्धति 'अहं देवी न चान्योऽस्मि, शिवोऽहं, सोऽहम्' के सिद्धान्त में विश्वास रखते हुये साधना के निम्नतम स्तर पर भी (न्यास के माध्यम से) मन्त्राक्षरों का साधक के शरीरांगों के साथ तादात्म्य स्थापित करती है। 'करन्यास', 'हृदयादिन्यास'

एवं 'अक्षरन्यास' का यही कार्य है। 'दिङ्न्यास' साधक के चतुर्दिक प्रसृत दशों दिशाओं के साथ मन्त्राक्षरों का तादात्म्य स्थापित करके साधक को अपनी दशों दिशाओं में मन्त्राक्षरों के व्याप्त होने का अनुभव कराता है या उसे मन्त्राक्षरों के सागर में डुबकी लगाने का बोध कराता है। ऋष्यादिन्यास साधक को ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति एवं कीलक के साथ तादात्म्य प्राप्त कराने का प्रयास करता है। 'कवच' साधक के प्रत्येक शरीरांग के साथ किसी न किसी देवी-देवता का सम्बन्ध बताकर उस पर उस अंग की रक्षा करने का दायित्व निश्चित करता है। 'कीलक' साधक के समस्त 'स्व' (अहन्ता) को देवता की वस्तु घोषित करके अपनी समस्त अहन्ता एवं ममता को देवता में लय करने का मार्ग निर्दिष्ट करते हुये उससे तादात्म्य स्थापित कराता है। 'दान-प्रतिग्रहण' की पद्धति अपनी व्यष्टि अहन्ता को समष्टि अहन्ता (देवता) में लय करके क्षुद्र से विराट् बनने का ही एक आयोजन है।

साधक जिस भौतिक माला से जप करता है, तान्त्रिक उसे भी भौतिक एवं जड़ न मानकर चतुर्वर्ग-प्रदायिनी, सिद्धि-दायिनी, सर्वशक्तिस्वरूपिणी 'महामाया' मानकर शक्ति (माला) के माध्यम से 'शक्ति' (देवता) तक पहुँचने की साधना करता है और माला को शक्ति मानकर उससे प्रार्थना करता है—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धदा भव।।

साधक को अपनी साधना को भी अपनी वस्तु न मानकर उसे देवी की वस्तु समझकर उसे ही समर्पित करना पड़ता है; इसीलिए मन्त्रजप को देवी के बाँयें हाथ में समर्पित करने का विधान है। अपनी अहन्ता को देवी में लय करते हुये अपने शरीरांगों को देवी का मन्दिर मानते हुये देवी एवं उनके मन्त्राक्षरों से अपना तादात्म्य स्थापित करते हुये तथा दशों दिशाओं में देवी के मन्त्राक्षरों की महाव्याप्ति का अनुभव करते हुये 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' के अनुभव को अपना परम लक्ष्य स्थिर करते हुये साधक 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' को ही चरितार्थ करता है।

देवताओं के शरीर का आविर्भाव 'बीज' से होता है; अत: उनकी आत्मा देवरूप होती है—

देवताया: शरीरं हि बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्।
अतएव हि तस्यात्मा देवरूपो न संशय:।।

(निर्वाणतन्त्र, पटल-१२)

निर्वाणतन्त्र के अनुसार देवता अपने-अपने सुदूरस्थ लोकों में ही विराजमान नहीं रहते और न तो विद्यायें ही अन्य लोकमात्र में स्थित हैं; प्रत्युत ये सभी हमारे शरीर में ही विद्यमान हैं। ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र कहता भी है—

देहस्थाः सर्वविद्याश्च देहस्थाः सर्वदेवताः।
देहस्थाः सर्वतीर्थानि गुरुवाक्येन लभ्यते।।
काष्ठमध्ये यथा वह्निः पुष्पे गन्धः पयोऽमृतम्।
देहमध्ये तथा देवः पुण्यपापविवर्जितः।।

आचार्य भास्कर राय ने 'त्रिपुरामहोपनिषद्' की अपनी टीका में कहा है कि देवता के तीन रूप होते हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर।

देवता का स्थूल रूप— सम्बद्ध देवता के निर्दिष्ट ध्यान में उल्लिखित रूप ही देवता का स्थूल रूप है।

देवता का सूक्ष्म रूप— देवता का सूक्ष्म रूप उसके मूलमन्त्र में निहित रहता है।

देवता का पर रूप— यह रूप उपासनात्मक होता है।

आचार्य भास्कर कहते हैं कि देवता के उक्त तीनों रूपों के अनुसार ही उनकी साधना के भी तीन प्रकार हैं— बहिर्याग, जप और अन्तर्याग। भावनोपनिषद के अपने भाष्य में वे कहते हैं कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना के तीन भेद हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर; तथा इसी के अनुरूप भगवती की उपास्तिरूपा क्रियायें भी त्रिविधात्मिका होती हैं— कायिकी, वाचिकी एवं मानसी।

ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग— प्रत्येक मन्त्र के ये अंग हैं।

ऋषि— ऋषि उस मन्त्र के द्रष्टा होते हैं— 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'; किन्तु वे मन्त्र-स्रष्टा नहीं होते— 'स्मारका न तु कारकाः।'

नवार्णमन्त्र— ऋषि— ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र। छन्द— गायत्री, उष्णिग्, अनुष्टुप्। देवता— महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती। बीज— ऐं। शक्ति— ह्रीं। कीलक— क्लीं। विनियोग— महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती की प्रीति।

मातृकामन्त्र— ऋषि— ब्रह्मा। छन्द— गायत्री। देवता— सरस्वती। बीज— हल। शक्ति— स्वर। कीलक— क्लीं। विनियोग— मातृकान्यास।

रामरक्षास्तोत्रमन्त्र— ऋषि— बुध-कौशिक। देवता— रामचन्द्र। छन्द— अनुष्टुप्। शक्ति— सीता। कीलक— हनुमान्। विनियोग— श्रीरामचन्द्र की प्रीति हेतु।

देवी का कवच— ऋषि— ब्रह्मा। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— चामुण्डा। बीज— 'अङ्गन्यासोक्तमातरो'। देवता— दिग्बन्ध देवता। विनियोग— श्री जगदम्बा के प्रीत्यर्थ।

अर्गलास्तोत्रमन्त्र— ऋषि— विष्णु। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— श्रीमहालक्ष्मी। विनियोग— श्रीजगदम्बा की प्रीति।

कीलकमन्त्र- ऋषि— शिव। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— महासरस्वती। विनियोग— श्रीजगदम्बा की प्रीति।

श्रीसूक्तमन्त्र— ऋषि— इन्दिरा, आनन्द, कर्दम, चिक्लीत। प्रथम मन्त्र की ऋषि— इन्दिरा। द्रष्टा— (१४ मन्त्रों के द्रष्टा) आनन्द, कर्दम, चिक्लीत (इन्दिरा या लक्ष्मी के पुत्र)। छन्द— हिरण्यगर्भ, 'हिरण्यवर्णां' इत्यादि तीन ऋचाओं के छन्द— अनुष्टुप्। 'कांसोस्मिताम्' का छन्द— बृहती। अग्रिम ऋचाओं के छन्द— त्रिष्टुप्। अगले आठ मन्त्रों के छन्द— प्रस्तारपंक्ति। देवता— श्री और अग्नि। बीज— हिरण्यवर्णाम्। शक्ति— कांसोस्मिताम्।

श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्र— ऋषि— श्री वशिन्यादि वाग्देवता। छन्द— अनुष्टुप्। देवता— श्रीललिताम्बा। बीज— क ए ई ल ह्रीं। शक्ति— सकल ह्रीं। कीलक— ह स क ह ल ह्रीं। विनियोग— ललिताम्बाप्रीत्यर्थ।

कतिपय मन्त्र	देवता	मन्त्र	जप-संख्या
१. श्रीदक्षिणामूर्ति	दक्षिणामूर्ति	ॐ ह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने। ध्यानैकनिरताङ्गाय नमो रुद्राय शम्भवे ॐ ह्रीं।।	३,२०,०००
२. पञ्चमुख महादेव	महादेव	ॐ ह्रौं	५,००,०००
३. श्रीमहाकालि-महालक्ष्मी-महासरस्वती	उक्त तीन देवियाँ	ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।	९,००,०००
४. श्रीलक्ष्मीदेवी	श्रीलक्ष्मी	ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं	१२,००,०००
५. महासरस्वती देवी	श्रीसरस्वती	ॐ ह्रीं हसौं सरस्वत्यै नमः	१२,००,०००
६. श्रीकाली	श्रीकाली	ॐ क्लीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।	२,००,०००

ऋषियों ने अपनी साधना-शक्ति से मन्त्र की साधन-प्रणालियों का आविष्कार किया है।

छन्द— जिस प्रणाली के द्वारा जिस छन्द से जिस भाव का कम्पन उत्पन्न करके उद्देश्य सिद्ध किया गया है, वही छन्द उस निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का 'छन्द' निश्चित किया गया है; इसी कारण भिन्न-भिन्न मन्त्रों के भिन्न-भिन्न छन्द हैं।

ऋषि— जीव अनन्त हैं और उनके लक्ष्य एवं उनको साकार रूप देने के उपाय भी अनन्त हैं। इन्हीं असंख्य उद्देश्य-सिद्धियों के लिये अनन्त साधन-प्रणालियाँ हैं। जिस साधक ने जिस उद्देश्य से जिस साधन-प्रणाली द्वारा सिद्धिलाभ किया है, वह उस निर्दिष्ट तत्त्व का एवं निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का ऋषि है।

एक ही देवता (इष्टदेव) के अनेक मन्त्र होते हैं; यथा—

काली देवी के मन्त्र— क्रीं; ह्रीं; क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा; क्रीं क्रीं फट् स्वाहा; ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा; क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके स्वाहा; क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके फट्; क्रीं क्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं स्वाहा; क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा; क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा; क्रीं स्वाहा; क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ स्वाहा इत्यादि।

देवता के रूप

देवता का स्थूल रूप	देवता का सूक्ष्म रूप	देवता का पर रूप
(ध्यान-विधान में वर्णित)	(मन्त्ररूप)	(उपासनात्मक)

देवता के उपासना-भेद

प्रथम उपासनाभेद[1]

बहिर्याग	जप	अन्तर्याग
स्थूल देवता के लिये	सूक्ष्म देवता के लिये	पर देवता के लिये

द्वितीय उपासनाभेद[2]

देवता का स्थूल रूप	देवता का सूक्ष्म रूप	देवता का पर रूप
कायिकी उपासना	वाचिकी उपासना	मानसी उपासना

आचार्य भास्कर राय कहते हैं कि यद्यपि बहिर्याग-जप-अन्तर्याग के संघटक तत्त्व परस्पर एक-दूसरे में अन्तर्भूत या अनुप्रविष्ट हैं तथापि प्राचुर्य एवं प्राधान्य को ध्यान में रखकर कायिकी-वाचिकी-मानसी आदि उपासना-विधियों को पृथक्-पृथक् मानकर उनको वर्गीकृत किया गया है।[3]

भावनोपास्ति— भास्कर राय कहते हैं कि अथर्वनामा वेदपुरुष ने योगियों के प्रति अनुकम्पा दिखाने हेतु एक तृतीय उपासना-पद्धति का प्रवर्तन किया है, जिसका नाम है— भावना। भावनोपनिषद में सद्गुरु के पररूपत्व को लक्ष्य में रखकर ही प्रथम सूत्र— 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' रखा गया है और इस उपनिषद के अन्त में 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' (भावनो०-३४) सूत्र जान-बूझकर (भावनाविधि की अपूर्व विधि के माहात्म्य के प्रदर्शनार्थ) रखा गया है। उपासना की यह विधि भावार्थरूपा, अर्थभावना-करणीभूता एवं पररूपात्मिका है। पररूपभावना की ही इसमें प्रधानता है। यद्यपि भावना द्विलक्षणा है— कादिमतगर्भित और कौलमतगर्भित; तथापि भावनोपनिषद में कादिमत का ही प्रतिपादन किया गया है। कादिमत में अन्तश्चक्रभावना का प्रतिपादन किया गया है। भावनोपनिषद में स्पष्टतः कहा गया है—

'कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः' (३५)।

'य एवं वेद सोऽथर्वाशिरोऽधीते' (३६)।

१. त्रिपुरामहोपनिषद्भाष्य (भास्कर राय)

२. भावनोपनिषद्भाष्य (भास्कर राय)

३. भास्करः 'भावनोपनिषदः' भास्कर टीका

वामकेश्वरतन्त्र की दृष्टि— वामकेश्वरतन्त्र में भगवती के अन्य रूपों के साथ-साथ उनके आनन्दस्वरूप का भी वर्णन किया गया है और उन्हें परमानन्दरूपिणी एवं नित्यानन्द घन भी कहा गया है— 'प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्। नित्यानन्दघनं परम्'।

शिव एवं देवी (भगवती) दोनों स्वरूपतः अभिन्न हैं—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

शिवाभिन्ना परा शक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।
वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता।।

देवता का चक्रस्वरूप—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।
(त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

(आ) भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

त्रिपुरा पद की व्याख्या करते हुए भास्कर राय 'सौभाग्यभास्कर' में कहते हैं— 'त्रयात्मकं पुरं भूपुरं मण्डलकोण रेखामन्त्रादिसमूहो वा यस्याः सा त्रिपुरा'। कालिकापुराण में भी कहा गया है—

त्रिकोणं मण्डलं चास्या भूपुरं च त्रिरेखकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरः प्रोक्तस्तथा रूपत्रयं पुनः।
त्रिविधा कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवानां च सृष्टये।
सर्वत्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरामता।।

परम शिव की आदि सिसृक्षास्वरूपा त्रिपुरा देवी ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञानरूप त्रिपुटीकृत जगत् की आद्य उद्भाविका हैं और इस त्रय के उत्पादन के कारण भी उनका नाम त्रिपुरा है।

जीवों के अदृष्ट के कारण एवं उनके कर्मफलों का परिपाक होने के उद्देश्य से प्रलयकालोपरान्त शिव में सिसृक्षा आविर्भूत होती है अर्थात् परमशिव में अव्यक्त भाव से लीन उनकी स्वाभिन्ना शक्ति सिसृक्षा के रूप में व्यक्त होती है। यह सिसृक्षारूपा आद्या शक्ति ही 'त्रिपुरा' कहलाती है। 'त्रिपुरा' आद्या परमा शक्ति है। इसी की अभिव्यक्ति— इच्छा, ज्ञान, क्रिया के रूप में भी होती है। यही त्रैलोक्योत्पादिका है। यही प्रलयकाल में निःशेष जगत् एवं उसके भूलभूत संघटक तत्त्वग्राम को कवलीकृत करके स्थित रहती है—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।।

कवलीकृत-निःशेष-तत्त्वग्राम-स्वरूपिणी।
तस्यां परिणतायान्तु न कश्चित्पर इष्यते।।

'परमशिव' की आत्मभूता 'परा शक्ति' ने ही सृष्टि द्वारा जगत् को ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय के रूप में कल्पित किया है। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूप त्रिपुटी से जगत् को रूपायित करके अवस्थित रहने के कारण इस आधा शक्ति को 'त्रिपुरा' कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने कौलमत में त्रिपुरा के नाम से ही इस परमाद्या शक्ति का उल्लेख किया है। वामकेश्वरतन्त्र (४-५) में कहा गया है कि जगत् रूप में अभिव्यक्त होने के लिए इस आद्या शक्ति को परमशिव की भी आवश्यकता नहीं होती। ठीक भी है; क्योंकि शक्ति प्रलयकाल में छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप वाले जगत् को अपने में लीन करके अव्यक्तावस्था में अवस्थित रहती है। शिव की सिसृक्षा ही 'शक्ति' है और सिसृक्षारूपा शक्ति ही 'सृष्टि' है। शक्ति ही जगत् का कारण है। परमशिव तो निर्गुण एवं निरञ्जन हैं। उनमें सिसृक्षा का आविर्भाव होने पर दो तत्त्वों का आविर्भाव होता है— सिसृक्षारूपी उपाधि से उपहित सगुण शिव और सृष्टिस्वरूपिणी शक्ति। इस त्रिपुरा शक्ति के विना शिव भी कुछ नहीं कर सकते। शक्ति छत्तीस तत्त्वों के रूप वाले जगत् को अपने में लीन करके स्थित रहती है और स्वयं सृष्टिरूपा है; अत: उसे सृष्टि के लिए दूसरे की अपेक्षा क्यों होगी?

बैन्दवी कला और त्रिपुरसुन्दरी— 'सहस्रदल कमल' के भीतर स्थित चन्द्रमण्डल ही 'बैन्दवस्थान' है और उसकी चिन्मयी एवं आनन्दरूपात्मिका कला ही आत्मा एवं 'त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती है— सहस्रदलकमलान्तस्स्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम्। तत्कला चिन्मयी आनन्द-रूपा आत्मेति गीयते। सैव त्रिपुरसुन्दरी।[1]

भगवती नादबिन्दु एवं कला से अतीत हैं—'एवं नादबिन्दुकलातीता भगवती।'

भगवती नादातीत तत्त्व है— 'नादातीततत्त्वं तु त्रिपुरसुन्दर्यादिशब्दाभिधेयम्।'

'दर्शा' दृष्टा, दर्शता इत्यादि के पर्याय हैं— 'क ए ई ल ह्रीं'। इनसे भी युक्त हैं भगवती।

पञ्चदशवर्णात्मकषष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्यापरिगणितमहाकालात्मक, पञ्चदशकलातीता सादाख्या श्रीविद्यापरपर्याया चित्कलाशब्दवाच्या ब्रह्मविद्यापर्याया भगवती नादबिन्दुकलातीत भागवत तत्त्व है।[2]

भगवती त्रिपुरा

सच्चिदानन्द परब्रह्म को इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ (एकोऽहं बहु स्याम)। यही उसकी इच्छा का 'प्रथम स्पन्द' है। ज्ञान से 'इच्छा' हुई और इच्छा न 'क्रिया' का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार ज्ञान-इच्छा-क्रिया का क्रम प्रारम्भ हो गया। समस्त जगत् इसी ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया का त्रिपुटीकृत रूप है। समस्त आगम इस त्रिपुटीकरण करने वाली शक्ति को ही 'त्रिपुरा' कहते हैं। यह सृष्टि को भी तीन चरणों में प्रादुर्भूत करती है—

आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद्बिन्दुसमुद्भव:।

परमात्मा में सिसृक्षारूप जो 'इच्छा' हुई, वही उपनिषदों का 'एजन' है। यही शाक्त

---

१. लक्ष्मीधरा २. लक्ष्मीधरा

शैव परम्परा का 'स्पन्द' है। शब्द या नाद एक कम्पन का मूर्त रूप है। शिव की यह सिसृक्षारूप इच्छा ही 'नाद' है। 'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्' से सृष्टि हुई।

सचिदानन्द विभव सकल परमेश्वर → शक्ति → नाद → बिन्दु। प्रथम स्पन्द = नाद, इच्छा = नाद, क्रिया = बिन्दु।

सकल परमात्मा की इस शक्ति का नाम है— ज्ञानशक्ति।

ज्ञानशक्ति = बीज, इच्छाशक्ति = नाद, क्रियाशक्ति = बिन्दु। आधिदैविक दृष्टि से ये ही हैं— ब्रह्मा, विष्णु और शिव।

नाद = गति। बिन्दु = स्थिति। गति + स्थिति का विलास = जगत्। ॐ = अ + उ + म। ॐ— विश्वसृष्टि।

तन्त्रशास्त्र की मान्यता है कि—

सृष्टि का विकास 'निष्कल परमशिव तत्त्वा-तीतावस्थासीना परासंवित्' या 'निष्कल ब्रह्म' से नहीं होती; प्रत्युत सकल परमेश्वर से होती है।

'निष्कल ब्रह्म' तत्त्वातीत, अनिर्वचनीय एवं तुरीयातीत तत्त्व है। इस अवस्था में उसकी शक्ति उसी में लीन रहती है। 'निष्कल ब्रह्म' अपने-आपको देखता रहता है। ब्रह्म (परमशिव) का यह ईक्षण उसमें 'अहं' के प्रकाश का उदय करता है और उसके साथ ही उसमें 'अस्मि' के विमर्श का भी उदय होता है; अत: 'अहमस्मि' का उदय होता है।

ब्रह्म की निष्क्रियावस्था : परा संवित् अवस्था

ब्रह्म का 'ईक्षण'

प्रकाश विमर्श
(निष्कल ब्रह्म का सकल बन जाना)

शिव-शक्तिसंयोग
निष्क्रिय ब्रह्म का सक्रिय स्वरूप में अवतरण।
(निष्क्रय तत्त्व को सक्रिय बनने हेतु शिव + शक्ति का संयोग अपरिहार्य है।)

अहमस्मि का उदय
अहं (प्रकाश : शिवतत्त्व) अस्मि (विमर्शतत्त्व)
शक्ति-शिव मिलन
जगत् की सृष्टि

नाद:
शिव + शक्ति का संयोग
या शिव + शक्ति सम्बन्ध
या उन्मना + समना शक्ति की सन्धि अवस्था
या शिव + शक्ति की संयुक्तावस्था

निष्क्रिय परासंवित् → ईक्षण → प्रकाश → विमर्श → प्रकाश-विमर्श का मिलन → निस्पन्द में स्पन्दन। प्रथम स्पन्द = शिवतत्त्व।

इच्छास्वरूपिणी (शिव में नित्य समवेता शक्ति) = जगत् का बीज।

यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः।। (तत्त्वसन्दोह)

शिव में समवेत यह इच्छाशक्ति ही जगत् का बीज है—

इच्छा सैव स्वच्छा सन्ततसमवायिनी सती शक्तिः।
सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य।।

(ष० त० सं०)

शिव + शक्ति (सांख्य में पुरुष + प्रकृति के समतुल्य)।

संयुक्त नाद = 'सादाख्य तत्त्व'। निष्कल ब्रह्म की शक्ति = 'उन्मना', अहं (प्रकाश) एवं अस्मि (विमर्श) का तादात्म्य— अव्यक्त नाद। उन्मना शक्ति द्वारा सृजन आरम्भ करते ही इस शक्ति का रूपान्तरण समना शक्ति के रूप में हो जाता है। सकल परमेश्वर → शक्ति → नाद → बिन्दु → सृष्टि का आरम्भ।

पर दशा में इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप, सूक्ष्म दशा में वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्रीरूप एवं स्थूल दशा में ब्रह्मा, विष्णु एवं ईश— इन विभागों द्वारा तीनों पुरों या सृष्टि-स्थिति-संहार के आपूरक तत्त्वों में अनुगत होने के कारण भगवती को 'त्रिपुरा' कहते हैं।

त्रैलोक्य की उत्पादिका माता होने के कारण उन्हें 'मातृका' एवं 'अम्बिका' कहा जाता है।

चिदानन्दैकघन परमशिव से प्रस्फुटित तथा उनसे समवेत होने के कारण उसी आद्या शक्ति को 'परमाशक्ति' कहा जाता है। सम्पूर्ण 'शक्तिचक्र' की एकमात्र आश्रय होने, नियत नाम द्वारा निर्दिष्ट न हो सकने के कारण 'अनाख्य' कहलाती है। वही परा शक्ति सृष्टि की मूल विधायिका, सृष्टि का आदि कारण शक्तिचक्र को भी जन्म देने वाली आदि शक्ति होने के कारण 'आद्या शक्ति' कही जाती है।

वही स्वभावतः उदित होने तथा प्रत्यवमर्शात्मक होने के कारण 'परा वाक्' एवं 'चिति' कही जाती है। स्वातन्त्र्य स्वभाव, अन्यापेक्षारहित होने के कारण वही परमात्मा की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' कही जाती है। वही जगत् का आद्य स्फुरण होने के कारण एवं सृष्टि के प्रत्येक जड़-चेतन वस्तुओं में सूक्ष्मतम कम्पन एवं स्फुरण होने के कारण स्फुरत्ता कहलाती है। चूँकि वह देशकालातीत सर्वोच्च सत्ता है; अतः उसे 'महासत्ता' कहा जाता है। चूँकि वह सारों का भी सार है— सारतम है; अतः उसे 'सार' भी कहा गया है। परमेष्ठी एवं जगत् का उर होने के कारण उसे 'हृदय' भी कहा जाता है। चैतन्य-स्वरूपा, चैतन्य-स्वभावा, चैतन्यरसात्मिका होने एवं विश्व के जड़-चेतन सभी पदार्थों में सुषुप्त एवं जाग्रत चेतना के रूप में अवस्थित होने कारण उसे 'चिति' भी कहा गया है— 'चितिः प्रत्यवम-र्शात्मा परा वाक् एव।'

महात्रिपुरसुन्दरी जगत् का बीज एवं परमशिव का दर्पण हैं।

कामकलाविलास में पुण्यानन्द की दृष्टि— पुण्यानन्द कहते हैं कि भगवती भविष्य में उत्पन्न होने वाले (वर्तमान में लयीभूत) जगत् का बीज हैं और परमशिव का (आत्म-प्रत्यभिज्ञा या स्वरूप-साक्षात्कार) के लिए निर्मल दर्पण हैं— 'भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः।'

महात्रिपुरसुन्दरी प्रकाशामर्शरूपिणी, विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्णा परापरमयी शक्ति एवं जगत् की आत्मा हैं। चिदानन्दवासना में कहा गया है—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।।

अर्थात् भगवती विश्वात्मिका, विश्वातीता एवं आत्मा हैं।

भगवती षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा एवं विद्या है—

षट् त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।

'विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः' कथन द्वारा भगवती का शिवहृदय होना भी पुष्ट होता है।

त्रिपुरभैरवी— क्षीयमाण विश्व के अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं। वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्यों के समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी एवं नरमुण्डमालाधारिणी हैं। रक्त से उनके पयोधर लिप्त हैं। वे त्रिनेत्री हैं और हिमांशु किरीट धारण किए हुये, हाथ में जपवटी, विद्या, वर एवं अभयमुद्रा धारण किये हुये हैं। वे सतत् मन्दसुस्मिता हैं।

'त्रिपुरा' शब्द तीन पुरों की शासिका की आख्या है। 'त्रिपुरा' शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है; यथा—

१. तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा।

२. मूर्तित्रयस्यापि पुरातनत्वात्तदम्बिकायास्त्रिपुरेति नामेति।

३. तत्त्वत्रयेण भिदा इति त्रिपुरा। अर्थात् एक ब्रह्म तत्त्वत्रय द्वारा तीन रूपों में भिन्न-भिन्न हो जाता है; अतः उसे त्रिपुरा कहते हैं—

एकमेव ब्रह्म तत्त्वत्रयेण भिद्यतेत्यर्थः। (सौभाग्यभास्कर)

४. नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्णा पिङ्गला इडा।

५. मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।

अतः इनकी स्वामिनी होने के कारण भी देवी की आख्या त्रिपुरा है।

६. कालिका पुराण में कहा गया है कि 'त्रिकोणं मण्डलं चास्या' अर्थात् जिसके तीन मण्डल हों, उसे त्रिपुरा कहते हैं।

७. सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरा मता।

जिसमें सब कुछ तीन-तीन की संख्या में विद्यमान हो; यथा— वेदत्रयी, गुणत्रय, देवत्रय, तीन कूट, इच्छा-ज्ञान-क्रिया— तीन शक्तियाँ, भूत-वर्तमान-भविष्य— काल-त्रय, लोकत्रय आदि; वे ही भगवती त्रिपुरा हैं—

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपुरी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।

यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः।।

'लघुस्तव' के चतुर्थ पटल में 'त्रिपुरा परमा शक्तिः' से आरम्भ करके 'त्रिपुराख्याति-मागते' के अन्त तक त्रिपुरा की इसी तरह अनेक व्याख्यायें की गयी हैं।

आचार्य भासुरानन्द ने सौभाग्यभास्कर में 'त्रिपुरा' शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं—

१. 'त्रिभिर्जगद्भिर्वन्द्या' अर्थात् जो तीनों लोकों द्वारा वन्द्य हो, वह 'त्रिपुरा' है।

२. 'त्रयो जगद्वन्द्या यस्या वा' अर्थात् जिसके तीनों लोक वन्दनीय हैं, वे ही हैं— त्रिपुरा भगवती।

३. धौम्यवचनानुसार— 'त्रिमूर्तिस्तु त्रिवर्षा स्यात्।'

४. 'रक्तशुक्लमिश्रात्मकवर्णमूर्तित्रयरूपा वा' अर्थात् रक्त, शुक्ल एवं मिश्र— मूर्तित्रय वाली होने से देवी का नाम 'त्रिमूर्ति' या 'त्रिपुरा' है।

५. देवी को 'त्रिवर्णा' भी कहा गया है, क्योंकि—

त्रिवर्णा च कुमारी सा कृष्णा शुक्ला च पीतिका।
उवाच भगवद् दृष्टेर्येन जातास्मि सत्तमा।।

६. भिन्न-भिन्न मन्त्रों का उद्धार उन-उन रूपों में तन्त्रों में वर्णित हैं और वे भी तीन हैं— ब्रह्मादिदेवमूर्तित्रय, वामादि शक्तित्रय और इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तिमूर्तित्रय के रूप में। वराहपुराण में भी कहा गया है—

एवमुक्त्वा स्वयं ब्रह्मा वीक्षाञ्चक्रे पिनाकिनम्।
नारायणं च मनसा सस्मार परमेश्वरः।।

ततो नारायणो देवो द्वाभ्यां मध्ये व्यवस्थितः।
एकीभूय ततस्ते तु ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः।।

परस्परं सूक्ष्मदृष्ट्या वीक्षां चक्रुर्मुदान्विताः।
ततस्तेषां त्रिधा दृष्टिर्भूता वै समजायत।।

भगवती को षोडशी भी कहा गया है।

भगवती त्रिपुरा संवित्स्वरूपा हैं और उनका जो लौहित्य वर्ण है, वह उनके विमर्श का प्रतीक है—

स्वसंवित्त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्।

षोडशी कला 'श्री' है— 'षोडशी कला नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वन्तो मन्त्रः श्रीः'। इसी बीज का नाम है— 'श्रीविद्या'। जो श्रीबीज से युक्त है, वह विद्या ही श्रीविद्या है— 'श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्' (लक्ष्मीधरा)। भगवती संवित्ति हैं। सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति में चन्द्रमा की सोलह कलाओं का उल्लेख किया गया है, जो निम्नांकित है—

१. उल्लोला	५. तरंगिणी	९. लहरी	१३. प्रवाहा
२. कल्लोलिनी	६. शोषिणी	१०. लोला	१४. सौम्या
३. उच्चलन्ती	७. लम्पटा	११. लेलिहाना	१५. प्रसन्नता
४. उन्मादिनी	८. प्रवृत्ति	१२. प्रसरन्ती	१६. प्लवन्ती

'एवं चन्द्रस्य षोडश कला। सप्तदशी कलानिवृत्तिः साऽमृता कला।'

भगवती त्रिपुरसुन्दरी को भी 'षोडशी' कहा गया है। सुन्दरी (महात्रिपुरसुन्दरी) के उपासक भगवती की उपासना चन्द्रमा के रूप में करते हैं। चन्द्रमा की सोलह कलायें हैं। सभी कलायें नित्य हैं। इसीलिये भगवती को इन कलाओं की समष्टि के रूप में 'नित्य षोडशिका' कहकर भक्त उनकी उपासना करते हैं। पन्द्रह कलाओं का उदय एवं अस्त दोनों होता है, ह्रास-वृद्धि दोनों होती है; किन्तु सोलहवीं की नहीं होती। वही 'अमृता' नाम की कला है। इसी 'षोडशी चान्द्रकला' को वैयाकरण 'पश्यन्ती वाक्' कहते हैं। दर्शन शास्त्र में इसे 'आत्मा' कहा गया है। मन्त्रशास्त्र में इसे 'मन्त्र' या 'देवता का स्वरूप' कहा गया है। जिसे हम पूर्णचन्द्र कहते हैं, वह ह्रास-वृद्धिपरक होने के कारण पूर्णचन्द्र नहीं है; पूर्णचन्द्र में ह्रास-वृद्धि का अभाव है। 'षोडशी कला' में यही पूर्णता विद्यमान है; क्योंकि वह नित्योदिता, अमृतस्वरूपा एवं अखण्डा है। वही है— ललिता या महात्रिपुर-सुन्दरी। यही परा कला चिदेकरसा श्रीविद्या है। पन्द्रह कलायें (प्रतिपदा आदि तिथियाँ) नित्य होने पर भी ह्रास-वृद्धिस्वभावा हैं; किन्तु षोडशी कला नित्य ज्योत्स्नामयी एवं सहस्रदल कमलस्थ, नित्य कलामयी एवं श्रीचक्रात्मक चन्द्रविम्ब है। इसीलिये सुभगोदय में कहा भी गया है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।

भगवती उपासक के समक्ष नित्य षोडशवर्षीया सुन्दरी के रूप में रहती हैं। गौडीय सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण नित्य षोडशवर्षीय रूप में (एक किशोररूप में) भावनीय हैं—

नित्यं किशोर एवासौ भगवानन्तकान्तकः।

श्रीरूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में इसी स्वरूप का उल्लेख किया है— 'आषोडशाच्च कैशोरम्'। श्रीकृष्णा एवं ललिता को एक ही माना गया है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोद्विवशं जगत्।।

मन्त्र के तीन कूट एवं पन्द्रह अक्षर हैं। सोलहवाँ अक्षर गुरुमुख से गृहीत करने पर मन्त्र 'षोडशी मन्त्र' बन जाता है।

१. भगवती का मुख— वाग्भव कूट : आग्नेय।
२. भगवती का कटिप्रदेश— कामकलाकूट : सौर।
३. भगवती के कटि के नीचे का भाग— शक्तिकूट : चान्द्र।

द्वितीय एवं तृतीय कूट के मध्य में स्थित ह्ल्लेखा— विष्णुग्रन्थि।

चतुर्थ पाद एकाक्षरी लक्ष्मीबीज है, जो कि गुरुमुखैकगम्य है। इसे 'चन्द्रकला' कहते हैं। इसके एवं तृतीय शक्तिकूट के मध्य ह्ल्लेखा 'ब्रह्मग्रन्थि' है।

षोडशी विज्ञान— सोलह अक्षरों का यह मन्त्र षोडशी विद्या के नाम से प्रख्यात है। सोलह अक्षर सोलह नित्यायें हैं।

अन्तिम एकाक्षरी लक्ष्मी बीज ही 'नित्या' है। वह 'पराकला' है और उसके कारण ही समस्त विद्या 'श्रीविद्या' कहलाती है। यह पराकला, शुद्ध चिति शक्तिस्वरूपा एवं सहस्रार में स्थित सोलहवीं चान्द्रकला है और विशुद्धचक्र के सोलह पत्रों पर प्रतिबिम्बित रहती है। प्रथम कला का प्रकाश पूर्व से आरब्ध होकर सोलहवीं कला के ईशान पूर्व कोण के पत्र पर स्थित है। सोलहवीं कला के अधीन ही अन्य कलायें भी घटती-बढ़ती रहती हैं; अत: वे स्वतन्त्र नही हैं; जबकि 'षोडशी' स्वतन्त्र है। शुक्ल एवं कृष्णपक्ष की तिथियाँ, पूर्णिमा एवं अमावास्यासमेत सोलह चान्द्र कलायें हैं। ये कलायें शुक्लपक्ष में सूर्य के योग से उदित होती हैं और कृष्णपक्ष में सूर्य में ही अस्त हो जाती हैं।

१. प्रथम कला शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को उदित होकर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा में अस्त हो जाती है।

२. द्वितीय कला शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को उदित होकर कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि में अस्त हो जाती है।

३. इसी प्रकार अन्य कलायें भी उदित होकर अस्त हो जाती हैं।

४. पूर्णिमा की पूर्ण कला अमावास्या में अस्त हो जाती है।

५. अमावस्या की तिथि में पूर्णिमा की कला का अस्त हो जाने पर जो 'चान्द्र कला' शेष रह जाती है वही सोलहवीं 'नित्या कला' है; क्योंकि चन्द्रमा का वही वास्तविक बिम्ब प्रत्येक कला में सूर्य के प्रकाश से घटती-घटती कलाओं के रूप में चमका करता है।

६. शुद्ध 'चिति शक्ति' की पन्द्रह कलायें 'पञ्चदशी' के पन्द्रह अक्षरों से सम्बद्ध हैं और सोलहवीं कला शुद्ध चिति शक्ति 'निर्विकल्प' समाधि में आसीन महात्रिपुरसुन्दरी है। चन्द्र का बिम्ब सदा एकरस, वृद्धि-ह्रासशून्य एवं समरस रहता है; अत: प्रत्येक कला को सोलहवीं कला का ही अंग समझना चाहिये। प्रत्येक कला का पूजन एवं ध्यान उस कला की सम्बन्धित तिथि में सोलहवीं कलासहित किया जाता है।

जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में आरोहण करती है तब चन्द्रमण्डल में छिद्र कर देती है और उस छिद्र से पीयूष स्रवित होने लगता है एवं आज्ञाचक्र को अमृतमय कर देता है। उससे वहाँ पर चन्द्रमा की समस्त कलायें नित्य चमकने लगती हैं और उनका नाम 'नित्या' कहलाने लगता है। फिर ये कलायें विशुद्ध चक्र पर उतर कर सोलह

पंखुड़ियों पर प्रकाशित हो उठती हैं। सहस्रार के मध्य में स्थित चन्द्रमण्डल को 'बैन्द-वस्थान' कहते हैं। यह शुद्ध चिति शक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है। इसी को 'श्री' या 'महात्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं।

पञ्चदशी के पन्द्रह अक्षर पन्द्रह तिथियों से सम्बद्ध हैं। षोडशी का सोलहवाँ अक्षर चितिस्वरूपा अमावास्या या 'निर्विकल्प समाधि' है। 'श्रीविद्या' त्रिपुरास्वरूप है और त्रिपुरा देवी के दो पक्ष हैं— संवित्ति और विमर्श। कहा भी है—

'स्वसंवित्तिपुरादेवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्।'

उनका लौहित्य वर्ण उनके 'विमर्श' का प्रतीक है; अत: विमर्श 'श्रीविद्या' का प्राण-तत्त्व है।

चन्द्रमा की षोडशी कला अमृतस्वरूपा एवं बिन्दुस्वरूपा है। वास्तविक पूर्णिमा 'षोडशी' है, पञ्चदशी नहीं; क्योंकि षोडशी में ह्रास-वृद्धि नहीं है। बिन्दु में पन्द्रह कलायें तो हैं; किन्तु एक कला, जिसे 'अमृतकला' या 'षोडशी' कहते हैं, नहीं है।

आनन्द ही अमृत है। चन्द्रकला से उसका उन्मेष होता है। बौद्धदर्शन के अनुसार बोधिचित्त के 'अवधूती मार्ग' से ऊर्ध्वारोहण करने पर अनेकविध आनन्दों का उन्मेष होता है। षोडश कलात्मक चन्द्रमा की प्रथम पाँच कलाओं से 'धर्मचक्र' में परमानन्द का आवि-र्भाव होता है और मध्य की पाँच कलाओं और अन्तिम पाँच कलाओं से अन्य प्रकार के दो आनन्दों का आविर्भाव होता है। अमृतानामक षोडशी कला महासुख चक्र में सहजानन्दरूप में अनुभूत होती है। यही 'अमृतकला' मानवकलेवर को अमरता प्रदान करती है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी षोडशकलात्मिका हैं। 'वासनासुभगोदय' में कहा भी गया है—

दर्शाद्या पूर्णिमान्ताद्या: कला: पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

चन्द्रमण्डल में 'सादाख्या कला' वृद्धि-ह्रासरहित मात्र एक ही कला है; अन्य जो पन्द्रह कलायें हैं वे वृद्धि-क्षयोपेता हैं। भगवती इसी 'सादाख्या कला' का स्वरूप हैं और यह चिद्रूपा कला एवं त्रिपुरसुन्दरी अभिन्न हैं। सौभाग्यभास्कर में भास्कर राय कहते हैं—

'चन्द्रमण्डले हि सादाख्या कलावृद्धिह्रासरहितैका। अन्या: पञ्चदश यातायात-भागिन्य:। तदभिन्नाया: श्रीदेव्या अपि चिद्रूपा कला त्रिपुरसुन्दरी पदवाच्यैका।'

अन्य जितनी भी कलायें हैं वे परिवर्तनशील हैं। उनमें से ही एक कला षोडशी है, जिसके कारण ही श्रीविद्या का नाम 'श्रीविद्या' पड़ा। वह श्रीविद्या गुरुमुखैकगम्या है। आचार्य भास्कर राय ने सौभाग्यभास्कर में इसकी पुष्टि इन शब्दों में की है—

'अन्यास्तु कामेश्वर्यादिचित्रान्तास्तिथिभेदेन विपरिवर्तमाना:। तदभिन्नायां पञ्चदश्याम-प्येकमक्षरं गुरुमुखैकवेद्यं चिद्रूपं यद्वशादस्या: श्रीविद्येति संज्ञा। अन्यानि च पञ्चदशाक्षराणि सर्वैरुपासकै: श्रूयमाणानि नित्या स्वरूपाणि। एवं चन्द्रमण्डल देवी पञ्चदशी नामैक्यमिति

तत्तत्कलाक्षराणामप्यैक्यमेव; अतएव पञ्चदशसङ्ख्यानां तिथीनामक्षराणामपि त्रिखण्डत्वं यथा— 'नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा' इति त्रिरावृत्तेन भेदेन वाग्भवादिकूटभेदेन च। अतएव खण्डत्रयेणैव तैत्तिरीयाः शुक्लपक्षरात्रीणां पञ्चदशानां नामान्यामनन्ति। 'दर्शा दृष्टा दर्शना विश्वरूपा सुदर्शना आप्यायमानाप्यायमानाप्याय सूनृतेरापूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी'– इति।[1]

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्तपाद श्रीतन्त्रालोक (षष्ठाह्निक) में कहते हैं कि चन्द्रमा से पीयूष सतत् स्रवित होता रहता है। यह दो प्रकार का होता है—

क. प्रत्यक्ष ज्योतिश्चक्रदृष्ट चन्द्रमा की कलाओं के रूप में। पूर्णिमा से (अमावास्या के पूर्व चतुर्दशी तक) इसे देवता पीते रहते हैं। करण देवियाँ श्वास में भी पीती रहती हैं।

ख. अतिनिर्मल शुद्ध 'अप्' तत्त्व रूप में। पन्द्रह कलाओं को ही देवता पी सकते हैं; अतः यह प्रतिदिन घटते-घटते अमावास्या के दिन समाप्त हो जाता है। पञ्चदशी (श्लोक-८) में कहा भी गया है—

यस्मिन् सोमः सुरपितृनरैरन्वहं पीयमानः।
क्षीणः क्षीणः प्रविशति .... ।।

देवों, पितरों और मनुष्यों द्वारा चन्द्र का प्रतिदिन पान किया जाता है और क्षीण होता हुआ अन्ततः अमा के आक्रोश में समा जाता है।

यह 'अमा कला' शेष रहने वाली सोलहवीं 'षोडशी कला' है। यह गुहा के भीतरी भाग में सुरक्षित है। इसी में पन्द्रहों कलायें आवास बना लेती हैं। फिर इसी से पूर्णिमा तक बढ़ती रहती है। इसी आवास के कारण इसे 'अमावास्या' कहते हैं। आचार्य अभिनव गुप्त कहते भी हैं—

अमृतं चन्द्ररूपेण द्विधा षोडशधा पुनः।।
पिबन्ति च सुराः सर्वे दशपञ्चपराः कलाः।
अमा शेषगुहान्तःस्थामावास्या विश्वतर्पिणी।।

चन्द्रमा की कलाओं के क्रमशः क्षीण होने का यही कारण है। 'अमा कला' सूक्ष्म अप् तत्त्वरूपा है। इसीलिये सूर्य भी उसको सोख नहीं पाता। विश्व को आप्यायित करने वाली वही आप्यायनी कला 'षोडशी' कही जाती है, जो कि कभी भी क्षीण नहीं होती—

एवं कलाः पञ्चदश क्षीयन्ते शशिनः क्रमात्।
आप्यायिन्यमृताब्रूपतादात्म्यात्षोडशी न तु।।

आचार्य जयरथ 'विवेक' में कहते हैं कि— अमा कला ही शेष रहने वाली षोडशी कला है।, यह गुहा के भीतर सुरक्षित रहती है।, पन्द्रहों कलाओं की यही आवासस्थली है।, यह अक्षीण, अपीत, नित्य एवं एकरस है—

१. भास्कर राय : सौभाग्यभास्कर, श्लोक- ११३ 'ललितासहस्रनाम'

'अमाख्या षोडशी पुनः कला सुराद्युपसंहृतकला पञ्चदशकावशिष्टस्वभावत्वाच्छेषरूपा; अतएव गुहान्तरितस्थितं वस्तु सुरक्षिततत्त्वादक्षीणं स्यात्तथैवेयमपीत्यर्थ:। यतः सा विश्वस्य पञ्चदशकलाक्रोडीकारितयाऽऽप्यायकारिणी।'

सोलहवीं तुटि के भाग— आमावस्या भाग, प्रातिपद भाग। दोनों के मध्य में एक बिन्दु ऐसा भी है जहाँ तिथि की कल्पना सम्भव नहीं है। 'अमा कला' के परिवेश में चन्द्रमा पूरी तरह सूर्य में लीन हो जाता है और इसके कारण गर्म होकर अमृतमधु का स्राव करने लगता है।

'वासनासुभगोदय' के अनुसार दर्शा, दृष्टा, दर्शिता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूर्णायन्ती, पूर्णा एवं पूर्णमासी— ये पन्द्रह कलाओं के नाम हैं। शुक्लपक्षीय तिथियों की अधिष्ठात्री देवियाँ श्रीचक्रस्थ पन्द्रह नित्यायें हैं। सोलहवीं नित्या चिद्रूपात्मिका है और सदाशिवरूपा होने के कारण सबकी अधिष्ठात्री 'अमावास्या' तिथिरूपा है। वह स्वयं नित्याओं के रूप में प्रकाशित होने के कारण सभी की अधिष्ठात्री देवता है। 'पञ्चदशी' के पन्द्रह अक्षर ही पन्द्रह नित्यायें हैं। सोलहवीं कला 'श्री' है। उपर्युक्त पन्द्रह कलायें तीन खण्डों में विभक्त हैं—

१. पाँच कलायें— अग्नि।
२. पाँच कलायें— सूर्य।
३. पाँच कलायें— सोम।

सोलहवीं कला उपर्युक्त पन्द्रहों कलाओं से अतीत है और यह 'मधुकरी' है—

'इयं वाव सरघा।' (तैत्ति० ब्रा०-३.१०.१०)

सरघा = मधुमक्खी। ये रात में अमृत का निर्माण करती हैं। योगी भी दिन में नहीं; बल्कि रात्रि में ही 'कुण्डलिनी' का जागरण करते हैं। 'श्री' के उपासक भी शुक्लपक्ष की रात्रियों में ही अनुष्ठान करते हैं।

इन सोलह नित्याओं का स्थान विशुद्ध चक्र में है। 'चिति शक्ति' का शुद्ध स्वरूप सहस्रार में है, जिसकी कि ये सभी कलायें हैं। चूँकि कृष्णपक्ष की निशाओं का समावेश अमावास्या में होता है; अतः वे सब निषिद्ध हैं। चूँकि दिन में अमृत का स्राव होता है, इसीलिये दिन में कुण्डलिनी का प्रबोध निषिद्ध है।

शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष के दिनों के नाम निम्नांकित हैं—

शुक्लपक्ष के दिनों के नाम—

१. संज्ञानम्	६. संकल्पमानम्	१०. क्लृपम्	१४. सम्भूतम्
२. विज्ञानम्	७. प्रकल्पमानम्	११. श्रेयो	१५. भूतम्
३. प्रज्ञानम्	८. उपकल्पमान	१२. वसीव	
४+५. जानदभिजनत्	९. उपक्लृपम्	१३. आयत्	

कृष्णपक्ष के दिनों के नाम—

१. प्रस्तुतम्	६. शक्रम्	११. अरुणम
२. विष्टुतम्	७. अमृतम्	१२. भानुमन
३. संस्तुतम्	८. तेजस्वि	१३. मरीचिमद
४. कल्याणम्	९. तेज:	१४. अभितपत्
५. विश्वरूपम्	१०. समिद्धम्	१५. तपस्वत्

इसकी फलश्रुति—

स यो ह वा एता मधुकृतश्च मधुवृषांश्च वेद।
कुर्वन्ति हास्यैता अग्नौ मधु।
नास्येष्टापूर्तं धयन्ति अथ यो न वेद न हास्यैता।
अग्नौ मधु कुर्वन्ति धयन्त्यस्येष्टापूर्तम्।।

(तैत्तिरीय ब्रा०-३.१०.१)

दर्शा = शुक्ल प्रतिपदा

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी तक पन्द्रह कलायें होती हैं और ये पञ्चदशी के पन्द्रह अक्षरों के समतुल्य हैं। ये पन्द्रह कलायें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा के भेद से तथा वाग्भव, कामकला एवं शक्तिकूट के त्रिरावृत्त भेद से वृद्धि करती हैं।

द्वितीय कूट में छ: अक्षर और 'शान्तिकूट' में चार अक्षर होने के कारण पञ्चदशी के पाँच-पाँच अक्षरों से तीन खण्ड हैं।

'कामराज कूट' की अन्तिम 'ह्ल्लेखा' एकादशी होती है और दशमी से विद्धा होने के कारण उसे दशमी कला के ही अन्तर्गत मानना चाहिये; किन्तु उसका योग 'शक्तिकूट' के प्रथमाक्षर के साथ (जो द्वादशी है) तृतीय खण्ड की प्रतिपूर्ति करता है।

'उपोष्या द्वादशी शुद्धा' नियमानुसार द्वादशी ही एकादशी मानी जानी चाहिये एवं दोनों कूटों का योग मान लेना चाहिये। उन्नेय भूमिका में यही भावना स्वीकरणीय है। इस प्रकार भावना करने से प्रथम कूट को अध: सहस्रार से उत्थित करके अनाहत चक्र में उसका विलीनीकरण होता है। द्वितीय कूट को अनाहत चक्र से उठाकर उसका 'निरोधिका' में विलीनीकरण एवं तृतीय को 'निरोधिका' से उठाकर उसका 'व्यापिका' में विलीनीकरण होता है। 'निरोधिका' से 'नाद' तक एकादशी का द्वादशी में एवं नीचे अर्धचन्द्रिका से दशमी में संक्रमण होता है।

'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' के तीनों कूटों के पाँच-पाँच अक्षरों के तीन खण्ड करने से प्रथम, छठवाँ एवं ग्यारहवाँ अक्षर 'नन्दा'; दूसरा, सातवाँ एवं बारहवाँ अक्षर 'भद्रा'; तीसरा, आठवाँ एवं तेरहवाँ अक्षर 'जया'; चौथा, नवाँ एवं चौदहवाँ अक्षर 'रिक्ता' तथा पाँचवाँ, दसवाँ एवं पन्द्रहवाँ अक्षर 'पूर्णा' स्वीकरणीय है।

ऐसी स्थिति में 'पञ्चदशी मन्त्र' का वाग्भव कूटरूपी मुख, जो अधोमुख है— शक्तिकूटरूपी कटि प्रदेश का ऊर्ध्वमुखी भाग सीधा ऊर्ध्वमुख हो जाता है।

द्वितीय प्रकार की भावना में विशुद्ध चक्र के सोलह पत्रों पर पूर्व से अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर एवं ईशान दिशाओं में क्रमानुसार सोलह अक्षरों की भावना की जाती है। ये सोम कलाओं की भाँति चमकते हैं; जो कि सहस्रार चक्र की पूर्ण कला के बिम्ब से आज्ञाचक्र पर होती हुई नीचे के विशुद्ध चक्र पर प्रतिबिम्बित होती है। इस प्रकार चिति शक्ति का सम्बन्ध सोलह नित्या कलाओं से, उनका सम्बन्ध मन्त्र से, मन्त्र का सम्बन्ध 'सुषुम्ना' से, सुषुम्ना का सम्बन्ध 'मातृका' से, मातृका का सम्बन्ध 'इडा-पिंगला' से एवं उनका सम्बन्ध तत्सम्बद्ध 'सूर्य', अग्नि एवं 'चन्द्र' से है।

पञ्चदशी मन्त्र के पन्द्रह अक्षरों का सम्बन्ध पन्द्रह तिथियों से है और षोडशी का सोलहवाँ अक्षर चितिरूपात्मिका अमावास्या (निर्विकल्प समाधि) है।

दशमीविद्धा एकादशी उपोष्या नहीं होती; प्रत्युत द्वादशीविद्धा होनी चाहिये, अन्यथा शुद्ध द्वादशी ही उपोष्या माननी चाहिये। यही क्रम मन्त्र के जप एवं न्यास में भी मानना चाहिये।

मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र के ऊपर 'निरोधिका' तक 'दशमी' रहती है। निरोधिका पर एकादशी आती है और उसके ऊपर 'नाद' पर 'द्वादशी' का स्थान है। नीचे के चक्रों का सम्बन्ध पाँच कर्मेन्द्रियों से है और 'आज्ञा' से 'अर्धेन्दु' तक पाँच ज्ञानेन्द्रियों के स्थान हैं अर्थात् दश तिथियों एवं दश अक्षरों का सम्बन्ध दश इन्द्रियों से रहता है।

मन 'एकादशी' है। उसका योग जब तक इन्द्रियों से बना रहता है, तब तक वह उपोष्या नहीं होती (ब्रह्मबहिर्मुख रहती है)। बुद्धि को 'द्वादशी', चित्त को 'त्रयोदशी', अहंकार को 'चतुर्दशी' और महत्तत्त्व को 'पूर्णिमा' मानना चाहिये। 'अमावास्या' निर्विकल्प स्थिति है। अव्यक्त कामेश्वरी है। उसे चितिस्वरूपा ज्ञानाग्नि से शुद्ध करना चाहिये।

मन की मात्रा जितनी ही क्षीण होती जाती है, काल का स्पर्श उतना ही कम होता जाता है। क्षीयमाण मन मात्र 'समना' तक रहता है, उसके बाद नहीं। 'बिन्दु' पूर्णिमा है, उसके बाद ही कृष्णपक्ष उदित होता है। समना कृष्ण चतुर्दशी एवं उन्मना अमावास्या है। समना में मन नहीं; अपितु संस्कार है। 'असम्प्रज्ञात समाधि' में चित्त वृत्तिरूप से नहीं रहकर संस्काररूप से रहता है।

षोडशी— 'बिन्दु' को 'पूर्णिमा' कहा तो गया है, किन्तु वह यथार्थ में पूर्णिमा नहीं है। यथार्थ 'पूर्णिमा' तो पञ्चदशी नहीं; बल्कि 'षोडशी' है। यथार्थ पूर्णिमा होने पर तो वह नित्य अक्षुण्ण रहती और कृष्णपक्ष आता ही नहीं; जबकि कृष्णपक्ष ही कालग्रास है। 'बिन्दु' में पन्द्रह कलायें तो हैं; किन्तु एक कला नहीं है। उसमें षोडशी कला 'अमृत कला' नहीं है। 'उन्मना' में पन्द्रह कलायें नहीं हैं; अपितु उसमें गुप्त कला 'षोडशी' का

आभास है। षोडशी के न रहने पर ही कालचक्र का आवर्तन होता है— षोडशी रहती तो अमावास्या के बाद शुक्लपक्ष नहीं रहता। षोडशकल पुरुष में 'अमृतकला' है और यही यथार्थ 'अमाकला' है। शेष पन्द्रह कलायें तो कालसंस्पृष्ट हैं।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप : कामकलाविलास

कौलक्रमानुयायी पुण्यानन्द 'कामकलाविलास' में कहते हैं कि माता, मान, मेय या ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी ही तीनों 'पुर' हैं, जिनकी स्वामिनी 'त्रिपुरा' देवी हैं और इन त्रिपुटियों में तत्त्व केवल एक ही है। जिसने इस एकत्व का अनुभव कर लिया, वह साक्षात् महात्रिपुरसुन्दरी है—

माता मानं मेयं बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणि
धामत्रयपीठत्रयशक्तित्रयभेदभावितान्यपि च।
तेषु क्रमेण लिङ्गत्रितयं तद्वच्च मातृकात्रितयम्
इत्थं त्रितयपुरी या तुरीयपीठादिभेदिनी विद्या।।

इति कामकलाविद्यादेवी चक्रक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।

महाबिन्दु और भगवती त्रिपुरसुन्दरी— प्राणापान की गति जिस स्थान पर उत्पन्न होती है और जहाँ जाकर रुक जाती है, उसे 'द्वादशान्त' कहते हैं। 'शिवद्वादशान्त' और 'शक्तिद्वादशान्त' (बाह्य + आन्तर)— ये दो द्वादशान्त हैं।

'नेत्रतन्त्र' की टीका में क्षेमराज एवं 'तन्त्रालोक' की टीका में जयरथ ने 'द्वादशान्त' पद का अर्थ इस प्रकार किया है— 'शिखाग्र में स्थित ऊर्ध्व द्वादशान्त'। यह द्वादश आधारों के अन्त में है। निर्विकल्प योगी द्वादशान्त के ऊपर परमाकाश या महाबिन्दु में— अनुत्तर शून्य में लय होकर पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है; यह परमाकाश ही महाबिन्दु है। आज्ञा तक का स्तर = 'सकल'; उन्मना तक का स्तर = 'सकलनिष्कल'; एवं महाबिन्दु = निष्कल माना जाता है। इसी निष्कल स्वरूप में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी निवास करती हैं। इसकी शक्ति के विना शिव भी शव हो जाता है। इसे ही 'पराशक्ति' एवं 'शैवीमुख' कहा गया है। इस 'निष्कल पराशक्ति' की शक्ति से शिवस्वरूप अभिव्यक्त हो पाता है—

समना चोन्मना चेति द्वादशान्ते स्थिताः प्रिये।
मूलकुण्डलिनीरूपे मध्यमे च ततः पुनः।।

(योगिनीहृदय-३.१७४)

कामबीज एवं त्रिपुराभैरवी— जिस स्थान पर 'कुण्डलिनी देवी' अधिष्ठित हैं उस 'योनिमण्डल' में बन्धूक के पुष्प के समान 'कामबीज' स्थित है, जो कि स्वच्छ स्वर्ण के समान कान्तिमान है—

तत्र बन्धूकपुष्पाभं कामबीजं प्रकीर्तितम्। (शिवसंहिता-५.६०)

इसी बीज में सुषुम्णा नाड़ी जुड़ी हुई है—

सुषुम्णापि च संश्लिष्टा बीजं तत्र वरं स्थितम्।। (शिवसंहिता)

यह बीज शरच्चन्द्र के समान, सूर्यकोटिप्रतीकाश एवं चन्द्रकोटिसुशीतल है। यह तेजत्रय से संवलित है। तेज, सूर्य एवं चन्द्रमा— तीनों के मिलने से इसे त्रिपुराभैरवी कहा गया है—

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
एतत्त्रयं मिलित्वैव देवी त्रिपुरभैरवी।। (शिवसंहिता)

यह 'कामबीज' अग्नि की शिखा के समान रूप वाला है। इसी में योनिस्थित परम-तेजोरूप 'स्वयम्भू लिंग' स्थित है। तेज (अग्नि), सूर्य एवं चन्द्रमा (लं खं ठं) तीनों एका-श्रित होकर कामबीजनामक मूलाधारस्थित यह बीज 'त्रिपुराभैरवी' के नाम से प्रसिद्ध है—

कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसङ्गतम्
द्विरण्डी यत्र सिद्धोऽस्ति डाकिनी यत्र देवता।
तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता
तस्या ऊर्ध्वे स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम्।। (शिवसंहिता)

मूलाधारोऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम्।
तन्मध्ये वाग्भवं बीज विस्फुरन्तं तडित्प्रभम्।।
हृदये कामबीजं तु बन्धूककुसुमप्रभम्।। (शिवसंहिता)

अनुष्ठाने कृते धीमान् पूर्वसेवा कृता भवेत्।
ततो ददाति कामान् वै देवी त्रिपुरभैरवी।। (शिवसंहिता)

बीजत्रय—

१. मूलाधार पद्म के मध्य में— 'वाग्भवबीज'
२. हृदय में बन्धूककुसुम की भाँति— 'कामबीज'
३. आचाचक्र में चन्द्रकोटिप्रतीकाश— 'शक्तिबीज' (शिवसंहिता)

१. मूलाधारोऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम्।
तन्मध्ये वाग्भवं बीजं विस्फुरन्तं तडित्प्रभम्।।

२. हृदये कामबीजं तु बन्धूककुसुमप्रभम्।
३. आज्ञारविन्दे शक्त्याख्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
४. बीजत्रयमिदङ्गोप्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।

क. वाग्भव बीज = तडित्प्रभ : मूलाधार के पद्म में।
ख. काम बीज = बन्धूककुसुमप्रभ : हृदय में।
ग. शक्ति बीज = चन्द्रकोटिसमप्रभ : आज्ञाचक्र में।

षटचक्रनिरूपण में कहा गया है—

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः।

भगवती की नखशक्ति

भगवती की उँगलियों के नख एवं भगवान् के दशावतार—

करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः। (ललितासहस्रनाम-३२.४०)

सर्वोपरि महाशक्ति ललिताम्बा के करनख की एक-एक कला से एक-एक अवतार का आविर्भाव हुआ है; यथा—

१. उनके दक्षिण करांगुष्ठ के नख से → मत्स्यावतार → शंखासुरवध एवं वेदों की रक्षा।

२. उनके हाथ की तर्जनी के नख से → कूर्मावतार → मन्दराचल को पीठ पर उठाया और देवासुर कार्य सम्पन्न।

३. उनकी मध्यमा के नख से → वराहावतार → पृथ्वी को अपने दाढ़ से उठाकर उसे पाताल से नीचे लाये और हिरण्याक्ष का वध किया।

४. अनामिका के नख से → नृसिंहावतार → हिरण्यकशिपु का वध तथा प्रह्लाद की रक्षा।

५. कनिष्ठा के नख से → वामनावतार → तीन पग में तीनों लोक नाप कर बलि को राक्षसों के सहित पाताल भेज दिया।

६. वामाङ्गुष्ठ नख → परशुरामावतार → इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार।

७. वामहस्त की तर्जनी नख → रामावतार → रावण का वध।

८. वामहस्त की मध्यमा का नख → कृष्णावतार → कंसवध, गोपलीला, गोपीलीला, महाभारत के रण में भूमिका।

९. वामहस्त की अनामिका का नख → बौद्धावतार।

१०. वामहस्त की कनिष्ठिका का नख → कलि में अश्वावतार → स्वरखुराघात द्वारा पृथ्वी का समतलीकरण।[१]

दशावतारों का भगवती के साथ तादात्म्य[२]—

१. बगलामुखी = कूर्मावतार
२. धूमावती = वराहावतार
३. छिन्नमस्ता = नृसिंहावतार
४. भुवनेश्वरी = वामनावतार

---

१. शक्ति अंक (४३२) २. तोडलतन्त्र।

५. त्रिपुरा = जामदग्न्यवतार
६. भैरवी = बलभद्रावतार
७. महालक्ष्मी = बुद्धावतार
८. दुर्गा = कल्कि अवतार
९. भगवती काली = कृष्णावतार
१०. मातंगी = रामावतार

तारादेवी नीलरूपा बगला कूर्ममूर्तिका।
धूमावती वराहः स्याच्छिन्नमस्ता नृसिंहिका।।

भुवनेश्वरी वामनः स्यान्मातङ्गी राममूर्तिका।
त्रिपुरा जामदग्न्यः स्याद्बलभद्रस्तु भैरवी।।

महालक्ष्मीर्भवेद्बुद्धो दुर्गा स्यात्कल्किरूपिणी।
स्वयं भगवती काली कृष्णमूर्तिः समुद्भवा।।
इति ते कथितं देव्यवतारं दशमेव हि।।

भगवती का कूटस्वरूप

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा ।
कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ।। (ललितासहस्रनाम)

वे मूलमन्त्रात्मिका भी हैं— 'मूलमन्त्रात्मिका सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।'

भगवती का मन्त्रस्वरूप

मुख	कटि	अधोभाग
(वाग्भवकूट)	(कामराजकूट)	(शक्तिकूट)

भगवती का रथ = श्रीयन्त्र— चक्रराजरूढ़ा, गेयचक्ररथारूढा। (ललितासहस्रनाम)

दाँत = 'शुद्धविद्या'— शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वला। (ललितासहस्रनाम)

भगवती का स्वरूप

महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान— त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में कहा गया है कि भगवती का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि वह महात्रिपुरसुन्दरी कामाख्यास्वरूपा, तुरीयरूपा, तुरीयातीत, सर्वोत्कटा, सर्वमन्त्रासनगता, पीठोपपीठदेवतापरिवृता, सकलकलाव्यापिनी देवता, सामोदा, सापरागा, सहृदया, सामृता, सदोदिता, परा विद्या, त्रिकूटा, त्रिपुरा, परमा माया, श्रेष्ठा, परा वैष्णवी, हृदयकमलकर्णिकासंस्थिता, परा, भगवती लक्ष्मी, माया, सदोदिता, महावश्यकरी, मदनोन्मादनकारिणी, धनुर्बाणधारिणी, वाग्विजृम्भिणी, चन्द्रमण्डल-मध्यवर्तिनी, चन्द्रकला, सप्तदशी, महानित्योपस्थिता, पाशांकुशमनोज्ञपाणिपल्लवा, समुद्यद-र्कनिभा, त्रिनेत्रा, महालक्ष्मी, त्रिकूटाख्या, स्मितमुखी, सुन्दरी, महामाया, सर्वसुभगा, महा-कुण्डलिनी, त्रिपीठमध्यवर्तिनी, अकथादिपीठसमासीना, परा भैरवी, चित्कला महात्रिपुरा हैं—

'कामाख्यां तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कटां सर्वमन्त्रासनगतां पीठोपपीठदेवतापरिवृतां सकलकलाव्यापिनी देवतां सामोदां सपरागां सहृदयां सामृतां सकलां सेन्द्रियां सदोदितां परां विद्यां स्पष्टीकृत्वा हृदये निधाय विज्ञायानिलयं गमयित्वा त्रिकूटां त्रिपुरां परमां मायां श्रेष्ठां परां वैष्णवीं सन्निधाय हृदयकमलकर्णिकायां परां भगवतीं लक्ष्मीं मायां सदोदितां महावश्यकरीं मदनोन्मादकारिणीं धनुर्बाणधारिणीं वाग्विजृम्भिणीं चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनीं चन्द्रकलां सप्तदशीं महानित्योपस्थितां पाशाङ्कुशमनोज्ञपाणिपल्लवां समुद्यदर्कनिभां त्रिनेत्रां विचिन्त्य देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्ष्मीमयीं सर्वलक्षणसम्पन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं, निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादिश्रीपीठे परां भैरवीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेनेयमेवं वेदेति महोपनिषत्।'

ललितासहस्रनाम की दृष्टि— ललितासहस्रनाम के अन्त में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

श्रीचक्रराजनिलया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दु, त्रिकोणादि नव योनियों से निर्मित उस 'श्रीचक्र' में निवास करती हैं, जो शिव एवं शक्ति दोनों का शरीर है। जिस प्रकार जीव शरीर में निवास करता है, उसी प्रकार भगवती 'श्रीचक्र' में निवास करती हैं।

भगवती श्रीमत् अर्थात् श्रीयुक्त हैं और त्रिपुरसुन्दर (परमशिव) की भार्या हैं। वे त्रिपुरात्मिका हैं। त्रिपुर (परमशिव) वे शिव हैं, जिनका शरीर ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रस्वरूप तीन पुरों से निर्मित है। कालिकापुराण में कहा गया है कि प्रधान की इच्छा से शिव का शरीर तीन रूप वाला बन गया। महेश्वर का ऊर्ध्व भाग पञ्चमुखी ब्रह्मा बन गया, मध्य भाग नीलवर्णी एवं एकमुखी विष्णु बन गया तथा निम्न भाग पञ्चमुखी, चतुर्भुजी श्वेताभ्रवर्ण रुद्र बन गया।

चूँकि शिव में ये तीन 'पुर' हैं; अत: वे 'त्रिपुर' कहलाते हैं। उन त्रिपुर से युक्त रहने वाली होने के कारण ही भगवती 'त्रिपुरा' या 'त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती हैं।

भगवती सामरस्यस्वरूपा हैं— श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी हैं। श्रीशिव (श्रीयुक्त शिव, दिव्य एवं दैवीय शिव) = भगवान् (भग = ऐश्वर्य, श्री = ऐश्वर्य) = ऐश्वर्यवान् शिव। भगवती का स्वरूप ऐश्वर्यवान् शिव एवं श्रीसंयुक्ता त्रिपुरा ललिता देवी का सामरस्य है।

'वायवीय साम' में कहा गया है कि शिव की इच्छा से 'परा शक्ति' शिवतत्त्व के साथ ऐकात्म्य प्राप्त करती है; फिर वह शक्ति सृष्टि-काल में अपने को उसी प्रकार व्यक्त करती है, जिस प्रकार तिल से तैल। 'सामरस्य' का अर्थ है— सर्वोच्च, परम, चरम साम्य

अर्थात् पूर्ण ऐकात्म्य। 'सौरसाम' में कहा गया है— 'शक्ति, जो कि ब्रह्म से पृथक् है, वह यथार्थतः ब्रह्म से भिन्न नहीं है; अतः अज्ञजन ही उसे ब्रह्म से भिन्न मानते हैं, किन्तु दोनों में भिन्नता खोज पाना असम्भव है; अतः शक्ति एवं शक्तिमान में कोई भिन्नता नहीं है। 'वाल्मीकीय रामायण' भी इसी की पुष्टि करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार केवल एक वायु की ही गति है, केवल एक ही 'उड्डीयान पीठ' है एवं केवल एक ही व्यक्त 'चित् शक्ति' है उसी प्रकार केवल एक ही 'सामरस्य' है और वह है— शिव एवं शक्ति का सामरस्य।

'शिवशक्त्यैक्य' इस भाव को भी बोधित करता है कि शिवचक्र (शिव) एवं शक्ति-चक्र (शक्ति) का सामरस्य ही भगवती का अद्वैत रूप है। इसका अर्थ यह हुआ कि 'शिवचक्र' एवं 'शक्तिचक्र' से निर्मित विराट् 'श्रीचक्र' एवं उसमें निहित अनन्त ब्रह्माण्डात्मक विश्व (पिण्ड, ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, शक्त्यण्ड, शिवाण्ड आदि) के स्वरूप वाली वे भगवती विश्वरूपात्मिका हैं।

ब्राह्मपुराण में ठीक ही कहा गया है कि बिन्दु में अष्टार एवं अष्टदल पद्म का साम-रस्य आवश्यक है। जो श्रीचक्र में शिवसम्बद्ध चक्रों एवं शक्तिसम्बद्ध चक्रों के सम्बन्ध को जानता है, वही ज्ञानी है।

हंसनामक मन्त्र में शिव एवं शक्ति दोनों का सामरस्य है। 'स' शक्ति है और बीज है— 'ह'। शिव की शक्ति 'स' है तथा 'ह' बीजशक्ति 'विद्याशक्ति' है अर्थात् शिव है; अतः सर्वोच्च मन्त्र शिव एवं शक्ति दोनों हैं, दोनों का सामरस्य है।

विरूपाक्षपञ्चाशिका में कहा गया है कि 'धूमावती' निरावृत्त होती है। 'भास्वती' प्रकट होती है, 'स्पन्द' उत्प्रेरित करती है, 'विभ्वी' सर्वत्र व्याप्त होती है एवं 'ह्लादशक्ति' पोषण करती है। धूमावती शक्ति 'पृथ्वी', ह्लादशक्ति 'जल', भास्वती 'अग्नि', स्कन्द 'वायु' एवं विभ्वी 'आकाश' से सम्बन्ध रखती है; अतः समस्त विश्व शक्ति के द्वारा ही व्याप्त है। भगवती को 'ललिता' इसलिये कहा गया है, क्योंकि 'लोकानतीत्य ललते, ललिता तेन सोच्यते' अर्थात् लोकों या भावों से परे होती हुई लोकों या भावों को सुन्दर बनाने या उन्हें अव्यक्त से व्यक्त करने के कारण ही महाविद्या पराम्बा को 'ललिता' कहा गया है। चूँकि भगवती में सारे भाव सुन्दर हैं, उनका आकार, आयुध, द्वीप, स्वरूप, धाम एवं स्वभावादि सभी कुछ सुन्दर है; अतः वे 'सुन्दरी' कहलाती हैं और उन्हें 'त्रिपुरसुन्दरी' या 'सुन्दरी' भी कहा गया है। वे जगन्माता हैं; अतः उन्हें 'ललिताम्बिका' भी कहा गया है। भगवती सामरस्यस्वरूपा होने के कारण 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का, श्रीचक्रराज-निलया होने के कारण 'विश्वस्वरूपा' होने का, शिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी होने के कारण 'सामरस्यवाद' एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का, श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी होने के कारण समस्त ऐश्वर्यों, त्रिदेवों एवं समस्त सौन्दर्यों का, ललिता होने के कारण जगत् के समस्त लालित्यों (शुभों, कल्याणों, अभ्युदय-निःश्रेयसों, श्रेयःप्रेयों) का एवं अम्बिका होने के कारण समस्त छत्तीस तत्त्वों, समस्त शक्तियों, समस्त षट्त्रिंशदात्मक जगत्, जगद्रचना,

सृष्टि की उद्भाविका एवं जगन्मातृत्व का बोध कराती हैं और तत्स्वरूपा हैं।

षोडशी— दश महाविद्याओं में एक महाविद्या 'षोडशी' भी है। इनमें षोडश कलायें पूर्णतया विकसित हैं; इसीलिये इन्हें 'षोडशी' कहा जाता है। 'षोडशी' माहेश्वरी शक्ति की सबसे अधिक मनोहर श्रीविग्रह वाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। षोडशाक्षर मन्त्र वाली उन देवी की अंगकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डल के प्रकाश के समान है। उनकी चार भुजायें और तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रा में लेटे हुये 'सदाशिव' के ऊपर स्थित कमल के आसन पर विराजिता षोडशी देवी के चारो हाथों में पाश, अंकुश, धनुष एवं बाण शोभायमान है। षोडशी कला सच्चिदानन्दरूपिणी है। त्रिपुरसुन्दरी षोडशकलात्मिका हैं। वासनासुभगोदय में कहा भी गया है—

दर्शाद्या पूर्णिमान्ताद्याः कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

चन्द्रमण्डल में 'सादाख्या' वृद्धि-ह्रासरहित कला है, किन्तु अन्य पन्द्रह कलायें ह्रास-वृद्धियुक्त हैं। भासुरानन्दनन्द 'सौभाग्यभास्कर' में कहते हैं— 'चन्द्रमण्डले हि सादाख्या कलावृद्धिह्रासरहितैका। अन्याः पञ्चदश यातायातभागिन्यः।'

चिद्रूपा कला एवं महात्रिपुरसुन्दरी अभिन्न हैं; सौभाग्यभास्कर में कहा भी गया है— 'तदभिन्नायाः श्रीदेव्या अपि चिद्रूपा कला त्रिपुरसुन्दरीपदवाच्यैका।[1]'

त्रिमूर्ति— ललितासहस्रनाम में भगवती को त्रिपुरा, त्रिजगद्वन्द्या, त्रिमूर्ति और त्रिदशेश्वरी भी कहा गया है—

त्रिपुरा त्रिजगद्वन्द्या त्रिमूर्तिस्त्रिदशेश्वरी।

'त्रिमूर्तित्व' है क्या? वाराहपुराण में कहा गया है—

अन्यच्च कारणं देवि ! यद्वक्ष्यामि शृणुष्व तत्।
सितरक्तकृष्णवर्णैस्त्रिवर्णासि वरानने।।

मूर्तित्रयं तदा देवैरकरोत्त्रिविद्या तनुम्।
सितां रक्तां तथा कृष्णां त्रिमूर्तित्वं जगाम ह।।

इसी प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री (शक्तित्रय) का श्वेत मन्दिर, नीलपर्वत आदि में तपश्चर्या का वर्णन किया गया है और त्रिमूर्तित्व की पुष्टि भी की गई है—

एषा त्रिमूर्तिरुद्दिष्टा नयसिद्धान्तगामिनी।
एषा श्वेतपरा शक्तिः सात्त्विकी बालसंस्थितिः।।

एषैव रक्ता रजसि वैष्णवी परिकीर्तिता।
एषैव कृष्णा तमसि रौद्री देवी प्रकीर्तिता।।

---

१. कलायें : दर्शा दृष्टा दर्शना विश्वरूपा सुदर्शना आप्यायमानाप्यायमानाप्यायसूनृतेरापूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी।

परमात्मा यथा देव एक एव त्रिधा स्थित:।
प्रयोजनवशाच्छक्तिरेकैव त्रिविधा भवेत्।।

त्र्यक्षरी— भगवती को 'त्र्यक्षरी' भी कहा गया है; ललितासहस्रनाम कहता है कि— 'त्र्यक्षरी दिव्यगन्धाढ्या।' अक्षरत्रय का समाहार ही तो त्र्यक्षरी है— 'त्रयाणामक्षराणां वाक्कामशक्तिबीजात्मकानां समाहार:।'

वामकेश्वरतन्त्र में कहा भी गया है—

वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्षरूपिणी।
कामराजे क्रियाशक्ति: कामेशी कामरूपिणी।।

शक्तिबीजे परा शक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी।
एवं देवी त्र्यक्षरी तु महात्रिपुरसुन्दरी।।

गौड़पाद ने भी कहा है—

त्र्यक्षरी शुद्धविद्या कुमारी च।।
तदेतत्त्र्यक्षरं हृदयं तदेतत्त्र्यक्षरं सत्यम्। (बृहदारण्यक)

चिदेकरसरूपिणी— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था, चिदेकरसरूपिणी आदि भी कहा गया है; क्योंकि वही 'चिति शक्ति' हैं। शक्तिसूत्र में भी उन्हें 'चिति' ही कहा गया है— 'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:।'

पञ्चपादिका में भी इस आख्या की पुष्टि की गई है— 'आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सन्ति धर्मा अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् पृथगिवावभासन्त।'

महावासिष्ठ में भी कहा गया है— 'सैषा चितिरिति प्रोक्ता जीवनाज्जीवितैषिणा।'

शिवसूत्र में 'चैतन्यमात्मा' कहकर भगवती को आत्मस्वरूप चैतन्य कहा गया है।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के तीन रूप

परस्वरूप — इच्छा, ज्ञान, क्रिया
सूक्ष्मस्वरूप — वामा, ज्येष्ठा, रौद्री
स्थूलरूप — ब्रह्मा, विष्णु, ईश

(वामकेश्वरी मतविवरण)

(इ) दश महाविद्या एवं त्रिपुरसुन्दरी

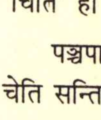

शम्भु का शरीर
महात्रिपुर सुन्दरी } 'शरीरं त्वंशम्भो:' (सौ० ल०— शंकराचार्य)

चामुण्डातन्त्र, श्रीमद्भागवत एवं मुण्डमालातन्त्र के प्रथम पटल में दश महाविद्याओं के नाम का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।

बगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः।।

चामुण्डातन्त्र, तोडलतन्त्र एवं अन्य तन्त्रों में इन नामों में साम्य है। शक्तिसङ्गमतन्त्र में 'षोडशी' एवं 'कमलात्मिका' के स्थान पर 'रमा' एवं 'सुन्दरी' शब्दों का सन्निवेश किया गया है। मुण्डमालातन्त्र में सिद्धिविद्यास्थान में मातंगी देवी का उल्लेख किया गया है तो शक्तिसङ्गमतन्त्र में सिद्धिविद्या के रूप में 'भैरवी' का नामोल्लेख किया गया है। 'दश महाविद्यायें' निम्नवत् हैं—

१. काली	५. भैरवी	८. बगलामुखी
२. तारामहाविद्या	६. छिन्नमस्ता	९. धूमावती
३. षोडशी	७. सुन्दरी कमला	१०. मातंगी[1]
४. भुवनेश्वरी		

ये दश महाविद्यायें ही सिद्ध विद्यायें भी हैं। इन्हें 'सिद्धविद्या' इसलिये कहते हैं क्योंकि इनकी उपासना में नक्षत्रादिविचारणा, कालादिशोधन आदि का प्रतिबन्ध नहीं है—

नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा।
कालादिशोधनं नास्ति नारिभिन्नादिदूषणम्।।

सिद्धविद्यातया नात्र युगसेवापरिश्रमः।
नास्ति किञ्चिन्महादेवि! दुःखसाध्यं कदाचन।।

सिद्धाविचार, नक्षत्रचक्रादिविचार, कालादिशोधन एवं अरिमित्रादिविचार अन्य मन्त्रों की उपासना में आवश्यक होते हैं, किन्तु दश महाविद्याओं की उपासना में ये विचार उपेक्षणीय हैं। कलियुग में मन्त्रजप, पूजा आदि अन्य युगों की संख्या से चारगुना अधिक करने का विधान है; किन्तु 'दश महाविद्या' की उपासना में यह नियम भी लागू नहीं होते।

दश महाविद्याओं के नामों में मतभेद— जिस प्रकार विष्णु के अवतारी नामों की संख्या भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न है— मतभेद है, उसी प्रकार दश महाविद्याओं में किसका-किसका नाम गृहीत किया जाय? इस विषय में भी मतभेद है। तन्त्रसारधृत मालिनीविजयतन्त्र में महाविद्याओं के निम्न नाम हैं—

१. काली	५. छिन्नमस्ता	९. कामाख्यावासिनी
२. नीला तारा	६. वाग्वादिनी	१०. बाला त्रिपुरसुन्दरी
३. महादुर्गा	७. अन्नपूर्णा	११. मातङ्गी
४. त्वरिता	८. प्रत्यङ्गिरा	१२. शैलवासिनी कामाख्या

१. ये ही नाम श्रीमद्भागवत महापुराण में भी मिलते हैं। चामुण्डातन्त्र और मुण्डमाला तन्त्र में भी ये ही नाम मिलते हैं।

अथ वक्षाम्यहं या या महाविद्या महीतले।
दोषजालैरसंस्पृष्टास्ता: सर्वा हि फलै: सह।।

काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका।
वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुन:।।

कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी।
इत्याद्या: सकला देव्य: कलौ पूर्णफलप्रदा।।

सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रम:।
तथा चैता महाविद्या: कलिदोषान्न बाधिता।।

कालीकुल एवं श्रीकुल— किसी-किसी तन्त्रग्रन्थ में महाविद्याओं की संख्या अट्ठारह बतायी गई है। इन अट्ठारह महाविद्याओं के दो कुल हैं— 'कालीकुल' और 'श्रीकुल'। 'कालीकुल' में नौ विद्यायें अन्तर्भूत हैं, जो कि निम्नवत् हैं—

१. काली	४. भुवनेश्वरी	७. त्वरिता
२. तारा	५. महिषमर्दिनी	८. दुर्गा
३. छिन्नमस्ता	६. त्रिपुरा	९. प्रत्यङ्गिरा

काली तारा छिन्नमस्ता भुवना महिषमर्दिनी।
त्रिपुरा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा।।
कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलञ्च तत: परम्।।[१]

'श्रीकुल' में निम्न महाविद्याओं का अन्तर्भाव है—

१. सुन्दरी	४. बगला	७. मातंगी
२. भैरवी	५. कमला	८. स्वप्नावती
३. बाला	६. धूमावती	९. मधुमती

सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलाऽपि च।
धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये।
मधुमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम्।।[२]

कालीमहाविद्या : काली के भेद

(एक ही संविद्रूपा काली के अनेक भेद)

१. दक्षिणा काली, महाकाली, भद्रकाली, श्मशानकाली, गुह्यकाली, कामकलाकाली, सिद्धिकाली, सिद्धिलक्ष्मी काली।[३]

२. डम्बरकाली, गहनेश्वरी, एकतारा, चण्डशावरी, वज्रवती, रक्षाकाली, इन्दीवरी काली, धनदा काली, रमन्या काली, ईशान काली, मन्त्रमाता।[४]

---

१. शाक्तदर्शनम्। २. शाक्तदर्शनम्। ३. पुरश्चर्यार्णवतन्त्र। ४. जयद्रथयामलतन्त्र।

३. स्पर्शमणि काली, चिन्तामणि काली, सिद्धि काली, विद्या राज्ञी, कामकलाकाली, हंसकाली, गुह्यकाली।[१]

भगवती काली महाविद्या के अन्य भेद भी हैं; जैसे कि निम्न बारह भेद—

१. सृष्टिकाली[२]	५. मृत्युकाली[६]	९. कालकाली[१०]
२. स्थितिकाली[३]	६. रुद्रकाली[७]	१०. भद्रकाली[११]
३. संहारकाली[४]	७. मार्तण्डी कालिका[८]	११. परमार्ककाली[१२]
४. यमकाली[५]	८. कालाग्नि रुद्रकाली (कालानल रुद्रकाली)[९]	१२. महाभैरव घोर-चण्डकाली[१३]

काश्मीरप्रचलित दश विद्या— काश्मीर के शैव-शाक्ततान्त्रिकों के साहित्य में दश विद्याओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है—

त्रिपुरा श्रीश्च वाग्देवी तारापि भुवनेश्वरी।
मातङ्गी शारिका राज्ञी मीडा ज्वालामुखी तथा।।

दश विद्याः स्वयं चैता भाषिताः कृत्तिवाससा।
एता दशैव षडन्या योजिता षोडशाक्षरी।।

दशविद्या भद्रकाली तुरी च छिन्नमस्तका।
दक्षिणा कालिका श्यामा कालरात्र्यपि सुन्दरि।।

एतासां मूलमन्त्रेण योजितैकाक्षरेण च।
ब्रह्मादिदैवतैः पूज्या विद्या श्रीषोडशाक्षरी।।

सृष्टिकाली— मन्त्रोदिता, आकाशरूपा, आकाशस्थिता, आकाशवर्जिता, सृष्टि-संहारकारिणी, विश्वविभवात्मिका कला, काल की कलना को ग्रास बनाने वाली, अवभासनोन्मुखा, अनन्तभावराशिविमर्शिनी, संविद्देवी कालिका 'सृष्टिकाली' हैं। तन्त्रालोक में कहा भी गया है—

कौलार्णवानन्दघनोर्मिरूपामुन्मेषमेषोभयभाजमन्तः ।
निलीयते नीलकुलालये या तां सृष्टिकालीं सततं नमामि।।

रक्तकालिका— इन्द्रियातीत, निर्गुण, निराकार, विश्वरञ्जिनी, रञ्जिका, कलाकलित एवं मेय में आसक्त काली ही 'रक्तकाली' हैं, तन्त्रालोक में कहा भी गया है—

न चैषा चक्षुषा ग्राह्या न च सर्वेन्द्रियस्थिता।
निर्गुणा निरहङ्कारा रञ्जयेद्विश्वमण्डलम्।।
सा कला तु यदुत्पन्ना सा ज्ञेया रक्तकालिका।।

---

१. सम्मोहनतन्त्र।
२. श्रीपञ्चशतिक एवं श्रीक्रमस्तोत्र।
३. श्रीक्रमस्तोत्र।
४. श्रीक्रमस्तोत्र।
५. पञ्चशतिक।
६. पञ्चशतिक।
७. पञ्चशतिक।
८. श्रीक्रमस्तोत्र।
९. पञ्चशतिक, श्रीक्रमस्तोत्र।
१०. पञ्चशतिक।
११. पञ्चशतिक।
१२. श्रीक्रमस्तोत्र।
१३. श्रीक्रमस्तोत्र।

जैसा कि तन्त्रालोक (आ० ४) में उद्धृत किया गया है, सार्धशतिका में तेरह कालिकाओं का नामोल्लेख प्राप्त होता है, जो निम्नवत् है—

सृष्टिः स्थितिश्च संहारो रक्तकाली तथैव च।
स्वकाली यमकाली च मृत्युकाली तथैव च।।

रुद्रश्च परमार्कश्च मार्तण्डश्च ततः परः।
कालाग्निरुद्रकाली च महाकाल्यभिधा पुनः।।

महाभैरवशब्दश्च घोरशब्दस्ततः परः।
चण्डकालीपदं चान्ते त्रयोदश उदाहृताः।।

कामकलाविद्या का महत्त्व— भगवती महात्रिपुरसुन्दरी 'कामकला' हैं। जो उन्हें एवं उनके चक्रों के क्रम को जानता है, वह स्वयमेव महात्रिपुरसुन्दरी बन जाता है; जैसा कि कामकलाविलास (८) में कहा भी गया है—

इति कामकलाविद्या देवी चक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

कामकला, श्रीविद्या, श्रीचक्र, विश्वरूपा, विश्वातीता, प्रकाशामर्श, जगदात्मा, परमात्मा का हृदय, स्फुरत्ता, परमनित्यानन्दघन परमानन्द, परमा शक्ति, महासत्ता, स्पन्द, सार, शब्दब्रह्म, पञ्चदशाक्षरी विद्या, विमर्श— ये सभी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप हैं; जैसा कि कहा भी गया है—

सकलाद्या स्थिते हृद्ये कामराजकलात्मिके।
शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।।

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।।

सा स्फुरत्ता महासत्ता सैषा सारतया प्रोक्ता।
प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्।।
नित्यानन्दघनं परम् .... ।।

(वामकेश्वरतन्त्र)

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः, त्वं तु पञ्चदशाक्षरी, विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी। (कामकलाविलास)

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।।

(सच्चिदानन्दवासना)

भद्रकाली के भेद— तोडलतन्त्र में भद्रकाली के आठ भेद किये गये हैं, जो कि निम्नवत् हैं—

दक्षिणा काली, सिद्धकालिका, गुह्यकालिका, श्रीकालिका, भद्रकाली, चामुण्डा कालिका, श्मशानकालिका और महाकाली।

निरुत्तर तन्त्र (प्रथम पटल) में दो कुलों का उल्लेख किया गया है— कालीकुल और श्रीकुल। कालीकुल में दो भाव होते हैं— दिव्य और वीर तथा श्रीकुल में तीन भाव होते हैं— पशु, वीर एवं दिव्य। जैसा कि निरुत्तरतन्त्र में कहा भी गया है—

दिव्यभावैश्च वीरैश्च कालीकुलं विचिन्तयेत्।
श्रीकुलञ्च त्रिभिः सर्वैश्चिन्तयेत् कुलसुन्दरी।।

कुलद्वय की देवियों के नाम इस प्रकार हैं—

कालीकुल—
१. काली
२. तारा
३. रक्तकाली
४. भुवना
५. महिषमर्दिनी
६. त्रिपुटा
७. त्वरिता
८. दुर्गा
९. विद्या
१०. प्रत्यङ्गिरा

श्रीकुल—
१. सुन्दरी
२. भैरवी
३. बाला
४. बगला
५. कमला
६. धूमावती
७. मातंगी
८. विद्या
९. स्वप्नावती
१०. मधुमती
११. महाविद्या

काली तारा रक्तकाली भुवना महिषमर्दिनी।
त्रिपुटा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा।।
कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलं च ततः परम्।
सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलापि च।
धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये।।
मधूमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम्।

दश एवं अष्टादश महाविद्या— निरुत्तरतन्त्र में ही 'दश महाविद्या' एवं 'अष्टादश' 'महाविद्या' का भी उल्लेख किया गया है, जो कि निम्नांकित हैं—

दश महाविद्या—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।।

अष्टादश महाविद्या—

१. काली	७. नित्या दुर्गा	१३. बगला
२. तारा	८. महिषमर्दिनी	१४. धूमावती
३. छिन्ना	९. त्वरिता	१५. कमला
४. मातंगी	१०. त्रिपुरा	१६. सरस्वती
५. भुवनेश्वरी	११. पुरा	१७. जयदुर्गा
६. अन्नपूर्णा	१२. भैरवी	१८. त्रिपुरसुन्दरी[१]

षोडशी, त्रिपुरभैरवी एवं अन्य महाविद्याओं का आविर्भाव— दश महाविद्याओं का सम्बन्ध मुख्यत: सती, शिवा और पार्वती से है। भागवत पुराण में इसकी कथा इस प्रकार है—

एक बार विश्वस्रष्टा के यज्ञ में जब समस्त ऋषि आसीन थे, उसी समय प्रजापति दक्ष उपस्थित हुये। उनको आता देखकर ऋषियों ने तो उठकर उनका अभिवादन किया; किन्तु समाधिमग्न शिव अपने आसन पर बैठे ही रह गये। यह देखकर प्रजापति दक्ष अत्यन्त कुपित हुये; फलस्वरूप शिव का तिरस्कार करते हुये उन्होंने यह शाप दे दिया कि तुम भविष्य में यज्ञभाग से सदैव वञ्चित रहा करोगे।

शिवविद्वेषाक्रान्त दक्ष ने एक शिवरहित यज्ञानुष्ठान किया; जिसमें शिव एवं सती दोनों को ही उन्होंने आमन्त्रित नहीं किया। उस यज्ञ में शिव एवं सती को छोड़कर सभी देवता एवं ऋषिगण आमन्त्रित किये गये थे। सती ने आकाशमार्ग से जाते हुये देवताओं की वार्त्ता से पिता द्वारा किये जा रहे यज्ञानुष्ठान के बारे में सुनकर उसे देखने हेतु जाने के लिये भगवान् शिव से अनुमति माँगी। शिव ने अनामन्त्रित होकर जाने में तिरस्कार एवं अपमान का अनुभव करने के कारण यह अनुमति नहीं दी, जिसके कारण सती व्याकुल होकर रोने लगी और उनका शरीर थरथर काँपने लगा। वे क्रोध के कारण शंकर जी को इस प्रकार देखने लगीं, मानो उन्हें भस्म ही कर देंगी— 'प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथु:' (भागवत)। वे शिवाज्ञा के साथ-साथ शिव का भी त्याग करके अपने पिता के घर चल दीं। पार्षद सती को वृषभराज पर आसीन कराकर सती के पीछे-पीछे सहस्रों की संख्या में चल पड़े।

यहाँ तक तो श्रीमद्भागवत की कथा एवं अन्य ग्रन्थों में साम्य है, किन्तु अन्य ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि— शंकर के द्वारा दक्ष-यज्ञ में जाने की अनुमति न मिलने के कारण सती इतनी क्रुद्ध हुईं कि उन्होंने अपने महाक्रोध के कारण 'दश महाविद्या' का रूप धारण करके दशों दिशाओं को आच्छादित कर दिया और उसे देखकर भयभीत शिव भी विभ्रान्त हो गये।

---

१. अष्टादश महाविद्या तन्त्रादौ कथिता: प्रिये।
इन विद्याओं की उपासना में कालविशुद्धि, वार-तिथि-नक्षत्र-योग आदि का विचार निरर्थक है।

शक्ति का निरपेक्ष स्वतन्त्र रूप— बृहद्धर्मपुराण में कहा गया है कि दाक्षायणी (सती) ने उस समय महा घोररूप महाकाली का रूप धारण कर लिया, जिसे देखकर शिव भागने लगे—

ततः क्रुद्धा महाकाली घोररूपमकल्पयत्।
ततो भयेन भूतेशः पलायनपरोऽभवत्।।

शिव को भय से भागते देख सती ने कहा— मत ड़रो, मत भागो—

तं धावमानं गिरीशं दृष्ट्वा दाक्षायणी सती।
मा भैर्मा भैरिति गिरा मा पलायेत्युवाच सा।।

तथाप्येनं पलायन्तं न निवृत्तं विलोक्य ह।
दशमूर्तिर्विभौ देवो दश दिक्षु शिवेक्षिता।।

फिर भी जब शिव नहीं रुके तो सती ने उन्हें भागने से रोकने के लिये दशों दिशाओं में दश मूर्ति धारण करके उसे आच्छादित कर दिया। दक्षयज्ञ में जाने से पूर्व उन्होंने संकल्प भी लिया था—

ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्।। (भागवत-८)

शिव द्वारा यज्ञ में जाने की अनुमति न दिये जाने के कारण सती का शरीर क्रोध के वशीभूत होकर काला पड़ गया था तथा क्रोध के कारण अत्यन्त महाभयानक हो उठा था। वे गले में मुण्डमाला पहने थीं; उनकी जिह्वा बाहर निकली हुई थी और वे हुँकार कर रही थीं। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्नसूर्यों के समान दीप्तिमान हो रहा था और वे अट्टहास कर रही थीं। देवी के इसी विकराल महाभयानक रूप को देखकर शिव भाग चले। शिव को भागने से रोकने हेतु सती ने जिन दश रूपों को धारण किया, वे ही दश महाविद्यायें कही जाती हैं; उन 'दश महाविद्याओं' के नाम निम्नांकित हैं—

१. काली	६. त्रिपुरभैरवी
२. तारा	७. धूमावती
३. छिन्नमस्ता	८. बगलामुखी
४. षोडशी	९. मातंगी
५. भुवनेश्वरी	१०. कमला

इन दश महाविद्याओं में 'महाकाली' ही मूलरूपा एवं मुख्य हैं। उन्हीं के उग्र एवं सौम्य दो रूपों में अनेक रूप धारण करने वाली ये दश महाविद्यायें अन्तर्भूत हैं। 'महाकाली' के दशधा प्रधान रूपों को ही हम 'दश महाविद्या' कहते हैं।

सर्वविद्यापति शिव की ये दश महाविद्यायें अनेक रूपों में सम्पूजित एवं अनुष्ठित होने के अनन्तर भी दश रूप ही प्रधान हुये। ये समस्त रूप उपासना, मन्त्र एवं दीक्षाभेद

से भिन्न-भिन्न होते हुये भी मूलतः एक ही हैं। अधिकारभेद से पृथक्-पृथक् रूप एवं उपासनास्वरूप प्रचलित हैं। इनके दो रूप भी हैं—

कठोर रूप— काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती। ये सभी कठोर होते हुये भी करुणापूर्ण हैं।

सौम्य रूप— भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातंगी एवं कमला।

इन दश महाविद्याओं में 'काली' प्रथम विद्या है। तन्त्र में इनको ही अधिक प्रधानता भी दी गई है। वस्तुतः दश महाविद्यायें भी तो इन्हीं का रूप हैं। यद्यपि महासगुण होकर वे ही 'सुन्दरी' और महानिर्गुण होकर वे ही 'काली' कहलाती हैं; फिर भी तत्त्वतः तो सभी में साम्य ही है।

कादि और हादि विद्यायें भी एक ही श्रीविद्या (क्रमशः काली से प्रारम्भ होकर) की उपासना का विषय बनती हैं। इनमें से एक को 'संहारक्रम' तो दूसरे को 'सृष्टिक्रम' कहते हैं।

देवीभागवत आदि ग्रन्थों में शक्तिबीज या महालक्ष्मी को प्रधानता देकर 'हादिविद्या' के क्रम को स्वीकार किया गया है।

बृहन्नीलतन्त्र में काली के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं— रक्ता तथा कृष्णा। कृष्णा का नाम तो दक्षिणा है, जबकि रक्तवर्णा का नाम है— 'सुन्दरी'। जैसा कि कहा भी गया है—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा-रक्ताप्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता।।

दश महाविद्याओं की उपासना वस्तुतः सृष्टिक्रम की उपासना है। काली से कमला तक की यात्रा (दश महाविद्याओं की यात्रा) दश स्तरों में पूर्ण होती है। देवीभागवत के अनुसार— फलक 'सदाशिव' हैं। फलक या मञ्च के पाये 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र' एवं 'ईश्वर' हैं। मञ्चासीन शक्तियाँ— श्रीमञ्च पर 'भुवनेश्वरी' भुवनेश्वर के साथ विराजमान हैं और सात करोड़ 'मन्त्र' उनकी आराधना में निरत हैं।

भुवनेश्वरी— देवीभागवत के अनुसार मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी हल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र की स्वरूपा शक्ति एवं सृष्टिक्रम में महालक्ष्मीरूपा आदि शक्ति भुवनेश्वरी प्रपञ्च का आदि कारण हैं। वे सर्वपोषिका हैं।

देवी का स्वरूप 'ह्रीं' बीजमन्त्र में नित्य विद्यमान है। देवीभागवत में कहा गया है कि 'ह्रीं' देवीप्रणव है। विश्वाधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव की शक्ति ही भुवनेश्वरी हैं। ये सूर्यवत् कान्तिमती एवं त्रिनेत्रा हैं। ये ही सभी की शक्ति हैं।

महाविद्याओं के प्राकट्य का अन्य वृत्तान्त

१. कालिकापुराण— एक बार देवों ने हिमालय (मतंगमुनि के आश्रम) में जाकर 'महामाया' की स्तुति की। भगवती ने मतंग की वनिता बनकर देवों को दर्शन

दिया। उनके विग्रह से काले पर्वत की भाँति एक नारी का प्राकट्य हुआ। वे गाढ़े काजल के समान होने से 'काली' कहलायीं।

२. दुर्गासप्तशती— शुम्भ-निशुम्भ के उपद्रवों से व्यथित देवों ने हिमालय पर जाकर देवीसूक्त द्वारा देवी को प्रसन्न किया। गौरी देह से 'कौशिकी' का प्राकट्य हुआ, किन्तु 'कौशिकी' के आविर्भाव से पार्वती का शरीर कृष्ण वर्ण का हो गया; अतः वे 'काली' कहलायीं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत्साऽपि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।।

(दुर्गासप्तशती ५.८८)

काली को ही नीलरूपा होने से 'तारा' भी कहा गया। वे वाक् प्रदान करने में समर्थ हैं; अतः उनका नाम 'नीलसरस्वती' पड़ गया। भयानक विपदाओं से सन्तरण करने के कारण वे ही 'उग्रतारा' कहलायीं।

३. नारदपाञ्चरात्र— एक बार काली को पुनः गौरी बन जाने की उत्कण्ठा हुई। नारद ने उनसे शिव जी से विवाह का प्रस्ताव रक्खा तो वे क्रुद्ध हो गयीं; अतः उनके देह से एक अन्य शरीर— 'षोडशी' प्रकट हुईं और उसी से छायाविग्रह 'त्रिपुरभैरवी' प्रकट हुईं।

जगन्निर्मात्री भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप-विस्तार

१. ब्रह्मा
२. विष्णु
३. रुद्र
४. मरुद्गण
५. गन्धर्व-अप्सरा-किन्नर-यक्ष
६. भोग्य
७. समस्त सत्तायें
८. समस्त शाक्त
९. अण्डज
१०. स्वेदज
११. उद्भिज
१२. जरायुज
१३. स्थावर-जङ्गम
१४. मनुष्य

(बह्वृचोपनिषद्)

त्रिपुरासिद्धान्त और कुण्डलिनी तत्त्व

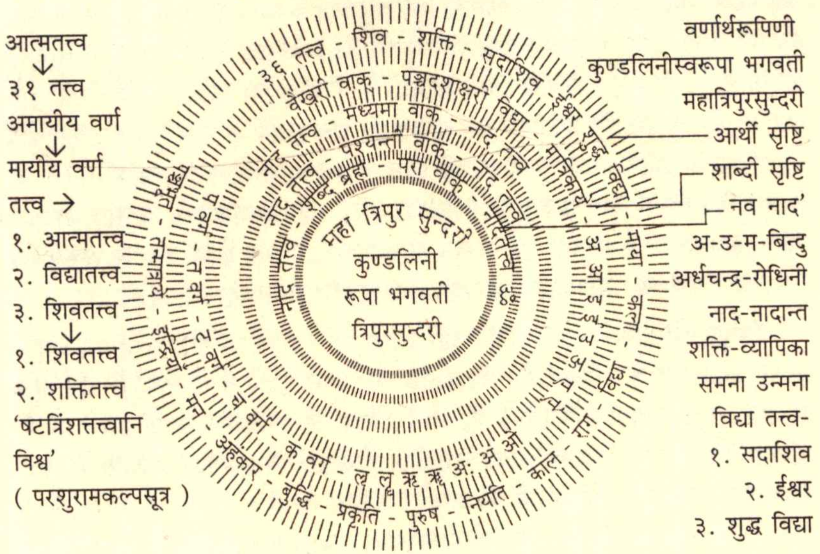

दक्षिणामूर्ति स्तोत्र और त्रिपुरासिद्धान्त— अद्वैतवादी वैयाकरणों की भाँति ही त्रिपुरासिद्धान्त के आचार्य भी अद्वैतवादी थे। त्रिपुरासिद्धान्त अत्यन्त कट्टर अद्वैतवादी है। इसके मतानुसार मूल तत्त्व महाशक्ति एक एवं अद्वितीय है। प्राचीन काल में विद्यमान अद्वैतवादी सिद्धान्तों— शून्याद्वैत, शब्दाद्वैत, शाक्ताद्वैत, ईश्वराद्वैत आदि विभिन्न अद्वैतवादी सिद्धान्तों— में से एक अद्वैतवादी सिद्धान्त त्रिपुरासिद्धान्त भी था।

शंकराचार्य शाक्तागम (विशेषतः त्रिपुरागम) के प्रधान आचार्य थे। दक्षिणामूर्ति संहिता, दक्षिणामूर्ति उपनिषद् आदि ग्रन्थ त्रिपुरा सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं। दक्षिणामूर्ति शब्द त्रिपुरा सम्प्रदाय का पद (शब्द) है। आचार्य सुरेश्वर ने भी दक्षिणामूर्तिस्तोत्र पर वार्त्तिक लिखा है।

दक्षिणामूर्तिस्तोत्र के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि ज्ञानी की दृष्टि में विश्व स्वात्मगत तथा दर्पण में प्रतिविम्बित नगर के समान है अर्थात् विश्व अपने भीतर विद्यमान है, किन्तु माया के कारण बहिर्वत् प्रतीत होता है। प्रबोधकाल में (माया के नष्ट हो जाने पर) यह पुनः अपने अद्वय आत्मस्वरूप में ही दृष्टिगत होता है। यहाँ विश्व की सत्ता जड़ात्मिका नहीं; अपितु चिन्मयी है। यह 'स्वातन्त्र्य' का विलास है और आत्मारूपी भित्ति पर चित्ररूप में अंकित है। दक्षिणामूर्ति स्तोत्र के द्वितीय श्लोक में कहा गया है कि जगत् प्रादुर्भावप्राक् अवस्था (निर्विकल्पावस्था) में प्रतिष्ठित रहता है और भेदकल्पनाशून्य तथा मात्र शक्ति के रूप में अवस्थित रहता है। अंकुर अपने प्रादुर्भावप्राक् काल में बीजरूप में रहता है और यही स्थिति जगत् की भी है। जगत् उत्तर काल में माया के द्वारा देश-काल से कल्पित होने पर अनेक विचित्र आकारों में प्रतिभात होता है। महायोगी एवं

मायावी के समान केवल स्वेच्छा से वैचित्र्यमय विश्व का विजृम्भण करने वाले देव ही 'आत्मदेव' एवं 'गुरुदेव' हैं। प्रत्यभिज्ञा एवं त्रिपुरादर्शन— दोनों में ये ही दृष्टान्त दिये गये हैं। जगत् उपादान-निरपेक्ष इच्छाशक्तिमूलक है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं त्रिपुरा सिद्धन्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्य शंकर श्रीविद्या के उपासक थे। शृङ्गेरी मठ में उनके द्वारा स्थापित श्रीचक्र अद्यापि प्रतिष्ठित एवं पूजित है। शंकराचार्य के परम गुरु गौड़पादाचार्य ने श्रीविद्या के प्रतिपादनार्थ सुभगोदय की रचना की। इस सुभगोदय पर शांकरी टीका भी है और माधवाचार्य की व्याख्या भी। लक्ष्मीधर (पं० महादेव शास्त्री के अनुसार चौदहवीं शती, माधवाचार्य से परवर्ती एवं भास्कर के पूर्ववर्ती) ने कहा है कि इस पर शंकराचार्य ने टीका लिखी थी। ब्रह्मवादी शंकराचार्य आगमशास्त्र के पारदृश्वा विपश्चित थे।

त्रिपुरा सिद्धान्त— त्रिक दर्शन और शाक्त दर्शन दार्शनिक दृष्टि से समान रूप से पूर्णत: अद्वैतवादी है। 'त्रिक दर्शन' के छत्तीस तत्त्व शाक्त दर्शन में भी मान्य हैं। इन तत्त्वों से अतीत एक विश्वातीत पदार्थ भी है, जो कि विश्व को अतिक्रान्त करके उससे परे है। परिणामत यह तत्त्व 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों है। विश्व क्या है? क्षिति से लेकर सदा-शिव तक के समस्त तत्त्वों की समष्टि ही विश्व है। विश्व शक्ति का उन्मेष है—

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगत: प्रलयोदयौ।

'शिव' एवं 'शक्ति' चन्द्र-चन्द्रिका की भाँति अभिन्नतया स्थित हैं।

'शक्ति' ही अन्तर्मुखता की स्थिति में 'शिव' है और 'शिव' ही बहिर्मुख होने पर 'शक्ति' हैं अर्थात् शिव की बहिर्मुखता ही उसका शक्तित्व— शक्तिपक्ष है। अन्तर्मुख होना एवं बहिर्मुख हो जाना— ये दोनों पक्ष या भाव शाश्वतिक हैं।

शिवतत्त्व में शक्तिभाव एवं शक्ति में शिवभाव प्रधान है अर्थात् शक्तितत्त्व में शिव-भाव गौण एवं शक्तिभाव प्रधान है। जो तत्त्वातीतावस्था होती है, उसमें न शिव की प्रधानता है और न ही शक्ति की; प्रत्युत उसमें दोनों की ही साम्यावस्था है। यही है— 'शिव-शक्ति का सामरस्य'। इसी सामरस्य को शैव 'परमशिव' एवं शाक्तगण 'पराशक्ति' के नाम से पुकारते हैं। कामकलाविलास में कहा भी गया है—

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरूपमाकारा।
भावि　चराचरबीजं　शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श:।।

शाक्तमत के अनुसार शिव 'पराशक्ति' से उद्भूत होकर विश्वोन्मीलन करते हैं। प्रत्य-भिज्ञा दर्शन का शिव-शक्ति तत्त्व ही 'त्रिपुरामत' में 'कामेश्वर' एवं 'कामेश्वरी' नाम से विख्यात है। गौडीय वैष्णवमत में यही तत्त्व कृष्ण एवं राधा के नाम से प्रचलित है।

त्रिपुरसुन्दरी परमशिव का नारीकरण है; क्योंकि यदि 'परमशिव' शिव-शक्ति का साम-रस्य है तो त्रिपुरसुन्दरी 'कामेश्वर' एवं 'कामेश्वरी' का सामरस्य है अर्थात् त्रिपुरा-मत में कामेश्वर एवं कामेश्वरी के सामरस्यरूप को 'सुन्दरी' या 'त्रिपुरासुन्दरी' कहते हैं।

'त्रिपुरा' सच्चिदानन्दस्वरूपा, समरसा, समानाधिकरणवर्जिता 'ललिता देवी' हैं। इन्हें 'सर्ववेदान्ततात्पर्यभूमि' भी कहा गया है। निरतिशय सौन्दर्यविग्रह की मातृरूप से कल्पना करना एवं साधनाराज्य का एक निगूढ़ तत्त्व है। आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में इसी सौन्दर्याढ्या ललितामूर्ति के निरतिशय सौन्दर्य का कवित्वात्मक एवं चामत्कारिक वर्णन किया है।

भगवती त्रिपुरासुन्दरी की उपासना चन्द्रमा के रूप में की जाती है। चन्द्रमा षोडश-कलामय होता है। इसकी सभी कलायें नित्य होती हैं। इसीलिए इन्हें समष्टि की दृष्टि से 'नित्या षोडशिका' कहते हैं; प्राथमिक पन्द्रह कलाओं का तो उदयास्त होता रहता है, किन्तु 'षोडशी कला' सदा नित्य है। इसी षोडशी कला का नाम 'अमृता कला' है। वैया-करण इसे 'पश्यन्ती वाक्' कहते हैं। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित के नान्दी में इसी वाग्देवतारूपा 'अमृतकला' की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की है—

विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।

यही षोडशी महात्रिपुरसुन्दरी ललिता देवी हैं। भगवती ललिता सौन्दर्य और आनन्द का अनन्त रत्नाकर हैं। ये अपने उपासकों के समक्ष केवल षोडशवर्षीया रूप में ही दर्शन देती हैं। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के नित्य षोडशवर्षीय होने की मान्यता समतुल्य है। यह भी कहा गया है कि भगवती ललिता देवी ही पुरुषरूप धारण करके श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होती हैं।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के 'परमशिव', त्रिपुरामत की 'षोडशी' एवं वैष्णवमत के 'कृष्ण' एक ही परमतत्त्व के भिन्न-भिन्न प्रतीक हैं, एक ही आनन्दनिकेतन सच्चिदानन्दविग्रह परतत्त्व के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

वेदान्त में माया के अतीत जगत् का वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु इस दर्शन में मायातीत महामाया शक्ति एवं उससे अनुशासित लोकों का वर्णन किया गया है। बैन्दवोपादान से निर्मित लोक एवं जीव दोनों की स्वीकृति इस दर्शन की द्वितीय विशेषता है। शक्ति में जड़त्व की अपसारणा करके उसमें चैतन्य का आधान इसकी तृतीय विशेषता है। 'शक्ति' चिदानन्दात्मिका है, शंकर की माया के समान जड़ नहीं है। इस दर्शन में अद्वैतभावना की स्थापना के साथ ही ज्ञान एवं भक्ति दोनों की स्वीकृति— दोनों में साम-रस्यस्थापना— इस दर्शन की अन्य विशेषता है।

त्रिपुरासिद्धान्त एवं प्रत्यभिज्ञामत का अन्तस्सम्बन्ध— प्रत्यभिज्ञाकारिका में उत्पलदेव कहते हैं—

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।

अर्थात् सृष्टि शब्द का अभिप्राय है— अन्तःस्थित पदार्थ का बहिःप्रकाश। सभी पदार्थ चिदात्मा के अन्तःस्थित हैं; केवल इच्छावश कभी-कभी कुछ-कुछ बहिः प्रकाशित

होते हैं। यह 'बहि:प्रकाशन' शब्द ही सृष्टि का अर्थ है। इस प्रकार की सृष्टि में उपादान की अपेक्षा नहीं होती। 'इच्छाशक्ति' से ही वस्तु-निर्माण हो जाने के कारण यहाँ परमाणु की भी अपेक्षा नहीं होती। योगियों की सृष्टि इसी प्रकार की होती है। माधवाचार्य प्रत्य-भिज्ञादर्शन में कहते हैं कि योगी अपनी इच्छा से परमाणुओं का संघटित करके ही सृष्टि करते हैं— यह मिथ्या विचार है; क्योंकि योगियों को परमाणुओं को उपादान के रूप में ग्रहण करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती—

ईश्वरोऽनन्तशक्तित्वात् स्वतन्त्रोऽन्यानपेक्षत:।
स्वेच्छामात्रेण सकलं सृजत्यवती हन्ति च।।

संवित् स्वातन्त्र्यमयी है। उसमें इच्छा का उदय होते ही आत्मा के साथ अभिन्न रूप में स्थित पदार्थसमूह ज्ञेय रूप में अवभासित होने लगते हैं। जो 'अहंरूप' में द्रष्टा के साथ एकाकार था, वही 'इदं' के रूप में पृथक् भाव में परिस्फुट हो उठता है। विश्वरूप आभासवैचित्र्य का मूल चिदात्मा की 'स्वातन्त्र्य शक्ति' है। उपादाननिरपेक्ष 'इच्छाशक्ति' सृष्टि में पूर्ण समर्थ है। जैसे कि विश्वामित्र ने उपादानों के विना मात्र इच्छा से ही समस्त भोगसामग्रियों से युक्त स्वर्गलोक की रचना कर दी थी। यही है— योगिसृष्टि और यही ईश्वरसृष्टि भी है। यही इच्छाशक्ति कर्तुम्, अकर्तुम् एवं अन्यथाकर्तुम् सभी में समर्थ है। प्रत्यभिज्ञा एवं त्रिपुरासिद्धान्त दोनों में सैद्धान्तिक साम्य है। परमात्मा छत्तीस तत्त्वों की समष्टि है। वह विश्वात्मक भी है और विश्वातीत भी। आत्मा महेश्वर है। इसे वार्त्तिककार सुरेश्वर भी अपने वार्त्तिक (१०.६) में कहते हैं—

यदीयैश्वर्यविप्रुड्भिर्ब्रह्मविष्णुशिवादय: ।
ऐश्वर्यवन्तो भासन्ते स एवात्मा सदाशिव:।।

प्रत्यभिज्ञा एवं त्रिपुरासिद्धान्त में जो उपादाननिरपेक्ष सृष्टि की बात कही गई है, शांकर वेदान्त में उसे ही अभिन्ननिमित्तोपादान कहा गया है। शंकराचार्य कहते हैं कि ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व एवं कर्तृत्व आदि वास्तविक नहीं हैं; अपितु अविद्याकृत, कल्पित एवं अयथार्थ हैं— 'तदेवमविद्यात्मकोपाधिपरिच्छेदापेक्षमेवेश्वरस्येश्वरत्वं सर्व-ज्ञत्वं सर्वशक्तित्वञ्च न परमार्थतो विद्ययापास्तसर्वोपाधिस्वरूप आत्मनीशित्रीशितव्यसर्व-ज्ञत्वादिव्यवहार उपपद्यते।' (वेदान्तसूत्रभाष्य-२.१.१४)

मुक्तावस्था में (विद्यालोक द्वारा अविद्यान्धकार तिरोहित होते ही) ईश्वरत्व नहीं रह जाता। चिदात्मा का ईश्वरत्व अविद्यामूलक है, स्वत:सिद्ध नहीं है। शंकराचार्य दक्षिणामूर्तिस्तोत्र में कहते हैं कि 'ईश्वरत्व' रहता है, सर्वात्मतास्वरूप 'महाविभूति' रहती है, 'पूर्णाहन्ता' रहती है; क्योंकि यह आत्मस्वरूप से पृथक् नहीं है। यह आत्मदेव का स्वभाव है, अविद्यात्मक नहीं है। सुरेश्वराचार्य भी कहते हैं—

ऐश्वर्यमीश्वरत्वं हि तस्य नास्ति पृथक् स्थिति:।
पुरुषे धावमानेऽपि छाया तमनुधावति।।

ईश्वरभाव एवं शुद्ध चैतन्यभाव पृथक्-पृथक् नहीं है। आत्मज्ञान होने के उपरान्त ऐश्वर्य की प्राप्ति स्वत: हो जाती है।[१]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन, स्पन्द दर्शन एवं त्रिपुरामत में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके आकर-ग्रन्थ समान हैं। उपासनापद्धति में भेद अवश्य है; लेकिन पद्धति के अन्तर को छोड़कर उनमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है।

त्रिपुरासिद्धान्त के प्राचीन आचार्यों ने शिवसूत्र, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी, तन्त्रालोकप्रभृति शैवग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये हैं।

उत्पलदेव, क्षेमराज, अभिनवगुप्त, महेश्वरानन्दप्रभृति शैवाचार्यों ने योगिनीहृदय, कामकलाविलास, त्रिपुरासुन्दरी मन्दिर आदि ग्रन्थों को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। 'त्रिकमत' एवं 'त्रिपुरामत' में पुष्कलसाम्य है।

परशुरामकल्पसूत्र, बिन्दुसूत्र, तन्त्रराजतन्त्र, त्रिपुरारहस्य, नित्याहृदय, वामकेश्वरतन्त्र, परमानन्दतन्त्र सौभाग्यरत्नाकर आदि त्रिपुरामत की रचनायें हैं। भास्करराय, रामेश्वर, लक्ष्मीधर, उमानन्दनाथ एवं अमृतानन्दनाथप्रभृति दर्शनिक इसके व्याख्याता हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के साथ त्रिपुरासिद्धान्त के दार्शनिक अंश (ज्ञानकाण्ड) की पृथकता नहीं है।

दोनों ही मतों में छत्तीस तत्त्वों की मान्यता है। इससे परे तत्त्वातीत सत्ता भी है। संसार छत्तीस तत्त्वों की समष्टि है। तत्त्वातीत से ही तत्त्वों का आविर्भाव होता है। दोनों मूलत: अभिन्न हैं। परमसत्ता विश्वातीत तो है, किन्तु सर्वज्ञ है— विश्वात्मक है। सदोदित एवं तिरोभावशून्य शिव एवं शक्ति तत्त्व नित्य है।

पृथ्वी से शिव तत्त्वपर्यन्त चौंतीस तत्त्व विश्व है। सृष्टि 'शब्द सदाशिव' आदि तत्त्व-समूह का आविर्भाव है। आविर्भाव का बीजतत्त्व (जिससे विश्व सत्तावान है या सृष्टि का विकास होता है) शक्ति है। यह शक्ति शिवसमवेत रहती है।

'शिव' बहिर्मुख होने पर 'शक्ति' एवं 'शक्ति' अन्तर्मुख होने पर 'शिव' है। यह अन्त-र्मुखता-बहिर्मुखता नित्य है। परमेश्वर पञ्चकृत्यकारी है। शिवभाव में शक्तितत्त्व गौण एवं शिवतत्त्व प्रधान है; जबकि शक्तिभाव में शिवभाव गौण एवं शक्तिभाव प्रधान है।

जहाँ शिव-शक्ति समरस हैं— शिव एवं शक्ति दोनों में से किसी का भी प्राधान्य नहीं है— वहीं साम्यावस्था है। यह नित्यावस्था है। यही है— तत्त्वातीतावस्था। इसे ही सैंतीसवाँ तत्त्व भी कहा जाता है। यह अचिन्त्य एवं अकथ्य है। यही सभी का चरम लक्ष्य है। इसे ही शैवों का परमशिव, शाक्तों की परा शक्ति एवं वैष्णवों का भगवान् कहा गया है।

चन्द्रमा और त्रिपुरसुन्दरी— प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में जिसे शक्ति एवं शिव कहते हैं, उसे ही त्रिपुरासिद्धान्त में कामेश्वरी एवं कामेश्वर कहते हैं। इन्हें ही गौडीय वैष्णव दर्शन में राधा और कृष्ण कहा गया है। त्रिपुरामत में चरम वस्तु सुन्दरी (त्रिपुरसुन्दरी) है। त्रिपुरसुन्दरी के आराधक इनकी उपासना चन्द्ररूप में करते हैं। चन्द्रमा की सोलह कलायें

१. मा. सं. और साधना।

हैं और ये सभी कलायें नित्य हैं। सम्मिलित भाव से इनको 'नित्यषोडशिका' भी कहते हैं। प्राथमिक पन्द्रह कलाओं का तो उदयास्त होता है, ह्रास एवं वृद्धि भी होती है, किन्तु सोलहवीं कला का ह्रास-वृद्धि कुछ भी नहीं होता। इसे ही 'अमृता चन्द्रकला' कहते हैं। वैयाकरण इस अमृता चन्द्रकला को 'पश्यन्ती वाक्' कहते हैं; दर्शनशास्त्र इसे 'आत्मा' कहता है। मन्त्रशास्त्र इसे मन्त्र या देवता कहता है। यही है— देवता का स्वरूप। सामान्य जनवर्ग में प्रसिद्ध पूर्ण चन्द्र वास्तविक पूर्ण चन्द्र नहीं है; क्योंकि वह उदय एवं क्षय के परिणामों से ग्रस्त है। पूर्ण चन्द्र न्यूनाधिक भाव से अभिशप्त नहीं है।

षोडशी कला और सुन्दरी— पूर्णता केवल 'षोडशी कला' में है। वह नित्योदित है। वह अमृतस्वरूप और अखण्ड है। यही चरम तत्त्व 'महात्रिपुरसुन्दरी ललिता देवी' है। वह सौन्दर्य और आनन्द का परमधाम है। यही परा कला, चिदेकरसा श्रीविद्या है। चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला नित्य तो है; किन्तु कालचक्र (प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया आदि कालखण्डों में विभाजित तिथिरूप हैं।) से सम्बद्ध है और आविर्भाव-तिरोभाव से ग्रस्त है। षोडशी कला नित्य ज्योत्स्नामय सहस्रदल कमल में स्थित नित्य कलासंयुक्त श्रीचक्रात्मक प्रतिविम्ब है। इसीलिए सुभगोदय में कहा भी गया है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।

इसी कारण सुन्दरी अपने भक्तों के समक्ष नित्य ही षोडशवर्षीया रहती हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी नित्य षोडशवर्षीय एवं नित्य किशोर हैं—

नित्यकिशोर एवाऽसौ भगवानन्तकान्तकः।

श्री रूपगोस्वामी भक्तिरसामृतसिन्धु (प्रथम लहरी, श्लोक-१५८) में कहते हैं— 'आषोडशाच्च कैशोरम्।' तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि ललिता एवं श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोदविवशं जगत्।।

ललिता पुरुषरूप में श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होती हैं।

जप-समर्पण का नियम यह है कि नारी देवता के बाँयें हाथ में एवं पुरुष देवता के दाँयें हाथ में समर्पित किया जाता है; किन्तु भगवती ललिता के दाहिने हाथ में ही जप समर्पित किया जाता है। निष्कर्ष यह कि भगवती ललिता नारी-पुरुष के लिङ्गभेद से परे हैं।

मूल ज्योति चिदात्मा, चन्द्रविम्ब, सूर्यविम्ब, मातृका, वर्ण, कला, शक्ति, रश्मिमाला, वर्णमाला या मातृकाचक्र का बहिर्विकास ही 'सृष्टि' एवं उसका अन्तःसंकोच ही 'प्रलय' है। आत्मस्फुरण की अवस्था में समग्र विश्व बीजरूप में (अस्फुटतया) आत्मसत्ता में विद्यमान रहता है। फिर शान्ता से इच्छाशक्ति का उदय होने पर अव्यक्त विश्वशक्ति के गर्भ से निःसृत होता है। इच्छाशक्ति वामाशक्ति से तादात्म्य प्राप्त करके पश्यन्ती वाक् का अभिधान ग्रहण करती है। फिर आविर्भूत होने वाली ज्ञानशक्ति का ज्येष्ठा शक्ति से अभिन्नतया

तादात्म्य प्राप्त होने पर वह मध्यमा वाक् का अभिधान ग्रहण करती है। तदुपरान्त क्रिया शक्ति रौद्री शक्ति के साथ ऐकात्म्य प्राप्त करके वैखरी वाक् का अभि-धान प्राप्त करती है। वाक् चतुष्टय मिलकर मूल त्रिकोण (महायोनि) का निर्माण करते हैं। त्रिकोण का केन्द्र है— परा वाक् (शान्ता और अम्बिका का सामरस्य)। यह नित्य स्पन्दमय है।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

भगवती 'विश्वरूपा' हैं और विश्व अनन्तरूपात्मक है; अत: भगवती भी अनन्तरूपात्मिका हैं, तथापि शास्त्रों में उनके जिन विशिष्ट स्वरूपों का उल्लेख किया गया है, उन स्वरूपों में कतिपय स्वरूप निम्नांकित हैं—

विमर्शाख्या च सा देवी पाञ्चविध्यं समागता। (कामकलाविलास)

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।(नित्याषोडशिकार्णव)

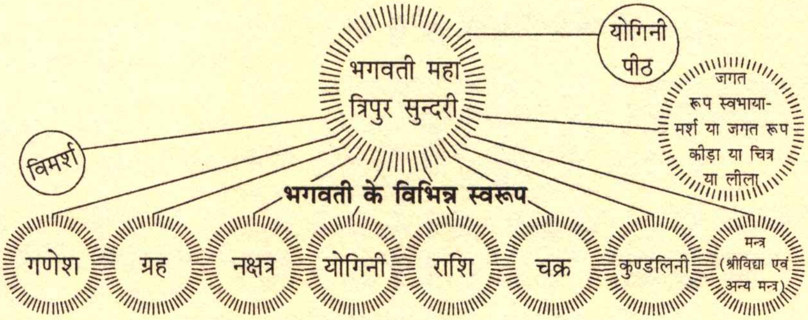

मन्त्र, चक्र एवं देवता की एकात्मता

१. इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रं देवताया: परं वपु:। (योगिनीहृदयम्, मं. सं.५६)
२. गणेशत्वं महादेव्या: ससोमरविपावकै:। (योगिनीहृदयम्-२.५७)
३. ग्रहरूपा च सा देवी ज्ञानकर्मेन्द्रियैरपि। (योगिनीहृदयम्-२.५८)
४. नक्षत्रविग्रहा जाता योगिनीत्वमथोच्यते। (योगिनीहृदयम्-२.६०)
५. योगिनीरूपमास्थाय राजते विश्वविग्रहा। (योगिनीहृदयम्-२.६१)
६. जीवात्मा परमात्मा चेत्येते राशिस्वरूपिणी। (योगिनीहृदयम्-२.६३)
७. एवं विश्वप्रकारा च चक्ररूपा महेश्वरी। (योगिनाहृदयम्-२.६७)
८. विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।
तडित्कोटिनिभप्रख्या बिसतन्तुनिभाकृति।। (योगिनीहृदयम्-२.७१)
९. चक्रेश्वरी समायुक्तं नव चक्रं पुरोदितम्। (मन्त्रसङ्केत-८)
१०. विमर्शाख्या च सा देवी।

सप्तम अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न स्वरूप

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अनन्त स्वरूप हैं; क्योंकि वह अनन्त पदार्थात्मक एवं षट्त्रिंशदात्मक जगत् भी है और उससे अतीत भी। वह 'विश्वमय' भी है और 'विश्वातीत' भी। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म 'शब्दब्रह्म' एवं 'परा वाक्' भी है और स्थूलतम 'वैखरी वाक्' भी। वह 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' है। वही प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण और प्रमा चारो है। वही वर्ण भी है और वर्णातीत भी; वही सादि भी है अनादि भी; वही स्थूल भी है और सूक्ष्म भी। उसके अनन्त रूप हैं— 'एकस्त्था सर्वभूतान्तरात्मा रूपो रूपो प्रतिरूपो बभूव।'

भगवती ही गुरु है—

कर्तार्हन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः।

(दुर्वासा त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र)

वामकेश्वरतन्त्र में भी कहा गया है—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृत-निश्शेष-तत्त्वग्राम-स्वरूपिणी।।

देवी चक्रात्मिका हैं; कामकलाविलास में कहा भी गया है—

इति कामकला विद्या देवीचक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपा।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी त्रिकोणस्थ 'महाबिन्दु' में स्थित है; योगिनीहृदय (पूजासंकेत) में कहा भी गया है—

त्रिकोणस्थे महाबिन्दौ महात्रिपुरसुन्दरीम्।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अन्यतम रूप

कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा
स्वात्मैक्यरूपा देवता।
(भावनोपनिषद्)
'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र)
भगवती त्रिपुरसुन्दरी जगदात्मा हैं।
स्वात्मैक्यरूपा देवता
(भावनोपनिषद्)

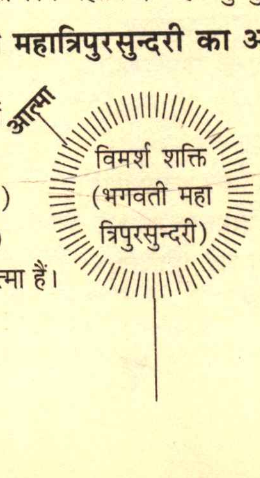

स्वेच्छाविश्वमयोल्लेख
खचितं विश्वरूपकम्।
चैतन्यमात्मनो रूपं
निसर्गानन्दसुन्दरम्।।
(योगिनीहृदयम्)
(चक्रसंकेत- १.५०)

अथ च आत्मा क:? इति जिज्ञासून् उपदेश्यन् प्रतिबोधयितुं, न शरीर-प्राण-बुद्धि-शून्यानि लौकिक-चार्वाक-वैदिक-योगाचार-माध्यमिका-द्यभ्युपगतानि आत्मा; अपितु यथोक्तं चैतन्यमेव। चैतन्यमुक्तं स एव आत्मा, स्वभाव: भावाभाव-रूपस्य विश्वस्य जगत:। चैतन्यं विश्वस्य स्वभाव:। शङ्करात्मकस्पन्दतत्त्वरूपं चैतन्यं सर्वदा स्वप्रकाशं परमार्थं सत् अस्ति इति। (क्षेमराज, शिवसूत्रविमर्शिनी, प्रथम उन्मेष-१.१)

आत्मा का स्वरूप तो चैतन्य है, किन्तु यह चैतन्य कौन है? = 'चैतन्यं चिद्विमर्श-शक्ति:' अर्थात् चैतन्य विमर्श शक्ति है। (अमृतानन्द, योगिनीहृदयटीका)

'शिवस्य प्रकाशात्मनो दीपस्य शक्तिविमर्शाख्यैव प्रभा, सा निर्विकल्पात्मना विश्वाकारा मेय-मातृ-प्रमा-प्रमाणभेदै: सङ्कुचद्रूपा।' (अमृतानन्द, यो० हृ० टीका)

विश्वाकारप्रथा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मना परिणता विमर्शशक्ति:। (अमृतानन्द)

चैतन्यं विश्वस्य स्वभाव:। (आचार्य क्षेमराज)

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण की दृष्टि से महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

ललितासहस्रनाम में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के सहस्र नामों के माध्यम से उनके सम्पूर्ण स्वरूप को उद्घाटित करते हुये कहा गया है कि वे श्रीमाता हैं अर्थात् वे लक्ष्मी की जननी, श्री की जन्मदात्री, शब्दब्रह्म का बीज, ब्रह्मयोनि एवं विश्वबीज हैं।

भगवती ललिता 'श्रीमत् सिंहासनेश्वरी' हैं अर्थात् वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं सदाशिव से निर्मित सिंहासन पर विराजमान इन समस्त देवों की स्वामिनी, ब्रह्माण्डीय प्रशासन-सिंहासन की राजराजेश्वरी, परम स्वामिनी पराभट्टारिका हैं।

भगवती चिदग्निकुण्डसम्भूता हैं अर्थात् संविदग्नि के कुण्ड से समुद्भूता 'समना' एवं 'उन्मना' शक्तियाँ हैं। संक्षेपशारीरककार ने इसी चित् शक्तिस्वरूप की पुष्टि करते हुये कहा है—

चिच्छक्ति: परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते।

ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि चिदग्नि कुण्ड में देवों ने मांस के स्थान पर अपने-अपने शरीर की आहुति दे दी थी, जिससे प्रसन्न होकर उसी चिदग्नि से एक चक्राकार महाज्योति का आविर्भाव हुआ और उसके मध्य से उदीयमान भास्कर की भाँति भगवती का प्राकट्य हुआ था। भगवती यही 'चिदग्निसम्भूता महाशक्ति' है।

भगवती 'मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका' हैं अर्थात् भगवती महात्रिपुरसुन्दरी रागरूपी पाश, क्रोधरूपी अंकुश, मनरूपी इक्षु एवं पञ्चतन्मात्ररूपी पञ्चबाण धारण की हुईं हैं। इसी रूप में वे चतुर्बाहुसमन्विता हैं।

भगवती 'निजारुणप्रभापूरमज्जद् ब्रह्माण्डमण्डला' हैं। ललितासहस्रनाम भगवती ललिता को 'श्रीमाता' कहकर जगद्योनि के रूप में जिस प्रकार स्वीकार करता है, उसे ही हयग्रीव

का शाक्तदर्शनम् भी जननी, सर्वकारण, कारण आदि के रूप में स्वीकार करता है— शक्तिस्त्रिजननी (१.४.१), अत: कारणं शक्तिरेवेति हयग्रीव: (३.३.१), शक्तिरेव सर्वकारणमिति हयग्रीव: (३.४.२२), सृष्ट्यादिक्रीड़ासक्ता देवी जगत्सृष्टे: पूर्वमासीदिति (११.३.२), शिवादिकारणवाक्यै: शक्तिरेवेति हयग्रीव: (१२.२.१३)। अगस्त्य के शक्तिसूत्र में देवी को 'जगत् कर्त्री' कहा गया है— यत्कर्त्री (२)।

शक्तिसूत्र (अगस्त्यप्रणीत) में भगवती को माता-पिता दोनों कहा गया है— यन्मातापितरौ (८९), मातरं नारद: (१०३)। इसी प्रकार ललितासहस्रनाम में भी देवी को 'श्रीमाता' ही कहा गया है।

भगवती के विभिन्न स्वरूपों का वर्गीकरण— ललितासहस्रनाम में भगवती के जो सहस्रनाम बताये गये हैं, उनका यदि वर्गीकरण किया जाय तो उनसे भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के स्वस्वरूप को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. मूर्तिस्वरूप
२. मान्त्रिक (वर्णात्मक, मन्त्रात्मक एवं नादात्मक) स्वरूप
३. यान्त्रिक स्वरूप
४. स्वभावस्वरूप
५. शक्तिस्वरूप
६. विश्वात्मक स्वरूप
७. विश्वातीत स्वरूप
८. आत्मस्वरूप आदि

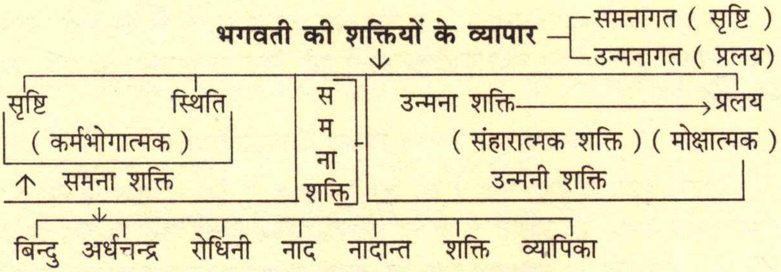

२. भगवती का मालिनी स्वरूप

ललितासहस्रनाम में भगवती को मालिनी कहा गया है—

मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी। (९५)

वे वाग्वादिनी (७७), परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी (८१), सर्ववर्णोपशोभिता (१०९), मातृकावर्णरूपिनी (११६), भाषारूपा (१३३) और वैभवा वर्णरूपिणी (१५८) भी हैं।

वर्णमाला के दो स्वरूप

पूर्वमालिनी, मातृका, सिद्धा—(अकारादि क्षकारान्त सुसज्जित अक्षमाला) (स्वच्छन्द तन्त्र में प्रयुक्त) (प्रथम वर्ण 'अ' एवं अन्तिम वर्ण 'क्ष' = अक्ष = अक्षमाला)

स्वर + व्यञ्जन = (अ, आ आदि),
- स्पर्श (क से म),
- अन्तःस्थ (य र ल व),
- ऊष्म (श, ष, स, ह),

(पञ्च वर्गात्मक व्यञ्जन वर्ण)

उत्तरमालिनी (नादिकान्त वर्णमाला। 'न' वर्ण से 'क' वर्ण तक प्रसृत अक्रम रूप में अवस्थित) (मालिनी-विजयोत्तर तन्त्र में प्रयुक्त) (प्रथम वर्ण 'न' एवं अन्तिम वर्ण 'क')

उत्तरमालिनी क्रम सृष्टि—

१. द से झ तक के वर्ण— जलादि प्रकृतिपर्यन्त तत्त्वों के वाचक।
२. छ से अ तक के वर्ण— पुरुष से मायापर्यन्त तत्त्वों के वाचक।
३. इ से घ तक के वर्ण— शुद्ध विद्या, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक।
४. ग से नपर्यन्त सोलह वर्ण— वर्णात्मक शिव के वाचक।

परात्रिंशिका क्रम (परात्रिंशिका की व्याख्या)—

१. अ से अ— पर्यन्त सोलह अक्षर— शिवतत्त्व के वाचक।
२. क से ङ— पृथिव्यादि पाँच महाभूतों के वाचक।
३. च से ञ— गन्धादिक पञ्चतन्मात्राओं के वाचक।
४. ट से ण— पादादि पाँच कर्मेन्द्रियों के वाचक।
५. त से न— प्राणादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के वाचक।
६. प से म— मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति एवं पुरुष के वाचक।
७. य से व— वायुप्रभृति राग, विद्या, कला एवं माया के वाचक।
८. श, ष, स, ह, क्ष— महामाया, विद्या, ईश्वर, सदाशिव एवं शक्ति के वाचक।

तन्त्रालोक एवं मातृकाचक्रविवेक में भी मातृकाओं पर प्रकाश डाला गया है।

उत्तरमालिनी वर्णमाला और मूलतत्त्व : अन्तर्सम्बन्ध

पृथ्वीतत्त्व = फ	जलतत्त्व = द	तेजस्तत्त्व = औ
वायुतत्त्व = ओ	आकाशतत्त्व = ऐ	पाँच तन्मात्रायें = ए, त, अं, श, म
ग्यारह इन्द्रियाँ बुद्धि एवं प्रकृति = अहंकार,		ह, अः, स, आ, ल, ज, प, ज, झ। क्ष, ष, ट, र,
पुरुष से मायातत्त्व = ठ, ढ, ड, य, भ, व, अः।		

शुद्ध विद्या = इ	ईश्वर = ङ	सदाशिव = ध
शिव = ग, ख, क, व, ऊ, उ, ण, ई, ध, च, थ, ऌ, ॠ, ऋ, न = सोलह वर्ण		

उत्तरमालिनी क्रम— न, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, थ, च, ध, ई, ण, उ, ऊ, ब, क, ख, ग, घ, ङ, इ, अ, व, भ, य, ड, ढ, ठ, झ, ज, र, ट, प, छ, ल, आ, स, अः, ह, ष, क्ष, म, श, अं, त, ए, ऐ, ओ, औ, द, फ।

परात्रिंशिका की दृष्टि—

१. अ से अनुस्वार तक = पन्द्रह तिथियाँ।

२. पन्द्रह स्वरों का विसर्ग के साथ योग = शिव तत्त्व = चिन्मात्र, चिद्रूप, विश्वबीजात्मक प्राण।

३. स्वर → व्यञ्जन। व्यञ्जन = शक्तितत्त्व, विना व्यञ्जनों के (शक्ति) के स्वर (शिव) सृष्टि होना सम्भव नहीं है।

स्वर = शिव। व्यञ्जन = शक्ति।

मालिनीरूप शब्द से जगतरूप अर्थ की सृष्टि का क्रम

(श्रीपरात्रिंशिका की दृष्टि)

१. पच्चीस तत्त्व : पृथ्वी से पुरुष तत्त्व—
क से म → पृथ्वी से पुरुष तत्त्व।

२. पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश तत्त्व—
क से ङ → पाँच महाभूत (पृथ्वी—आकाश)।

३. पञ्चतन्मात्रायें—
च से ञ → पाँच तन्मात्रायें (शब्द—गन्ध)।

४. कर्मेन्द्रियाँ—
ट से ण → पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

५. ज्ञानेन्द्रियाँ—
त से न → पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

६. तत्त्वपञ्चक—
प से म → मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, पुरुष।

७. राग, विद्या, कला, माया—
य, र, ल, व → मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, पुरुष।

८. श से क्ष → महामाया शक्ति, शुद्धाविद्या, ईश्वर, सदाशिव।

सच्चिदानन्द, परमशिवस्वरूप अ-अ-क्ष

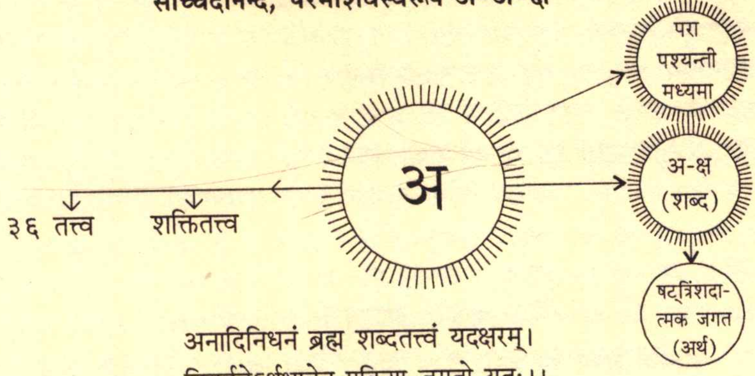

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।।

परात्रिंशिका विवृत्ति में आचार्य अभिनवगुप्त ने वर्णों का तत्त्वों, इन्द्रियों, अन्त:करण, तन्मात्राओं का अन्तस्सम्बन्ध स्पष्ट करते हुये उसका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. अकारादिविसर्गान्तं शिवतत्त्वम्।
२. कादिङान्तं धरादिनभोऽन्तं भूतपञ्चकम्।
३. चादिञान्तं गन्धादिशब्दान्तं तन्मात्रपञ्चकम्।
४. टादिणान्तं पादादिवागन्तं कर्माक्षपञ्चकम्।
५. तादिनान्तं घ्राणादिश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकम्।
६. पादिमान्तं मनोऽहङ्कारबुद्धिप्रकृतिपुरुषाख्यं पञ्चकम्।
७. वाय्वादिशब्दवाच्या यादयो वकान्तता रागविद्याकलामायाख्यानि तत्त्वानि आदि।

भगवती का जो मालिनी स्वरूप है, उसी मालिनी स्वरूपात्मक वर्णों से ही तो पञ्चदशी मन्त्र भी बना है; अत: मालिनी स्वरूप में पञ्चदशी मन्त्र भी अन्तर्भुक्त है; क्योंकि भगवती पञ्चदशी विद्या भी है—

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता। (ललितासहस्रनाम-११८)

विमर्शरूपिणी विद्या। (ललितासहस्रनाम-५५०)

मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा। (ललितासहस्रनाम-३६)

शुद्धविद्या। (ललितासहस्रनाम-१०) आदि

देव्युपनिषद् (१८) में भी कहा गया है— एषा श्रीमहाविद्या (१५)।

बह्वृचोपनिषद् में भी कहा गया है— सैषा परा शक्ति:। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति (३), सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी (८), विद्यां त्रिपुरेशीम् (१०), त्रिपुरवासिनीं विद्यां त्रिपुरेश्वरीविद्यां, सर्वविद्येश्वरीं त्रिपुरां विद्याम् (११)।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही जगत् हैं— भगवती के विश्वमय स्वरूप को प्रतिपादित करते हुये आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि भगवती भूमितत्त्व, जलतत्त्व, अग्नितत्त्व, वायुतत्त्व और आकाशतत्त्व तो हैं ही, लेकिन समष्टि रूप में तो वे ही पञ्च-भूतात्मक समस्त जगत् भी हैं; क्योंकि जगत् भगवती का परिणाममात्र है। इसी परिणाम-वाद की पुष्टि करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।

* * * * *

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विभृषे।

भगवती शम्भु का शरीर हैं— आचार्य शंकर अपने सौन्दर्यलहरी (३४) में ही पुन: कहते हैं कि 'शरीरं त्वं शम्भो' अर्थात् हे भगवती आनन्दभैरवी ! और भगवान् आनन्दभैरव का शरीर है।

३. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार स्वरूप

ललितासहस्रनाम की दृष्टि से भगवती के विभिन्न स्वरूप— ललितासहस्रनाम के माध्यम से भगवती त्रिपुरा के स्वरूप के प्रत्येक पक्ष को अनावृत किया गया है। उनके सगुण-साकार स्वरूप को उद्घाटित करने हेतु उनकी निम्न अभिधानों से स्तुति की गयी है, जो कि उनके स्वरूप की विशेषतायें हैं—

भगवती सहस्र उदयकालिक सूर्यों के सदृश आभा वाली (उद्यद्भानुसहस्राभा) हैं; वे वामकेशी (सुन्दर केश वाली), वामनयना, तरुणी, तनुमध्या, शृङ्गाररससम्पूर्णा, महाकामेशनयना, कुमुदाह्लादकौमुदी, शिवप्रिया, शिवमूर्ति, शिवाराध्या, शिवपरा, स्वप्रकाशा, नित्ययौवना, मदशालिनी, मदाघूर्णितरक्ताक्षी, मदपाटलगण्डभू, चन्दनद्रवदिग्धाङ्गा, चाम्पेय-कुसुमप्रिया, कुशला, कोमलाकारा, स्वस्तिमती, कान्ति, नन्दिनी, तेजोवती, त्रिनयना, लोलाक्षी, कामरूपिणी, मालिनी, सुमुखी, नलिनी, कालकण्ठी, सूक्ष्मरूपिणी, कान्तिमती, सुभ्रू, यशस्विनी, आरक्तवर्णा, त्रिलोचना, वदनैकसमन्विता, श्यामाभा, वदनद्वया, दंष्ट्रोज्ज्वला, अक्षमालादिधरा, रुधिरसंस्थिता, स्निग्धौदनप्रिया, वदनत्रयसंयुता, रक्तवर्णा, चतुर्वक्त्रमनोहरा, शूलाद्यायुधसम्पन्ना, गुड़ान्नप्रीतमानसा, मांसनिष्ठा, मधुप्रीता, पञ्चवक्त्रा, षडानना, हरि-द्रान्नैकरसिका, सर्वायुधधरा, सर्वतोमुखी, सर्वौदनप्रीतचित्ता, बन्धुरालका, ताम्बूलपूरित-मुखी, दाडिमीकुसुमप्रभा, मृगाक्षी, मोहिनी और चन्द्रनिभा हैं।

वे चतुर्भुजी हैं और राग के रूप में 'पाश', क्रोध के रूप में 'अंकुश', मन के रूप में 'इक्षुदण्ड' एवं पञ्चतन्मात्राओं के रूप में 'पाँच बाण' धारण की हुईं हैं। वे अपनी रक्तिम कान्ति के प्रवाह से ओतप्रोत ब्रह्माण्डमण्डलस्वरूपा हैं। भगवती के 'केश' चम्पा, अशोक

एवं पुन्नाग के सुगन्धित पुष्पों से सुगन्धित हैं। कुरविन्द मणि एवं पद्मराग मणि की दीप्ति से उनका 'किरीट' सुशोभित है। उनका 'मस्तक' अष्टमी तिथि की चन्द्रमा से सुशोभित है। उनके चन्द्रसदृश मनोज्ञ मुखमण्डल पर कस्तूरी का टीका लगा हुआ है। उनका 'मुख' कामेश्वर के कल्याणमय भवन पर झूलते हुए तोरण के समान सुन्दर है। उनके 'नेत्र' अबाधगतिक एवं चञ्चल लक्ष्मीस्वरूपा मछलियों के समान हैं। उन देवी का 'नासादण्ड' अर्धविकसित चम्पापुष्प के समान है। देवी के 'नासाभूषण' ताराओं को लज्जित करने वाले एवं देदीप्यमान हैं। वे कदम्ब की मञ्जरी से रञ्जित कानों के ऊर्ध्व भाग के आभूषणों से सभी के मन को मुग्ध करने वाली हैं। उनके 'ताटङ्कयुगल' सूर्य एवं चन्द्र हैं। उनके 'कपोल द्वय' पद्मराग मणि से भी अधिक निर्मल एवं विम्बग्राहक हैं। उनके अधर एवं ओष्ठ नवीन मूँगे के सदृश आरक्त हैं। उनके द्वारा चर्वित कर्पूरयुक्त ताम्बूलों से समस्त दिशायें सुगन्धित हो रही हैं। वे अपने स्वतः सुन्दर वर्णात्मक शब्दध्वनि से श्रेष्ठ वीणा की मधुरता को भी तुच्छ बना रही हैं। उनका चिबुक (ठुड्डी) अनुपमेय है और उसकी अकल्पित शोभा से वे मण्डित हैं। कामेश्वर द्वारा ग्रथित सौभाग्यचिह्नसूत्र से भगवती का गला अत्यन्त सुशोभित है। स्वर्णकेयूरों को भुजाओं पर धारण करने से उनकी भुजायें अत्यन्त शोभा-यमान हैं। वे रत्नों एवं मुक्ताओं से जटित चिन्ताक हार गले में धारण की हुईं हैं। वे नाभिरूपी आलवाल (क्यारी) से निकली रोमावलीरूपी लता पर दो स्तनरूपी पुष्पों को धारण की हुईं हैं। वे रोम से भी सूक्ष्म कटि वाली हैं। उनकी कमर स्तनों के भार से टूटती हुईं-सी प्रतीत हो रही है; अतः उसे बचाने हेतु वे मानो त्रिवलीरूपी स्वर्णपत्र (कमर में) धारण की हुईं हैं। उनका कटिप्रदेश कुसुम्भपुष्प के समान आरक्त वस्त्र से शोभायमान है। उनके कटिप्रदेश में रत्नों की घण्टिकाओं से शोभित मेखला है। उनके नितम्बों की कोमलता एवं कमनीयता का बोध मात्र कामेश्वर को है अर्थात् अचिन्त्य है। उनके दोनों घुटने आरक्त मणि के किरीट के आकार के हैं। उनकी जंघायें इन्द्रगोप से खचित कामदेव के तरकस के समान हैं। उनके चरणयुगल की कमनीयता से कमनीय स्वयं भी लज्जित हो रहा है। उनके श्रीचरण गुञ्जार करने वाले, लाल रत्न-निर्मित नूपुरों से सुशोभित हैं। उनकी मन्थर गति मराली की भाँति है। वे अतुल्य एवं महान सौन्दर्यों की खजाना हैं। वे सर्वारुणा हैं, अनवद्याङ्गा हैं, स्वर्णाभरणभूषिता हैं और शिवकामेश्वरा-ङ्कस्था हैं। उनकी आधीनता में ही स्वयं कामेश्वर भी रहते हैं। वे सुन्दर मेरु पर्वत के शिखर के मध्य भाग में निवास करती हैं। वे श्रीविद्या के 'श्रीनगर' की स्वामिनी हैं। वे चिन्ता-मणिनामक अतुल्य मणियों से निर्मित 'चिन्तामणिगृह' में निवास करती हैं। वे पाँच ब्रह्माओं से निर्मित आसन पर विराजमान रहती हैं। वे बड़े-बड़े कमलों के वन में निवास करती हैं। वे कदम्बवन की भी निवासिनी हैं। उनका निवास अमृत के सागर के मध्य में है। वे कामाक्षी— कमनीय नयनों वाली हैं या कामेश्वर एवं पराम्बा का 'विमर्श' हैं। वे शरच्चन्द्र-निभानना, नीलचिकुरा, चारुरूपा, चारुहासा, चारुचन्द्रकलाधरा, पद्मनयना, पद्मरागसमप्रभा, रम्या, राजीवलोचना, मत्ता, इन्द्रधनुःप्रभा, दरान्दोलितदीर्घाक्षी, दरहासो-ज्ज्वलन्मुखी,

गुणनिधि, दिव्यविग्रहा, दिव्यगन्धाढ्या, सिन्दुरतिलकाञ्चिता, गौरी, शोभना, सर्वमोहिनी, कोमलाङ्गी, त्र्यम्बका, सुभगा, शुद्धा, जपापुष्पनिभाकृति, द्युतिधरा, विश्वतोमुखी, कामरूपिणी, पाशहस्ता, मूर्तामूर्ता, मूलविग्रहरूपिणी, कनतकनकताटंका, मुग्धा, विद्रुमाभा, सौम्या, स्वस्था, सदाशिवकुटुम्बिनी, स्वभावमधुरा, सदातुष्टा, तरुणादित्यपाटला, दरस्मेरमुखाम्बुजा, विशालाक्षी, मानवती, व्योमकेशी, पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी, बाला, लीलाविनोदिनी, सुवेषाढ्या, सुवासिनी, आशोभना तो हैं ही; साथ ही वे षडध्वातीतरूपिणी भी हैं।

वे तत्त्वमयी, तत्त्वमर्थस्वरूपिणी, स्तोत्रप्रिया, विश्वमाता, परमोदा, शाश्वती, गुणातीता, लोकातीता, शान्त्यतीतकलात्मिका, अजा, त्रिपुरमालिनी, त्रिवर्गनिलया, त्रयी, अन्तर्मुख-समाराध्या, स्वात्मारामा, निरालम्बा, सुधाश्रुति, यजमानस्वरूपिणी, धर्माधारा, धनाध्यक्षा, विप्ररूपा, विप्रप्रिया, विश्वग्रासा, विष्णुरूपिणी, वैष्णवी, कूटस्था, कुलरूपिणी, नादरूपिणी, तत्त्वाधिका, इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्तिस्वरूपिणी, सर्वाधारा, सदसत् रूपिणी, योगदा, लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला, सुप्रतिष्ठा, वृद्धा, अन्नदा, निर्द्वैता, द्वैतवर्जिता, भाषा-रूपा, भावाभावविवर्जिता, राजराजेश्वरी, राज्यदायिनी, सावित्री, सच्चिदानन्दरूपिणी, सत्यसन्धा, राज्यलक्ष्मी, सर्वार्थदात्री, देशकालापरिच्छिन्ना, गुरुमण्डलरूपिणी, माया, चित्कला, आनन्दकलिका, स्वतन्त्रा, प्रेमरूपा, नटेश्वरी, मुक्तिरूपिणी, लज्जा, महेश्वरी, महाग्रासा, महाशना, महाकाली, सरस्वती, चण्डिका, विश्वधारिणी, यज्ञरूपा, विराड्रूपा, प्रत्यग्रूपा, पराकाशा, प्राणरूपिणी, प्राणदा, परापरा, सामरस्यपरायणा, कला, माला, कामधुक्, कला-निधि, काव्यकला, परंज्योति, परात्परा, परमाणु, पाशहन्त्री, सत्यव्रता, सत्यरूपा, सर्वान्त-र्यामिणी, सती, बहुरूपा, आज्ञा, सती, प्रतिष्ठा, प्राणेश्वरी, प्राणदात्री, मुक्तिनिलया, मन्त्र-सारा, शास्त्रसारा, ललिताम्बिका, शिवशक्त्यैक्यरूपिणी और श्रीचक्रराजनिलया हैं।

वे साधकों के अभीष्ट को पूर्ण करने वाली (कामदायिनी) हैं। उनकी स्तुति तो समस्त देवता एवं ऋषि भी किया करते हैं। वे भण्डासुर के वधार्थ अपनी सेना से समन्वित हैं।

वे सम्पत्ति प्रदान करने वाली तथा सुन्धुरव्रज (गजसमूह) रूपी विषयसमूह से संसेवित हैं। वे अश्वारूढ़ा हैं (महाविद्याओं में एक महाविद्या अश्वारूढ़ा भी है।) वे चक्रराजरूपी रथ पर आरूढ़ एवं सर्वायुधा-अलंकृता हैं। वे गीतिचक्र पर आसीन मन्त्रिणी श्यामला देवी से सेवित हैं। वे किरिचक्र पर आरूढ़ दण्डनाथ से भी सेवित हैं। वे ज्वालामाला के स्फुलिंगों के मध्य भी स्थित हैं। वे भण्डासुर की सेना के वधार्थ प्रस्तुत शक्तिसमूह के पराक्रम से आनन्दित हैं। वे पन्द्रह नित्या शक्तियों के पराक्रम के विस्तार को देखने के लिए उत्सुक भी हैं और भण्डासुर के पुत्रों के वध हेतु प्रस्तुता बाला विद्या के पराक्रम से आनन्दित भी हैं। वे अपनी मन्त्रिणी श्यामला देवी द्वारा विशुक्र दैत्य के वध से सन्तुष्ट दिखायी पड़ रही हैं। वे विषंग दैत्य का वध किये जाने के कारण वाराही देवी के पराक्रम से हर्षित हैं। उन्होंने अपने मुख से हस्तमुखी देव को प्रकट किया है।

वे भण्डासुर के शस्त्रों को नष्ट करनेवाली हैं। उन्होंने अपने हाथ की उँगलियों से विष्णु, मत्स्य आदि दशों अवतारों को जन्म दिया है। उन्होंने पाशुपतास्त्र के तेज से समस्त आसुरी सेना का ध्वंस कर डाला है। उन्होंने कामेश्वरास्त्र से भण्डासुरसहित उसकी पुरी को भी जला दिया है। उनके पराक्रम की स्तुति तो ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिक देवता भी करते रहते हैं। उन्होंने शिव के तृतीय नेत्र से भस्म होने वाले काम को पुनः जीवित कर दिया है।

वे मन्त्रस्वरूपिणी होने के कारण महामहिमामय वाग्भवकूट मन्त्रस्वरूप मुख वाली हैं। वे कण्ठ से नीचे कटिपर्यन्त द्वितीयकूटस्वरूपा (कामकूटस्वरूपा) हैं। वे कटि से नीचे के भाग को शक्तिकूट के रूप में धारण करती हैं। वे 'कूटत्रयशरीरिणी' हैं— मूल 'कूटत्रयकलेवरा' हैं।

वे कुलामृतरसिका (अमृतरसिका) हैं। वे कुल (शास्त्र) के संकेतों (रहस्यों) की रक्षा करने वाली हैं। वे कुलाङ्गना हैं। वे कुलान्तःस्था, कौलिनी, अकुला, समयान्तःस्था और समयाचारतत्परा के साथ-साथ मूलाधारैकनिलया, ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी, मणिपूरान्तरुदिता, आज्ञाचक्रान्तरालस्था, रुद्रग्रन्थिविभेदिनी, सहस्राम्बुजारूढ़ा, सुधासाराभिवर्षिणी, तड़िल्लतासमरुचि, षट्चक्रोपरि संस्थिता, महाशक्ति, कुण्डलिनी, बिसतन्तुतनीयसी, भवानी, भावनागम्या, भवारण्यकुठारिका, भद्रप्रिया, भद्रमूर्ति, भक्तिप्रिया, भक्तिगम्या, भक्तिवश्या, भयापहा, शाम्भवी, शर्वाणी, शर्मदायिनी, शाङ्करी, श्रीकरी, साध्वी, शातोदरी, शान्तिमती, निरञ्जना, निर्लेपा, निर्मला, नित्या, निराकारा, निराकुला, निर्गुणा, निष्कला, शान्ता, निष्कामा, निरुपप्लवा, नित्यमुक्ता, निर्विकारा, निष्प्रपञ्चा, निराश्रया, नित्यशुद्धा, नित्यबुद्धा, निरवद्या (अनिन्द्या), निरन्तरा, निष्कारणा, निष्कलङ्का, निरुपाधि, निरीश्वरा (स्वामीरहित), नीरागा, रागमथिनी, निर्मदा, मदनाशिनी, निश्चिन्ता, निरहङ्कारा, निर्मोहा, मोहनाशिनी, निर्ममा, ममताहन्त्री, पापनाशिनी, निष्क्रोधा, क्रोधनाशिनी, लोभनाशिनी, संशयघ्नी, निर्भवा, भवनाशिनी, निर्विकल्पा, निर्भेदा, निराबाधा, भेदनाशिनी, निर्नाशा, निष्क्रिया, निष्परिग्रहा, निस्तुला, निरत्यया, दुर्गा, दुःखहन्त्री, सुखप्रदा, दुराचारशमिनी, सर्वज्ञा, सान्द्रकरुणा, सर्वशक्तिमयी, सर्वमङ्गला, सर्वेश्वरी और सर्वमयी भी हैं।

वे सर्वमन्त्रस्वरूपिणी, सर्वयन्त्रात्मिका, सर्वतन्त्ररूपा एवं मनोन्मनी हैं। वे माहेश्वरी महादेवी, महालक्ष्मी, मृडप्रिया (शिववल्लभा), महारूपा, महापूज्या, महामाया, महासत्त्वा, महाशक्ति, महारति, महाभोगा, महैश्वर्या, महावीर्या, महाबला, महासिद्धि, महायोगेश्वरेश्वरी, महातन्त्रा, महामन्त्रा, महायन्त्रा, महासना, महाभैरवपूजिता, महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी, महाकामेशमहिषी, महात्रिपुरसुन्दरी (प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेयरूप पुरत्रय को अपने ज्ञान से सुन्दर बनाने वाली), चतुःषष्ट्युपचाराढ्या, चौंसठ कलाओं वाली, महाचतुःषष्टिकोटि योगिनियों से सेवित, मनुविद्या, चन्द्रविद्या, चन्द्रमण्डलमध्यगा, चराचरजगन्नाथा, चक्रराजनिकेतना, पार्वती, पञ्चप्रेतासनासीना, पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी, चिन्मयी, परमानन्दा, विज्ञान-

घनरूपिणी, ध्यान-ध्यातृ-ध्येयरूपा, धर्माधर्मविवर्जिता, विश्वरूपा, जागरिणी, स्वपन्ती, तैजसात्मिका, सुप्ता, प्राज्ञात्मिका, तुर्या, सर्वावस्थाविवर्जिता, सृष्टिकर्त्री, ब्रह्मरूपा, गोविन्द-रूपिणी, रुद्ररूपा, संहारिणी, ईश्वरी, तिरोधानकरी, सदाशिवा, अनुग्रहदा, पञ्चकृत्यपरायणा, भानुमण्डलमध्यस्था, भैरवी, भगमालिनी, पद्मासना, भगवती, पद्मनाभसहोदरी (विष्णु की बहन), उन्मेषनिमेषोत्पन्नविपन्नभुवनावली, सहस्रशीर्षवदना, सहस्राक्षी, सहस्रपात्, आब्रह्मकीटजननी, वर्णाश्रमविधायिनी, निजाज्ञारूपनिगमा, पुण्यापुण्फलप्रदा, पुरुषार्थप्रदा, पूर्णा, अनादिनिधना, नारायणी, अम्बिका, भुवनेश्वरी, नादरूपा, ह्रींकारी, राज्ञी, रमा, रामा, काम्या, कामलारूपा, कल्याणी, करुणारससागरा, कान्ता, वारुणीमदविह्वला, वरदा, विश्वाधिका, विधात्री, वेदजननी, विष्णुमाया, विजया, विमला, जगतीकन्दा, भक्तिमत-कल्पलतिका, पशुपाशविमोचिनी, संहृताशेषपाखण्डा, सदाचारप्रवर्तिका, तमोपहा, चिति, तत्पदलक्ष्यार्था, चिदेकरसरूपिणी, स्वात्मानन्दलवी-भूताब्रह्माद्यानन्दसन्तति, परा, प्रत्यक् चिति, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, भक्तमानसहंसिका, कामेश्वरप्राणनाड़ी, कृतज्ञा, जालन्धर-स्थिता, ओड्याणपीठनिलया, बिन्दुमण्डलवासिनी (परबिन्दुनिवासिनी), सद्यःप्रसादिनी, विश्वसाक्षिणी, षाड्गुण्यपरिपूरिता, नित्यक्लिन्ना (दयार्द्रा), नित्यषोडशिकारूपा, श्रीकण्ठा-र्धशरीरिणी, परमेश्वरी, मूलप्रकृति, अव्यक्ता, व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी, विद्याविद्यास्वरूपिणी, चिच्छक्ति, चेतनारूपा, जड़शक्ति, जड़ात्मिका, गायत्री, व्याहृति, सन्ध्या, तत्त्वासना, तुष्टि, पुष्टि, मति, धृति, शान्ति, विघ्ननाशिनी, माता, क्षोभिणी, वज्रेश्वरी, वामदेवी, सिद्धेश्वरी, सिद्धविद्या, सिद्धमाता, पशुलोकभयङ्करी, अनाहताब्जनिलया, मणिपूराब्जनिलया, आज्ञाचक्राब्जनिलया, सहस्रदलपद्मस्था, सर्ववर्णोपशोभिता, स्वाहा, स्वधा, मति, मेधा, श्रुति, स्मृति, बन्धमोचिनी, विद्या, मित्ररूपिणी, निखिलेश्वरी, परा शक्ति, परानिष्ठा, मातृका-वर्णरूपिणी, भक्तिनिधि, दयामूर्ति, आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीविद्या, शिरःस्था, भालस्था, हृदयस्था, दहराकाशरूपिणी, आदिशक्ति, परमा, अनेककोटिब्रह्माण्डजननी, क्लींकारी, केवला, त्रिपुरा, त्र्यक्षरी, विश्वगर्भा, स्वर्णगर्भा, ध्यानगम्या, ज्ञानदा, ज्ञानविग्रहा, सर्व-वेदान्तसंवेद्या आदि हैं।

४. त्रिपुरारहस्य में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

त्रिपुरा दर्पण है। जगत् भगवती त्रिपुरा का कौतुकजन्य रङ्गमञ्च है। त्रिपुरारहस्य के ज्ञानखण्ड में कहा गया है कि केवल विशुद्ध चैतन्य ही सत्य है और वह भगवती त्रिपुरा हैं। इसी सत्य शक्ति को विष्णु, शिव आदि भी कहा गया है। भगवती त्रिपुरा अविभाज्य रूप में भगवान् शिव के साथ एकीभूत हैं। संसार भगवती की अभिव्यक्तिमात्र है। त्रिपुरा दर्पण हैं। इसी में निःशेष विश्व एवं जीवात्मा प्रतिविम्बित है। भगवती त्रिपुरा स्वतन्त्र सृजनशक्ति हैं और वे मात्र आनन्द एवं कौतुकहेतु सृष्टि करती हैं। वे ही अपने मायावी ताने-बाने से विश्व की रचना करती हैं और अपनी मायाशक्ति द्वारा जीवों को भ्रम में डालती हैं तथा बन्धन का कारण बनती हैं। वे ही गुरु के मार्गदर्शन में मुक्ति भी प्रदान करती हैं।

विशुद्ध चैतन्य की दृष्टि से जीवात्मा एवं ब्रह्म में ऐकात्म्य है और इस दृष्टि से इस ऐकात्म्य भाव के धरातल पर न कहीं सृष्टि है, न विनाश है, न बन्धन है और न ही कहीं मुक्ति है। सर्वत्र असीम शान्त पयोधि है, जहाँ पर हजारों तरंगें उठती-बैठती रहती हैं। बाह्य दृष्टि से ही जीवात्मा-परमात्मा में भेद है; तात्त्विक दृष्टि से नहीं। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति उपलब्ध करने पर सम्पूर्ण जगत् आत्मा में घुल-मिल कर एक हो जायेगा। आत्मसाक्षात्कार द्वैतभाव को तिरोहित करने की प्रक्रिया है।

विश्व मूलतः चैतन्यप्रकाश या भगवती त्रिपुरा से अभिन्न है। जगत् से पलायन असार है; क्योंकि सर्वव्यापक भगवती त्रिपुरा से पृथक् कोई स्थिति है ही नहीं। भगवती त्रिपुरा की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। इसमें भिन्नत्व का बोध बन्धन है और अभिन्नत्व का बोध मुक्ति; क्योंकि भगवती त्रिपुरा के आन्तरिक एकत्व में खण्डत्व, पृथक्त्व एवं भिन्नत्व की कोई संभावना नहीं है। भिन्नत्व तो भगवती त्रिपुरा की सर्वव्यापी सृजन शक्ति में ही निहित होकर पूर्ण एकत्व की स्थिति ही सत्ता है।

जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर की कोई यथार्थ सत्ता नहीं होने पर भी प्रतिबिम्ब में उसकी स्थिति है, उसी प्रकार विश्व की भी कोई यथार्थ सत्ता न होने पर भी उसकी चिदात्म स्थिति है। दर्पण में प्रतीत होने वाला नगर दर्पणरूप से है ही नहीं; अतः जगत् को अद्वैतचिदात्मस्वरूप से तो सत्य ही कहा गया है। जिस प्रकार दर्पणस्थ नगर यद्यपि सत्य नहीं है तथापि उसके प्रतिबिम्ब की भी सत्ता है, उसी प्रकार जगत् की भी कोई स्वतः स्वतन्त्र सत्ता नहीं है तथापि उसकी छाया (स्थिति) को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता।

सम्पूर्ण विश्व चैतन्य है। यही परम पूर्ण ज्ञान है। जिस प्रकार दर्पण में नगर के प्रतिबिम्ब का अनुभव होता है उसी प्रकार सर्वव्यापक चैतन्य में जगत् रूप एक वस्तु का स्वतः भास होता है। सर्वव्यापक चैतन्य की दृष्टि से न कोई साधक है और न ही कोई बन्धन या मुक्ति; अतः कहीं भी साधक एवं साधना का अस्तित्व ही नहीं है; बल्कि सर्वत्र अखण्ड अद्वैत चैतन्यस्वरूपा भगवती त्रिपुरा की ही व्यापकता, सत्ता, स्थिति एवं विद्य-मानता है। भगवती त्रिपुरा ही सम्पूर्ण ज्ञान एवं अज्ञान हैं; वही बन्धन, मुक्ति एवं साधना हैं। अतः मात्र त्रिपुरा को ही जान लेना सम्पूर्ण ज्ञान है। मात्र भगवती त्रिपुरा ही नम्य, प्रणम्य एवं उपास्य हैं।

विश्व का आधारभूत तत्त्व परम चैतन्यमात्र भगवती त्रिपुरा हैं। इन्हें ही ज्योतिसूर्य, विशुद्ध चेतना, सदोदित आत्मा एवं सनातन ज्योति कहा गया है।

५. आचार्य भास्करराय की दृष्टि और भगवती त्रिपुरसुन्दरी

आचार्य भास्करराय भावनोपनिषद् में कहते हैं कि श्रीत्रिपुरसुन्दरी के तीन भेद हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। उपासनारूपा क्रिया भी त्रिविधात्मिका है— कायिकी, वाचिकी

एवं मानसी। बहिर्याग एवं जप आदि अन्तर्याग रूपों को, परस्पर संवलित होकर भी प्राधान्य-प्राचुर्य की दृष्टि से, कायिक, वाचिक एवं मानस— ये तीन नाम प्राप्त हो जाते हैं। इनमें आदिम दो रूप त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में विस्तार से वर्णित हैं; किन्तु तृतीय— उपासनास्वरूप भावनोपनिषद् में अभिव्यक्त किया गया है, जो कि कायिक एवं वाचिक उपासनाओं की तुलना में अधिक रहस्यमय है और काल-चक्रान्तर्गत श्रीचक्र की भावनाख्या उपासना के रूप में व्यपदिष्ट हुआ है। अथर्वनामक वेदपुरुष ने योगियों की अनुजिघृक्षा के उद्देश्य से सद्गुरु को परस्वरूप स्वीकार करते हुये इसी भावनोपनिषद् का 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' सूत्र से मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया है और 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' सूत्र से समापन किया है।[१]

भास्कर राय अपने भावनोपनिषद्भाष्य में कहते हैं कि यह भावना नामक उपासना की पद्धति 'भावना' के द्वारा 'जीवन्मुक्ति' का विधान करने के कारण एक अपूर्व विधि है— 'भावनया जीवन्मुक्तिं भावयेदिति विपरिणतं सदपूर्वो विधिः।'

यह विधि अर्थभावनाकरणीभूत, भावार्थरूप एवं पररूप की भावना से अन्वित होकर स्वर्गादि की भाँति उसके स्वरूप-निरूपणहेतु 'श्रीगुरुः' इत्यादि सूत्रों द्वारा उपबृंहित की गयी है।

यद्यपि यह भावना कादिमत-कौलमतभेद से दो लक्षणों से संवलित है तथापि भास्कर राय का कथन है कि मैं इसकी कादिमत की दृष्टि से ही विवेचना करुँगा। कादि-मत से अन्तश्चक्र भावना का प्रतिपादन करते हुए इस उपनिषद् का 'य एवं वेद' पदों द्वारा समापन किया गया है। त्रिपुरामहोपनिषद् की व्याख्या में भास्कर राय कहते हैं कि उपासना की दृष्टि से विचार करने पर देवताओं के तीन रूप होते हैं— स्थूल रूप, सूक्ष्मरूप और पररूप।

स्थूल रूप— उस सम्बद्ध देवता की ध्यान-पद्धति में जो रूप निरूपित किया जाता है, वही उसका स्थूल रूप होता है।

सूक्ष्म रूप— किसी भी देवता का जो स्वरूप उसके मूलमन्त्र में निहित होता है, वही उसका सूक्ष्म रूप होता है।

पर रूप— किसी भी देवता का जो उपासनात्मक रूप होता है, वही उसका पररूप होता है।

देवता के इन तीन रूपों के आधार पर ही देवताओं की साधना के भी तीन रूप माने गये हैं— बहिर्याग, जप एवं अन्तर्याग।

त्रिपुरामहोपनिषद् के आदि में मुख्य देवता— त्रिपुरा के स्वरूप की ही व्याख्या की गई है।[२]

---

१. आचार्य भास्कर राय : भावनोपनिषद भाष्य

२. भास्कर भाष्य (त्रिपुर महोपनिषद)

६. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी सच्चिदानन्दलहरी हैं

महात्रिपुर-सुन्दरी की ब्रह्मात्मकता एवं आनन्दात्मकता— बह्वृचोपनिषद् में कहा गया है कि भगवती 'भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्ति सच्चिदानन्दलहरी' हैं— 'अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति।'

देव्युपनिषद् में भगवती कहती हैं— 'अहमानन्दा' अर्थात् 'मैं आनन्द हूँ।'

देवी साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है— 'साऽब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी।' यह भी देव्युपनिषद् में ही कहा गया है।

सत्यमेकं ललिताऽऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म। (बह्वृचोपनिषद्)

धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति। (बह्वृचोपनिषद्)

ललितासहस्रनाम में उन्हें ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी भी कहा गया है। साथ ही चिन्मयी परमानन्दा, ब्रह्माद्यानन्दसन्तति, स्वात्मानन्दा, ब्रह्मानन्दा, सच्चिदानन्दरूपिणी, सत्यानन्दस्वरूपिणी एवं सुधासागरमध्यस्था आदि कहकर उन्हें अखण्ड एवं अनन्त आनन्द का परम केन्द्र भी कहा गया है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के आनन्द की इयत्ता एवं परिमाण क्या है?—

१. समस्त मानव जाति का	१०० आनन्द	= मानवगन्धर्वों का एक आनन्द
२. मानवगन्धर्वों के	१०० आनन्द	= देवगन्धर्वों का एक आनन्द
३. देवगन्धर्वों के	१०० आनन्द	= पितरों का एक आनन्द
४. पितरों के	१०० आनन्द	= आजानज देवों का एक आनन्द
५. आजानज देवों के	१०० आनन्द	= कर्मदेवों का एक आनन्द
६. कर्मदेवों के	१०० आनन्द	= देवताओं का एक आनन्द
७. देवताओं के	१०० आनन्द	= इन्द्र का एक आनन्द
८. इन्द्र के	१०० आनन्द	= बृहस्पति का एक आनन्द
९. बृहस्पति के	१०० आनन्द	= प्रजापति का एक आनन्द
१०. प्रजापति के	१०० आनन्द	= ब्रह्मा का एक आनन्द
		= हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का एक आनन्द[१]

११. परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का आनन्द क्या है? ब्रह्म है क्या? ब्रह्म आनन्द है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा भी गया है—

'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।'

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद्

तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि जो ब्रह्म आनन्दस्वरूप है उसके आनन्द की खोज करते-करते तो मन के सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ वहाँ से लौट आती हैं; किन्तु उसके आनन्द की इयत्ता का सन्धान नहीं कर पातीं—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन।।

यही अचिन्त्य, अखण्ड एवं असीम आनन्द है— महात्रिपुरसुन्दरी का आनन्द। समस्त प्राणी इस पारमात्मिक आनन्द के किसी एक अंश को लेकर ही जीते है।[१] परमात्मा परानन्द है— 'सोऽयं हरिः परानन्दः।'

आनन्दात्मिक विद्या— 'भार्गवी' एवं 'वारुणी' विद्या आनन्दात्मिक विद्या है। वेदों में इस विद्या की सविस्तार व्याख्या की गई है। इसके अनुसार—

१. आनन्द ही ब्रह्म है।

२. आनन्द से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं।

३. आनन्द से ही समस्त प्राणी जीवित रहते हैं।

४. समस्त प्राणी इहलोक से प्रयाण करते हुए अन्त में आनन्द में ही लय हो जाते हैं— प्रविष्ट हो जाते हैं।

५ यह विद्या परमे व्योमन् में प्रतिष्ठित है।

६. जो इस विद्या को जानता है वह भी उस आनन्दस्वरूप परमे व्योमन् में प्रतिष्ठित हो जाता है।

आनन्द और उनकी तुलनात्मक श्रेणियाँ

सप्तद्वीपवती पृथ्वी के राजेन्द्रवन्दित निःसपत्न, निरामय, अव्याहतेन्द्रिय एवं सार्वभौम एक सम्राट के १०० आनन्द = १०० मनुष्यानन्द = एक गन्धर्वानन्द।

१०० गन्धर्वानन्द = एक पितरानन्द	१०० रुद्रानन्द = एक ईशानन्द
१०० पितरानन्द = एक उपदेवानन्द	१०० ईशानन्द = एक शैवानन्द
१०० उपदेवानन्द = एक देवानन्द	१०० शैवानन्द = एक प्रकृत्यानन्द
१०० देवानन्द = एक वैरच्यानन्द	१०० प्रकृत्यानन्द = एक पुरुषानन्द
१०० वैरच्यानन्द = एक वैष्णवानन्द	१०० पुरुषानन्द = एक अक्षरानन्द
१०० वैष्णवानन्द = एक रुद्रानन्द	१०० अक्षरानन्द = एक ब्रह्मानन्द

यही ब्रह्मानन्द भगवती त्रिपुरसुन्दरी का आनन्द है। समस्त विश्व इसी ब्रह्मानन्द का विस्तार एवं विभाजन है। यहाँ के समस्त आनन्द उसी एक ब्रह्मानन्द की करोड़वीं कला

---

१. आनन्द को ही ऋषियों ने ब्रह्म कहा है— 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'

हैं। समस्त विश्व ब्रह्मानन्द की करोड़वीं कला से भी कम मात्रा में जीवित है और उसी आनन्द से अनुप्राणित है— 'ब्रह्मानन्दमयं विश्वं नानाभावो न विद्यते।'

माहेश्वरतन्त्र में कहा गया है कि नानात्व का प्रतिषेध कर देने पर मात्र आनन्द ही शेष रह जाता है— 'तत्प्रतीते निरासे तु परं ब्रह्मैव शिष्यते।'

आनन्द ही विश्व का रस है। रस (आनन्द) ही ब्रह्म है— रसो वै सः।

आनन्द परमात्मा की स्वरूपभूता एवं समवायिनी शक्ति है। ब्रह्म की शक्तियाँ हैं— चित्‌शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, और क्रियाशक्ति।

चूँकि शक्ति एवं शक्तिमान अभिन्न हैं; अतः दोनों ही आनन्दस्वरूप हैं। जगत् उसी आनन्द शक्ति का विस्तार है। भगवान् विष्णु की आनन्द शक्ति 'आह्लादिनी शक्ति' एवं भगवान् परमशिव की आनन्द शक्ति 'आनन्द शक्ति' कहलाती है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी को आचार्य शंकर ने भी अपने सौन्दर्यलहरी में 'आनन्दलहरी' ही कहा है—

१. भजन्ते त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।

तन्त्रशास्त्र भी उन्हें इसी विशेषण के साथ स्मरण करता है—

२. चिदानन्दमहाम्भोधिलहरीं ललिताकृतिम्।

३. चिदानन्दमयी सा हि सर्वकारणकारणा।।

४. नमो वेदान्तवेद्याय नित्यानन्दमयाय च।
निरञ्जनाय शुद्धाय सच्चिदानन्दचेतसे।।

प्राणियों की आनन्द की ओर भागदौड़ क्यों? आनन्द-सिन्धु का निवासी 'बिन्दु' सिन्धु से पृथक् होकर अपनी संकुचित सीमा में सिन्धु के पूर्वानुभूत अनन्त आनन्द को पाने की जब चेष्टा करता है, तब वह जगत् के क्षुद्र आनन्दांश में उसे प्राप्त नहीं कर पाता; अतः लगातार यावज्जीवन आनन्द की प्यास में मृग की भाँति दौड़ता रहता है। जागतिक विषयानन्द मूलतः आनन्द नहीं, आनन्दाभास है; अतः उसमें विशुद्ध, अक्षर, अखण्ड एवं अनन्त आनन्द कहाँ?

उपनिषदों ने परब्रह्म को एवं विश्व की परा सत्ता को 'आनन्द' की ही आख्या प्रदान की है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा भी गया है— 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'

आनन्द ही सृष्टि का मूल उत्स है। जगत् उसी आनन्द की सृष्टि है। जगत् की गतिमान चक्र की धुरी भी आनन्द ही है और उसका आधार है— 'सच्चिदानन्दब्रह्मस्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी।'

७. प्रपञ्चनिर्मात्री के रूप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (१.६) में भगवती त्रिपुरा के स्वरूप एवं त्रिपुरामहामनु की विवेचना करने के बाद ही कहा गया है कि समस्त प्रपञ्च की सृष्टि शिव-शक्ति के संयोग

से होती है। उसी संयोग से समस्त लोक, समस्त वेद, समस्त शास्त्र, समस्त पुराण, समस्त धर्मशास्त्र, समस्त चिकित्साशास्त्र और समस्त ज्योतिषशास्त्र उत्पन्न हुए हैं— 'तत्र लोका: वेदा: शास्त्रणि पुराणानि धर्माणि वै चिकित्सितानि ज्योतींषि शिवशक्ति-योगादित्येवं घटना व्यापठ्यते।'

शिव-शक्तियोग-सृष्टि

लोक	वेद	शास्त्र	पुराण	धर्मशास्त्र	चिकित्साशास्त्र	ज्योतिषशास्त्र

तान्त्रिक आचार्य गौड़पाद की दृष्टि— सृष्टि का उदय कैसे हुआ? इस दिशा में दार्शनिकों में मतभेद है। सृष्टि के मूल तत्त्व के विषय में मुख्यत: निम्न दृष्टियाँ हैं—

१. 'प्राण इति प्राणविद:'— प्राणोपासकों की दृष्टि में प्राणतत्त्व ही सृष्टि का मूल कारण है।

२. 'भूतानीति च तद्विद:'—भूतज्ञ चार्वाक आदि : पञ्चमहाभूत ही सृष्टि का मूल कारण है।

३. 'गुणा इति गुणविद:'— गुणज्ञ साङ्ख्यवादी प्रकृति के तीन गुणों को ही सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

४. 'तत्त्वानीति च तद्विदु:'— तत्त्वज्ञ आत्मा, अविद्या या शिव को ही सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

५. 'पादा इति पादविद:'— पादवेत्ता मानते हैं कि विश्व आदि पाद ही सम्पूर्ण सृष्टि के हेतु हैं।

इसी प्रकार—

६. विषया इति तद्विद:
७. लोका इति लोकविद:
८. देवा इति च तद्विद:
९. वेदा इति वेदविद:
१०. यज्ञा इति तद्विद:
११. भोक्तेति च भोक्तृविद:
१२. भोज्यमिति च तद्विद:
१३. सूक्ष्म इति सूक्ष्मविद:
१४. स्थूल इति च तद्विद:
१५. मूर्त इति मूर्तविद:
१६. अमूर्त इति च तद्विद:
१७. काल इति कालविद:
१८. दिश इति च तद्विद:
१९. वादा इति वादविद:
२०. भुवनानीति तद्विद:
२१. मन इति मनोविद:
२२. बुद्धिरिति च तद्विद:
२३. चित्तमिति चित्तविद:
२४. धर्माधर्मौ च तद्विद:
२५. षड्विंशक इत्येके
२६. षड्विंश इति चापरे
२७. एकत्रिंशक इत्याहु:
२८. अनन्त इति चापरे
२९. लोकांल्लोकविद: प्राहु:
३०. आश्रमा इति तद्विदु:
३१. स्त्रीपुंनपुंसकलैङ्गा:
३२. परापरमथापरे
३३. सृष्टिरिति सृष्टिविद:
३४. लय इति च तद्विद:
३५. स्थितिरिति स्थितिविद:

आदि सभी मतों के अन्त में आचार्य गौड़पाद अपना मत स्थापित करते हुए कहते हैं— 'सर्वे चेह तु सर्वदा' अर्थात् सभी वाद या मत आत्मतत्त्व में ही मूल तत्त्व की खोज करते हैं।

माण्डूक्योपनिषद् की दृष्टि— माण्डूक्योपनिषद् मानता है कि ॐ ही सब कुछ है। भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान ॐ की व्याख्यामात्र है। सब कुछ ॐकार ही है। यहाँ तक कि त्रिकालातीत पदार्थ भी मात्र ॐकार ही है। यह सब ब्रह्म ही है; यह आत्मा ही ब्रह्म है : ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानं भूतं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।।१।। सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म।।२।।

शक्ति ही ब्रह्म है— शाक्त दार्शनिक प्रश्न करते हैं कि जिस 'विमर्श शक्ति' का अपना परिणमन ही जगत् है, अपना स्फुरण ही जगत् का प्रकाशन है एवं अपने विराट् रूप का संकुचन ही जगत् का संहार है, उस 'विमर्श शक्ति' के अतिरिक्त भला अन्य कौन जगत् का स्रष्टा हो सकता है? 'विमर्श' का अकृत्रिम अहंस्फुरण ही जगदाकार सृष्टि है, उसकी स्फुरत्ता ही जगत् की अभिव्यक्ति है और उसके अपने विराट् रूप का संकुचन ही जगत् का संहार है— 'विमर्शोनाम विश्वाकारेण, विश्वप्रकाशेन विश्वसंहारेण वा अकृत्रिमोऽह-मिति स्फुरणम्' अर्थात् जगत्, जगत् की उत्पत्ति एवं जगत् का प्रलय (संहार), सभी विमर्श शक्ति का अहंस्फुरणमात्र ही है।

वेदान्तसूत्र में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, जन्माद्यस्य यत:' के द्वारा जगत् की कारणता का केन्द्र जिस ब्रह्म में प्रतिपादित किया गया है, उसी को शाक्त 'शक्ति' कहते हैं और यह शक्ति ही ब्रह्म है। देव्युपनिषद् में एक प्रसङ्ग में आया है कि समस्त देवता देवी से जब उसका परिचय पूछते हैं तो वे कहती हैं—

- अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चाशून्यञ्च च।
- अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहविद्याऽहम्। अजाऽहमनजाऽहम्।
- सैषाऽष्टौ वसवः। सैषैकादशरुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः, सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिकालरूपिणी।
- मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।।
- यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।

सारांश यह कि शक्ति ही ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत्, शून्य, अशून्य, पञ्चभूत, वेद-अवेद, विद्या-अविद्या, अजा-अनजा, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, विश्वेदेव, सोमपा-असोमपा, यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, गुणत्रय, प्रजापति, इन्द्र, मनु, ग्रह, नक्षत्र, राशि, कला, काष्ठा एवं काल आदि सभी कुछ है।

बह्वृचोपनिषद् में भी कहा गया है कि प्राक् सृष्टिकाल में मूल सत्ता के रूप में पहले अकेली देवी ही थी और उसी ने जगत् का सृजन किया। वे ही 'कामकला' एवं 'शृङ्गार-कला' कहलाती हैं— 'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।'

उसी ने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, वादित्र देव, भोग्य एवं सभी को उत्पन्न किया। उसी ने अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज आदि एवं सभी स्थावर-जङ्गम सत्ताओं को जन्म दिया— 'तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्' आदि।

यह सृष्टिविधायिका शक्ति है कौन? इस प्रश्न के उत्तर में बह्वृचोपनिषद् कहता है कि वही यह 'परा शक्ति' है। वही यह 'शाम्भवी विद्या' एवं 'कादि विद्या' है। वही यह 'हादिविद्या' एवं 'सादिविद्या' है। वही यह महात्रिपुरसुन्दरी 'प्रत्यक् चिति' है—

- सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति।
- सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गान्महा-त्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चिति।
- वही आत्मा भी है और वही ब्रह्मसंवित्ति भी है— 'सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी।'
- सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी।

जिसे आचार्य गौड़पाद एवं माण्डूक्य आदि उपनिषद् ने आत्मा कहा है, उसे ही भावनोपनिषद् में भी स्वात्मैक्यरूपा देवता कहा गया है।

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि— इसी सृष्टिनिर्मात्री शक्ति को आचार्य क्षेमराज ने शक्तिसूत्र (प्रत्यभिज्ञाहृदय) में विश्व-निर्माण में निरपेक्ष स्वतन्त्र चिति कहा है—

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।।१।।

इसकी व्याख्या में आचार्य क्षेमराज कहते हैं— 'विश्वस्य सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य सिद्धौ, निष्पत्तौ, प्रकाशने स्थित्यात्मनि, परप्रमातृविश्रान्त्यात्मनि च संहारे, पराशक्तिरूपा चिति एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवभट्टारिकाभिन्ना हेतुः कारणम्।'

अर्थात् सदाशिव से लेकर भूमिपर्यन्त विश्व की सिद्धिरूप निष्पत्ति (उत्पत्ति), स्थिति-रूप प्रकाशन एवं परप्रमाता में विश्रान्तिरूप संहार के लिए स्वतन्त्र, अनुत्तर विमर्शमयी, शिवभट्टारक से अभिन्न, परा शक्तिरूप भगवती चिति ही कारण है।

आचार्य क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहते हैं कि— भगवती चित् (जो स्वच्छ एवं स्वतन्त्र है) भिन्न-भिन्न अनन्त संसारों के रूप में स्फुरित होती हैं— चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति।

जगत् का जो प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के रूप में प्रकाशन (अभिव्यक्ति) है, वह सब कुछ भगवती चिति शक्ति ही हैं और जगत् एवं जगद्विधायिनी शक्ति के मध्य यही कार्य-कारणभाव है, जिसे पारमार्थिक कार्य-कारणभाव कह सकते हैं— 'इत्येतावत्परमार्थोऽयं कार्यकारणभाव:।'

बेचारा प्रमाण भला कहाँ तक उपयोगी एवं उपपन्न होगा? 'न प्रमाणवराकमुपयुक्तमुपपन्नं वा।'

यही चिति शक्ति स्वात्मारूप भित्ति में विश्व का उन्मीलन करती है— 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'।।२।।

जगत् प्रकाश के साथ एकात्म रूप से अवस्थित है— 'जगत: प्रकाशैकात्म्येनावस्थानमुक्तम्।'

चिति शक्ति ही ज्ञान, क्रिया, माया, गुणत्रय के रूप में स्फुरित होती है। आचार्य क्षेमराज शक्तिसूत्र में इसी का प्रतिपादन करते हैं— 'स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञान-क्रियामायाशक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्त्वरजस्तम:स्वभावचित्तात्मतया स्फुरति।'

८. त्रिपुरसुन्दरी शब्दात्मिका, वर्णात्मिका, नादात्मिका एवं मन्त्रात्मिका

वरिवस्यारहस्यम् में भासुरानन्दनाथ (भास्करराय) कहते हैं कि जगत् नैसर्गिकी, स्फुरत्तात्मिका एवं विमर्शात्मिका शक्ति का परिणाम ही है— अर्थमयी सृष्टि, शब्दमयी सृष्टि एवं देहमयी सृष्टि—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टि:।।

भगवती त्रिपुरा नाद एवं मन्त्र— योगिनीहृदय (१.६) में भगवती त्रिपुरा देवी के तीन संकेत बताये गये हैं— चक्रसङ्केत, मन्त्रसङ्केत एवं पूजासङ्केत। कहा भी है—

चक्रसङ्केतको मन्त्रपूजासङ्केतकौ तथा।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्यो सङ्केत: परमेश्वरि।।

नित्याषोडशिकार्णवनामक ग्रन्थ में भगवती के तीन रूप बताये गये हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। भगवती का सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक माना गया है। 'शब्दमयी सृष्टि' एवं 'मन्त्र-संकेत' भी मन्त्रात्मक हैं—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जातादित: प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।। (४.४)

'स्थूल रूप' = कलातत्त्वभुवनाभिधेयरूपार्थत्रिकम्।
'सूक्ष्म रूप' = वर्णपदमन्त्राभिधानरूपशब्दत्रिकम् ।। (ऋजुविमर्शिनी)

'पर रूप' = कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।
अस्यां परिणतायां तु न कश्चित्पर इष्यते।। (नित्या-४.५)

सांराश यह कि भगवती (शक्ति) का एक रूप 'मन्त्र' भी है। 'मन्त्र' शक्ति का नादात्मक, मातृकात्मक या वर्णात्मक सूक्ष्म स्वरूप है। जब भगवती नाद एवं वर्णों के रूप में अवतरित होती हैं तब उनके इस ध्वन्यात्मक या नादात्मक स्वरूप को 'मन्त्र' कहते हैं। जिस प्रकार बिन्दुरूप ज्योति में इच्छानुसार अर्थों का साक्षात्कार होता है (क्योंकि उसी में अर्थसमष्टि स्थित है), उसी प्रकार नाद में निखिल विश्व का, अनन्त वाचकों एवं अनन्त मन्त्रों का साक्षात्कार होता है। अत: कोई भी मन्त्र चेतन होने पर नाद की ही अवस्था में उपनीत हो जाता है। वाचकों की सहासमष्टिरूप से एकीभूत स्थिति का नाम है— नाद। बिन्दु एवं नाद जगत् के अनन्त वाच्य-वाचकों की एकीभूत समष्टि के द्योतक हैं। भ्रूमध्य के ऊर्ध्व में 'बिन्दु' का एवं उसके भी ऊर्ध्व में ब्रह्मरन्ध्र की सीमा के अन्त तक 'नाद' का अनुभव चलता रहता है। प्रत्येक पिण्डस्थ चक्र में जो वर्ण हैं, वे चिदग्नि के प्रभाव से विगलित होकर धारा के रूप में प्रवाहित होते हैं। प्रत्येक प्रवाह दूसरे वर्णों को अपने में विगलित करके मध्यबिन्दु की ओर चलता है। यही नाद का स्वरूप है। सृष्टि का उपादान बिन्दु है और शक्त्यात्मक बिन्दु ही 'बीज' है।

'बिन्दु' शिवात्मक है, 'बीज' शक्त्यात्मक है और बिन्दु एवं बीज दोनों के समवाय से उत्पन्न होने वाला तत्त्व 'नाद' कहलाता है—

बिन्दुः शिवात्मको बीजः शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः।।

सच्चिदानन्दविभव परमेश्वर → 'शक्ति' → नाद → बिन्दु।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।।

(बिन्दु का पुनः स्फुटन— बिन्दु, बीज, नाद।)

पराशक्तिसंयुक्त बिन्दु का अगला विकास बिन्दु, बीज एवं नाद के रूप में होता है—

परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः।
बिन्दुनादौ बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः।।

योगशिखोपनिषद् (६.७०) 'बिन्दु नाद कला ब्रह्मन् विष्णु महेश देवताः'। विष्णु = बिन्दु। ब्रह्म = नाद। ईश (रुद्र) = कला। बिन्दु → रौद्री। नाद → ज्येष्ठा। बीज → वामा।

बीज = शक्त्यात्मिका कला। भास्करराय वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं कि बिन्दु, अर्धचन्द्रिका, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समनी, उन्मनी— सभी नौ स्तरों की समष्टि को नाद कहा जाता है— 'बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।'

श्रीचक्र भी नाद, बिन्दु एवं कला के भेद से तीन प्रकार का माना जाता है।

पर शिव एवं परा शक्ति तो निस्पन्द एवं निःशब्द हैं। नाद क्या है? "Nada is the first movement in the ideating cosmic consciouness leading it to

the Sound Brahman (शब्द ब्रह्म) whence all ideas, the language in which they are expressed (Shabda) and the objects (Artha) which they denote are derived "[१]

'बिन्दु' क्या है? यह अनुस्वार में स्थित एक गोल आकार है। मन्त्र की दृष्टि से 'बिन्दु' वह क्रियात्मक चैतन्य या शक्ति है, जो कि अपने को 'इदम्' (This) के रूप में पहचानती है। इसी समय शक्ति को घनीभूत कहा जाता है। भास्करराय सौभाग्य-भास्कर में कहते भी हैं— 'प्रलये सृज्यमानप्राणिकर्मणां परिपाकदशायां तादृशकर्माभिन्न-मायावच्छिन्नं ब्रह्म घनीभूतमित्युच्यते। स एव जगदङ्कुरः कन्दरूपत्वाद्बिन्दुपदेन व्यवह्रियते।'

प्रपञ्चसारतन्त्र में आचार्य शंकर का भी यही कथन है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्।

शक्ति बिन्दु से पृथक् होकर नाद को जन्म देती है। यह 'बिन्दु' की ही शब्दात्मिका वृत्ति है और इसके चार रूप हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। आचार्य शंकर ने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

मूलाधारात्प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।।

व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

१. वाणी—	मूलाधार में	= परा वाक्	— मूलाधार चक्र में स्थित।
२. वाणी—	नाभि देश में	= पश्यन्ती वाक्	— स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित।
३. वाणी—	हृदय में	= मध्यमा वाक्	— अनाहत चक्र में स्थित।
४. वाणी—	मुख में	= वैखरी वाक्	— कोई चक्र नहीं।

शारदातिलक— सच्चिदानन्दविभव सकल परमेश्वर से शक्ति। (सकल शिव = शिवतत्त्व : सचिदानन्द परमेश्वर) → शक्तितत्त्व → नाद (सादाख्य तत्त्व) → बिन्दु (ईश्वर तत्त्व)। नाद + बिन्दु = शक्ति के विभिन्न पक्ष हैं, जिसमें शक्ति उद्योगावस्था एवं उच्छूना-वस्था में स्थित है। 'नाद' अभिव्यक्त शब्दों का कारणशरीर है।

परबिन्दु = शक्ति की घनावस्था है। यह चिद् घन है। यह स्वापृथक् (स्वाभिन्न) शक्ति से समवेत है और यह शक्ति भी चिद्रूपिणी है। इसमें समस्त प्रपञ्च एवं जीव भी अपृथक् रूप से स्थित है। इसे ही परमशिव कहा गया है। यही महाविष्णु एवं ब्रह्म-पुरुष है। इसका स्थान सत्यलोक है, जो कि मानवपिण्ड में 'सहस्रार' कहलाता है। शारदातिलक का कथन है कि यही 'परबिन्दु', जिसका सार 'परा शक्ति' है, अपने को तीन बिन्दुओं के रूप में विभाजित करता है— बिन्दु, नाद और बीज। इस बिन्दु को 'कार्य-बिन्दु' कहा

---

१. The Serpent Power (पृ. ३४)

गया है, जिससे इसे परबिन्दु से पृथक् किया जा सके। 'कारणबिन्दु' परबिन्दु कहलाता है। 'कार्यबिन्दु' शिव एवं शक्ति के बीज की प्रकृति है। मन्त्रशास्त्र की दृष्टि से कूट का प्रथमाक्षर ही 'बीज' है।[१] इस प्रकार मन्त्र 'क्रीं' में 'क' बीज है एवं 'र' तथा 'ई' शक्ति है। 'बीज' से ही रूप का निर्माण होता है— 'बीजेन मूर्तिकल्पना।'

'नाद' क्या है? यह है— शिव-शक्ति अर्थात् उन दोनों का पारस्परिक समवाय, योग या एकीकरण (एकता = सामरस्य)। प्रयोगसार यही प्रतिपादित करता है।

भगवती को नादरूपा, मन्त्रात्मिका, वर्णरूपिणी, सर्वमन्त्रस्वरूपिणी आदि कहा गया है। ललितासहस्रनाम (ब्रह्माण्डपुराण) कहता भी है—

- नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।
- मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।
- सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।
- महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना।
- पराप्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
  मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।
- मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी।
- सहस्रदलपद्मस्था सर्ववर्णोपशोभिता।
- माध्वीपानालसा मत्ता मातृका वर्णरूपिणी।
- आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता।
  श्रीषोडशाक्षरी विद्या त्रिकूटा कामकोटिका।।
- विश्वगर्भा स्वर्णगर्भा वरदा वागधीश्वरी।
- भाषारूपा बृहत्सेना भावाभावविवर्जिता।
- छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी।
  उदारकीर्त्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।।
- वीरगोष्ठप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी।

श्रीचक्र का नवमावरण 'बिन्दुचक्र' है। इसे ही 'सर्वानन्दमय चक्र' भी कहते हैं।

'बिन्दु' भगवान् कामेश्वर एवं भगवती कामेश्वरी का स्वारसिक सामरस्य है। 'बिन्दु' ही सर्वोच्च सत्ता है। इसी में समस्त विश्व बीजात्मना स्थित है। यह विश्वोत्तीर्ण है। इसमें समस्त रचनाशक्तियाँ एकत्रित होकर संस्थित हैं। इसी घनीभूत पुञ्ज को चिद्घन, अनुस्वार एवं 'परासंवित्' कहते हैं। अहं में स्थित 'अ' (शिव) एवं 'हं' (शक्ति) तत्त्वों की एकात्मता का सम्पादन 'बिन्दु' ही करता है। शक्ति बिन्दु से पृथक् होकर नाद का आविर्भाव करती है। 'नाद' के दो रूप हैं— ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक।

---

१. कुलचूड़ामणि।

मूलाधार में ही 'परा वाक्' शक्ति का प्रथमावतार होता है। वही परा वाक् स्वाधिष्ठान में जाकर 'पश्यन्ती', हृदय में जाकर 'मध्यमा' एवं मुख में जाकर 'वैखरी' बन जाती है।

जब प्रकाशबिन्दु विमर्शबिन्दु में प्रविष्ट होता है तब 'बिन्दु' में उच्छूनता (Swelling) उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् बिन्दु से 'नाद' उत्पन्न होता है। इसी नाद में समस्त तत्त्व स्थित है। नाद व्यक्त होकर त्रिकोण रूप धारण कर लेता है। बिन्दु शिव के नाद एवं शक्ति के बीज की प्रकृति का रूप है तथा नाद इन दोनों का एक सम्बन्ध है। राघव भट्ट कहते हैं कि नाद तीन दशाओं में स्थित है। नाद में ही गुणत्रय का निवास है, जो कि प्रकृति का आविर्भाव करते हैं।

जब तमोगुण की प्रधानता होती है तब नाद का स्वरूप 'ध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनाद:' हो जाता है— 'तमोगुणाधिक्येन केवलध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनाद:।' नाद यहाँ पर अव्यक्त रहता है। यहाँ नाद ध्वनिरूप में स्थित है। यही है— निबोधिका या बोधिनी।

जब रजोगुण प्रधान होता है तब इसे 'नाद' कहते हैं। इस स्थिति में वह 'रजाधिक्येन किञ्चिद्वर्णबन्धान्यासात्मका:' हो जाता है। इसमें वह ध्वनि स्थित है, जिसमें अक्षरों की संयुक्त दशा (जब प्रकाशबिन्दु विमर्शबिन्दु में प्रविष्ट होता है तब 'बिन्दु' में उच्छूनता (Combined in connected disposition of the letters) है।

जब सतोगुण प्रधान होता है तब नाद बिन्दु का रूप धारण कर लेता है— 'सत्त्वाधिक्येन बिन्दुरूप:।'

नाद, बिन्दु, निबोधिका, सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि कहलाते हैं। क्रिया = सूर्य। इच्छा = चन्द्रमा। ज्ञान = अग्नि।

९. नादात्मक एवं मातृकात्मक रूप में महात्रिपुरसुन्दरी

शक्ति 'स्पन्द' है। 'स्पन्द' एक कम्पनात्मक स्फुरण है। यह सिसृक्षु परमात्मा की इच्छा का रूपायन है।

नादात्मा शक्ति ही 'अ' से 'ह' तक के वर्णों के रूप में (स्थूल वाक् के रूप में) सृष्टि में सर्वत्र प्रसृत है। यह शक्ति ही वर्णों के माध्यम से सृष्टि बन गयी है। जगत् इसी नादात्मिका शक्ति का स्फार है।

शक्ति पचास मातृकाओं का समष्टिरूप है। वह अनेक विद्याओं का साकार विग्रह है। वह सर्ववर्णमयी, सर्वदेवमयी, नानाविद्यामयी एवं महाविद्यामयी है। कामधेनुतन्त्र (प्रथम पटल) में कहा भी गया है—

पञ्चाशन्मातृकां देवीं नानाविद्यामयीं सदा।
नानाविद्यामयीं देवीं महाविद्यामयीं तथा।।

सर्ववर्णमयीं देवीं सर्वदेवमयीं पराम्।
सर्वदेवमयीं सौम्यां ब्रह्माण्डजननीं पराम्।।

देवी वर्णमयी है और इन्हीं वर्णों से त्रिदेवों का भी आविर्भाव होता है—

वर्णात्तु जायते ब्रह्मा तथा विष्णुः प्रजायते।
रुद्रश्च जायते देवि ! जगत्संहारकारकः।।

देवी अकारादि क्षकारान्त मातृकाओं का विग्रह है—

अकारादि क्षकारान्ता मातृका बीजरूपिणी।।

यही शक्ति कुण्डलिनीरूपा भी है और समस्त मातृकाओं को धारण करके एवं तद्रूप होकर स्थित है—

वर्णरूपमयी देवी कुण्डली परदेवता।
अकारादि क्षकारान्तं स्वयं परमकुण्डली।।

वर्णों से चराचर जगत्, नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, वेद, स्मृति आदि सभी का आविर्भाव होता है—

सर्वं चराचरं विश्वं वर्णात्तु जायते ध्रुवम्।
नाना शास्त्रं पुराणं च इतिहासं च सुन्दरि।।
वेदं च स्मृतिशास्त्रं च अन्यानि यानि कानि च।
अक्षराज्जायते सर्वं परं ब्रह्म स्वयं शिवे।।

वर्णों का स्वरूप एवं शक्ति के साथ उनका तादात्म्य

१. आ = परमकुण्डली। शङ्खज्योतिर्मय, त्रिदेवात्मक एवं पञ्च प्राणमय।

२. इ = कुण्डली। परमानन्दात्मक, सुगन्धकुसुमच्छवि, हरिब्रह्मात्मक, सदाशिव एवं शक्ति से युक्त, परब्रह्मसमन्वित एवं गुरुब्रह्मात्मक।

३. ई = परमकुण्डली। त्रिदेवमय, पञ्चदेवमय, पीत विद्युल्लताकार, चतुर्ज्ञानमय एवं पञ्चप्राणमय।

४. उ = तारकुण्डलिनी। पञ्चदेवमय, पीतचम्पकसंकाश, पञ्च प्राणमय एवं चतुर्वर्गप्रदायक।

५. ऊ = दुर्लभ बीज। शङ्खकुन्दसमाकार परमकुण्डलीरूप, पञ्च प्राणमय, पञ्च देवमय, गुणत्रयात्मक, वर्ण— पीत-विद्युल्लता, सुख एवं पुरुषार्थचतुष्टयप्रदायक।

६. ऐ = महाकुण्डलिनी। देवत्रय एवं सदाशिवमय, पञ्च प्राणमय। कोटिचन्द्रप्रतीकाश।

७. क = कुण्डलीत्रयसंयुत्।[1]

---

१. ककार का ध्यान-फल—

ककारध्यानमात्रेण सर्ववर्णं हि सिध्यति। ककारभावनाच्चैव सर्वासां भावना भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ककारं हृदि भावय।। (कामधेनु तन्त्र : पटल-१४)

८. ख = शङ्खकुन्दसमप्रभ। बिन्दुत्रयसमन्वित, गुणत्रय, पञ्च देव एवं त्रिशक्ति से युक्त।

९. ग = पञ्च देवात्मक। निर्गुण त्रिगुणोपेत, निरीह निर्मल, पञ्च प्राणमय, सर्वशक्त्यात्मक, अरुणादित्यसंकाश एवं कुण्डलीरूप।

१०. ज = मध्य कुण्डली। शरच्चन्द्रप्रतीकाश, त्रिगुणोपेत, पञ्च देवात्मक, पञ्च प्राणमय, त्रिशक्त्यात्मक एवं त्रिबिन्द्वात्मक।

११. स = परात्पर शक्तिबीज। कोटिविद्युल्लताकार, कुण्डलीत्रययुक्त, पञ्च देवमय, पञ्च प्राणमय, त्रिगुणात्मक एवं त्रिशक्त्यात्मक।

१२. ह = कुण्डलीत्रययुक्त। चतुर्वर्गप्रदायक, विद्युल्लतोपम, गुणत्रय एवं पञ्च देवों से युक्त तथा पञ्च प्राणात्मक।

१०. भगवती त्रिपुरसुन्दरी का श्रीचक्रात्मक स्वरूप

त्रिपुरोपनिषद् की दृष्टि— भगवती के तीन 'पुर' ही उनके तीन पथ हैं। वे विश्व के आकर्षण को धारण किए हुये हैं। वहीं 'अकथ' अक्षर सन्निविष्ट हैं। उसकी अधिष्ठातृ देवता अजरा, पुराणी एवं समस्त देवताओं की सर्वोच्च महिमा से मण्डित हैं। वे देवताओं की महत्तरा महिमा का अधिष्ठान हैं—

ॐ तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षराः सन्निविष्टाः।
अधिष्ठयैना अजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

बिन्दुचक्र— इस छन्द में मध्यस्थ त्रिकोणाकृति सर्वसिद्धिप्रद आवरण को संकेतित किया गया है। तीनों भुजाओं पर सोलह-सोलह अक्षर स्थित हैं। ▽ इस त्रिकोण की ऊर्ध्व भुजा पर 'अ' से 'अः' तक के सोलह स्वर, दाहिनी ओर की भुजा पर 'क' से 'त' तक और तृतीय भुजा पर 'थ' से 'स' तक त था शेष 'ह', 'क्ष' एवं 'ल'— ये तीनों अक्षर तीनों कोणों पर स्थित हैं। इस क्रम के अनुसार 'लकार' नीचे के कोणों पर आता है। इसको 'अकथ' या 'गुरुचक्र' कहते हैं। इसका स्थान सहस्रार के मध्य ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। यह भगवती त्रिपुरा का पीठ है।

सौन्दर्यलहरी के आठवें श्लोक में कहा गया है कि यही शिवाकार मञ्च है—

शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।

आचार्य भास्करराय की दृष्टि— आचार्य भास्करराय अपने त्रिपुरोपनिषद्भाष्य में इस ऋचा की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

१. भगवती के तीन पुर हैं और वे उनकी अधीश्वरी हैं।

२. भगवती के तीन पथ हैं और पाँच प्रकार की मुक्तियाँ ही पन्थत्रय हैं— सालोक्य, कैवल्य, और सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य।

पथत्रय

सालोक्य का पथ	कैवल्य का पथ	सामीप्य-सारूप्य एवं सायुज्य का पथ
(प्रथम पथ)	(द्वितीय पथ)	(तृतीय पथ)

क. सालोक्य का पथ— अपने आश्रमोक्त कर्मों का निष्पादन करते हुये ऊर्ध्वरेता रहकर अनुष्ठान करते हुये स्वस्वाभिमान से उपासना करना या अहंग्रहोपासना सालोक्य का पथ है।

ख. कैवल्य का पथ— ब्रह्मज्ञान या निर्गुणोपासना ही इसका पाथेय है।

ग. सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य का पथ— भगवती की सेवा में उनके समीप रहकर उनकी उपासना करते-करते उनका स्वस्वरूप प्राप्त कर लेना एवं भगवती में लय हो जाना ही तृतीय पथ है।

—यही अर्थ है— 'त्रिपथा' पद का।

विश्वचर्षणी = समस्त प्राणियों की उत्पादिका। 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय, सोऽकामयत तपोऽकुरत, एकोऽहं बहु स्याम' आदि ऋचायें भी देवी के स्रष्टृत्व की पुष्टि करती हैं।

बिन्दुचक्र— 'स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च' भी भगवती की इच्छा-ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की पुष्टि करता है। एक ही वृत्ति इच्छा-ज्ञान एवं क्रिया की समष्टि के रूप से शान्ता; पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के समष्टि रूप से परा तथा वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री की समष्टिरूपा 'अम्बिका' कही जाती है और शान्तात्मिका देवता ही श्रीचक्र में स्थित बिन्दुचक्र है— 'प्रसृतं विश्वलहरीस्थानं मातृत्रयात्मकं बैन्दवं चक्रम्' (नित्याहृदय)। समस्त विश्व उसकी प्रजा है।

विष्णुपुराण के तृतीयांश में उक्त तीन मार्ग इस प्रकार बताये गये हैं—

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्।
पितृयाण: स वै पन्था वैश्वानरपथाद् बहि:।।

त्रिविध मार्ग होने के कारण तीन गन्तव्य पुरियाँ भी हैं। तीन पुरियों की प्राप्ति अभीष्ट होने से परदेवता को 'त्रिपुरा' कहा गया है—

पञ्चविध आत्मा त्रिविधात्मक भजन द्वारा ही 'त्रैपुर लोक' को प्राप्त करती है। जिसके तीन पथ हों, वह है— त्रिपुरा।

इस त्रिपुरात्मकता में भी एकता अनुस्यूत है। वह 'त्रिपुरा' क्यों कहलाती है? इस सन्दर्भ में कालिकापुराण में इस प्रकार कहा गया है—

त्रिकोणमण्डलं चास्या भूपुरञ्च त्रिरेखकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षर: प्रोक्तस्तथा रूपत्रयं पुन:।।

त्रिविधा कुण्डलीशक्तिस्त्रिदेवानाञ्च सृष्टये।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरा मता।।

भगवती त्रिपुरा शब्दसृष्टि एवं अर्थसृष्टि— दोनों की विधायिका हैं।

अकथा— जो अकारादि सोलह, ककारादि सोलह एवं थकारादि सोलह अक्षररूपों में सन्निविष्ट है।

क. 'अ' से 'अ:' तक : १६ अक्षर।
ख. 'क' से 'त' तक : १६ अक्षर।
ग. 'थ' से 'स' तक : १६ अक्षर।[१]

('ह' का त्याग क्यों? क्योंकि वह विमर्शस्वरूप है। साथ ही क्ष, त्र, ज्ञ, संयुक्ताक्षर होने के कारण त्यक्त हुये; क्योंकि उनकी कोई निजी सत्ता है ही नहीं।)

अक्षरा— अक्षर वाली, क्षरण से शून्य = शाश्वत। अजरा— जरा से रहित।

'महत्तरा महिमा देवतानाम्' अर्थात् यही त्रिबिन्दुरूपा त्रिपुरा देवताओं की महत्तरा महिमा अधिष्ठान है।

'अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा' पदावली यह भी संकेतित करती है कि वे भगवती केवल आर्थी सृष्टि ही नहीं; प्रत्युत शाब्दी सृष्टि की भी विधायिका हैं।

इस ऋचा के पूर्वार्द्ध में बिन्दुचक्र के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम ऋचा है— तिस्र............देवतानाम्। इस ऋचा के पूर्वार्द्ध द्वारा 'बिन्दुचक्र' का स्वरूपालोचन किया गया है और उत्तरार्द्ध द्वारा अधिष्ठातृ उपास्य देवता का स्वरूपालोचन किया गया है।

ब्रह्मा-विष्णु महेशादिक देवता भी 'भगवती त्रिपुरा' की उपासना से ही महिमान्वित हुये हैं। अत: वे अखिल देवों की पूजनीया हैं; पद्मपुराण कहता भी है—

शम्भु: पूजयते देवीं मन्त्रशक्तिमयीं शुभाम्।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मचक्राधिष्ठात्री हैं और वे ही परब्रह्म हैं—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्यमय: कोश: स्वर्गो लोको ज्योतिषावृत:।
तस्मिन्हिरण्मये कोशे त्र्यस्त्रे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् तद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदु:।।

भूपुर से त्रिकोणपर्यन्त स्थित चक्राष्टक के ऊपर जो बिन्दुकोश अपने त्रितयात्मक रूप को अन्तर्भुक्त करके स्थित है, उसमें महद्भूत अक्ष है। उसकी बहि:पूजा सम्भव नहीं है; अत: उसे 'अक्ष' पद से निर्देशित किया गया है। उसका अनुभव केवल ब्रह्मवित् मात्र ही कर सकते हैं।

---

१. क्ष = क + ष। त्र = त + र। ळ ल से अभिन्न है और 'ह' कलारूप विमर्श है— हरारार्ण: कलारूपो विमर्शाख्य: प्रकीर्तित:। अत: ये शब्द गृहीत नहीं किये गये।

त्रिकोण और वसुकोण— नवयोन्यात्मक चक्र (त्रिकोण एवं वसुकोणसंवलित)— उपनिषद् की ऋचा कहती है कि वह नौ योनियों को, नौ चक्रों को, नौ योगों को एवं नौ योगिनियों को प्रकाशित करती है। वह स्योना (सुख का हेतु) है। वह नौ चक्र भूमियों, नौ मुद्राओं एवं नौ भद्राओं की अधीश्वरी है। उसने नौ योनियों एवं नौ चक्रों को धारण कर रक्खा है, जिनकी किरणें नौ भद्रा एवं नौ मुद्रा हैं।

सौन्दर्यलहरी के ग्यारहवें श्लोक में चार 'श्रीकण्ठ' एवं पाँच 'शिवयुवती'— इस प्रकार कुल नौ योनियाँ हैं। इन्हें वहाँ 'मूल प्रकृति' कहा गया है। नौ चक्र ही नौ आवरण हैं। प्रत्येक चक्र की एक-एक 'योगिनी' है और उनके नाम हैं— प्रकट, गुप्त, गुप्ततर, सम्प्रदाय, कुलोत्तीर्ण, निगर्भ, रहस्य, परा एवं परपरातिरहस्य योगिनी।

शंकराचार्य श्रीचक्र का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिर्पञ्चभिरपि
प्रसन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदलकलाश्रत्रिवलयैः
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः।।

अर्थात् चार श्रीकण्ठों एवं पाँच शिवयुवतियों— इन नौ मूल प्रकृतियों से तुम्हारे रहने योग्य तैंतालीस 'त्रिकोण' बनते हैं, जो शम्भु के 'बिन्दुस्थान' से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों और तीन रेखाओं सहित आठ एवं सोलह दलों से युक्त हैं।

श्रीचक्र पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड दोनों का प्रतीक है। इसका निर्माण चार 'शिवचक्र' (श्रीकण्ठ) एवं पाँच 'शिवयुवती' (शक्तिचक्रों) अर्थात् 'शिवत्रिकोण' एवं 'शक्ति-त्रिकोण' से होता है।

सृष्टिक्रम— पाँच शक्तित्रिकोण ऊर्ध्वमुख और चार शिवत्रिकोण अधोमुखी रहते हैं।

संहारक्रम— शिवत्रिकोण ऊर्ध्वमुख एवं शक्तित्रिकोण अधोमुख रहते हैं।

शिव और शक्तित्रिकोणों का मुख सदैव एक-दूसरे के विपरीत क्रम में इस प्रकार रहता है—

प्रथम केन्द्रीय कोण (त्रिकोण) = इसके केन्द्र में शम्भु का स्थान है।

केन्द्रीय त्रिकोण (शम्भुस्थानीय त्रिकोण) को छोड़कर शेष त्रिकोण संख्या में बयालीस हैं। इसीलिये त्रयश्चत्वारिंशत् कहा गया है। प्रथम मध्य त्रिकोण के बाहर चतुर्दिक द्वितीय क्रम पर आठ कोण बनते हैं, जो 'अष्टकोण' कहलाते हैं। फिर तृतीय एवं चतुर्थ स्तर पर दश-दश कोण बनते हैं। उन्हें 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' कहते हैं। उनके ऊपर चौदह कोण बनते हैं, जिन्हें चतुर्दशार कहते हैं। इस प्रकार इन सभी का योग— १ + ८ + १० + १० + १४ = ४३ होता है।

मध्य केन्द्रीय बिन्दु भगवान् शम्भु का अपना स्थान है, जो कि प्रकृतिस्वरूप नौ त्रिकोणों के योग से निर्मित पूर्ण चक्र से पृथक् है। उक्त तैंतालीस कोणों के चक्र के बाह्य देश में प्रथम वृत्त पर 'अष्टदल' पद्म एवं उसके बाहर द्वितीय वृत्त पर षोडशदल पद्म हैं। 'षोडशदल पद्म' तीन वृत्तों से परिवृत्त है। सबसे बाहर तीन रेखाओं से निर्मित 'चतुष्कोण' है, जिसे 'भूगृह' कहते हैं। 'भूगृह' की चारो भुजायें बराबर हैं और चारो दिशाओं में चार द्वार हैं।

छत्तीस तत्त्व सप्त धातुओं के साथ मिलकर तैंतालीस हो जाते हैं।

पाँच 'शिवयुवतियाँ' शान्त्यातीतादि पाँच कलायें हैं अथवा शक्ति, शुद्ध विद्या, माया, कला एवं अशुद्ध विद्या हैं।

चार 'श्रीकण्ठ' सदाख्य, महेश्वर, महत्तत्व, पुरुष (या जीव) है अथवा पुरुष, अव्यक्त, महत् और अहंकार है।

'श्रीचक्र' के नौ विभाग हैं। इनमें प्रथम बिन्दु है; शेष मध्यस्थ त्रिकोण आदि हैं। प्रत्येक विभाग को 'आवरण' कहते हैं। इसी चक्रीय विवेचना को स्पष्ट करते हुए त्रिपुरोपनिषद् में कहा गया है—

नवयोनीर्नव चक्राणि दीधिरे नवैव योगा नव योगिनीश्च।
नवानां चक्रे अधिनाथा: स्योना नव मुद्रा नव भद्रा महीनाम्।।

'बिन्दुचक्र' एक होकर भी त्रिरूपात्मक है। इसके तीन रूप हैं। 'शान्तात्व' के अवच्छेद से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति— इन तीन शक्तियों (देवताओं) का मुख्यत: उल्लेख किया गया है और 'अम्बिकात्व' के अवच्छेद से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र + वामा, ज्येष्ठा, रौद्री का आविर्भाव दर्शाया गया है। साथ ही 'परातत्त्व' के अवच्छेद से पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाग्देवताओं का अथवा 'परदेवता' से त्रिपुरा का अधिष्ठान ग्रहण करके नौ योनियों का आविर्भाव दर्शाया गया है। ये नौ देवता ही नौ योनिचक्रों में परिणत हो गये हैं। दो शक्तित्रिकोण + एक वह्नित्रिकोण— नव योनिचक्र। प्रत्येक त्रिकोण में तीन रेखायें होती हैं। नौ कोणों की कल्पना के आधार पर ही नौ योगिनियों की धारणा है। नौ योगिनियाँ ही 'कोण' रूप से परिणत हैं।

एक ही श्रीचक्र में भूपुर से बिन्दुपर्यन्त एक के ऊपर क्रमश: नौ भूमिकायें हैं और उनकी अधिष्ठात्री 'त्रिपुरा' चक्रेश्वरी आदि नाम की नौ शक्तियाँ हैं। वे भी नौ योनियों में सूक्ष्मत: क्रमपूर्वक स्थित हैं। यहीं संक्षोभिणी आदि नौ मुद्रायें भी स्थित हैं। ये नौ मुद्रायें हैं— पुण्य, पाप, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा, प्रमाता, प्रमेय एवं प्रमा। बिन्दु-त्रिकोण-वसुकोणात्मक— इन तीन चक्रों के स्वरूप वाले 'संहारचक्र' में ही सम्पूर्ण 'श्रीचक्र' सूक्ष्मात्मना स्थित है।

दशारद्वयमन्वश्ररूप स्थितिचक्र (ऋचा-३)

कहा गया है कि—

एका सा आसीत्प्रथमा सा नवासीदासोनविंशदासोनत्रिंशत्।
चत्वारिंशदथ तिस्रः समिधा उशतीरि व मातरो मा विशन्तु।।

वह प्रथमा— समस्त विश्व की कारणभूता 'शक्ति' एक थी। फिर बिन्दुचक्ररूप नवयोन्यात्मक हुई; फिर वह उन्नीस प्रकार की अर्थात् नव योनियों एवं बहिर्दशार के योग से उन्नीस प्रकार की हुई। फिर इन सबको मिलाकर वह उन्तीस प्रकार की हुई। फिर वह तैंतालीस प्रकार की हुई। वह माता कामना करती हुई की भाँति मेरे शरीर में प्रवेश करे (ये सब प्रज्ज्वलित कान्तियुक्त समिधासदृश तेजोमयी मातायें मेरे भीतर प्रवेश करें या मेरे शरीर में निवास करें)।

(१ → ९, ९ → १९, १९ → २९, २९ → ४३)

नौ योनियाँ → सूक्ष्म-स्थूल भूत दश → दश तन्मात्रायें → दश इन्द्रियाँ एवं चार अन्तःकरण = १४।[1]

ये सभी स्त्रीरूपात्मक होने के कारण योनिस्वरूप हुये। इन सबका तन्त्र में निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है—

भूततन्मात्रदशकप्रकाशालम्बनत्वतः।
द्विदशारस्फुरद्रूपम्.................................. ।।

समिधा = देदीप्यमान। 'देदीप्यमान माता शरीर में प्रवेश करे' अर्थात् जिस प्रकार गायें बछड़ों के समीप शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने के लिये वेगपूर्वक आकर गोशाला में प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार ये भी शरीर में प्रविष्ट हों। यह श्रुति 'चक्रन्यास विधि' की मूल ऋचा है। इन चक्रदेवताओं का अपने शरीर में न्यास करना होता है। कहा भी गया है—

योगिन्यो यास्तु ताः सर्वा गेहं कुर्वन्तु मे वपुः।
इति शक्तिन्यासमन्त्रलिङ्गसंवादात्तस्यापि मूलम्।।[2]

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के जो स्थूल एवं सूक्ष्म स्वरूप हैं, उनमें 'श्रीचक्र' भगवती का स्थूल शरीर है और 'श्रीविद्या' उनका सूक्ष्म शरीर है।

सृष्टिचक्र : वृत्तत्रयविशिष्ट पद्मद्वय

इस चतुर्थ ऋचा में कहा गया है कि पहले ऊर्ध्व ज्वालायुक्त प्रज्ज्वलित ज्योति तमोगुण हुई, विना जीर्ण हुये वह तिरछी फैली, वह 'रजोगुण' हुई और आनन्द एवं मोदप्रदायक चन्द्रमा की ज्योति वाला 'सत्त्व गुण' हुआ। ये तीनों क्रमशः अग्नि, सूर्य एवं सोम के मण्डलों का निर्माण करते हैं। भाव यह है कि प्रथमतः स्थितिचक्रोत्तर चक्रों में तमोगुणात्मक अग्निनामक ज्योतिर्मण्डल उत्पन्न हुआ। 'ऊर्ध्वं ज्वलत्' विशेषण उसकी अग्नि के ज्वालारूप को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त किया गया है।

१. भास्कर : त्रिपुरोपनिषद् भाष्य। २. भास्कर राय : त्रिपुरोपनिषद् भाष्य।

तदुपरान्त तिर्यक् रूप से फैलने वाला 'ज्योतिर्मण्डल सूर्य' (रक्त वर्ण होने के कारण) रजोगुणप्रधान हुआ। वह अजर था। तदुपरान्त (आनन्दनम्) वैषयिक सुखोत्पादक चन्द्र ज्योतिर्मण्डल हुआ। ये तीनों मण्डल (अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल) माता को विभूषित करते हैं— उसकी श्री में वृद्धि करते हैं।[१]

चतुर्दशार के नीचे अष्टदल एवं षोडशदलात्मक दो चक्र विद्यमान हैं और ऊर्ध्व भाग में दो कर्णिका वृत्त एवं एक बाह्य वृत्त— इस प्रकार तीन वृत्त हैं।

'ज्येष्ठारूपं चतुष्कोणं वामारूपं भ्रमित्रयम्' श्लोकार्ध में 'भ्रमित्रय' पद की व्याख्यानुसार 'वृत्तत्रय' के अन्तरालद्वयवर्ती पद्मद्वय की लक्षणा से सिद्धि हो जाती है—

.... वृत्तत्रितयसंयुतम्।
सरोरुहद्वयं शाक्तैरग्नीषोमात्मकं प्रिये।।

जलती हुई अग्नि के ऊर्ध्व भाग में कज्जल का दर्शन होता है, जिससे कि उसका तमोगुणात्मक रूप सिद्ध होता है। सूर्य रजोगुणात्मक है और चन्द्रमा सत्त्वगुणात्मक है। 'आनन्द' पद सत्त्व गुण का बोधक है; क्योंकि सत्त्वाधिक्य से ब्रह्मानन्द की व्यञ्जना होती है। भाव यह है कि वृत्तत्रय के अन्तराल में विद्यमान पद्मद्वयविशिष्ट 'श्रीचक्र' ही कार्यक्षम है, केवल 'मन्वश्र' नहीं। मन्वश्र से लेकर बिन्दु तक की पूजा का जो निर्देश किया गया है, वह मात्र आपत्तिकाल के लिये है। इन्हीं विचारों को अभिव्यक्त करती है यह चतुर्थ ऋचा—

ऊर्ध्वज्वलज्ज्वलनज्योतिरग्रे तमो वै तिरश्चीनमजरं तद्रजोऽभूत्।
आनन्दघनं मोदनं ज्योतिरिन्दो रेता उ वै मण्डला मण्डयन्ति।।

भूगृहात्मक नवम चक्र

इस पाँचवीं ऋचा में नवम भूगृहात्मक चक्र की विवेचना की गई है। इस ऋचा में भी पाठभेद है—

यास्तिस्रो रेखाः सदनानि भूस्त्रीस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिप्रकाराः।
एतत्त्रयं पूरकं पूरकाणां मन्त्री प्रथते मदनो मदन्या।।[२]

तिस्रश्च रेखाः सदनानि भूमेस्त्रिविष्टस्त्रिगुणास्त्रिप्रकाशाः।
एतत्पुरं पूरकं पूरकाणामत्र प्रथेते मदनो मदन्या।।[३]

यास्तिस्रो रेखाः सदनानि भूस्त्रीस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिप्रकाराः।
एतत्त्रयं पूरकं पूरकाणां मन्त्रं प्रतते मदनो मदन्या।।[४]

जो तीन रेखायें हैं, वे तीन सदन (लोक) हैं, तीन प्राकार, तीन गुण हैं। इन तीन मण्डलों से निर्मित श्रीचक्र का कामेश्वरी मन्त्र द्वारा मदन मन्त्रीकरण करता है।

भूमि के सदन की तीन रेखायें हैं। वे ही भुवनरूपा हैं। वे त्रिगुणरूपा हैं। अग्नि,

---

१. भास्कर राय।
२. भास्कररायप्रस्तुत पाठ।
३. विष्णुतीर्थप्रस्तुत पाठ।
४. आड्यार लाइब्रेरी।

सूर्य और चन्द्र— इन तीन वृत्तों के प्रकाश से प्रकाशित हैं। यह सपरिवार परदेवता का निवासस्थान चक्र भक्तों के मनोरथों का पूरक है। यह शिव, विष्णु आदि के मनोरथों का भी पूरक है। श्रीचक्र में कामेश्वर शिव (मदन) और शिवकामसुन्दरी (मदन्या) अपनी किरण-रूपी अणिमादिक द्वारा अनादि स्वरूप का विस्तार करती हुई विलास कर रही हैं (प्रथेते)।

कर्णिका के दो वृत्तों के अतिरिक्त पद्मद्वय के बाहर तीन वृत्त हैं। 'तिस्रश्च रेखा' पद इसी का बोधक है। ऐसा अर्थ न लेने पर कर्णिकाद्वय के ही अवशेष रहने से मण्डलत्रय का कथन असङ्गत हो जायेगा।

तन्त्रराजतन्त्र में 'मन्वश्र' के बाहर 'अष्टदल' कर्णिकावृत्त के अतिरिक्त मर्यादावृत्त का जो कथन है, उसका आधार यही श्रुति है। पुराणों एवं तन्त्रग्रन्थों में नामान्तरभेद से जो अन्य देवियों का नामोल्लेख किया गया है, वे सभी भगवती त्रिपुरा के ही नाम हैं।[१]

भगवती का पञ्चभूतात्मक एवं चक्रात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर द्वारा सौन्दर्यलहरी (३५) में इस स्वरूप की स्फुट विवृत्ति की गई है। वे कहते हैं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति ! भावेन बिभृषे।।

अर्थात् हे शिव की जाया भगवति ! तुम 'मनस्तत्त्व' हो (मन हो) एवं मन के स्थान 'आज्ञाचक्र' में स्थित हो। तुम 'आकाश' हो और उसके अधिष्ठान 'विशुद्धिचक्र' में स्थित हो। तुम 'वायु तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'अनाहतनामक' संविच्चक्र में स्थित हो। तुम 'अग्नि तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'स्वाधिष्ठानचक्र' में स्थित हो। तुम 'जल' 'तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'मणिपूरचक्र' में स्थित हो। तुम 'भूमि तत्त्व' हो और उसके अधिष्ठान 'मूलाधारचक्र' में स्थित हो। जगत् केवल तुम्हारा ही परिणाम है।

११. महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप (भावनोपनिषद् की दृष्टि में)

भावनोपनिषद् में विभिन्न शक्तियों का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

क. क्रियाशक्ति— क्रियाशक्ति पीठ है— 'क्रियाशक्तिः पीठम्।'
ख. ज्ञानशक्ति — कुण्डलिनी ज्ञानशक्ति है— 'कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्।'
ग. इच्छाशक्ति — महात्रिपुरसुन्दरी इच्छाशक्ति है— 'इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी।'

कामेश्वरी सदानन्दघना, पूर्णा, स्वात्मैक्यरूपा देवता है— 'तयोः कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता।'

---

१. भास्करराय : त्रिपुरोपनिषद्भाष्य।

भगवती का कुण्डलिनी स्वरूप और मातृकात्मक स्वरूप

महाविद्येश्वरी विद्या का स्वरूप 'कुण्डलिनी' ही है। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में कहा भी गया है—

● त्रिपुरेश्वरीं जातवेदस इति जाते आद्यक्षरे मातृकाया: शिरसि बैन्दवममृतरूपिणीं कुण्डलिनीं त्रिकोणरूपिणीं चेति वाक्यार्थ:।

● हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादिश्रीपीठे परां भैरवीं महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन् महाध्यानयोगेन।

● देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्ष्मीमयीं सर्वलक्षणसम्पन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेन।

● भगवती कुण्डलिनी शक्ति ही महात्रिपुरसुन्दरी श्रीराजराजेश्वरी ललिताम्बिका हैं। योगशिखोपनिषद् में इस शक्ति को मनोन्मनी, महाशक्ति, चिदात्मा, चिच्छक्ति, कुण्डलिनी एवं अमृतात्मिका कहा गया है—

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।।

ब्रह्मरन्ध्रे महास्थाने वर्तते सततं शिवा।
चिच्छक्ति: परमा देवी मध्यमे सुप्रतिष्ठिता।।

● कुण्डलिनी जगन्मयी, चित्कला एवं तेजोरूपा स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिता शक्ति है—

ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।। (यामल)

● भगवती कुण्डलिनी मातृकात्मिका है। यह शब्दब्रह्मस्वरूपा एवं वाक्चतुष्टयात्मिका— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीस्वरूपा है। 'श्रीविद्या' पञ्चदशाक्षरात्मक है। अक्षर मातृकारूप हैं। मातृकायें मूलत: 'परा वाक्' रूप हैं और 'परा वाक्' कुण्डलिनी ही है—

परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या।
एताभिरेक पञ्चाशद्दशाक्षरात्मिका वैखरी जाता।।

(कामकलास्तव)

● कुण्डलिनी के तीन रूप हैं— कुमारी, योषित् और पतिव्रता

इनमें कुमारी एवं योषित् रूप तो मन्त्रात्मक, वर्णात्मक, ध्वन्यात्मक एवं नादात्मक है; किन्तु शिव के साथ सामरस्य प्राप्त कर लेने पर प्राप्त पतिव्रतास्वरूप तो 'समना' के परे होने के कारण 'नादातीत' अवस्था है।

शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाम्।
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भाऽर्भकत्वं नराः।।

१२. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सर्वदेव्यात्मकता

तारारहस्यम् नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि काली, परा, तारा एवं षोडशी आदि देवियों में कोई भेद नहीं है। ये ही महात्रिपुरसुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका अभेद-बुद्धि से पूजन एवं ध्यान करने वाला साधक तो स्वयं सदाशिव है। जो इनमें भेद मानता है, वह मूढ़ है—

यत्ते काली परा प्रोक्ता सा तारा परिकीर्तिता।
सैव श्रीषोडशी देवी महात्रिपुरसुन्दरी।
अभेदं भावयेद्यस्तु स मूढोऽभून्महेश्वर।।

इनकी पूजा की भी एक विशेषता है। वह विशेषता निम्नांकित है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

पराशक्ति मात्र महात्रिपुरसुन्दरी ही है; जैसा कि ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

पराशक्तिः परा निष्ठां प्रज्ञानघनरूपिणी।

पराशक्ति कौन है? इस विषय में कामिकागम में कहा गया है कि शरीर में—

क. त्वचा, रक्त, मांस, मेद और अस्थि धातुयें 'शक्तिमूलक' हैं।

ख. मज्जा, शुक्र प्राण एवं जीव धातुयें 'शिवमूलक' हैं।

ग. यह देह नौ धातुओं से निर्मित है और नवयोनिसमुद्भवा है; किन्तु एक दशवाँ धातु भी है और वही है— 'पराशक्ति'। कहा भी है—

त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिधातवः शक्तिमूलकाः।
मज्जशुक्रप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः।।

नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः।
दशमी धातुरेकैव पराशक्तिरितीरिते।।

श्रुति में भी कहा गया है— 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।'

लिङ्गपुराण में भी कहा गया है—

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः।।

शक्तिमन्तः पदार्था ये ते वै शर्वविभूतयः।
पदार्थशक्तयो या यास्तास्ता गौरी बिदुर्बुधाः।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी 'मातृकावर्णरूपिणी' है। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि भगवती ललिता 'अक्षमाला' (वर्णमाला) है—

अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी।

भगवती का स्वरूप

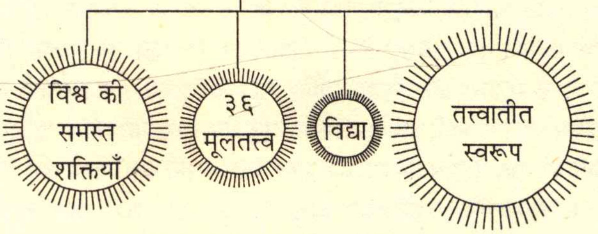

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः।।
सप्तत्रिंशत्तत्त्वभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।
तत्त्वातीतस्वरूपा च विद्यैषा भाव्यते सदा।। (चतुश्शती)

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या। (कामकलाविलास)

विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी। (कामकलाविलास)

१३. भगवती त्रिपुरा का कामकलात्मक स्वरूप

'त्रिपुरामहोपनिषद्' के अनुसार भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अपर अभिधान 'कामकला' है। उनके दो मण्डल, दो स्तन, एक बिम्बमुख, तीन भूगृह (गुहासदन) हैं। व्यक्ति कामेश्वरात्मक, मन्मथकलासंवलित एवं अतिकमनीयस्वरूपा उन भगवती का ध्यान करता हुआ कामदेव के समान कमनीय बन जाता है।

अथवा जो गोल होने के कारण स्तनबिम्ब के सदृश एकमुखी हैं और जिनके निम्न प्रदेश में तीन गुहासदृश गृह बने हुये हैं, ऐसी 'कामरूपा कला' को यदि कोई सकामी मनुष्य अनुष्ठान में लाता है तो उसकी कामना पूर्ण होती है और वह स्वयं कामरूप हो जाता है। यहाँ 'कामबीज' की ओर संकेत किया गया है।

कोष के अनुसार 'बिम्ब' पद भी मण्डलवाचक है। अतः उपनिषद् की चौथी ऋचा में वर्णित तीन मण्डलों का ही यह विभाग है। उस ऋचा में भी वह्नि और सूर्यमण्डल ही 'स्तन' कहे गये हैं। पाठक्रम से (जैसे यहाँ 'अधः' पद से संकेतित है) उनके अनन्तर इन्दुविम्ब को मुख मानना चाहिये और फिर 'भूपुर' हकारार्द्ध है।

कामकला— तन्त्रों में 'कामकला' का रूप अनेक प्रकार से एवं क्लिष्ट रूप में निर्दिष्ट किया गया है। भगवान् आदिशंकराचार्य कहते हैं—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हकारार्द्धं ध्यायेत् .... ।।

यहाँ 'बिम्ब' पद बिन्दुपरक होता हुआ बिन्द्वादिमन्वस्रान्त चक्रगणपरक है। 'मण्डलत्रयरूपं तु चक्रशक्त्यानलात्मकम्' इस सुन्दरी-श्लोक में 'मण्डल' पद दशारादि चक्र का वाचक है। अत: 'द्वामण्डला' पद अष्टदल एवं षोडशदल— इन दो चक्रों की ओर संकेत करता है। यहाँ अवयवत्रय का कथन किया गया है, जो कि समस्त अवयवों के उपलक्षण हैं। वस्तुत: शरीर के तीन ही अवयव हैं— शीर्षादि से घण्टिका तक, कण्ठादि से स्तनों तक और हृदय से सीवन्त तक। केश, पाणि, पाद आदि उन-उन अवयवों की शाखायें है। अत: सर्वचक्रस्वरूपा कामी अर्थात् कामेश्वरात्मक मन्मथ-सम्बन्धिनी कला, (चित्कला) को 'काम्यरूपाम्' अर्थात् कमनीयस्वरूपा स्वरूप को ध्यान का विषय बना कर उपासक 'कामरूप' (मन्मथस्वरूप) सुन्दर बन जाता है। यही नहीं, काम्य अर्थात् तीनों भुवनों के समस्त प्राणियों के द्वारा अभिलषित रूप को प्राप्त करता है। आचार्य भगवत्पाद (शंकराचार्य) ने कहा है—

ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्य: संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु।
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।

कामरूपत्व और काम्यत्व के पाने के अभिलाषी व्यक्तियों को 'कामकला' का ध्यान करना चाहिये। ध्यान ही क्रियारूप है अर्थात् ध्यानमात्र से ही फल की सिद्धि हो जाती है, किसी अन्य साधना की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार श्येन यज्ञादि में सौमिक अंगभूत है उसी प्रकार इसमें भी 'बहिर्याग' अंगभूत तो है; फिर भी अभाव होने पर 'बहिर्याग' के अतिरिक्त अनुष्ठान करने से भी फल की प्राप्ति होती है— यही भगवत् पाद का आशय है।

नित्याषोडशिकार्णव नामक ग्रन्थ में कहा गया है—

बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदध:स्थं कुचद्वयम्।
तदर्ध: सपरार्द्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्।।

यज्ञ-प्रकरण में निर्दिष्ट विधि के अनुसार इस ध्यान के यज्ञात्मक पक्ष का भी स्मरण होता है। उस स्थिति में अन्नादि के कामना की पूर्ति करने वाले यज्ञों के समान फल के आकांक्षी इसका बहि:प्रयोग भी कर सकते हैं। अतएव भक्तिसूत्र में भगवत्स्मरण का निर्देश करके कहा भी गया है— 'बहिरन्तरस्तमुभयमवेष्टिवत्सर्वमिति।'

कामकला का स्वरूप— योगिनीहृदय (चक्रसङ्केत-१.२५) में कहा गया है—

ज्येष्ठा ज्ञानं क्रिया शेषमित्येवं त्रितयात्मकम्।
चक्रं कामकलारूपं प्रसारपरमार्थत:।।

'शक्ति' सिंघाड़े के समान त्रिकोण आकार धारण करती है। 'महाबिन्दु' प्रकाश है। त्रिकोणाकार नादशक्ति 'विमर्श' है। त्रिकोण के तीनों बिन्दु रक्त-शुक्ल-मिश्र तथा मध्य स्थित महाबिन्दु चारो बिन्दु मिलकर 'कामकला' के विग्रह को व्यक्त करते हैं।

'श्वेतबिन्दु' शिवात्मक है, 'रक्तबिन्दु' शक्त्यात्मक है। ये दोनों परस्पर (एक-दूसरे में) प्रविष्ट होते हैं। कभी 'शिवबिन्दु' का संकोच-प्रसार होता है तो कभी 'शक्तिबिन्दु' का। इसी स्थिति में प्रसार एवं संकोच के समय जगत् का निर्माण होता है। 'श्वेतबिन्दु' 'अर्थ' का एवं 'रक्तबिन्दु' 'शब्द' का रूप धारण करता है। ये दोनों बिन्दु परस्पर सम्प्रविष्ट भी हैं और परस्पर से पृथक् भी। रक्त एवं 'श्वेतबिन्दु' के समागम से तृतीय 'मिश्रबिन्दु' का आविर्भाव होता है। यही 'अहं' पद भी है। मिश्रबिन्दु 'सूर्यबिन्दु' है। यह बिन्दु कमनीय होने के कारण 'काम' कहा गया है। 'रक्तबिन्दु' 'अग्नि' एवं 'श्वेतबिन्दु' 'चन्द्र' कहलाते हैं। ये दोनों 'कला' कहलाते हैं। इस प्रकार मूल महाबिन्दु एवं त्रिकोण के तीनों बिन्दु 'काम-कला' के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। महाबिन्दु ही 'हार्दकला' है।

विमर्श शक्ति को अन्तर्गर्भित किये हुये निराकार अपनी विमर्श शक्ति में प्रविष्ट होकर बिन्दुरूप ग्रहण करता है। 'विमर्श शक्ति' पूर्णाहन्तास्वरूपिणी है और परमशिव तदन्तर्गत है। इस प्रकार शिव में शक्ति एवं शक्ति में शिव अन्तःप्रविष्ट हैं। विमर्श शक्ति जब 'महाबिन्दु' में प्रविष्ट होती है तब महाबिन्दु उच्छून होता है। यह अंकुरायमाण चने के बीज के समान फूलता है और उससे 'नादशक्ति' का आविर्भाव होता है। समस्त तत्त्व इसी शक्ति के गर्भ में अवस्थित हैं। शक्ति अनन्त तेजोमयी एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। महाबिन्दु से निकलकर वह शक्ति सिंघाड़े के समान त्रिकोण आकार धारण करती है। महाबिन्दु प्रकाश है और त्रिकोणाकार नादशक्ति ही 'विमर्श' है। त्रिकोण के ये तीनों बिन्दु— रक्त, शुक्ल, मिश्रबिन्दु के साथ मिलकर कामकला का रूप धारण करते हैं।

नटनानन्दनाथ चिद्वल्ली में कहते हैं— दहनो वह्निः। इन्दुः चन्द्रः। तावेव विग्रहावाकारौ ययोर्बिन्द्वोः तौ दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू। अयमर्थः— अग्नीषोमरूपिणी विमर्शशक्तिः। तदुभयभूतकामेश्वराविनाभूता महात्रिपुर-सुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकला इत्युच्यते।

यह कामकला तत्त्व उपासनीया है—

शुक्रः शिवो रक्तशक्त्यां पराशाम्भववेधतः।
रक्तशाम्भवरूपेण परातत्त्वेन शक्तितः।।

रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां परशम्भ्वैक्यभावतः।
रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां सच्चिदानन्दलक्षणाम्।।

* * * * *

अग्रबिन्दुपरिकल्पिताननामन्यबिन्दुरचितस्तनद्वयीम्।
नादबिन्दुरशनागुणास्पदां नौमि ते परशिवे परां कलाम्।।

मिहिरबिन्दुमुखीं तदधोल्लसच्छशिहुताशनबिन्दुयुगस्तनीम्।
सहपरार्धकलारशनास्पदां भजति नित्यमिमां परदेवताम्।।

ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्द्धकला भवेत्।।

स्वान्तर्गतानन्ताक्षरराशिमहामन्त्रमयी पूर्णाहन्तामयी प्रकाशानन्दसारा बिन्दुत्रयसमष्टि-भूतदिव्याक्षररूपिणी कामकलानाम महात्रिपुरसुन्दरी।

भगवती के इसी कामकलात्मक स्वरूप को त्रिपुरामहोपनिषद् में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

द्वा मण्डला द्वा स्तना बिम्बमेकं मुखं चाधस्त्रीणि गुहसदनानि।
कामी कलां काम्यरूपां विदित्वा नरो जायते कामरूपश्च काम्य:।।

कामकलाविलास में कहा गया है—

इति कामकला विद्या देवीचक्रात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूप:।।

यही 'कामकला' महात्रिपुरसुन्दरी भी है और 'श्रीचक्र' उनका ही यन्त्रात्मक स्वरूप होने के कारण भगवती से अभिन्न है—

देवीचक्रक्रमात्मिकां देव्या: त्रिपुरसुन्दर्या: चक्रं श्रीचक्रम्। (चिद्वल्ली)

पूर्वोक्तमहाप्रबन्धेन व्याख्याता कामकला महात्रिपुरसुन्दरी। (चिद्वल्ली)

कामकला तत्त्व की अनेक प्रकार की व्याख्यायें मिलती हैं— 'कामकलाया: व्याख्या पूर्वैरुदाहृताऽनेका।' पुण्यानन्दनाथ महात्मा 'श्रीचक्र' को बिन्दु का विकास मानते हुये कहते हैं कि 'कामकला' एक बिन्दु है— 'पुण्यानन्दमहात्मा कामकलारूपबिन्दुरूप-बिन्दुमुक्त्वा एवं बिन्दोर्विकसनरूपं श्रीचक्रं नाम वक्तुमुद्युङ्क्ते। (चिद्वल्ली)

'काम' और 'कला'— इन दोनों शब्दों पर पृथक् रूप से चिन्तन करें तो 'काम' का अर्थ है— 'परमशिव' और 'कला' का अर्थ है— 'विमर्श' : 'कामकलात्मा काम: प्रकाशैक-स्वभाव:, अनुत्तराक्षरात्मा परमशिव:। कला त्वखिलवर्णान्त्यपरमहंसाक्षरमयी विमर्शविग्रह:।' इसी भाव को विस्तारपूर्वक कामकलाविलास में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता।।

काम एवं कला की अभिन्नता— क्या 'काम' एवं 'कला' पृथक्-पृथक हैं? नहीं; स्वरूपत: ये दोनों अभिन्न हैं। एक ही परमात्मा अपने को स्त्री एवं पुरुष दोनों रूपों में विभक्त कर लेता है— 'परमात्मा हि स्वात्मानमेव स्त्रीपुंसमयं कृत्वा मिथुनरूपमापन्नो विहरते' (चिद्वल्ली)। कहा भी गया है— 'स एको नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमेत स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममात्मानं द्विधाऽपातयत। तत: पतिश्च पत्नी चाभवताम्।'

—'यदिदं किञ्चिन्मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वं सृजति।'

इससे सिद्ध होता है कि स्वयं ब्रह्म भी मिथुन के रूप में विहरणशील होने की कामना करता है; अत: 'मिथुना-त्मना विहरणशीलं ब्रह्म' (चिद्वल्ली)।

अद्वैतवाद— वही अपने को गुरु एवं शिष्य के रूप में भी विभाजित कर लेता है। वही ब्रह्म 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' के रूप में मिथुनीभूत हुआ और वह एक ही ब्रह्म 'गुरु' एवं 'शिष्य' के रूप में (द्विधा) प्रकट हो गया—

१. गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।

२. तन्मिथुनं कामकामेश्वरीरूपं मित्रेशनाथ कामेश्वरी श्रीमदुड्डीशनाथ वज्रेश्वरी षष्ठीनाथ भगमालिनी। एवमादिमिथुनत्रयात्मना दिव्य-सिद्ध-मानवाद्यादिक्रमरूपेण विततं मिथुनत्रयं विस्तृतमित्यर्थः। (चिद्वल्ली)

परमात्मा स्वयमेव स्वात्मानं विभज्य कामकामेश्वरीरूपः गुरुशिष्यभावमापन्नः सकलतन्त्रं प्रवर्तयामास। (चिद्वल्ली)

उपनिषद् में कहा भी गया है—

स इममेवात्मानं द्विधाऽपातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। आत्मैवेदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयेति। (चिद्वल्ली)

▼

अष्टम अध्याय

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वस्वरूप

(सौन्दर्यलहरी के आलोक में)

१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुण्डलिनी-स्वरूप

षट्चक्रवेधनात्मक एवं सहस्रारावरोहणात्मक सामरस्य का चित्रण करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवति ! तू पृथ्वीतत्त्व एवं जलतत्त्व को मूलाधार चक्र में, अग्नि-तत्त्व को मणिपूरक चक्र में, वायुतत्त्व को अनाहत चक्र में, आकाशतत्त्व को विशुद्ध चक्र में तथा मन को आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य) में लय करके एवं इस प्रकार समस्त कुलपथ (शक्ति के आरोहावरोह के मार्ग) का वेध करके सहस्रदल पद्म में अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।

आचार्य हयग्रीव ने शाक्तदर्शनम् में भगवती के 'कुण्डलिनी' स्वरूप का भी उल्लेख किया है।

षट्चक्रवेधनात्मक एवं अवरोहणात्मक मूलाधारस्थ स्वरूपचित्रण करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं कि अमृतधाराओं की वर्षा से, जो तेरे दोनों चरणों के मध्य टपकती है, प्रपञ्च को सिञ्चित करती हुई, फिर छहों आम्नायों से होती हुई या छहों चक्रों द्वारा सींचती हुई तू हे कुहरिणि ! अपनी भूमि पर उतरती हुई अपने-आपको सर्पिणी की भाँति सादे तीन कुण्डलों से आवेष्टित करके कुलकुण्ड में सोती है—

सुधाधाराऽसारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।

आचार्य हयग्रीव कहते हैं—

तत्रैव कुण्डलिनी शक्तिः कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी। (शाक्तदर्शनम्)

२. भगवती का चक्रात्मक स्वरूप

पिण्ड के समस्त चक्र भगवती के शरीरांग हैं। भगवती चक्रस्वरूपा हैं। आचार्य शंकर कहते हैं— हे देवि ! तेरे 'मूलाधार चक्र' में लास्यपरा 'समया देवी' के साथ

नवरसात्मक महाताण्डव करने वाले नटेश्वर 'नवात्मा शिव' जी का मैं चिन्तन करता हूँ। यह जगत् इन दोनों— जनक एवं जननी की अनुकम्पा से अपने को सनाथ मानता है।

भगवती मूलाधार चक्र में निवास करती है— 'मूलाधारैकनिलया।'

हे जननी ! तेरे 'स्वाधिष्ठान चक्र' में अग्नितत्त्व को अधिष्ठित करके 'संवर्ताग्नि' रहता है, उसकी एवं उस महती 'समयादेवी' की मैं स्तुति करता हूँ। जिस समय संवर्ताग्नि बड़ी क्रोधभरी दृष्टि से लोकों को भस्मीभूत करने लगती है उस समय भगवती 'समयादेवी' की दयार्द्र दृष्टि शीतल उपचार करती है।

हे देवि ! तेरे 'मणिपूर चक्र' की शरण में गये हुये श्याम मेघों के रूप धारण करने वाले जन की भी मैं सेवा करता हूँ, जिसमें अन्धकार की परिपन्थिनी शम्पा की ज्योति, आभरणजटित नाना रत्नों की चमक के सदृश इन्द्रधनुष का रूप धारण किए हुये है और जो (मेघ एवं जल) अग्नि एवं सूर्य के ताप से सन्तप्त त्रिभुवन पर (शीतल जल की) वर्षा कर रहे हैं।

भगवती 'मणिपूरक' में भी निवास करती है, उसमें प्रकट होती है और वहाँ 'विष्णु ग्रन्थि' का उद्भेदन करती है। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है—

मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।

आचार्य शंकर कहते हैं— मैं हृत्प्रदेश में विकसित 'संवित् पद्म' (अनाहत चक्र) से निःसृत मकरन्द के एकमात्र रसिक उस किसी अद्भुत हंसयुगल का (मैं) भजन करता हूँ, जो महान् पुरुषों के मनरूपी मानससरोवर में विहार करता है, जिसके (रहस्यात्मक) वार्तालाप का परिणाम ही अष्टदशात्मिका विद्यायें हैं और जो दोषों से रहित समस्त गुणों को इस प्रकार निकाल लेता है जैसे हंस जलमिश्रित दूध से निःशेष क्षीर को निकाल लेता है।

आचार्य शंकर कहते हैं— हे देवि ! मैं तेरे 'आज्ञाचक्र' में स्थित करोड़ों सूर्य-चन्द्रों के उत्कट तेज से युक्त 'परमशिव' की वन्दना करता हूँ, जिसका वाम पार्श्व पराचिति से एकीभूत है। जो मनुष्य उसकी भक्तिपूर्वक आराधना करता है वह उस प्रकाशमान लोक में निवास करता है, जो सूर्य-चन्द्र-अग्नि से अस्पृष्ट (अप्रभावित) है एवं समस्त आतंकों से मुक्त है या सूर्य-चन्द्रमा एवं अग्नि का विषय न होने के कारण उनके दुष्प्रभावों से प्रकाशित नहीं है।

भगवती 'आज्ञाचक्र' में निवास करती हैं और 'रुद्रग्रन्थि' का भेदन करती हैं। ललिता सहस्रनाम में कहा भी गया है—

आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।

भगवती 'सहस्रारचक्र' में 'महाकुण्डलिनी' के रूप में परमबिन्दु को चतुर्दिक आच्छादित करके सामरस्यावस्था में वहाँ निवास करती है और वही उनका मुख्य निवास

या धाम है। वे वहाँ अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती है। आचार्य शंकर कहते हैं—

मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथम्।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।

३. भगवती का श्रीचक्रात्मक स्वरूप

'श्रीचक्र' भगवती का यन्त्रात्मक स्वरूप है। श्रीचक्र को उनका आसन एवं शरीर दोनों कहा गया है। आचार्य शंकर कहते हैं— हे भगवति ! चतुष्टयात्मक 'श्रीकण्ठों' एवं पञ्चात्मक 'शक्तिचक्रों' (शिवयुवतियों) अर्थात् नवात्मक मूल प्रकृतियों के द्वारा तेरे निवास करने हेतु तैंतालीस त्रिकोण बनते हैं, जो शम्भु के 'बिन्दुस्थान' से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों, तीन रेखाओं एवं षोडश दलों से निर्मित हैं—

चतुर्भि: श्रीकण्ठै: शिवयुवतिभि: पञ्चभिरपि
प्रसन्नाभि: शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभि:।
त्रयश्चत्वारिंशद वसुदलकलाश्रत्रिवलय-
त्रिरेखाभि: सार्धं तव शरण (भवन) कोणा: परिणता:।।

त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में 'श्रीचक्र' के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवताया:।।

त्रिपुरतापिन्युपनिषद् में ही यह भी कहा गया है—

संक्रामन्ति वै सर्वाणि छन्दांसि चक्राराणि तदेव चक्रं श्रीचक्रम्।

इसी 'श्रीचक्र' के मध्य भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की यन्त्रात्मक पूजा की जाती है (बहिर्याग सम्पन्न हुआ करता है)। श्रीचक्र के नौ आवरण हैं— १. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. अष्टकोण, ४. अन्तर्दशार, ५. बहिर्दशार, ६. तीन चतुरस्रात्मक भूपुर—

आवरण	चक्र
क. प्रथमावरण	—त्रैलोक्यमोहन चक्र
ख. द्वितीयावरण	—सर्वाशापरिपूरक चक्र
ग. तृतीयावरण	—सर्वसंक्षोभण चक्र
घ. चतुर्थावरण	—सर्वसौभाग्यदायक चक्र
ङ. पञ्चमावरण	—सर्वार्थसाधक चक्र
च. षष्ठावरण	—सर्वरक्षाकर चक्र
छ. सप्तमावरण	—सर्वरोगहर चक्र
ज. अष्टमावरण	—सर्वसिद्धप्रद चक्र
झ. नवमावरण	—सर्वानन्दमय चक्र

शक्तिसूत्र में ऋषि अगस्त्य कहते हैं कि 'शरीर' ही श्रीचक्र है— 'शरीरं श्रीचक्रम्'

(४.२५)। श्रीचक्र कामेश्वर एवं कामेश्वरी का 'वपु' है— 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।' सुभगोदयवासना में भी कहा गया है— 'शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम्।'

भावनोपनिषद् में कहा गया है कि नवरन्ध्रात्मक एवं नवशक्तिमय देह से युक्त ही 'श्रीचक्र' है— 'नवरन्ध्रदेहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्।'

श्रीचक्रपूजन का स्वरूप क्या है? इस सन्दर्भ में भावनोपनिषद् कहता है कि ज्ञातृ, ज्ञान एवं ज्ञेय में अभेदभावना ही श्रीचक्रपूजा है— 'ज्ञातृज्ञानज्ञेयनामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्।'

४. भगवती का सहस्रारात्मक स्वरूप

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहम्।
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं स करणम्।।

ततो मूलाधाराद्द्वितयमभवत्तद्दशदलम्।
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत्।।

कहकर आचार्य गौडपाद ने सुभगोदयस्तुति में कहा है कि 'सहस्रार' ही 'बिन्दु' बन जाता है। 'शक्ति' का निर्गुण स्वरूप बिन्दुरूप है। कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में परमशिव से मिलकर बिन्दुरूपा बन जाती है और 'बैन्दवस्थान' में रहती है। शक्ति का यह रूप परमबिन्दु है। यहाँ शक्ति अभिन्न रूप से निवास करती है। आचार्य शंकर कहते हैं कि हे देवि ! महापुरुष तेरी विद्युत् रेखा जैसी सूक्ष्म सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की त्रयात्मिका कला को छः कमलों के भी ऊपर कमलों के महावन (सहस्रदल पद्म) में 'मल' एवं 'माया' से विशुद्ध मन द्वारा देखते एवं परमानन्द की लहरों को धारण करते हैं—

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्ती दधति परमाह्लादलहरीम्।।

५. भगवती का तत्त्वात्मक एवं शक्त्त्यात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे देवि ! पृथ्वीतत्त्व में छप्पन, जलतत्त्व में बावन, अग्नितत्त्व में बासठ, वायुतत्त्व में चौवन, आकाशतत्त्व में बहत्तर एवं मनस्तत्त्व में चौंसठ रश्मियों के ऊपर तेरे दोनों चरणकमल स्थित हैं—

क्षितौ षट्पञ्चाशद्द्विसमधिकपञ्चाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्।।

'मणिपूर चक्र' की रश्मियाँ (अग्नितत्त्व की दश कलायें) धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, विस्फुल्लिंगी, सुश्रिया, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी और कव्यवाहिनी।

'अनाहतचक्र' की रश्मियाँ (सूर्य की बारह कलायें)— तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा।

'विशुद्ध चक्र' की रश्मियाँ (चन्द्रमा की सोलह कलायें)— अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा और पूर्णामृता।

('मणिपूरचक्र' के नीचे स्थित) 'रुद्रग्रन्थि' की रश्मियाँ (रुद्र की दश कलायें)— तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी और मृत्यु।

('अनाहतचक्र' के ऊपर स्थित) 'विष्णु ग्रन्थि' की रश्मियाँ (विष्णु की दस कलायें)— जरा, पालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति एवं दीर्घा।

('आज्ञाचक्र' के ऊपर स्थित) 'ब्रह्मग्रन्थि' की रश्मियाँ (ब्रह्मा की दश कलायें)— सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि।

भगवती शक्ति के रूप में कुण्डलिनी शक्ति भी हैं। इसका उल्लेख हयग्रीवप्रणीत शाक्तदर्शनम् में इस प्रकार किया गया है—

ब्रह्मरन्ध्रमुखं स्वमुखेन समावेष्ट्य कन्दपार्श्वेषु निरुध्य संस्थिता कुण्डलिनी (१४. १.१); तत्रैव कुण्डलिनी शक्तिः (१३.४.१०); कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी (१३.४.१७)।

१. पृथ्वी की छप्पन किरणें— पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रायें, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, कला, प्रकृति, महत् और पुरुष। इनका योग अट्ठाइस होता है। ये ही शिव-शक्तिभेद से छप्पन हो जाते हैं।

२. जल की बावन किरणें— पाँच महाभूत, दश इन्द्रियाँ, दश उनके कार्य एवं मन। इनका योग है— छब्बीस। यही शिव-शक्तिभेद से बावन हो जाते हैं।

३. अग्नि की बासठ किरणें— पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रायें, दश इन्द्रियाँ, दश उनके कार्य एवं मन। ये इकत्तीस ही शिव-शक्तिभेद से बासठ हो जाते हैं।

४. वायु की चौवन किरणें— पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रायें, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, कला, प्रकृति एवं पुरुष। ये सत्ताइस शिव-शक्तिभेद से चौवन होते हैं।

५. आकाश की बहत्तर किरणें— समस्त छत्तीस तंत्त्व शिव-शक्तिभेद से बहत्तर हो जाते हैं।

६. मनस्तत्व की चौंसठ किरणें— प्रथम चार शुद्ध तत्त्व (शिव, शक्ति, सदाख्य, महेश्वर); शेष ३२ शिव— शिव-शक्तिभेद से योग चौंसठ होता है।

सर्वशक्तिवाद

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि- शक्तिसूत्रकार (प्रत्यभिज्ञाहृदय के प्रणेता क्षेमराज) कहते हैं—

भगवती 'चिति शक्ति' ही विश्व का वमन (बहि:प्रकाशन) करने के कारण या संसाररूप वाम— विपरीत आचरण करने से 'वामेश्वरी' का रूप ग्रहण करती हुई खेचरी, गोचरी, दिक्चरी एवं भूचरी, प्रमाता, अन्त:करण, बाह्य करण एवं वस्तुस्वभाव रूप में स्फुरित होती है।

वही 'चिति शक्ति' ही 'पशुभूमिका' में शून्य पद ग्रहण करके पारमार्थिक 'चिद्गगनचरी' का स्वरूप छिपाकर किञ्चित्कर्तृत्वादिरूप कला आदि शक्त्यात्मक 'खेचरी' चक्ररूप में प्रकाशित होती है।

अभेदनिश्चयादि पारमार्थिक स्वरूप को छिपाकर भेद-निश्चय, भेदाभिमान तथा भेदकलनाप्रधान अन्त:करणों की देवी 'गोचरी चक्र' के रूप में प्रकाशित होती है।

अभेदप्रथात्मक पारमार्थिक रूप को आवृत्त करके एवं भेदालोचन को प्राधान्य देकर बाह्य करणों की देवी कें रूप में वही चिति शक्ति 'दिक्चरी चक्र' के रूप में उदित होती है।

वही चिति शक्ति पतिभूमिका में तो सर्वकर्तृत्वादि शक्तिरूप चिद्गगनचरी, अभेदनिश्चय आदि के स्वरूप वाली होकर 'गोचरी', अभेदालोचनाद्यात्मक 'दिक्चरी' एवं निजाङ्गस्वरूप अद्वैतप्रथा की सारभूत प्रमेयात्मक स्वरूपवाली होकर 'भूचरी' रूप से पतिहृदय को विकसित करती हुई स्फुरित होती है।

चिदात्मा परमेश्वर की अविनाशी एवं स्पन्दनगर्भा ऐसी कर्तृत्वशक्ति ही 'ऐश्वर्यशक्ति' है। वह शक्ति जब अपने स्वस्वरूप को छिपाकर 'पशुदशा' में प्राण, अपान एवं समान शक्ति की दशाओं— जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति; भूमियों, देह, प्राण एवं पुर्यष्टकात्मक कलाओं द्वारा व्यामोहित करती है तब उसी से जनित व्यामोहितता 'संसारित्व' कहलाता है।

जब ऐश्वर्य शक्ति 'मध्य धाम' (सुषुम्ना मार्ग) के उल्लासरूप 'उदान शक्ति' एवं विश्वव्याप्त सारभूत 'व्यानशक्ति' को, जिसे क्रमश: आनन्दघनरूप 'तुर्या दशा' एवं चिद्घनस्वरूप 'तुर्यातीत दशा' कहा जाता है, उन्मीलित करती है तब देहादि अवस्था में भी पतिदशात्मक 'जीवन्मुक्ति' उपलब्ध होती है।

चिति शक्ति ही संसार का ग्रास कर लेने के कारण 'अग्नि' कही जाती है। यही अवरोह पद या जीवदशा में भी 'स्वातन्त्र्य शक्ति' द्वारा नील, पीत आदि पदार्थों के इन्धन को आत्मसात् कर लेती है।

चिति ही देह, प्राण आदि आवरणों को निमज्जित करके स्वरूप को उन्मिषित करती हुई 'बल' कहलाती है। चित्त ही तत्त्व को जान लेने पर अन्तर्मुखी दशा में चेतन पद पर आरूढ होकर 'चिति' का रूप ग्रहण करता है।[१]

चित्प्रकाश से अभिन्न, नित्योदित, महामन्त्रात्मक, पूर्ण अहं विमर्शमयी जो परा

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

वाक् शक्ति है, उसी के गर्भ में 'अ' से 'क्ष' तक समस्त वर्णरूप शक्तिचक्र स्थित है और वही परा वाक् शक्ति 'पश्यन्ती' एवं 'मध्यमा' के क्रम से ग्राहक भूमिका आभासित करती है।[१]

अभेद व्याप्ति को संकुचित करने पर अप्रतिहत 'स्वातन्त्र्यरूप इच्छाशक्ति' संकुचित होकर अपूर्णमन्यतात्मक 'आणवमल' के नाम से जानी जाती है।

जब 'ज्ञानशक्ति' संकुचित होकर भेददशा में सर्वज्ञता से अल्पज्ञत्व प्राप्त करती है और अन्तःकरण एवं ज्ञानेन्द्रियता की प्राप्तिसहित अत्यन्त संकोच ग्रहण करती है तो उसको देह आदि भिन्न-भिन्न वेद्यों का विकासस्वरूप 'मायीय मल' कहते हैं।

जब भेददशा में क्रियाशक्ति की सर्वकर्तृता शक्ति अल्पकर्तृत्व प्राप्त करती है तब कर्मेन्द्रियरूप संकोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित हो जाती है तब उसे ही शुभाशुभ कर्ममय 'कार्ममल' कहा जाता है।[२]

जब सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व एवं व्यापकत्व शक्तियाँ संकुचित होकर कला, विद्या, राग, काल एवं नियतिरूप से भासित होती है तब इस प्रकार की आत्मा शक्तियों से दरिद्री होकर 'संसारी' कही जाती है, अन्यथा अपनी शक्ति की विकास दशा में वही 'शिव' है।

समस्त भूमिकाओं में एक ही चिति शक्ति या आत्मा व्याप्त है। उसी आत्मा की स्वातन्त्र्य शक्ति अपने प्रच्छादन एवं उन्मीलन के तारतम्य में क्षिति से शिवदशा तक (छत्तीस तत्त्वों में) व्याप्त है।[३]

स्वातन्त्र्यात्मा चिति शक्ति ही ज्ञान, क्रिया एवं मायारूप होकर पशुदशा में संकोच के प्रकर्ष से सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण तथा तन्मय चित्त के रूप में स्फुरित् होती है। अपने अंगभूत सांसारिक पदार्थों के विषय में पति (परमेश्वर) की जो ज्ञान, क्रिया एवं मायारूप तीन शक्तियाँ हैं, वे ही पशुदशा में सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण कही जाती हैं—

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।
मायातृतीये त एव पशोः सत्त्वं रजस्तमः।।

'स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञानक्रियामायाशक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्त्वरजस्तमःस्वभावचित्तात्मतया स्फुरतीति श्रीप्रत्यभिज्ञायामुक्तम्।'[४]

चित्तनामक कोई अन्य पदार्थ नहीं है, अपितु भगवती चितिशक्ति ही 'चित्त' की आख्या प्राप्त की हुई हैं। जब वह 'चिति' अपने स्वरूप को छिपाकर संकोच का आलम्बन ग्रहण करती है तब उसकी दो प्रकार की गतियाँ हो जाती हैं— कभी उल्लसित संकोच को गौण करके चित्प्राधान्य को लेकर उल्लसित होती है तो कभी स्वाभाविक चित्प्राधान्यपक्ष में प्रकाशमात्र प्रधान होने पर विज्ञानकलरूपता विकसित होती है और प्रकाश तथा

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
२. शक्तिसूत्र
३. शक्तिसूत्र
४. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (आचार्य क्षेमराज)

विमर्श— दोनों के प्राधान्य में विद्यातत्त्व में अवस्थित प्रमातृता प्राप्त होती है। प्रकाश एवं विमर्श के प्राधान्य में और अधिक संकोच के और क्षीण होने पर चितिशक्ति (आत्मा) ईश्वर, सदाशिव और अनाश्रित शिव कहलाता है। चित्त भी चित् शक्ति ही है; जैसा कि आचार्य क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहा भी है—

चितिरेव चेतनपदावरूढ़ा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि समस्त छत्तीस तत्त्व भगवती चिति शक्ति का ही अपना विस्फार है। यही 'परा शक्ति' ही षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक जगत् का आधार एवं कारण है— 'पराशक्तिरूपा चितिरेव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तर विमर्शमयी शिवभट्टारिकाभिन्ना हेतुः कारणम्; चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।'

भगवती का परमशक्त्यात्मक स्वरूप— भगवती पराशक्ति है; कहा भी गया है—

'ब्रह्मरन्ध्रे परा शक्तिः' (शा० द० १३.२.१३;१३.२.१२.)
'विचित्रजगन्निर्माणादिसामर्थ्यरूपा शक्तिः' (१.२)
'शक्तिस्त्रिजननी' (शा० द० १.४.१.)
'चिद्योगाढ्या शक्तिः' इत्यादि। (शा० द० १.२.३)

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी में कहते हैं कि भगवती इतनी बड़ी शक्ति है कि विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं; फिर भला पुण्यहीन मानव की तो बात ही क्या है—

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्चादिभिरपि
प्रशान्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।१।।

भगवान् शिव शक्ति की सहायता के विना सृष्टि करने की बात तो दूर रही, हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

भगवती के चरणकमल के छोटे-छोटे रजःकण को चुनकर ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं, शेषनाग बड़ी ही कठिनाई से अपने हजारों फणों पर उसे धारण कर पाता है तथा शिव उसे भस्म के रूप में अपने अंगों पर लगाते हैं।[1]

विष्णु ने भगवती की आराधना करके प्राप्त 'शक्ति' द्वारा मोहिनी का रूप धारण कर कामारि के मन को भी काम से दग्ध कर दिया था।[2] कामदेव में विश्वविजय करने की अपार 'शक्ति' भी भगवती द्वारा ही प्रदत्त है।[3]

भगवती की सौन्दर्य-शक्ति अपनी मधुरता में इतनी मादक है कि ब्रह्मा आदि कवीन्द्र

१. सौन्दर्यलहरी (२)
२. सौन्दर्यलहरी (५)
३. सौन्दर्यलहरी (६)

भी उसका वर्णन नहीं कर सकते और सौन्दर्य की विग्रह अप्सरायें भी भगवती के सौन्दर्य को देखकर इतना चकित रह जाती हैं कि ध्यान में ही सायुज्य प्राप्त कर लेती हैं।[१] भगवती का ध्यान करने से ही ध्याता में अपूर्व कवित्व शक्ति का उन्मेष हो जाता है[२] और अमृतवर्षिणी इन देवी का ध्याता ज्वरादिक कष्टों से पीड़ित अन्य व्यक्तियों को भी मात्र अपनी दृष्टि से ही स्वस्थ कर देता है।[३]

भगवती के चरणों की ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र भी अपने मुकुटों के प्रकाश से आरती उतारा करते हैं।[४] भगवती की चरण-पूजा से तीनों देवों की भी पूजा हो जाती है, इसीलिए भगवती के मणिमय पादपीठ के निकट अपने मुकुटों की शोभा बढ़ाने हेतु तीनों देवता हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।[५] भगवती के कर्णफूलों की ही यह महिमा है कि (ब्रह्मा, इन्द्र आदि के कालकवलित होते रहने पर भी) हलाहलपायी कालकलना से मुक्त हैं।[६] 'भगवती' शम्भु का शरीर हैं तथा उनके 'स्तनद्वय' सूर्य एवं चन्द्र हैं।[७]

भगवती विश्वनिर्माण के उपादानभूत पाँच तत्त्व— क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर एवं मनस्वरूप भी हैं और उनकी परिणति के अतिरिक्त अन्य कुछ है भी नहीं—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।[८]

ललितासहस्रनाम (१६८) में कहा गया है कि भगवती तत्त्वस्वरूपा हैं—

तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।

वे 'पराशक्ति' भी हैं— 'परा शक्तिः परा निष्ठा' (ल. स. ११६)। भगवती 'श्री-शिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका' (ल. स. १८२) हैं। वे शक्तिस्वरूपा हैं, इसीलिये उन्हें सर्वत्र ही इसी आख्या से सम्बोधित किया गया है। भगवती 'पराशक्ति' भी हैं— 'कारणं भुवनसुन्दरी पराशक्तिरिति' (२.४.१३), 'शक्तिरीश्वर इति हयग्रीवः' (शा. द. २.२.१७), 'शक्तिः स्वतन्त्रेति हयग्रीवः' (२.४.१६), 'अतः कारणं शक्ति-रेवेति हयग्रीवः' (शा. द. ३.३.९), 'कारणं शक्तिः' (शा. द. ४.१.१) आदि।

भगवती 'कुलकुण्डलिनी शक्ति' भी हैं— 'महाशक्तिः कुण्डलिनी'
(ललितासहस्रनाम)

६. भगवती का विश्वात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी (३५) में कहते हैं कि समस्त जगत् भगवती का परिणाममात्र है और इस परिणाम के अतिरिक्त विश्व में अन्य कुछ है ही नहीं—

त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।[९]

---

१. सौन्दर्यलहरी- (१२)
२. सौन्दर्यलहरी- (१७)
३. सौन्दर्यलहरी- (२०)
४. सौन्दर्यलहरी- (२२)
५. सौन्दर्यलहरी- (२५)
६. सौन्दर्यलहरी- (२८)
७. सौन्दर्यलहरी- (३४)
८. सौन्दर्यलहरी- (३५)
९. सौन्दर्यलहरी- (३५)

शक्तिपरिणामवाद— भगवती अपने को विश्वशरीर के रूप में परिणत किये हुये हैं तथा उन्होंने अपने-आपको परिणत करने हेतु चिदानन्दाकार को विराट् देह के भाव द्वारा व्यक्त किया है। सौन्दर्यलहरी (३५) में कहा भी गया है—

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दकारै शिवयुवतिभावेन विभृषे।।

मनस्तत्त्व का केन्द्र आज्ञाचक्र भी भगवती का अपना विशिष्ट स्वरूप है और विशुद्ध, अनाहत, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार भी १. 'तवाज्ञाचक्रस्थं' (३६), २. 'विशुद्धौ ते शुद्ध' (३७), ३. 'समुन्मीलितसंवित्कमल' (३८), ४. 'तव स्वाधिष्ठाने' (३९), ५. 'तव श्याममेघं कमपि मणिपूरैकशरणं' (४०), ६. 'तवाधारे मूले सह समयया लास्य परया' (४१) भगवती के अपने विशिष्ट शक्तिपीठ या दिव्यासन या दिव्यधाम हैं।

७. भगवती का मातृस्वरूप

आचार्य शंकर ने भगवती को मुख्यतः माता के रूप में स्मरण किया है। माता के दो रूप हैं— स्वमाता और जगन्माता। आचार्य शंकर ने भगवती के दोनों स्वरूपों को स्वीकार किया है—

१. वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति यः। (१७)
२. तमीडे संवर्तं जननि ! महतीं तां च समयाम्। (३९)
३. सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्। (४१)
४. सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा। (५१)
५. विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकवलाः। (६५)
६. समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगम्।
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम्।। (७२)
७. जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति। (७६)
८. कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियाम्। (७७)
९. ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ। (८४)
१०. सरोजं त्वत्पादौ जननि ! जयतश्चित्रमिह किम्। (८७)
११. कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसम्। (१००)
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम्।। (१०३)

स्त्रीसामान्ये मातृभावः (शक्तिसूत्र-४.३४), मातरं नारदः (शक्तिसूत्र-१.१०३), यन्मातापितरौ (शक्तिसूत्र-१.८९), शक्तिस्त्रिजननी (शा. द.-१.४.१), श्रीमाता (ललिता-सहस्रनाम), मालिनी हंसिनी माता (ललितासहस्रनाम-९५), सिद्धमाता यशस्विनी (ललितासहस्रनाम-९७), निधिर्गोमाता (ललिता-सहस्रनाम-१२१), अनेककोटिब्रह्माण्ड जननी (ललितासहस्रनाम-१२४), ब्रह्माणी ब्रह्मजननी (ललितासहस्रनाम-१५५), वीरमाता (ललितासहस्रनाम-१५६), विश्वमाता जगद्धात्री (ललितासहस्रनाम-१७३)।

यही माता शक्ति, जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार का आधार है।

आचार्य भासुरानन्द की दृष्टि—

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।[1]

जगत् इसी शक्ति का परिणाम है— 'सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा। अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः (१.५)। इयं सृष्टिः परब्रह्मपरिणाम इति ...... सा च सृष्टिर्द्वेधा अर्थमयी शब्दमयी चेति।' (वरिवस्यारहस्यम् : प्रकाशटीका)

८. भगवती का विश्वोद्धारक एवं विद्यास्वरूप

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवति ! तू अविद्या में पड़े हुये के हृदयान्धकार को निराकृत करने हेतु (ज्ञानरूपी) उद्दीपन करती है। तू जड़ मनुष्यों के लिए चैतन्यस्तबक से निःसृत मकरन्द के स्रोतों का निर्झर या निर्झरिणी है, दरिद्रों के लिए चिन्तामणियों की माला है और जन्म-मरणरूपी संसार-सागर में डूबे हुये लोगों के लिए विष्णु भगवान् के वराहावतार के दाँतों के सदृश उद्धार करने वाली है—

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दश्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपु वराहस्य भवती।।

आचार्य हयग्रीव शाक्तदर्शनम् (१७.४११) में कहते हैं कि भगवती भुवनसुन्दरी स्वयमेव 'ब्रह्मविद्या' हैं— 'एषा श्रीभुवनसुन्दरी ब्रह्मविद्या' (१.२.७)। इस विद्या का द्वितीय स्वरूप भी है और वह है— 'विद्यापञ्चदशी।'

बह्वृचोपनिषद् में भी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, श्रीविद्या, सुन्दरी, बाला, अम्बिका आदि को अभिन्न कहा गया है— 'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी।'

बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।।८।।

सैषा पराशक्तिः सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।।३।।

त्रिपुरतापनीय उपनिषद् में ही 'विद्यां त्रिपुरेशीं, त्रिपुरवासिनीं विद्यां, त्रिपुरेश्वरीं विद्यां' आदि पदों का भी प्रयोग किया गया है। कहा भी गया है—

विद्या समस्तास्तव देवि ! भेदाः।

---

१. वरिवस्यारहस्यम्।

९. भगवती का कामकलास्वरूप

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भगवति ! मुख को बिन्दु बनाकर एवं (तेरे) दोनों स्तनों को उनके नीचे दो बिन्दुओं के रूप में अंकित (चित्रित) करना चाहिये। उसके नीचे 'ह' एवं 'र' के अर्ध भाग का ध्यान करना चाहिये। हे हरमहिषि ! इस प्रकार जो तेरी 'कामकला' का ध्यान करता है, वह तुरन्त ही स्त्रियों के चित्त में क्षोभ उत्पन्न कर देता है। वह सूर्य एवं चन्द्ररूपी दो स्तनों वाले त्रिलोक को भी भ्रमित कर सकता है—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।१९।।

कामकला महात्रिपुरसुन्दरी ही तो है। कामकलाविलास में पुण्यानन्द ने इनका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

इति कामकला विद्या देवीचक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः।।८।।

नटनानन्दनाथ 'चिद्वल्ली' में कहते हैं कि बिन्दुसमष्टिरूपा एवं कामेश्वराविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी ही कामकला है— 'तदुभयभूतकामेश्वराविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकलेत्युच्यते।'

१०. भगवती का मन्त्रात्मक (पञ्चदश्यात्मक) या श्रीविद्यात्मक स्वरूप

आचार्य शंकर ने भगवती के मन्त्रात्मक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है—

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।।३२।।

अर्थात् हे जननि ! शिव, शक्ति, काम क्षिति और रवि, शीतकरण (चन्द्र), स्मर (काम), हंस, चक्र, इसके पश्चात् परा (शक्ति), मार (काम) एवं हरि— इन तीनों के अन्त में तीन हृल्लेखायें जोड़कर तेरे नाम के अवयवस्वरूप अक्षरों का साधकजन भजन करते हैं।— यह हादि लोपामुद्रा का मन्त्र है।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षरलयाः
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतः।।३३।।

अर्थात् हे नित्ये ! स्मर (काम), योनि (त्रिकोण) और लक्ष्मी— इन तीनों को तेरे मन्त्र के आदि (अक्षरों के स्थान) पर रखकर निरवधि महाभोग के रसिक तेरे कतिपय भक्त चिन्तामणियों से ग्रथित अक्षमाला पर मेरा भजन करते हैं और शिवा (त्रिकोण) अग्निहवनकुण्ड़ में सुरभि (गाय) के घृत की सैकड़ों धाराओं की आहुतियाँ देते हैं। —यह 'कादि मूलविद्या' का मन्त्र है। उपर्युक्त सभी तीनों कूटों के अन्त में 'ह्रीं' है। इस हृल्लेखा का स्वरूप क्या है? यह स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक है।

'ह्रीं' बीज देवी प्रणव एकाक्षर ब्रह्म— अथर्ववेद के देव्यथर्वशीर्ष में 'हृल्लेखा' (ह्रींकार = देवीप्रणव) का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्।।१८।।

तात्पर्य यह है कि वियत् + ईकार = (आकाश एवं ईकार) अर्थात् आकाश (हं) एवं ईकार से युक्त, वीतिहोत्र (अग्नि) अर्थात् 'र' अर्धेन्दु (अर्धचन्द्र) अर्थात् से अलंकृत जो देवीबीज है, वह समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला है।

इस प्रकार इस 'एकाक्षर ब्रह्म' (ह्रीं) का इसी प्रकार वे यति ध्यान करते हैं, जो निरतिशयानन्दपूर्ण एवं ज्ञान के सागर हैं—

एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः।।१९।।

'हृल्लेखा' को ही 'देवीप्रणव' भी कहते हैं। (ह् + र् + ई + ँ = ह्रीं), (आकाश + अग्नि = 'ह' + 'र'), (ई + ँ =)।

समस्त श्रीविद्या के अक्षरों में वर्ण (मात्रिका), नाद, संवित्ति एवं विमर्श के रूप में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही निवास करती है—

(श्रीचक्र एवं श्रीविद्या दोनों में भगवती की अनुस्यूतता)

सर्वानन्दमये देवि ! परब्रह्मात्मके परे।
चक्रे संवित्तिरूपा च महात्रिपुरसुन्दरी।।

महाकामकलारूपा पीठविद्यादिसिद्धिदा।
महामुद्रामयी देवी पूज्या पञ्चदशात्मिका।।

तत्तत्तिथिमयी नित्या नवमी भैरवी परा।।
प्रतिचक्रं समुद्रास्तु चक्रसङ्केत चोदिताः।।

(योगिनीहृदय, पूजा संकेत)

११. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के दो विशेष स्वरूप

भगवती का परात्परात्मक स्वरूप— ब्राह्म, शैव, शाक्त एवं गाणेश पुराणों में

सर्वोच्च सत्ता के रूप में क्रमशः ब्रह्मा, शिव, शक्ति एवं गणेश को प्रतिष्ठित किया गया है। भगवती परात्पर हैं; क्योंकि समस्त शक्तियाँ उनकी सेविकायें हैं और पञ्च ब्रह्म उनके 'पञ्च प्रेतासन' के पाये एवं 'आस्तरण' हैं। उनकी आराधना स्वयं हरि, हर एवं ब्रह्मा सदा किया करते हैं। सौन्दर्यलहरी में कहा भी गया है—

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि।

भगवती के चरणकमल में लगे रज:कण को चुनकर ब्रह्मा लोक-लोकान्तरों की रचना करते हैं। शेषनाग उस छोटे से रज:कण को अपने सहस्र फणों पर भी उठा पाने में कष्ट का अनुभव करते हैं; जबकि वह समस्त पृथ्वी को सहज ही उठाये हुये हैं। भगवान् हर उस रज:कण का भस्म बनाकर अपने अंगों पर आभूषण की भाँति लेप करते हैं।[१] वह परात्परा शक्ति है— 'पराशक्तिः परा निष्ठा' (११६), 'निस्त्रैगुण्या परापरा' (१५०), 'परं ज्योतिः परं धाम परमाणुः परात्परा' (१५३), 'लोकातीता गुणातीता सर्वातीता' (१७६), 'मूर्ताऽमूर्ता' (१५४), 'परा प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता' (८१), 'विश्वाधिका' (७५), 'निरुपाधिर्निरीश्वरा' (४६), 'महाशक्तिः' (५४)।[२]

ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र आदि देवता अपने मुकुटों को भगवती के श्रीचरणों में रखकर उनकी पूजा करते हैं और इसे अपना गौरव मानते हैं।[३]

अथर्ववेदीय देव्यथर्वशीर्ष में भगवती देवताओं से कहती हैं कि मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूपासद्रूप जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दानन्द, विज्ञानाविज्ञान, ब्रह्माब्रह्म, पञ्चीकृतापञ्चीकृत महाभूत तथा समस्त जगत् हूँ— 'अहमखिलं जगत्'। मैं वेदावेद, विद्याविद्या, अजानजा, नीचे-ऊपर एवं दो पार्श्व हूँ। मैं रुद्रों एवं वसुओं में सञ्चार करती हूँ। मैं आदित्यों एवं विश्वदेवों में रहा करती हूँ। मैं मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि एवं दोनों अश्विनीकुमारों का भरण-पोषण करती हूँ। मैं सोम, त्वष्टा, पूषा एवं भग को धारण करती हूँ। मैं ही त्रैलोक्य को पादक्षेप से नापने वाले विष्णु, स्रष्टा ब्रह्मा एवं प्रजापति को धारण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ। मैं आत्मस्वरूप पर आकाशादि की निर्मात्री हूँ। भगवती विश्वमाता हैं। वे आत्मशक्ति हैं। वे विश्वमोहिनी हैं। वे पाशांकुश बाणधरा हैं। वे श्रीमहाविद्या हैं। वे अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, विश्वेदेव, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, गुणत्रय, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र, प्रजापति, इन्द्र, मनु, ग्रह, नक्षत्र, तारा, कला, काष्ठा एवं काल हैं।

उनके स्वरूप को ब्रह्मादिक देवता भी नहीं जानते; अतः वे 'अज्ञेया' हैं। अन्तहीन होने से वे 'अनन्ता' हैं। लक्ष्य ज्ञात न होने से वे 'अलक्ष्या' हैं। वे अजा, एका, अज्ञेया, अनन्ता और नैका सभी कुछ हैं। वे समस्त मन्त्रों में मूलाक्षर रूप से रहने वाली मातृका हैं, शब्दों में ज्ञान रूप से रहने वाली, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी और दुर्गा है।[४]

१. सौन्दर्यलहरी, (श्लोक-१)
२. ललितासहस्रनाम।
३. सौन्दर्यलहरी।
४. अथर्वशीर्ष।

भगवती का सगुण स्वरूप— आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में इसका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिण हरिरुद्रेश्वरभृत:।
शिव: स्वच्छच्छाया घटितकपटप्रच्छदपट:।।९२।।

ऐसे ही पञ्च प्रेतासनात्मक पर्यंक पर आसीन भगवती चिन्तामणि मणिद्वीप में, सुधासिन्धु के मध्य, कल्पवृक्षों की वाटिका में निवास करती हैं।[1]

भगवती का साकार एवं विग्रहस्वरूप— आचार्य शंकर ने इसी साकार स्वरूप का वर्णन करते हुये सौन्दर्यलहरी में कहा है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।८।।

अर्थात् पीयूष के रत्नाकर के मध्य, कल्पवृक्षों की वाटिका से आच्छादित 'मणिद्वीप' में, नीपवृक्षों के उपवन के मध्य चिन्तामणियों से निर्मित शौध में, त्रिकोणाकारित महा-मञ्च पर 'परमशिव' के पर्यंक पर समासीन चिदानन्दलहरीस्वरूपा तेरा कोई विरले ही मनुष्य-जन भजन करते हैं और वे धन्य हैं।

भगवती के कटि पर कण-कण निनाद करने वाले घुँघुरुओं वाली मेखला बँधी है। उनके पीन पयोधर हाथी के बच्चे के मस्तकस्थ कुम्भ (गण्डस्थल) के समान हैं। उनका कटिप्रदेश अत्यन्त पतला है। वे शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान स्मरणीय मुख वाली हैं। वे अपने चारो हाथों में धनुष, बाण, पाश एवं अंकुश धारण किये हुये हैं।[2]

भगवती पञ्चप्रेतों पर आसीन हैं— 'पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी।'[3]

भगवती शम्भु का शरीर हैं और उनकी आत्मा शम्भु की आत्मा है—

शरीरं त्वं शम्भो: शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्।
अत: शेष: शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थित: सम्बन्धो वां समरस परानन्दपरयो।। (३४)

इस प्रकार भगवती 'पराशक्ति' एवं आनन्द का एक समरसरूप है। भगवती का परिणमन ही जगत् है और जगत् भगवती का शरीर है—

---

१. सौन्दर्यलहरी, (श्लोक-८,९२) ३. सौन्दर्यलहरी (७)
२. सौन्दर्यलहरी (८)

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारैः शिवयुवतिभावेन विभृषे।। (३५)

भगवती चिदानन्दाकार को विराट देह (जगत्) के रूप में परिणत किये हुये हैं। जगत् भगवती के चिदानन्द का विस्तार है।

भगवती का शरीर षट्चक्रात्मक है— कहा गया है कि तेरे आज्ञाचक्र में स्थित करोड़ों सूर्य-चन्द्र के तेज से युक्त परशिव की मैं वन्दना करता हूँ, जिसका वाम पार्श्व 'परा चिति' से एकीभूत है—

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।।[1]

'सुषुम्ना' में सभी चक्र 'चितिशक्ति' के ही विभिन्न केन्द्र होने के कारण भगवती के ही चक्र हैं—

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।।[2]

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।[3]

विशुद्ध चक्र में कुण्डलिनी सोती है— 'सा कुण्डलिनी कण्ठोद्र्ध्वभागे सुप्ता चेद्योगिनां मुक्तये भवति।'[4]

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्तं जननि ! महती तां च समयाम्।[5]

ललितासहस्रनाम में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है—

१. मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी।
२. मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।
३. आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।
४. सहस्राम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी।

भगवती का षट्चक्रात्मक रूप— भगवती के मणिपूरक चक्रस्थ एवं मूलाधार चक्रस्थ होने के सम्बन्ध में सौन्दर्यलहरी में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

१. तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणम्। (४०)
२. तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया। (४१)

---

१. सौन्दर्यलहरी (३६)
२. योगशिखोपनिषद्
३. सौन्दर्यलहरी
४. शण्डिल्योपनिषद्
५. सौन्दर्य लहरी (३९)

भगवती का किरीट— भगवती का किरीट इतना रमणीय है, मानो इन्द्रधनुष हो। वह तारागणरूपी मणियों से जटित है और चन्द्रमा के टुकड़ों से निर्मित नीड़सदृश मनोहर लगता है।[१]

भगवती के केश— भगवती के गम्भीर, मसृण, चिकने केशसमूह प्रस्फुटित इन्दीवरारण्यसदृश हैं। उसमें जो इन्द्रवाटिका के पुष्प ग्रन्थित हैं, वे मानो केशों की स्वभावज सुगन्ध से सुगन्धित होने हेतु केशों में आ गये हैं।[२]

भगवती की माँग— भगवती के मुखकमल की अरुणिमा ही उनके माँग की सिन्दूर-रेखा है, जो कि केशसमूहरूपी अन्धकार-किरणों को चीरती हुई उदयकालीन सूर्य की आरक्त रश्मि के समान है।[३]

भगवती के घुँघराले बाल— भगवती के घुँघराले बाल ऐसे लगते हैं, मानो वे बाल नहीं हैं; अपितु काले भौंरों की पंक्तियाँ हैं। इन भौरों की आभा से युक्त भगवती का मुख कमलों की श्री का भी परिहास-सा करता हुआ प्रतीत होता है। स्फटिकाभ दन्तावली से निःसृत परिमल पर कामारि शिवरूपी भ्रमर मदोन्मत्त है।[४]

भगवती का ललाट— लावण्य-कान्ति से विमल एवं सुदृप्त भगवती का ललाट ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह मुकुटजटित चन्द्रमा की वह द्वितीय कला है, जो कि एक-दूसरे पर उलटकर रक्खी होने से पूर्ण वृत्ताकार होकर पूर्ण चन्द्र के समान है, जो कि अमृत के लेप से (अन्य कला के जुड़ने के कारण) पौर्णमासी का पूर्ण चन्द्र बन गया है।[५]

भगवती की भृकुटी— भगवती की सुरम्या भृकुटी ऐसी प्रतीत होती है, मानो वह कामदेव के वाम हस्त में धृत धनुष हो और उसकी प्रत्यञ्चा भगवती के काले नेत्रों रूपी भ्रमरों से बनायी गई हो।[६]

भगवती के नेत्र— भगवती के दोनों रमणीक नेत्रद्वय इतने आकर्षक हैं, मानो उनमें दक्षिण नेत्र सूर्यात्मक होने के कारण दिन निर्मित करता है और वाम नेत्र चन्द्रात्मक होने के कारण रात्रि की सृष्टि करता है। तृतीय नेत्र ऐसा प्रतीत होता है, मानो किञ्चित् विकसित स्वर्णपद्मों की शोभा से मण्डित है और दिन तथा रात दोनों के मध्य रहने वाली सन्ध्या है।[७]

१२. भगवती का सौन्दर्यात्मक एवं विभूत्यात्मक स्वरूप

ललितासहस्रनाम में भगवती को निम्न सौन्दर्यसूचक विशेषणों से उपहित करके प्रस्तुत किया गया है—

१. सौन्दर्यलहरी (४२)
२. सौन्दर्यलहरी (४३)
३. सौन्दर्यलहरी (४४)
४. सौन्दर्यलहरी (४५)
५. सौन्दर्यलहरी (४६)
६. सौन्दर्यलहरी (४७)
७. सौन्दर्यलहरी (४८)

शृङ्गाररससम्पूर्णा (८२), नित्याषोडशिकारूपा (८५), सुमुखी नलिनी सुभ्रूः शोभना सुरनायिका (९३), निजारुणप्रभापूरमज्जद् ब्रह्माण्डमण्डला (३), अष्टमी चन्द्रविभ्राजदलिका स्थलशोभिता (५), वक्त्रलक्ष्मीपरिवाहचलन्मीनाभलोचना (६), मराली मन्दगमना महालावण्यशेवधिः (२०), ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला (८), नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वयी (१४), स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया (१५), रत्नकिङ्किणिका रम्या रशनादामभूषिता (१६), निःसीममहिमा नित्ययौवना मदशालिनी (९१), दाडिमी कुसुमप्रभा (११४), मृगाक्षी मोहिनी (११४), कनतकनकताटङ्का (१६१), स्वभावमधुरा (१६९), विशालक्षी (१७३), दरस्मेरमुखाम्बुजा (१७१), बन्धूककुसुमप्रख्या (१७७) और सुवेषाढ्या सुवासिनी (१७७)।

भगवती का सौन्दर्य अतुल्य है। ब्रह्माप्रभृति कवीन्द्र भी अपने कल्पनातिरेक शक्ति द्वारा भी उनके सौन्दर्य का वर्णन नहीं कर पाते। स्वर्ग की अप्सरायें तो भगवती के सौन्दर्य को देखकर मन्त्रमुग्ध होकर अपनी चेतना खो देती हैं; अतः सौन्दर्यदर्शन के रस में ध्यानस्थ हो जाती हैं। भगवती के अतुल्य सौन्दर्य को देखने से अप्सरायें शिवसायुज्य की प्राप्ति कर लेती हैं—

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्रः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिश सायुज्यपदवीम्।।१२।।

भगवती ही सुन्दर नहीं हैं, अपितु उनकी दृष्टि पड़ने पर वृद्ध एवं कुरूप भी ऐसे सुन्दर हो जाते हैं कि उन्हें देखकर नवयुवतियाँ अपनी सुध-बुध एवं लोक-लज्जा खोकर उनके पीछे-पीछे वस्त्रों की चिन्ता किये विना भी दौड़ पड़ती हैं।[१]

भगवती शारदपूर्णिमा की चन्द्रिका के समान शुभ्र हैं। वे द्वितीया के चन्द्रमा से युक्त जटाजूटरूपी किरीट धारण किये हुये हैं।[२] भगवती तरुण सूर्य की श्री (कान्ति) को धारण करके अपने शरीर की कान्ति से आकाश एवं पृथ्वी दोनों को अपनी अरुणिमा से मण्डित कर रही हैं।[३]

भगवती की महिमा (विभूतिपरक महिमा) यह है कि उनकी कृपा से ब्रह्मा सृष्टि, रुद्र प्रलय एवं सदाशिव कृपा करने की शक्ति पाते हैं।[४] भगवती के चरणों की पूजा करने से त्रिदेवों की भी पूजा हो जाती है; इसीलिये ये त्रिदेव भगवती के आसन के निकट हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।[५]

भगवती की पवित्र दृष्टि ऐसी प्रतीत होती है, मानो वह पवित्र विशाला, कल्याणी,

१. सौन्दर्यलहरी (१३)
२. सौन्दर्यलहरी (१५)
३. सौन्दर्यलहरी (१८)
५. सौन्दर्यलहरी (२५)
४. सौन्दर्यलहरी (२४)

अयोध्या, मधुरा, भोगवतिका, अवन्तिका और विजया तीर्थ हो।[१]

भगवती के विस्तर पर बिछी चादर ऐसी प्रतीत होती है, मानो शृंगार रस शरीरी बनकर दृष्टि में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है।[२]

भगवती के नेत्र— भगवती के लम्बे नेत्र कान तक ताने हुये कामदेव के बाणों की भाँति हैं, जो कि पंखों के स्थान पर पलकें धारण किये हुये हैं और उनका कटाक्ष उस तीक्ष्ण बाण के समान है, जिससे आहत होकर स्वयं कामारि का शान्त चित्त भी क्षुब्ध हो जाता है। ये मानो गुणत्रय को धारण किये हुये हैं, क्योंकि ये श्वेत, रक्त एवं कृष्ण हैं।[३]

(भगवती के दो नेत्र चन्द्र-सूर्यात्मक एवं आग्नेय हैं।) उनके नेत्र गंगा-यमुना एवं शोण का संगम हैं। उनके नेत्रों के खुलने से सृष्टि एवं बन्द होने से (उन्मेष-निमेष से) जगत् का प्रलय हो जाता है।

निमेषशून्य मछलियाँ पानी में सदैव इसलिये छिपी रहती हैं कि कहीं भगवती की आँखें उनके कानों से मछलियों की चुगली न कर दें। कुमुदिनी भी इसी भय से रात्रि में ही खिलती है, न कि दिन में।[४]

भगवती की कनपटी— भगवती की वक्र कनपटियाँ धनुष के कोणों के समान हैं। बाणों के समान मर्मभेदी (भगवती के) कटाक्ष कानों का अतिक्रमण करके अर्थात् कनपटी को लाँघकर आगे बढ़कर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो भौंहों के धनुष पर कटाक्षरूपी बाण चढ़े हों।[५]

भगवती का मुख— भगवती का दिव्यतम एवं मनोज्ञ मुख ऐसा रमणीय प्रतीत होता है, मानो कपोलों पर प्रतिबिम्बित कर्णफूलों से अलंकृत मुख, मुख न हो; अपितु चार पहियों वाला कामदेव का रथ हो, जिस पर आरूढ़ होकर महावीर कामदेव सूर्य एवं चन्द्रमारूपी दो पहियों वाले पृथ्वीरूपी रथ पर युद्धार्थ सुसज्जित शंकर के विरुद्ध खड़े हों।[६]

भगवती के कानों के कर्णपुष्प— भगवती के कानों के कर्णफूल अपने निनाद से ऐसी प्रतीति कराते हैं, मानो वे ॐ ॐ का उच्चारण कर रहे हों।[७]

भगवती की नासिका— जिस प्रकार बाँस के भीतर मोती जन्म लेते हैं, उसी प्रकार भगवती के नासा-वंश से आने वाले नि:श्वासों से मुक्तामणियों की माला बाहर निकलती हुई दृष्टिगत होती है।[८]

---

१. सौन्दर्यलहरी (४९)
२. शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम्। (सौन्दर्यलहरी-९८)
३. सौन्दर्यलहरी (५२)
४. सौन्दर्यलहरी (५६)
५. सौन्दर्यलहरी (५८)
६. सौन्दर्यलहरी (५९)
७. सौन्दर्यलहरी (६०)
८. सौन्दर्यलहरा (६१)

भगवती के ओष्ठ— भगवती के लाल ओष्ठ ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो मूँगे की लता में फल लग गये हों।

भगवती का गला— भगवती के गले में पड़ी रेखायें ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो वे राग की गति, गमक एवं गीत हों।

भगवती की नाभि— भगवती की नाभि के ऊपर उठने वाली रोमावली ऐसी प्रतीत होती है, मानो शिव के तृतीय नेत्र से जलते हुये कामदेव ने भगवती के नाभिरूपी सरोवर में गोता लगाया हो; जिसके कारण लतासदृश धुआँ निकल रहा हो।[१] भगवती की कटि पर दृष्टिगत एवं यमुना की चञ्चल तरंग के समान प्रतीयमान रोमावली ऐसी प्रतीत होती है, मानो भगवती के कुचकलशों से पिसकर आकाश में भगवती की नाभिरूपी बिल में सर्पिणी की भाँति प्रवेश कर रहा हो।[२] भगवती की नाभि ऐसी लगती है, मानो वह गंगा की स्थिर भँवर हो, रोमावलीरूपी लताओं का गमला हो, कामदेव के अग्नि का धारक हवनकुण्ड हो, रति की क्रीड़ास्थली हो या शिव को पाने हेतु तप करने की कोई गुफा हो।[३]

१३. भगवती का करुणात्मक स्वरूप

भगवती करुणावरुणालय है। वे दरिद्रों एवं अकिञ्चनों के लिये चिन्तामणियों की माला है—

दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ।[४]

भगवती की करुणा ही उनकी अमृतवर्षा का कारण है। वे अपने दोनों चरणों के मध्य से अमृत की वर्षा करती हैं और उसके द्वारा समस्त विश्व, षडाम्नाय एवं षट्चक्रों को अमृत से परिप्लावित करती हैं।[५] भगवती ब्रह्मस्वरूप में सृष्टिकर्त्री भी हैं और सदाशिवरूप में कृपा (अनुग्रहरूपा) भी हैं—

सृष्टिकर्त्री ब्रह्मरूपा सदाशिवानुग्रहदा (६४)।

वे कल्याणी एवं करुणारससागरा (७३), भक्तिमत् कल्पलतिका पशुपाशविमोचिनी (७८), तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्द्रिका (७९), निर्वाणसुखदायिनी (८५), महनीया दयामूर्ति (११७), कैवल्यपददायिनी (१२५), मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी (१४२), प्राणदा प्राणरूपिणी (१४९), प्राणदात्री (१५६), संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डिता (१५६), कैवल्यपददायिनी (१७१), मङ्गलाकृतिः (१७२), वाञ्छितार्थप्रदायिनी (१८०), अव्याजकरुणामूर्ति (१८१) हैं।[६]

आचार्य शंकर कहते हैं कि हे भवानि ! तू मुझ दास पर भी अपनी करुणामयी दृष्टि

---

१. सौन्दर्यलहरी (७६)
२. सौन्दर्यलहरी (७७)
३. सौन्दर्यलहरी (७८)
४. सौन्दर्यलहरी (३)
५. सौन्दर्यलहरी (१०)
६. ललितासहस्रनाम

डाल। इतना कहते ही भगवती उसे 'सायुज्य मुक्ति' प्रदान कर देती हैं—

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीम्।

जिस समय 'संवर्तागिन' बड़ी क्रोधभरी दृष्टि से निःशेष जगत् को भस्मीभूत करने लगती है, उस समय समया देवी की दयार्द्र दृष्टि अपनी कृपा से (करुणाभाव के कारण) उसकी रक्षा करती है—

दयार्द्राभिर्दृग्भिः शिशिरमुपचारं रचयति।[१]

▼

१. सौन्दर्यलहरी (३९)

नवम अध्याय

बह्वृचोपनिषत् में महात्रिपुरसुन्दरी चिच्छक्ति का स्वरूप

यह इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्।
कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।।

१. भगवती का सर्वसृजनात्मक पक्ष

क. सैव जगदण्डमसृजत।।१।।

ख. तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्, विष्णुरजीजनत्, रुद्रोऽजीजनत्, सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्, गन्धर्वाप्सरस: किन्नरा वादित्रवादिन: समन्तादजीजनत्, भोग्यजीजनत्, सर्वमजीजनत्, सर्वं शाक्तमजीजनत्, अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत् प्राणि स्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत्।।२।।

२. भगवती का परस्वरूप एवं विद्यास्वरूप

बह्वृचोपनिषद् में ही भगवती के परस्वरूप, विद्यास्वरूप, पुरत्रयात्मक स्वरूप एवं प्रत्यक् चितिस्वरूप का भी वर्णन किया गया है, जो कि निम्नवत् है—

क. सैषा परा शक्ति:, सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।।३।।

ख. सैषा पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गात् महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चिति।।४।।

३. भगवती का आत्मरूप, सच्चिदानन्दरूप, चिन्मात्रस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप तथा सोऽहं एवं महाविद्या आदि स्वरूप

क. सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽद्वितीया ब्रह्मसंवित्ति: सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत् प्रियमानन्दम्। तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत् सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताऽऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।।५।।

ख. योऽहमस्मीति वा सोऽहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाव्यते सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।।८।।

▼

दशम अध्याय

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप

मन्त्र त्राण करता है; अत: भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप मूलत: त्राणात्मक स्वरूप है। यह किससे किसकी रक्षा करता है? यह जापक के संसरणरूप भय का क्षय (विनाश) करके संसार से उसकी रक्षा करता है—

संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।

यह भगवती का सूक्ष्मस्वरूप है।

ललितासहस्रनाम के अनुसार भगवती के तीन रूप हैं 'त्रिमुर्तिस्त्रिदशेश्वरी'— स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म स्वरूप एवं पर स्वरूप।

भगवती का त्राणात्मक स्वरूप = मन्त्रात्मक स्वरूप ललितासहस्रनाम में भगवती को १. मूलमन्त्रात्मिका, २. मूलकूटत्रयकलेवरा, ३. श्रीमद् वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा। कण्ठाध: कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी। शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी। ४. सर्वमन्त्र-स्वरूपिणी, ५. महामन्त्रा, ६. मनुविद्या चन्द्रविद्या, ७. विद्यास्वरूपिणी, ८. विद्या, ९. महा-विद्या श्रीविद्या, १०. श्रीषोडशाक्षरी विद्या, ११. त्रिकूटा, १२. क्लींकारी, १३. त्र्यक्षरी, १४. मन्त्रसारा आदि कहा गया है।

भगवती का यह मन्त्रात्मक स्वरूप ही उनका सूक्ष्म स्वरूप है। उनका यह स्वरूप मूलत: त्राणात्मक स्वरूप है। 'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा' (ललितासहस्रनाम-८७) कहकर भगवती के इसी स्वरूप को संकेतित किया गया है।

भास्करराय ने सौभाग्यभास्कर में कहा है कि 'कूटत्रयमेव कलेवरं सूक्ष्मं रूपा यस्या इति वा।'

भगवती मन्त्र हैं— 'मूलमन्त्रात्मिका' में प्रयुक्त 'मूल' शब्द 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' को ही संकेतित करता है— मूलं पञ्चदशाक्षरी। यह पञ्चदशाक्षरी विद्या यहाँ 'मन्त्र' शब्द के साथ प्रयुक्त हुई है; क्योंकि उसकी मान्त्री शक्ति को भी संकेतित कर सके। भगवती 'मन्त्र' हैं।

मन्त्र का स्वरूप ही देवी का स्वरूप है। मन्त्र का स्वरूप क्या है? मन्त्र के मूलत: दो अर्थ हैं— मनन और त्राण। मन्त्र वह है, जो मनन किये जाने पर त्राण कर सके अर्थात् भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप उनका रक्षात्मक स्वरूप है:— 'मननात्त्रायत इति मन्त्र:' (सौभाग्यभास्कर)। भगवती मन्त्रात्मिका हैं अर्थात् मनन करने से साधक की रक्षा (त्राण) करना ही उनकी आत्मा (स्वरूप) है। फलितार्थ यह है कि वे मनन-त्राणस्वरूपा हैं:— 'मननात्त्रायत इति मन्त्र: आत्मास्वरूपं यस्या सा मूलमन्त्रात्मिका' (सौभाग्यभास्कर)। इस 'त्राण' का स्वरूप क्या है? इसका स्वरूप इस प्रकार है—

पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मतः।
संसारक्षयकृत्त्राणः धर्मतो मन्त्र उच्यते।।

जो 'पूर्णाहन्ता' के साथ सतत् जप किये जाने पर (मनन किये जाने पर) साधक के संसार का विनाश करके उसका त्राण करता हो, वही 'मन्त्र' है। आचार्य भास्कर राय के मत से यहाँ 'मूल' शब्द 'कामकला' के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'कूटत्रय' का तात्पर्य है— 'कामकला' के तीन भाग। कामकला का प्रथम भाग है— 'ऊर्ध्व बिन्दु।' उसका द्वितीय भाग है— नीचे का 'तिर्यक् बिन्दु' और उसका तृतीय भाग है— 'हार्दकला।'

सौभाग्यभास्कर (श्लोक-८७) के अनुसार ये ही तीन भाग पञ्चदशी के कूटत्रय हैं और ये ही भगवती के स्थूल शरीर के मुख, कटि एवं कटि के नीचे के भाग का निर्माण करते हैं—

१. विद्या कूटतया स्थूलरूपमुखाद्यवयवात्मना च परिणता इति सूक्ष्मतरम्।

२. कुण्डलिन्याख्यं सूक्ष्मतमं वररूपमपरम्।

भगवती का सूक्ष्मतम स्वरूप : कुण्डलिनी स्वरूप— भगवती के ब्रह्माण्डगत स्वरूप का वर्णन करके उनके सूक्ष्मतम स्वरूप 'कुण्डलिनी स्वरूप' का वर्णन किया गया है, जो कि पिण्डान्तर्गत है। इस प्रकार भगवती के अन्य स्वरूप इस प्रकार होंगे—

भगवती का स्वरूप

(समष्टिगत रूप) — ब्रह्माण्डगत स्वरूप

(व्यष्टिगत रूप) — पिण्डगत स्वरूप (कुण्डलिनी) सूक्ष्मतम स्वरूप

भगवती का यह कुण्डलिनी स्वरूप मूलाधार चक्र में सार्धत्रिवलयाकारित होकर एवं सुषुप्त यह 'कुलकुण्डलिनी' योनि से समुत्थित होकर छः चक्रों एवं 'ग्रन्थित्रय' का भेदन करके एवं सहस्रार में पहुँचकर 'चन्द्रमण्डल' से अमृत-स्राव कराती है। कुण्डलिनी ही भगवती का सूक्ष्मतम स्वरूप है— 'कुण्डलिन्याख्यं सूक्ष्मतमं वररूपमपरम्।

भास्कर राय स्वयं निर्णय नहीं कर सके हैं कि कूटत्रय भगवती का स्थूल रूप है या सूक्ष्म रूप— 'मूलस्य कूटत्रयमेवोक्तरीत्या कलेवरं स्थूलरूपं यस्याः, कूटत्रयमेव कलेवरं सूक्ष्मं रूपं यस्या इति वा।'

इसी कुण्डलिनी शक्ति को ललितासहस्रनाम (२.४०) में भगवती का स्वरूप बताया गया है— 'महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।' इसका पूर्ण स्वरूप इस प्रकार है—

तडिल्लतासमरुचिः षट्चक्रोपरि संस्थिता।
महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।।

यह विद्युत् के समान दीप्ति या प्रकाश वाली है। यह छः चक्रों के ऊपर अव-स्थित

है। यह महाशक्ति है और मृणलदण्ड के सूक्ष्म तन्तुओं की भाँति अतिसूक्ष्म है। इसके अनेक रूप हैं।

भगवती कुलकुण्डलिनी के विविध रूप

मूलाधार में स्थित– 'अग्निकुण्डलिनी' 'सूर्यकुण्डलिनी'	अनाहत चक्र (हृदय) में स्थित–	भ्रूमध्य में स्थित– 'सोमकुण्डलिनी'	मूलाधार के अधोगत वाग्भवाकार त्रिकोण में स्थित– 'समष्टि कुण्डलिनी'[1]

शक्तिं कुण्डलिनीं चतुर्विधतनुं यस्तत्त्वविन्मन्यते।[2]

कुमारी कुण्डलिनी तरुणी कुण्डलिनी पतिव्रता कुण्डलिनी

श्रुतियों में भी कुण्डलिनी के विविध रूपों का उल्लेख किया गया है—

यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति।।

इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य लक्ष्मीधर इस प्रकार कहते हैं—

१. कुण्डलिनी शक्तेरवस्थात्रयं विद्यते।

२. यस्मिन् चक्रे कुमारी— कौमारावस्थापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति कुण्डलिन्याः सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोथाने मन्द्रस्वरं करोति, तद्वदित्यर्थः।

३. यद्योषित्— यस्मिन् चक्रे कुलयोषित् विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा रातीति शेषः।

कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा राति विष्णोः प्रभेदने।

४. यत् यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धं सहस्रदलकमले विहरमाणा।

पञ्चदशी विद्या के 'ह्रीं' में स्थित उन्मना नाद ही कुण्डलिनी है। अमृतानन्द दीपिका में कहते हैं कि छत्तीस तत्वों के अवयवों के समान पचास अक्षरों से युक्त वैखर्यात्मिका शक्ति ही कुण्डलिनी है— 'षट्त्रिंशत्तत्त्वावयववत्पञ्चाशदक्षरमयवैखर्यात्मिका कुण्डलिनीरूपा।' श्रीविद्या भी कुण्डलिनीरूपा ही है—

कुण्डलिनीरूपा तदभिन्ना विद्या श्रीविद्यैव।

कुण्डलिनी एवं श्रीविद्या का रहस्यार्थ— श्रीविद्या का रहस्यार्थ भी कुण्डलिनीपरक है[3]—

मूलाधारे तडिद्रूपे वाग्भवाकारतां गते।।
अष्टात्रिंशत्कलायुक्तपञ्चाशद्वर्णविग्रहा ।
विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।।

---

१. त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र पर नित्यानन्द की व्याख्या।

२. दुर्वासा : त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र।

३. योगिनीहृदयम्।

तडित्कोटिनिभप्रख्या बिसतन्तुनिभाकृतिः।
व्योमेन्दुमण्डलासक्ता सुधास्रोतःस्वरूपिणी।।
सदा व्याप्तजगत्कृत्स्ना सदानन्दस्वरूपिणी।
एषा स्वात्मेति बुद्धिस्तु रहस्यार्थो महेश्वरि!।।

शक्तिं कुण्डलिनी चतुर्विधतनुं यस्तत्त्वविन्मन्यते।

भास्करराय वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं कि सूर्य की तापिनी आदि बारह, चन्द्रमा की अमृत आदि सोलह एवं अग्नि की धूम्रार्चिरादि दश कलाओं से युक्त पचास वर्णों से अभिन्न देह वाली, मृणालतन्तु के समान क्षीणकलेवरा, विद्युत् के समान भासमाना कुलीना कुण्डलिनी मूलाधार की कर्णिका में विद्यमान त्रिकोण के ऊपर से मूलाधार चक्र, अनाहत चक्र एवं आज्ञा चक्रों में वर्तमान अग्नि, सूर्य एवं सोम मण्डलों का भेदन करती है।

श्रीविद्या का रहस्यार्थ— उपर्युक्त आकाशगत चन्द्रमण्डल के केन्द्र में 'अकुल कुण्डलिनी' से मिलती हुई एवं अमृतपूर का स्रवण करती हुई स्वयं सुखपूर्वक शयन करती है। यह कुण्डलिनी साक्षात् विद्या एवं माता से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का 'रहस्यार्थ' है।

द्वादशषोडशदशभिस्तपनशशिदहनकलाभिराकीर्णैः।
पञ्चाशद्भिर्वर्णैरभिन्नदेहा कुलीनकुण्डलिनी।।१०३।।

बिसतन्वीतडिदाभा मूलाधारस्थपद्मशृङ्गारात्।
भित्वा मूलहृदाज्ञागतवह्निरवीन्दुमण्डलत्रितयम्।।१०४।।

व्योमनि चिच्छशिमण्डलमध्ये त्वकुलेन सङ्गम्य।
उभयाङ्गसङ्गजन्यं प्रवाहयन्ती सुधापूरम्।।१०५।।

स्वयमपि तत्पानवशान्मत्ता भूत्वा पुनश्च तेनैव।
मार्गेण परावृत्य स्वस्मिन् स्थाने सुखं स्वपिति।।१०६।।

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।।१०७।।

प्रकाश में भी यही कहा गया है— 'ईदृश्याः कुण्डलिन्या मातुर्विद्यायाः स्वस्य चाभेद इति रहस्यरूपोऽप्रकाश्योऽर्थ इत्यर्थः।'

कुण्डलिनी ही भगवती त्रिपुरा है— चतुःशती शास्त्र में कुण्डलिनी का स्वरूप-विवेचन करते हुये कुण्डलिनी को त्रिपुरा से अभिन्न प्रतिपादित किया गया है—

यदोल्लसति शृङ्गारपीठे कुण्डलरूपिणी।
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्।।
तदद्भुतमृतस्यन्द परमानन्दनन्दिता।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं पुरुषमेति सा।।

निर्लक्षणं निर्गुणञ्च कुलरूपविवर्जितम्।
ततः स्वच्छन्दरूपा तु तद्विभ्राम्य जगत्प्रभुम्।।
तेन मार्गेण सन्तुष्टा पुनरेकाकिनी सती।
रमते सेयमव्यक्ता त्रिपुरा व्यक्तिमागता।।[१]

यही चिन्मयी कुण्डलिनी शक्ति स्वात्मा है। उसका आत्म स्वरूप में समावेश ही रहस्यार्थ है— 'एषा चिन्मयी कुण्डलिनी शक्तिः.................स्वात्मेति तदात्मतया समावेशो रहस्यार्थ इत्यर्थः।'[२]

▼

१. दीपिका— अमृतानन्द
२. स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।

एकादश अध्याय

संकेतपद्धति में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप[1]

१. भगवती का मुख— वाग्भवकूटात्मक पञ्चदशी मन्त्र के प्रारम्भिक पाँच वर्ण।

२. कामेश्वरी के आयुध— क. राग– पाश, ख. क्रोध– अंकुश, ग. मन– इक्षुधनुष, घ. पञ्चविषय– पाँच पुष्पबाण (भावनोपनिषद्)

क. पाश– इच्छाशक्ति, ख. अंकुश– ज्ञानशक्ति, ग. धनुष– क्रियाशक्ति– चतु:शती।

इच्छाशक्तिमयं पाशं अङ्कुशं ज्ञानरूपिणम्।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषीं दधदुज्ज्वलम्।। (चतु:शती)

३. भगवती का पर्यङ्क— पञ्चप्रेतासन। पर्यङ्क के पाये एवं आस्तरण : ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव।

४. भगवती का गृह एवं आसन— नव योन्यात्मक श्रीचक्र (शिवचक्र, शक्तिचक्र)।

त्रिपुरा— शक्तित्रयात्मक होने से ही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का नाम त्रिपुरा है।[2]

१. भगवती का मुख
वाग्भ्वकूटात्मक पंचदश मन्त्र के प्रारंभिक ५ वर्ण।

२. कामेश्वरी के आयुध
क. राग- 'पाश' ख. क्रोध- अंकुश ग. मन- इक्षु धनुष घ. पंचविषय- ५ पुष्प बाण (भावनोपनिषद)
क. पाश-इच्छाशक्ति ख. अंकुश- ज्ञान-शक्ति ग. धनुष- क्रियाशक्ति (चतु:शती)
इच्छा शक्ति मयं पाश अंकुशं ज्ञान-रूपिणम्। क्रियाशक्ति मये बाण धनुषी दधदुज्ज्वलम् (चतु:शती)

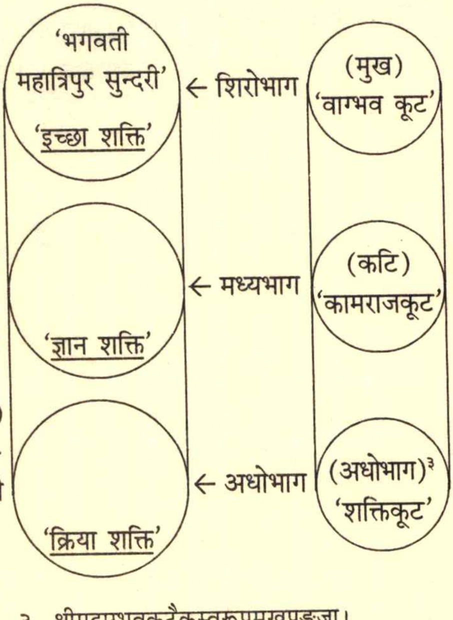

---

१. संकेतपद्धति, वामकेश्वर तन्त्र।
२. सं० प०, वाम० तन्त्र।
३. श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा।
कण्ठाध: कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी।। आदि (ललितासहस्रनाम)

३. भगवती का पर्यंक— (पञ्च प्रेतासन) पर्यक के पाये एवं आस्तरण-ब्रह्मा। विष्णु। रूद्र। ईश्वर। सदाशिव।।

४. भगवती का गृह एवं आसन— नव योनात्मक श्री चक्र (शिव चक्र, शक्तिचक्र)

श्रीविद्या के लीला-विग्रह

कुमारी | त्रिरूपा | गौरी | रमा | भारती | काली | चण्डिका | दुर्गा | ललिता[1]

आत्मशक्ति श्रीविद्या के विभिन्न रूप[2]

१. स्थूल रूप (करचरणदिक अवयवोपहित साकार मूर्तिमान रूप-उपासनायोग्य रूप-अधम रूप)

२. सूक्ष्म रूप (मन्त्रात्मक रूप। मन्त्रमयी देवता : मन्त्रावयवों में शरीरावयवों या मन्त्राक्षरों में शरीरांगों का कल्पनाप्रसूत आकार। समस्त मन्त्रों का मूलभूत मातृकासरस्वत्यात्मक रूप : मन्त्रात्मक रूप)। उपासनायोग्य रूप, मध्यम रूप।

३. पर रूप (वासनात्मक रूप। 'चैतन्यमात्मनो रूपम्' आत्मशक्ति त्रिपुरा का चैतन्य ही स्वस्वरूप है।) उपासनायोग्य रूप, उत्तम रूप।

४. तुरीय रूप (उपासनातीत रूप : इन्द्रियातीत। अखण्डाहंतात्मक स्वरूप। योगिगम्य रूप। मुक्तगम्य स्वरूप। मन-वाणी-इन्द्रिय से अतीत रूप)।

भगवती का शरीर

स्थूल शरीर (श्रीचक्र) | सूक्ष्म शरीर (श्रीविद्या)

---

१. त्रिपुरारहस्य— माहात्म्य खण्ड, ब्रह्माण्ड पुराण— उत्तर खण्ड।

२. उपासनासौकर्यार्थ भगवती के तीन रूप एवं तुरीय रूप।

द्वादश अध्याय

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप

भगवती त्रिपुरा १. भू, २. भुवः, ३. स्व; १. स्वर्ग, २. भू एवं ३. पातालरूप त्रिपुर एवं ह्रींकारत्रय रूप में व्याप्त हैं; इसीलिये वे त्रिपुरा कही जाती हैं। उनका स्वरूप निम्नवत् है—

अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान् प्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं रूपमाश्रित्य त्रिपुराऽभिधा भगवतीत्येवमादिशक्त्या भूर्भुवःस्वस्त्रीणि स्वर्गभूपातालानि त्रिपुराणि हरमायाऽऽत्मकेन ह्रींकारेण हृल्लेखाख्या भवती त्रिकूटावसाने निलये विलये धाम्नि महसा घोरेण व्याप्नोति। सैवेयं भगवती त्रिपुरेति व्यापठ्यते।

'त्रिपुरा' को 'शताक्षरी परमा विद्या त्रयीमयी साष्टार्णा त्रिपुरा परमेश्वरी' भी कहा गया है।

इन्हीं के विषय में पुनः कहा गया है कि ये आद्या शक्ति हैं। ये परमेश्वरी त्रिपुरा हैं, ये महाकुण्डलिनीरूपा भी हैं—

त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्।।

त्रयोदश अध्याय

त्रिपुरोपनिषद् में भगवती त्रिपुरा का स्वरूप

इसमें कहा गया है कि—

१. भगवती त्रिपुरा तीन पुरों वाली हैं।

२. वे त्रिपथा (मार्गत्रय वाली) हैं।

३. वे अकथा (सर्ववर्णरूपिणी) हैं।

४. वे ब्रह्मादिक का अधिष्ठान हैं।

५. वे अजरा एवं पुराणी हैं।

६. वे विश्वचर्षणी (समस्त प्राणियों की उत्पादिका) हैं।

७. वे शब्दसृष्टि के साथ-साथ अर्थसृष्टि की भी विधायिका हैं—

> तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा।
> अधिष्ठायैनामजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

▼

चतुर्दश अध्याय
बह्वृचोपनिषद् में वर्णित
भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

१. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के चिच्छक्ति का स्वरूप

सृष्टि के आदि में मात्र अकेली एक देवी ही थी। उसी ने स्वाभिन्न जगत् रूपी अण्ड का सृजन किया। वह आदि देवी 'कामकला' कही जाती है। उसी को 'शृंगारकला' भी कहा गया है।[१]

उसी आद्या शक्ति भगवती महात्रिपुरसुन्दरी देवी ने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, समस्त मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, वादित्रवादी (गन्धर्वादि) तथा समस्त भोग्य पदार्थों, समस्त वस्तुओं, समस्त शास्त्रों एवं अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज सत्ताओं तथा समस्त प्राणियों— स्थावर, जंगम आदि सभी को जन्म दिया।[२]

सारांश यह कि भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त समस्त जड़-चेतन पदार्थों एवं प्राणियों का आदिकारण हैं।

२. भगवती का शक्त्यात्मक एवं विद्यात्मक स्वरूप

भगवती शक्ति की दृष्टि से पराशक्ति है और विद्या की दृष्टि से शाम्भवी, कादि, हादि एवं सादि विद्या है[३]— 'सैषा परा शक्तिः। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।'

३. भगवती का प्रत्यक् चिति स्वरूप

भगवती त्रिपुरसुन्दरी पुरत्रय एवं शरीरत्रय— दोनों को व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही बाह्य जगत् एवं अन्तर्जगत् को अवभासित करती हैं।

सभी को अवभासित करने पर भी वे भगवती त्रिपुरसुन्दरी देश, काल एवं वस्त्वन्तर

---

१. ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।१। (बह्वृचोपनिषद्)

२. तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्। गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत् प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत्।।२।। (बह्वृचोपनिषद्)

३. कादि विद्या = क ए ई ल ह्रीं
हादिविद्या = ह स क ह ल ह्रीं
सादिविद्या = स क ल ह्रीं
— कूटत्रय विद्यात्रय

से असंग हैं (निर्लिप्त हैं)।[१]

सारांश यह कि भगवती 'कादि, हादि, सादि' आदि विद्यायें तो हैं ही; साथ ही वे पुरत्रय एवं शरीरत्रय को व्याप्त करके स्थित, बाह्याभ्यन्तर को अवभासित करने वाली एवं देश-कालादि से अतीत प्रत्यक् चैतन्य भी हैं।

'रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा' वाक्य का निष्कर्ष यह है कि—

क. भगवती रहस्य हैं, अनधिकारियों के लिए परम गोप्य निर्विशेष ब्रह्म हैं, अविज्ञेय हैं, रहस्यात्मक हैं।

ख. तुरीय ॐकाररूपिणी होकर समस्त वाणियों में अर्थ (ब्रह्मरूप अर्थ) के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

४. भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सर्वात्मक स्वरूप

भगवती समस्त प्राणियों की आत्मा हैं अर्थात् वे प्रत्येक प्राणी में आत्मा के रूप में स्थित हैं। उनके अतिरिक्त यदि किसी भी वस्त्वन्तर का अस्तित्व भासित होता है तो वह असत्, असत्य एवं अनात्मक है—

सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा।

५. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की ब्रह्मरूपता

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मसंवित्ति हैं। भावाभावकलाविनिर्मुक्ता, चिद्विद्या तथा अद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिस्वरूपा सच्चिदानन्दलहरी हैं— 'अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्या, अद्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदा-नन्दलहरी।'

६. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सच्चिदानन्दरूपता

केवल भगवती ही सच्चिदानन्द-रूपिणी नहीं हैं; प्रत्युत विश्व में जो भी सन्मय है, चिन्मय है एवं आनन्दरूप है, वह सब भगवती का ही अपना रूप है— 'यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दम्। तदेतत्।'

७. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की समस्त आकारों में विद्यमानता

भगवती त्रिपुरसुन्दरी जगत् के समस्त आकारों एवं सन्मय-चिन्मय तथा आनन्दमय सारे रूपों में विद्यमान हैं। सारे आकार एवं सारे रूप केवल महात्रिपुरसुन्दरी के ही आकार एवं रूप हैं—

१. सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।

२. यदस्ति सन्मात्रं यद्भाति चिन्मात्रं यत्प्रियमानन्दं तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।

सर्वं खल्विदं महात्रिपुरसुन्दरी— आत्मा, सत्, चित्, आनन्द, बाह्य, अन्तर,

---

१. सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरा-सङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः।।४।। (बह्वृचोपनिषद्)

सन्मात्र, चिन्मात्र, आनन्दमात्र, सर्वाकार ही नहीं; प्रत्युत 'तुम' 'मैं' समस्त विश्व, समस्त देवता अर्थात् सब कुछ एवं इसके अतिरिक्त भी यदि कुछ हो तो वह भी **अर्थात् निःशेष** अस्तित्व एवं सत्तायें भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के ही अपने विभिन्न रूप हैं; क्योंकि वही तो बाहर एवं भीतर सर्वत्र सर्व रूप में प्रतिष्ठित हैं—

१. बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। ३. त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता।
२. सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। ४. इतरत् सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी।

८. एकमात्र सत्य वस्तु तथा अद्वितीय, अखण्ड परब्रह्म के रूप में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी

संसार में अकेला एक ही सत्य है और वह है— 'महात्रिपुरसुन्दरी।' इस विश्व में सद्वस्तु, अद्वितीय एवं अखण्ड ब्रह्म के रूप में केवल एक ही सत्ता है और वह है— 'महात्रिपुरसुन्दरी' : 'सत्यमेकं ललिताऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।'

बह्वृचोपनिषद् में ही भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के साथ समस्त आत्माओं की एकरूपता का प्रतिपादन किया गया है और 'प्रत्यक् परचिदैक्यभावना' की पुष्टि की गई है।

९. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी : प्रत्येक जीव की ब्रह्मस्वरूप आत्मा के रूप में

बह्वृचोपनिषद् (७) में कहा गया है कि प्रत्येक साधक को चाहिये कि वह भगवती त्रिपुरा के साथ ऐकात्म्य स्थापित करके अपने को ब्रह्म, तत्त्त्व या आत्मा माने और इसके लिये वह भावना करे कि 'प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्माऽस्मीति वा भाष्यते। तत्त्व-मसीत्येव सम्भाष्यते। अयमात्मा ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्माऽस्मीति वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा।'

इसमें प्रत्यक्परचिदैक्य की पुष्टि करते हुये भगवती त्रिपुरा को ही एक ओर ब्रह्म एवं दूसरी ओर समस्त जीवों की आत्मा स्वीकार किया गया है।

१०. भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अनेक शक्तियों के रूप में अवस्थान

बह्वृचोपनिषद् (८) में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को आत्मा, चितिशक्ति, ब्रह्म, प्रत्यक् चैतन्य, विद्या, सर्वदेवता, परा शक्ति, कामकला, शृंगारकला आदि के अतिरिक्त षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातंगी, भुवनेश्वरी, कल्याणी, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, तिरस्करिणी, राजमातंगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढा, प्रत्यङ्गिरा, धूमावती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्मानन्दकला आदि भी कहा गया है—

'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति, वाराहीति, तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।'

पञ्चदश अध्याय

त्रिपुरसुन्दरी का वाक्चतुष्टयात्मक स्वरूप

श्रुतियों के अनुसार वाणी के चार रूप हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। श्रुति भी कहती है—

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणो यो मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति चतुर्थों वाचो मनुष्याः वदन्ति।।

ललितासहस्रनाम (१३२) में भगवती को परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीरूपा कहा गया है—

परा प्रत्यक्चितिरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।

१. परा वाक् का स्वरूप

भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि कारणबिन्द्वात्मक एवं अभिव्यक्त शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठित एवं निस्पन्द स्वरूप में 'परावाक्' कहलाता है— 'कारणबिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निस्पन्दं तदेव च परा वागित्युच्यते।'

योगिनीहृदय (१.३६) में कहा गया गया है कि जब वह 'परमा कला' (विमर्श शक्ति) अपने (परशिव के) स्फुरण (पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी पर्यन्त) का साक्षात्कार करती है तब अम्बिकारूप प्राप्त करने पर 'परा वाक्' कहलाती है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

सर्ववर्णांशभूत विमर्शरूपा कला (विमर्श शक्ति) जब अपना (परशिव का) स्फुरण (पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी क्रम से) देखने की इच्छा करती है तब वह परमा शान्तात्मिका होकर प्रकाशांश मात्रा वाली अम्बिका के साथ सामरस्य प्राप्त करके 'परा वाक्' कहलाती है। दीपिका में अमृतानन्द कहते भी हैं—

'कला विमर्शशक्तिः आत्मनः परशिवस्य स्फुरणं पश्यन्त्यादिक्रमेण वैखरीपर्यन्तं विमर्शनम्, पश्येद् द्रष्टुमिच्छेत्, तदा परमा शान्तात्मिका भूत्वा अम्बिकारूपमापन्ना प्रकाशांश-मात्राया अम्बिकायाः सामरस्यमापन्ना परा वाक् समुदीरिता परा मातृकोच्यते।'

परा वाक् शब्दब्रह्म है और शब्दब्रह्म देवी त्रिपुरसुन्दरी है—

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।

सुभगोदयवासना (ग्रन्थ)

परा (भू) पश्यन्ती (वल्लीगुच्छ) मध्यमा (सौरभ) वैखरी (अक्षमाला)

स्थूलमध्यमा
सूक्ष्ममध्यमा
परमध्यमा

ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी।।
केवलं बुद्ध्युपादानक्रमरूपानुपातिनी।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक्प्रवर्तते।।

पश्यन्ती वाक् = ईश्वरतत्त्व (कार्य-बिन्दु) या सदाशिवतत्त्व

पर पश्यन्ती
स्थूल पश्यन्ती
सूक्ष्म पश्यन्ती
अभिनवगुप्त
पश्यन्ती | परममहा पश्यन्ती
महापश्यन्ती

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मातृकात्मक (वाक्तत्त्वात्मक) स्वरूप— 'मध्यमा'

१. मध्यमा नादमयी है। —भास्कर राय।

२. मध्यमा बिन्दुमयी है। —पद्मपाद[1]

३. मध्यमा नाद-बिन्दुमयी है। — राघवभट्ट

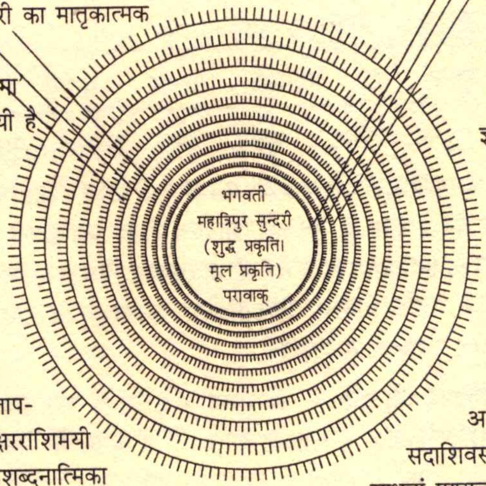

ईश्वराद्वयवाद में जो ज्ञानशक्ति का स्वरूप है (जो सदाशिव तत्त्व है) वही व्याकरणागम में पश्यन्ती है। यही है—पश्यन्तीसंज्ञक 'परावाक्'। —सोमानन्दपाद।

वैखरीनाम अभिलापरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकलौकिकशब्दनात्मिका शक्तिरित्युच्यते।। (का. क. वि. टीका)

अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवस्वरूपता। वैयाकरण-साधूनां पश्यन्ती सा परा स्थितिः।। (शिवदृष्टि : सोमानन्द)

मध्यमा वाक्— अन्तःकरणं मनोबुद्ध्यहङ्कारलक्षणं मध्यभूमौ पुर्यष्टकात्मनि प्राणाधारे विश्रान्तं या विमर्शशक्तिं प्रेरयति सा मध्यमा वाक्। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

आचार्य अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि में 'परम महापश्यन्ती' ही 'परा वाक्' है। 'पश्यन्ती परा हि वाक्' कहकर सोमानन्द ने भी पश्यन्ती के पर रूप को परा वाक् माना है।

व्याकरणागम की दृष्टि— वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने वाणी के तीन ही भेद स्वीकार किये हैं— पश्यन्ती, मध्यमा, एवं वैखरी।

वेद वाणी के चार भेद स्वीकार करता है— 'चतुर्थं वाचं मनुष्याः वदन्ति।' वाक्यपदीय में वाणी का पर रूप 'पश्यन्ती' माना गया है।

१. पद्मपादाचार्य ने प्रपञ्चसारतन्त्र की टीका में परा वाक् से भी सूक्ष्मतर वाणी का एक स्तर बताया है और वह है— सूक्ष्मा; 'सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी पञ्चपदी वाचम्।' उन्होंने वाणी को सप्तपदी भी कहा है, जिसके सात पद निम्नांकित हैं— शून्य, संवित्, सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। (३)

वाणी के भेद

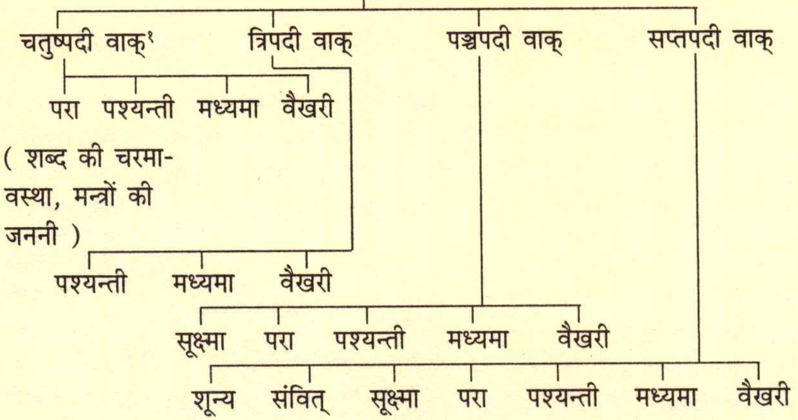

पश्यन्ती— कारणबिन्दुरूप 'शब्दब्रह्म' जब वायु से प्रेरित होकर नाभिदेश में जाकर विमर्शात्मक मन से संयुक्त होता है, तब उसे 'सामान्य स्पन्द' प्रकाशरूप कार्यबिन्दुस्वरूपा 'पश्यन्ती वाक्' की आख्या प्राप्त होती है। सौभाग्यभस्कर में कहा भी गया है— 'नाभि-पर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्दप्रकाश-रूपकार्यबिन्दुमयं सत् पश्यन्ती वागुच्यते।'

परात्रिंशिकाविवृत्ति की दृष्टि— 'औन्मुख्य' में इच्छा ही 'परा वाक्' है। ज्ञान शक्ति के औन्मुख्य में 'पश्यन्ती वाक्' है। क्रिया शक्ति के औन्मुख्य में 'मध्यमा' एवं उसके स्थितिलाभ में 'वैखरी वाक्' अस्तित्व में आती है। परा वाक् शिव से अभिन्न है—

परा भगवती संवित्प्रसरन्ती स्वरूपतः।
परेच्छा शक्तिरित्युक्ता भैरवस्याविभेदिनी।।

भगवती परा वाक् की भूमि हैं— 'भगवती परा वाग्भूमिः।' समस्त 'अर्थसृष्टि' शब्दसृष्टि पर ही आधृत है; यथा—

१. अकारादि-विसर्गान्तं शिवतत्त्वम्।
२. कादि-ङान्तं धरादि नभोऽन्तं भूतपञ्चकम्।
३. चादि-ञान्तं गन्धादिशब्दान्तं तन्मात्रपञ्चकम्।
४. टादि-णान्तं पादादिवागन्तं कर्माक्षपञ्चकम्।
५. तादि-नान्तं घ्राणादिश्रोत्रान्तं बुद्धिकरणपञ्चकम्।
६. पादि-मान्तं मनोऽहङ्कारबुद्धिप्रकृतिपुरुषाख्यं पञ्चकम्।
७. वाय्वादिशब्दवाच्या यादयो वकारान्ता राग-विद्या-कला-मायाख्यानि तत्त्वानि।[२]

---

१. परा भूर्जन्म पश्यन्ती वल्लीगुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।। (कामकलाविलास)

२. अभिनवगुप्त : परात्रिंशिकाविवृत्ति

सारांश— आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृत्तचिद्वपुः।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरविक्रियः शिवः।। (शिवदृष्टि)

समस्त तत्त्व (३६ तत्त्व) मात्र 'शाब्दी सृष्टि' के ही परिणमन हैं—

१. 'प-घ'— सादाख्ये नभः।
२. 'ख-ला-च-ङ' ईश्वरः।
३. इच्छैव शक्तिमयी शुद्धविद्या।
४. अनुत्तर एव स्वतन्त्रोऽहम्भावः 'अ' शिवाख्यो।
५. माया 'भ' शुद्धविद्या, रागः स्पर्शश्च 'यः' कालः पायुरहंकृच्च।
६. 'ड' नियतिः।
७. हस्तौ मनश्च ढकारः।
८. आनन्देन्द्रियं बुद्धिश्च 'ठः'।
९. पुमांश्च 'ञः'।
१०. धीरूपं नियतिश्च 'जः'।
११. अहंकृतं नियतिरूपं च 'रः'।
१२. मनः पादेन्द्रियं प्रकृतिश्च 'टः'।
१३. श्रोत्रं मनो हस्तश्च 'पः'।
१४. त्वग् रसः कालश्च 'ध-ल'।
१५. रसना आनन्दशक्तिः शैवी 'आ'।
१६. घ्राणं विद्या तेजश्च 'स'।
१७. वाग्विसर्गशक्तिश्च 'अः'।
१८. करौ ईशो जलं च 'ह'।
१९. पार्युर्माद्या वायुश्च 'ष'।
२०. आनन्देन्द्रियं सादाख्यं पृथिवी 'च, क्ष'।

इसी प्रकार— पादौ पुमान् शब्दश्च 'स' शब्दकलानभश्च 'श' स्पर्शः वैन्धवी शिवशक्तिः 'अं' रूपं नासिका त्वक् च 'त' रसः शिवशक्तिः 'सात्वी' ए 'गन्धः' सैव दीर्घः 'ऐ' नभः तथैव वायुतेजसी 'ओ' नेत्रे रसश्च 'औ' आपः अहंकृत पायुश्च 'द' पृथिवी 'फ'।[1]

परात्रिंशिका की दृष्टि— परात्रिंशिका में कहा गया है—

अथाद्यास्तिथयः सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगाः।
तदन्तः कालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ।।

पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु।
क्रमात्कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते।।

वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्।
तदूर्ध्वं शादिविख्यातं पुरस्ताद्ब्रह्मपञ्चकम्।।

---

१. परात्रिंशिकाविवृत्ति

अमूला तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता।
सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि।।

सोमानन्दपाद ने भी 'अकार' को 'शिव' एवं 'थकार' को 'शक्ति' कहा है—

अकार: शिव इत्युक्तस्थकार: शक्तिरुच्यते।

'पश्यन्ती' के ऊपर 'परा भूमि' है। 'परा वाक्' वह है जहाँ सब कुछ अभेदात्मक हो, अभेदात्मना विमर्शन भी है— 'पश्यन्त्युपरि परा भूमि: भगवती— यत्र सर्वमभेदेनैव भाति च विमृश्यते च।'

शंकराचार्य की दृष्टि— चिन्मात्र तत्त्व विचिकीर्षु होने के कारण घनीभूत होकर बिन्दु बन जाता है। वह बिन्दु काल के द्वारा भिद्यमान होने पर तीन भागों में विभाजित हो जाता है और 'बिन्दु', 'नाद' एवं 'बीज' कहलाता है। बिन्दु भिद्यमान होने पर अव्यक्तात्मक 'रव' बन जाता है और यह 'रव' शब्दब्रह्म कहलाता है। यही 'शब्दब्रह्म' 'परा वाक्' भी कहा जाता है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।।

स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते।।

बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्।
स रव: श्रुतिसम्पन्नै: शब्दब्रह्मेति कथ्यते।। (प्र० तं०)

बिन्दु (शिव)

इच्छाशक्ति	ज्ञानशक्ति	क्रियाशक्ति
सदाशिव	ईश्वर	शुद्ध विद्या

परा वाक् का स्वरूप—

आत्मन: स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।। (योगिनीहृदय)

जब सर्ववर्णांशभूत विमर्शरूपा 'विमर्शशक्ति' या 'परमा कला' परशिव के स्फुरण (पश्यन्ती आदि क्रम से वैखरीपर्यन्त विमर्शन) को देखने की इच्छा करती है तब परमा शान्तात्मिका होकर अम्बिकारूपापन्ना (प्रकाशांश मात्रा वाली अम्बिका का सामरस्यापन्ना) 'परा वाक्' कहलाती है।

पश्यन्ती—

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताश्चैताश्चोत्तरावयवा: ।
व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयमिदमेकादशात्मं पश्यन्ती।। (कामकलाविलास)

वाक्चतुष्टय—

परा भूजन्म पश्यन्ती वल्लीगुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।।

'वैखरी वाक्' क्या है? इस विषय में चिद्वल्ली में नटनानन्द कहते हैं— 'सैव वैखरी-नाम अभिलपनरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकतान्त्रिकशब्दजालात्मिका शक्तिरुच्यते।।'

'इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयस्तु पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूपा इति प्रपञ्चिता।'

'इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता।[१]'

मध्यमा के दो रूप हैं; जैसा कि कामकलाविलास में कहा भी गया है—

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्याख्या।।

वाक् तत्त्व— अनन्त शक्तिपाद के 'वातूलनाथसूत्र' के अनुसार—

१. समस्त वाक्प्रवाह में शुद्ध स्वरों का प्रवाह स्थित है : 'सर्ववाक्प्रथासु निरावरणासु स्वरभूतिविजृम्भैव प्रथते सदैव इति निरूपयन्ति।'

२. निरवकाश संवित् तत्त्व से अनवरुद्ध, अविरत चार रूपों में वाणी का प्रवाह होता है।

३. उपर्युक्त स्वभाव से युक्त वाक्चतुष्टय के सृष्टि एवं संहारात्मक परम्परा के व्यक्ताव्यक्त स्फुरण में स्वर (उल्लासरूप विकासशील अनाहतहतोत्तीर्ण महानाद) ही प्रवाहित होता है। सविकल्प-निर्विकल्प संवित् से परे परमाकाश किसी साधन के आश्रय के विना स्वाभाविक रूप में प्रकाशित होता है और इस प्रकार वाक्चतुष्टयक्रम में गुरुमुख से नाना रूपों में प्रकटित वर्णसमूह के मध्य प्रत्येक वर्ण के अन्तर में अखण्डित वृत्ति से मूल स्वर का ही प्रवाह होता है। शक्तिपाद कहते हैं कि 'इति वाक्चतुष्टयोदयक्रमेण निरावरणस्वरोदयः सर्वत्र सर्वकालं स्फुरति।[२]'

वातूलनाथ सूत्रक्रमाङ्क सप्तम में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है—

वाक्चतुष्टयोदयविरामप्रथासु स्वरः प्रथते।।

वाक्चतुष्टय— वाक्चतुष्टय के उदय एवं विराम की परम्परा या विस्तार में स्वर ही प्रवाहित होता है। वाणियाँ (वाक्चतुष्टय) चार हैं— परा वाक्, पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक् और वैखरी वाक्।

परा वाक्— अनन्तशक्तिपाद वातूलनाथ सूत्रवृत्ति में कहते हैं कि आवरण, अवकाश एवं तरंगों से रहित परम शून्य आकाश में उच्छलनात्मक किञ्चित् सञ्चालन से प्रथम स्पन्द का आविर्भाव होता है, जो कि 'परा वाक्' के नाम से सम्बोधित है जिस प्रकार

१. चिद्वल्ली
२. वो० ना० (अष्टम सूत्र)

अण्डे के श्वेत एवं पीले रस में मयूर का वर्णवैचित्र्य अन्तर्निहित रहता है; उसी प्रकार वर्णों के रूपों का 'परा वाक्' के अन्त में सामरस्यात्मक एवं अभिन्नात्मक समावेश रहता है— 'निरावरणनिरवकाशोदयनिरुत्तरनिस्तरङ्गपरमनभसि उच्छलत्किञ्चिच्चलनात्मकप्रथमस्पन्द-विकासस्वभावा वर्णरचना मयूराण्डरसन्यायेन अद्वयमहासामरस्यतया अन्तर्धारयन्ती परेति प्रथिता।'

अर्थात् परा वाक्[१]— १. आवरणशून्य, २. अवकाशशून्य, ३. उदयशील, ४. निरुत्तर, ५. निस्तरंग— परम व्योम में १. उच्छलनात्मक, २. किञ्चित् चलनात्मक, ३. प्रथम-स्पन्द-स्वभाव, ४. वर्णरचना को मयूराण्डरसन्याय से स्वसंस्थित रखने वाला और इस प्रकार ५.अद्वयात्मक एवं महासामरस्यात्मक विधि से अपने अन्तर में वर्णों को निगूढ़तः रखने वाला प्रथम रहस्यात्मक तत्त्व 'वाक् तत्त्व' है।

जिस समय 'परा शक्ति' अपने स्फुरण को देखती है, उस समय वह अम्बिकारूप प्राप्त करके 'परा वाक्' कहलाती है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार प्रकाश एव विमर्श के चार-चार अंश हैं—

प्रकाशांश—	१. अम्बिका	२. वामा	३. ज्येष्ठा	४. रौद्री।
विमर्शांश—	१. शान्ता	२. इच्छा	३. ज्ञान	४. क्रिया।

'अम्बिका' एवं 'शान्ता' की सामरस्यावस्था शान्ताभावापन्ना परा शक्ति 'परा वाक्' कहलाती है। यही आत्मस्फुरण की अवस्था है। आत्मस्फुरणावस्था में समग्र विश्व बीज-रूप में (अस्फुट रूप में) आत्मसत्ता में वर्तमान रहता है। फिर शान्ता से इच्छा का उदय होने पर वह अव्यक्त विश्वशक्ति के गर्भ से बाहर निकलता है। उस काल में इच्छा शक्ति वामा शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्त करती है और 'पश्यन्ती वाक्' कही जाती है। इसके उपरान्त ज्ञान शक्ति का आविर्भाव होता है। ज्ञान शक्ति ज्येष्ठा के साथ अभिन्नता प्राप्त करके 'मध्यमा वाक्' कहलाती है। ज्ञानोपरान्त क्रिया शक्ति रौद्री के साथ एकीकृत होकर 'वैखरी वाक्' कहलाने लगती है। निम्न चक्र से इसे स्पष्टतया समझा जा सकता है—

शिवांश	शक्त्यंश	सामरस्य	पराशक्ति का नाम
१. अम्बिका	+ शान्ता	सामरस्य →	परा वाक् (आत्मस्फुरण की अवस्था)
२. वामा (शान्ता से इच्छा शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।)	+ इच्छा शक्ति	सामरस्य →	पश्यन्ती वाक्
३. ज्येष्ठा	+ ज्ञान शक्ति	सामरस्य →	मध्यमा वाक्
४. रौद्री	+ क्रिया शक्ति	सामरस्य →	वैखरी वाक्।

१. वा० ना०– अनन्तशक्तिपाद

यह वाक्चतुष्टय सम्मिलित होकर 'महायोनि' या △'मूलत्रिकोण' के रूप में परिणत होते हैं।

शान्ता (शक्त्यंश) एवं अम्बिका का सामरस्य (परा वाक्) इस मूल त्रिकोण का केन्द्रविन्दु है। यह नित्य स्पन्दमय है।

पश्यन्ती इस मूल त्रिकोण की वाम रेखा, वैखरी दक्षिण रेखा और मध्यमा इसकी आधार रेखा (Base line) है। मूल त्रिकोण के मध्य जो महाबिन्दु समासीन है, वही अभिन्नस्वरूप शिव-शक्ति का आसन है। इस त्रिकोण की उज्ज्वलता का कारण चित् कला का प्रभाव है। इसके बाहर क्रमविन्यास से १. शान्त्यतीत, २. शान्ति, ३. विद्या, ४. प्रतिष्ठा एवं ५. निवृत्ति का अवस्थान है। इनकी समष्टि ही जगत् है। भूपुर से महाविन्दुपर्यन्त समस्त विश्व-प्रसार महाशक्ति का ही विकास है।

मध्य त्रिकोण विन्दु-विसर्ग से युक्त है। इसकी प्रत्येक रेखा पाँच स्वरों से युक्त है। १५ स्वरों वाले इस त्रिकोण का विन्दुस्थान विसर्ग (अः) कलाओं से आक्रान्त है।

कामकलाविलास की दृष्टि— परा वाक् सान्तरोहरूपात्मक है। 'सान्तरोहरूपा' का अर्थ है— 'अन्तरे अन्तःकरणे ऊहेन तर्केण सहितं रूपं यस्याः सा सान्तरोहरूपा। परानाम सान्तरोहरूपा।' इसीलिये कामकलाविलास की लक्ष्मीधरा टीका में कहा गया है कि 'या सान्तरोहरूपा परा महेशी परा नाम। कामकलाविलास में कहा गया है—

या सान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा।
स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता।।

अर्थात् परा महेशी अवाङ्मनसगोचरा, सर्ववेदान्तैरपरिच्छेद्या, सर्वकारणभूता, शिवादिधरण्यन्ततत्त्वसङ्घाताविर्भावभूमिः महेश्वरी परा सर्वोत्कृष्टा है।[1]

यजुर्वेद में इसी का वर्णन इस प्रकार किया गया है— 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते।' इसी प्रकार इस परा शक्ति के विषय में श्रुति में पुनः कहा गया है कि 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्।'

आगम में भी कहा गया है—

स्वरूपज्योतिरेवान्त परा वागनपायिनी।
यस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तते।।

लघुभट्टारक में भी कहा गया है—

सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयते।

जो इस प्रकार के लक्षणों वाली है, वही है— 'पराशक्ति'।[2]

परा वाक् की भावना के प्रकारत्रय— परा वाक् की ही तीन प्रकार से भावना की जाती है, जो इस प्रकार है—

---

१. चिद्वल्ली २. चिद्वल्ली

१. पश्यन्ती, २. मध्यमा और ३. वैखरी।

परा महेशी त्रिभाविताकारा।
स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता।।

यदि चैतन्य एवं अवस्थाओं के धरातल पर विचार किया जाय तो चैतन्य एवं शब्द के धरातल या सोपान निम्न हैं—

अवस्थायें (चेतन तत्त्व के पाँच स्तर)

जाग्रत्   स्वप्न   सुषुप्ति   तुरीय   तुरीयातीत (अतितुर्य)

शब्दों के स्तर

जागर   स्वप्न   सुषुप्ति   तुरीय (शब्दब्रह्म = परा वाक्)

तुरीय शब्द = शब्दब्रह्म → अतितुर्य (परब्रह्म)। परा वाक् → परब्रह्म।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

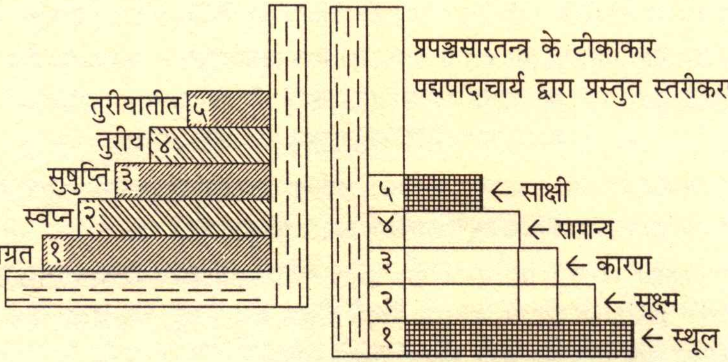

१. जागरावस्था — इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या जागरावस्था।
२. स्वप्नावस्था — अन्तःकरणचतुष्कव्यवहारः स्वाप्निकावस्था।
३. सुषुप्त्यवस्था — आन्तरवृत्तेर्लयतो लीनप्रायस्य जीवस्य वेदनमेव सुषुप्तिः।
४. तुरीयावस्था — तुर्यावस्था चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनम्।
५. तुर्यातीतावस्था— आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम्।
तुर्यातीतावस्था सा नादान्तादिपञ्चके भाव्या।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

महेश्वरानन्द की दृष्टि— गोरक्षनाथ (या महेश्वरानन्द) महार्थमञ्जरी (५०वीं गाथा) में कहते हैं—

१. क्रियामयी वाणी 'वैखरी' है।
२. ज्ञानमयी वाणी 'मध्यमा' है।
३. इच्छाशक्ति ही 'पश्यन्ती' है।
४. सर्वसमरस वृत्ति ही 'सूक्ष्मा' है।
→ वाक्चतुष्टय का स्वस्वरूप

वैखारिका नाम क्रिया ज्ञानमयी भवति मध्यमा वाक्।
इच्छा पुन: पश्यन्ती वाक् सूक्ष्मा सर्वासां समरसा वृत्ति:।।[1]

वाक् तत्त्व के चार भेद

१. सूक्ष्मा → २. पश्यन्ती → ३. मध्यमा → ४. वैखरी

वाक् तत्त्वं तावत् क्रमात् सूक्ष्मा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीति चतुर्धा भिद्यते।[2]

१. तालु आदि करणों के व्यापार में स्फुरित होने वाली वैखरी वाणी 'क्रिया शक्ति' कही जाती है (वैखरी वाक् एवं क्रिया शक्ति)।

२. बुद्धिवृत्ति द्वारा प्रवर्तित होने वाली वाणी ज्ञानमयी है और इसे 'मध्यमा' कहते हैं (मध्यमा वाक् एवं ज्ञान शक्ति)।

३. बाहर प्रसरित होने की इच्छा वाली होने के कारण इच्छामयी वाणी ही 'पश्यन्ती वाक्' है (पश्यन्ती वाक् एवं इच्छाशक्ति)।

४. परमेश्वरपरक एवं प्रत्यक् दृष्टि के स्वभाव वाली होने के कारण सर्वत्र एवं सबमें व्याप्त समरसवृत्ति ही 'सूक्ष्मा वाक्' या 'परा वाक्' कहलाती है।

परमेश्वर की उद्योगलक्षणा वृत्ति ही सूक्ष्म वृत्ति है। यह परमेश्वर के स्वरूप में अनुप्रविष्ट रहकर स्फुरित होती है। आत्मविमर्शरूप परा वाक् ही सर्वसमरस है। परा वाक्मयी स्वात्मस्फुरत्ता ही 'मन्त्र' है।

उपर्युक्त सभी का विवेचन परिमल में महेश्वरानन्द द्वारा इस प्रकार किया गया है—

क. वैखरी वाक्— तत्र वैखरीति प्रसिद्धा वाक् ताल्वादिकरणव्यापारोपारूढस्फुरणतया क्रियाशक्तिरित्यध्यवसीयते।

ख. मध्यमा वाक्— मध्यमा च बुद्धिवृत्तिमात्रप्रवर्त्यमानत्वात् ज्ञानशक्ति:।

ग. पश्यन्ती वाक्— पश्यन्ती पुनरिच्छा, बहि:प्रसरणाभ्युपगमरूपत्वात्, तस्या: यत: परा वाक् पश्यन्तीति पश्यन्त्या व्युत्पत्ति:।

घ. सूक्ष्मा वाक्— सूक्ष्मा तु शिखण्ड्यण्डरसन्यायादुक्तवाक्त्रयशबलीभावस्वभावा प्रत्यग्द्रष्टु: परमेश्वरस्योद्योगलक्षणावृत्तिरित्याख्यायते।

परा वाक्— परा वाक् पुनस्तस्यैव परमेश्वरस्य स्वरूपमनुप्रविशन्ती परिस्फुरन्ती।

---

१. महेश्वरानन्द : महार्थमञ्जरी २. महेश्वरानन्द : परिमल

ऋजुविमर्शिनी में कहा गया है कि मातृका पर वागात्मा, अनाहत भट्टारकस्वरूप, शिवस्वरूप, षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरण का कारण संवित् तत्त्व है— 'मातृकां परवागात्माऽनाहत-भट्टारकपरमशिवस्वरूपां षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरणहेतुभूतां संविदमित्यर्थ:।'

श्रीसंवित्स्तोत्र की दृष्टि— 'परा वाक्' वाक् तत्त्व का वह स्तर है जहाँ विश्व (कर्ता-कार्य, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय एवं द्रष्टा-दृश्य-दर्शन आदि) विभागों (विभाजनों) से मुक्त एवं मयूराण्डरसवत् एकात्मक एवं एकरस है। यहाँ परा शक्ति स्वप्रकाशनविमर्शात्मिकामात्र है—

त्वामुपासित गुरूत्तमा: परां वाचमाहुरविभक्तविश्वकम्।
स्वप्रकाशनविमर्शनात्मिकां वक्ति वागिति निरुक्तिमास्थिता।।

आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि— इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति— इस शक्तित्रितय का विस्तार ही समस्त वाग्विलास है— 'तस्मादिच्छादिशक्तित्रितयविस्तारात्मा सर्वोऽपि वाग्विलास इत्युक्तं भवति।'[१]

योगिनीहृदय की दृष्टि— इसमें कहा गया है कि—

१. इच्छाशक्ति ही पश्यन्ती का शरीर धारण करके स्थित है।

२. ज्ञानशक्ति ही (अपने तीनों रूपों में) 'मध्यमा वाक्' कही जाती है।

३. क्रिया शक्ति ही रौद्री रूपात्मिका शक्ति है। विश्व ही उसका शरीर है और यही वाक् तत्त्व के रूप में 'वैखरी' कही जाती है—

क. इच्छाशक्तिस्तथा सेयं पश्यन्तीवपुषा स्थिता।

ख. ज्ञानशक्तिस्त्रिधा प्रोक्ता मध्यमा वागुदीरिता।

ग. क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्तपाद तन्त्रालोक में कहते हैं—

प्राक्पश्यन्त्यथ मध्यान्या वैखरी चेति ता इमा:।
पराऽपरा परा देवी चरमा त्वपरात्मिका।।

इच्छादिशक्तित्रयमिदमेव निगद्यते।
एतत्प्राणित एवायं व्यवहार: प्रतायते।।

क. स्वात्मस्फुरत्ता— यह इच्छा-ज्ञान-क्रिया से संयुक्त है— 'इच्छादिस्वभावैव च स्वात्मस्फुरत्ता' (गोरक्षनाथ)।

ख. मन्त्र— इच्छादिस्वभावा एवं स्वात्मस्फुरत्तात्मिका अनुभूति ही मन्त्र है— 'तन्मयी च काचिदनुभूतिर्मन्त्रशब्दार्थ इति सर्वं सङ्गच्छते।'

संसार में ऐसा कोई प्रत्यय ही नहीं है, जिसके मूल में शब्द की भूमिका न हो— 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य: शब्दानुगमादृते।' इच्छा शक्ति ही अपने विभिन्न रूपों एवं विभिन्न चरणों के द्वारा 'पश्यन्ती' आदि वाणी एवं 'अर्थमयी सृष्टि' बन जाती है।

प्रकाशरूपात्मक आत्मा का प्राण विमर्शशक्ति ही है— 'ततश्च प्रकाशरूपस्यात्मनो

विमर्शशक्तिरेवानुप्राणनम्।'[१] यही शक्ति मन्त्र, जप, पूजा आदि भी है— 'सा च मन्त्र-जपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति।'[२]

परिमल में महेश्वरानन्द कहते हैं कि 'प्रकाशरूपस्यात्मनो विमर्शशक्तिरेवानु-प्राणनम्। सा च मन्त्रजपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति। केवलं तत्तद्द्वारमात्रमेव भेद इति।'

साम्बपञ्चाशती की दृष्टि— साम्बपञ्चाशती में कहा गया है—

या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्तीं त्रिषष्टिं
वर्णानत्र प्रकटकरणैः प्राणसङ्घात् प्रसूते।
तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां
वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये।।

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनव गुप्त परात्रिंशिकाविवृत्ति में कहते हैं कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति तथा उनके परिणमन— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी नामक चतुर्धा विभक्त वाणियाँ परा शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं—

१. 'अहमेव सा परा वाग्देवीरूपैव सर्ववाच्यवाचका विभक्ततया एवमुवाच' इति तात्पर्यम्।

२. सा च शक्तिः लोकानुग्रहविमर्शमयी प्रथमतः परामर्शमय्या पश्यन्त्या आसूत्रयिष्य-माणानन्तशक्तिशताविभिन्ना, प्रथमतरपरमहामन्त्रमय्यामदेशकालकलितायां संविदि निरूढा, तावत् पश्यन्त्युद्भविष्यदुक्तिप्रत्युक्त्यविभागेनैव वर्तते।

३. सैव च सकलप्रमातृसंविदद्वयमती सततमेव वर्तमानरूपा, ततस्तु पश्यन्ती......... बोधसूत्रमात्रेण विमृशति।

४. प्रथम ज्ञानकाल में भेद-स्फुरण नहीं होता— 'नहि प्रथमज्ञानकाले भेदोऽत्र अस्फुरत्, यत्र वाच्यवाचकविशेषयोरभेदः।' (प्रथमावस्था : वाच्य-वाचक में अभेद)।

५. मध्यमा— मध्यमा वाक् में वाच्य-वाचक भेदामर्श है। मध्यमा सामानाधिकरण्य द्वारा विमर्शव्यापारा है— 'मध्यमा पुनः तयोरेव वाच्य-वाचकयोः भेदमादर्श्य सामानाधिकरण्येन विमर्शव्यापारा।'

६. वैखरी वाक्— यह भेदस्फुटात्मिका है— 'वैखरी तु तदुभयभेदस्फुटतामय्येव।'

७. परा वाक्— स्वसंवित्स्वरूपात्मिका यह शक्ति ही परा वाक् है— 'तावत् व्यवस्थायां स्वसंवित्सिद्धायां यैव परावाग्भूमिः।'

पश्यन्ती में भेदांश का आसूत्रण है— 'पश्यन्त्यां यत्र भेदांशस्यासूत्रणम्।'
मध्यमा में भेदावभास है— 'यत्र च मध्यमायां भेदावभासः।'
परा तो स्वयमेव संवित शक्ति है— 'परैव च संवित् देवी इत्युच्यते।'

---

१. परिमल।
२. सा च मन्त्रजपपूजाद्यनेकशब्दव्यपदेश्या भवति।

अभिनवगुप्त ने 'परा' भट्टारिका को इच्छा-ज्ञान-क्रिया से परे भी माना है। वे कहते हैं— 'एतच्छक्तिभेदत्रयोत्तीर्णा तच्छत्त्यविभागमयी संविद्भगवती भट्टारिका परा अभिधेयम्।'

विरूपाक्षपञ्चाशिका में परा वाक् को प्रत्यवमर्शात्मा, स्वरसवाहिनी, चिति शक्ति एवं पूर्णाहन्तात्मिका कहा गया है—

प्रत्यवमर्शात्माऽसौ चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग्या।
आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा सत्यहन्ता सा।।

पश्यन्ती वाक्— अनाहत नादस्वरूप में अवतरित वही 'परा वाक्' दृष्ट स्वभाव होने के कारण 'पश्यन्ती वाक्' के नाम से व्यपदिष्ट है। इसमें वटधानिका के समान समस्त वर्णसमूह अभिन्न रूप में अन्तर्निहित रहते हैं— 'सैव च अनाहतनादस्वरूपतामवाप्ता निर्विभागधर्मिणी समस्तवर्णोदयवटधानिकावदन्तर्धारयन्ती द्रष्टृस्वभावा पश्यन्तीति व्यपदेश्या।'[१]

मध्यमा वाक्— सङ्कल्पात्मक-विकल्पात्मक ज्ञानसमूह जब निश्यचात्मक बुद्धि भूमिका को प्राप्त करता है तब वही 'परा वाणी' सेम के बीज के समान वर्णसमूह को अपने अन्तः में धारण करती है। जिस प्रकार सेम की कली के बीज के दलों की पृथक्-पृथक् स्थिति होने पर भी छिलके से आवृत्त होने के कारण वह बाहर स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होती, उसी प्रकार वर्णों के निश्चयात्मक पृथक् स्वरूप का आविर्भाव प्रथमतः अन्तर में होता है और उसका बाहर संदर्शन नहीं हो पाता। वाणी के विकास की यही अवस्था 'मध्यमा' कही जाती है— 'सैव च सङ्कल्पविकल्पनिवहनिश्चयात्मबुद्धिभूमिं स्वीकृतवती वर्णपुञ्जं शिम्बिकाफलन्यायेन अन्तर्धारयन्ती मध्यमा इत्यभिहिता।'[२]

वैखरी वाक्— विकास की अन्तिम अवस्था में जब वही परा वाक् हृदय, कण्ठ, तालु आदि उच्चारणस्थानों (उच्चारणावयवों) से आहत होकर साधनक्रम से वर्णभेद को स्पष्टतः प्रकट करती है तब वह 'वैखरी वाक्' कहलाती है।

इस अवस्था में नाद का वर्णों के रूप में पूर्ण विकास हो जाता है तथा समस्त विश्व के ज्ञान-प्रवाह एवं वेद, शास्त्र आदि की अभिव्यञ्जना होती है। इस स्तर पर वाणी एवं वर्णों के वैभव की पूर्णाभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है। इस प्रकार निरवकाश संवित् तत्त्व से अनवरुद्ध एवं अविरत चार स्वरूपों में वाणी का प्रवाह होता रहता है— 'सैव हृत्कण्ठताल्वादिस्थानकरणक्रमेणाहता सती वर्णविभवमयश्लोकादिवत् भेदरूपं प्रकटयन्ती रूपादिसमस्तविश्वप्रथां च व्यक्ततामापादयन्ती 'वैखरी'त्युक्ता। इत्थं निरवकाशात् वाक्चतुष्टयमविरतनिरोधतया प्रथते।'[३]

---

१. श्री वातूलनाथ सूत्र वृत्ति (अनन्त शक्तिपाद)।
२. श्रीवातूलनाथसूत्रवृत्ति (अनन्तशक्तिपाद)।
३. श्रीवातूलनाथसूत्रवृत्ति (अनन्तशक्तिपाद)।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के भेद से प्रत्येक वर्ण में अनाहत, हतोत्तीर्ण महानाद ही प्रवाहित हो रहा है। वर्णमाला का प्रथमाक्षर 'अ' शिवस्वरूप है, जबकि अन्तिम अक्षर 'ह' शक्तिस्वरूप है। इसी अकार के चार रूप हैं, जो कि परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी कहलाते हैं; यथा—

१. अ का हत रूप = जाग्रत् अवस्था = ज्येष्ठा शक्ति।

२. अ का अनाहत रूप = स्वप्न अवस्था = अम्बिका शक्ति।

३. अ का अनाहत-हत रूप = सुषुप्ति अवस्था = वामा शक्ति।

४. अ का अनाहत-हतोत्तीर्ण रूप = तुर्यावस्था = रौद्री शक्ति।[1]

पश्यन्ती को 'स्पष्टा' कहा गया है; क्योंकि परा की तुलना में यह अधिक स्पष्ट है— 'स्पष्टा पश्यन्त्याख्या त्रिमातृका चक्रतां याता।' यहाँ 'त्रिमातृका' पद त्रिखण्डात्मिका (त्रिखण्डयुक्ता) मातृका को संकेतित करता है। वह चक्राकार रूप में परिणत भी है, इसीलिए कहा गया है— 'चक्रता याता।' 'त्रिमातृका' का अर्थ है— 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र से युक्त'। लक्ष्मीधर कहते हैं— 'त्रिमातृका त्रिखण्डयुक्ता मातृका पञ्चदशाक्षरी तदात्मिका।[2]'

नटनानन्दनाथ चिद्वल्ली में कहते हैं— 'स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृका, सेति स्पष्टा प्रथमोत्पन्नत्वेन विवक्षिता विषयिणी पश्यन्तीत्युच्यते।'

१. मध्यमा माषशमिका (उड़द की छीमी) की भाँति है।

२. पश्यन्ती वटधानिका (बीज) की भाँति है।

३. पश्यन्ती ईश्वरतत्त्व है। यही तन्त्र में 'कार्यबिन्दु' भी कही गई है।

४. पश्यन्ती प्रकाशांश 'वामा शक्ति' एवं विमर्शांश 'इच्छा शक्ति' की सन्तान है।

पराशक्ति अपने गर्भावस्थित बीजभावापन्न विश्व को जब बाह्य रूप में प्रसृत करने को उद्यत होती है तब उसे विश्ववमनकर्तृत्व के कारण 'वामा शक्ति' कहा जाता है। ब्राह्मी शक्ति का कार्य— सृष्टिव्यापार उसमें विद्यमान है। वामा महात्रिकोण वामरेखा का उपलक्षक है; अत: इसे अंकुशाकार भी कहा गया है।

५. वामा शक्ति एवं इच्छा शक्ति का समाहार ही पश्यन्ती है—

बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी।
वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता।।

इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।[3]

'ईक्षणात्मक पश्यन्ती' पश्यन्ती का वह स्वरूप है, जिसमें वह स्रष्टव्य पदार्थों को अपने संकल्प में देखती है— 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छान्दोग्य उपनिषद्-६.२.३)। वाक्य उसी ईक्षणप्रधान पश्यन्ती का बोधक है।

१. श्रीवातूलनाथसूत्रवृत्ति (अनन्तशक्तिपाद)।

२. लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)

३. योगिनीहृदय।

'उत्तीर्णा पश्यन्ती' पश्यन्ती का वह स्वरूप है, जिसमें वह समस्त जगत् को अपने में ही देखती हुई जगत् से उत्तीर्ण स्वरूप में बोधित होती है।

'पश्यन्ती' देखती है, इसीलिये यह 'पश्यन्ती' कहलाती है— 'पश्यतीति पश्यन्ती।'

आचार्य भास्कर की दृष्टि— सौभाग्यसुधोदय में पश्यन्ती को 'उत्तीर्णा' भी कहा गया है— 'पश्यति सर्वं स्वात्मनि करणानां सरणिमपि यदुत्तीर्णा। तेनेयं पश्यन्तीत्युत्तीर्णेत्यप्युदीर्यते माता।'

जब बिन्दुस्वरूप परमात्मा पवन-प्रेरित होकर नाभिदेश में पहुँचकर विमर्शात्मक मन से संयुक्त होता है तब उसे सामान्य स्पन्द प्रकाशरूप एवं कार्यबिन्दुमय 'पश्यन्ती वाक्' कहा जाता है। सौभाग्यभास्कर में भास्करराय इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये कहते हैं— 'अथ तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्दप्रकाशरूपकार्यबिन्दुमयं सत्पश्यन्ती वागुच्यते।'[1]

अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि— आचार्य अभिनवगुप्त ने पश्यन्ती के तीन भेद भी किये हैं— पश्यन्ती, महापश्यन्ती, एवं परममहापश्यन्ती।

१. परममहापश्यन्ती की दशा ही 'परा वाक्' है।

२. सदाशिवेश्वर की दशा ही 'महापश्यन्ती' है।

३. 'मैं घर से बाहर निकलता हूँ' आदि परामर्श माया के प्रमाता (जीव) से सम्बद्ध पश्यन्ती ही 'पश्यन्ती' है।

पश्यन्ती वाक् में देशगत एवं कालगत क्रमात्मकता का अभाव रहता है। इस स्तर का विमर्श निर्विकल्पात्मक होता है। यह अक्रम, अविभक्त, अन्तर्लीन, अस्फुट एवं प्रतिसंहृतक्रम होता है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में पश्यन्ती को 'इच्छा शक्ति' भी कहा गया है।

भास्कर राय वरिवस्यारहस्यम् की टीका में कहते हैं कि मध्यमा वह वाक् है, जो कि न तो परा वाक् की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म है और न ही वैखरी की भाँति अति स्थूल। इसीलिये इसे मध्यमा कहते हैं— 'नातिसूक्ष्मा परावन्नातिस्थूला वैखरीवदतो मध्यमाख्या।'

वैखरी वाक् किसे कहते हैं? इस पर भास्करराय 'प्रकाश' टीका में कहते हैं— 'अकटतपयशलाख्या वर्गनवकवती वैखर्याख्या मातृका जाता, वै निश्चयेन स्पष्टतरत्वात्। खं कर्णविवरवर्तिनभोरूपश्रोत्रेन्द्रियं राति गच्छति, तज्जन्यज्ञानविषयो भवति इति वैखरी।'

आचार्य भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि—

१. शब्दब्रह्मरूप बीज की अच्छूनावस्था 'परा वाक्' है।

२. शब्दब्रह्म की स्फुटितावस्था ही 'पश्यन्ती वाक्' है।

३. शब्दब्रह्म की मुकुलित अव्यक्तावस्थागत दलद्वय 'मध्यमा' है।

---

१. सौभाग्यभास्कर।

४. शब्दब्रह्म की प्रसृत एवं संसृष्ट मूल दलद्वय 'वैखरी' है।

'तत्र शब्दब्रह्मरूपस्य बीजस्योच्छूनतावस्था 'परा' स्फुटितावस्था 'पश्यन्ती' मुकुलिताव्यक्तं दलद्वयं 'मध्यमा' सम्यग् विकासेन प्रसृते मिथ: संसृष्टमूलं दलद्वयं 'वैखरी।'

परा एवं पश्यन्ती के दो छोरों के मध्य में रहने के कारण ही मध्यमा वाक् को 'मध्यमा' कहा जाता है— 'मध्यमा परापश्यन्त्यो: समरसावस्था।'

(चिद्वल्ली : नदनानन्द)

आचार्य सोमानन्द एवं अभिनवगुप्त के मत में प्रतीयमान वैषम्य

१. आचार्य सोमानन्द पश्यन्ती को ज्ञानशक्ति कहते हैं, जबकि अभिनवगुप्त इसे इच्छाशक्ति कहते हैं।

२. इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की बीजावस्था है। जिज्ञासा (जानने की इच्छा) भी बोधस्वभावा ही होती है और इच्छाशक्ति ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की आश्रयदाता भी है। इच्छाशक्ति में ज्ञेय पदार्थ का प्रकाशन भी सम्मिलित रहता है।

अभिनवगुप्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहते हैं—

१. 'इच्छाशक्तिर्ज्ञानक्रियाशक्त्योरनुग्राहिका इति' अर्थात् इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की अनुग्राहिका है।

२. 'बुभुत्सा अपि बोधस्वभावैव, तस्य वस्तुनस्तत्र अवभासपरिपूर्णतया प्रकाश-नात्' अर्थात् बुभुत्सा भी बोधस्वभाव ही है, क्योंकि यह वस्तु को अवभास के रूप में प्रकाशित करती है।

३. 'इच्छाशक्तिरूपेति दर्शयति कार्यचिकीर्षा इति' अर्थात् इच्छाशक्ति भी कार्य-चिकीर्षा को गुप्त रूप से अपने में निहित रखती ही है; अत: ज्ञानशक्ति एवं इच्छाशक्ति मूलत: तादात्म्य रखते हैं। अत: दोनों आचार्यों के मत में विरोध नहीं मानना चाहिये।

भास्करराय वरिवस्यारहस्यम् की प्रकाश टीका में कहते हैं— 'तत: स्रष्टव्यपदार्था-नालोचयति— 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुते:। तादृशमीक्षणमेव प्रवृत्तिनिमित्तीकृत्य तस्यां पश्यन्तीति पदं प्रवर्तते।' अर्थात् परा सत्ता स्रष्टव्य पदार्थों का ईक्षण करती है। उसका वह ईक्षण ही प्रवृत्ति का निमित्त बनता है। ईक्षण, काम, तप, विचिकीर्षा आदि शब्द आचार्य की दृष्टि में समानार्थक हैं और पश्यन्ती के बोधक हैं।

राजानक जयरथ 'विवेक' में कहते हैं कि परा भगवती अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा जब बाह्य रूपों को अभिव्यक्त करना चाहती है तब उनकी संज्ञा 'पश्यन्ती' हो जाती है। यह विभागशून्या, वाच्य-वाचक क्रम से अतीता, अस्फुटा, चिज्ज्योतिप्रधाना एवं साक्षी या द्रष्टारूपात्मिका परा भगवती ही 'पश्यन्ती' है— 'सैव हि परमेश्वरी स्वस्वातन्त्र्यात् बहिरूपतामुल्लिलासयिषुर्वाच्य-वाचकक्रमानु-दयाद्विभागस्यास्फुटत्वाच्चिज्ज्योतिष एव प्राधान्यात् द्रष्टृरूपतया पश्यन्तीति शब्दव्यपदेश्या।'

पश्यन्ती के भेद— पश्यन्ती के तीन भेद प्रधान हैं— स्थूल पश्यन्ती, सूक्ष्म पश्यन्ती और पर पश्यन्ती।

१. स्थूल पश्यन्ती— षडज आदि सप्त स्वरों के संयोग या वर्गीकरणों (विभाजनों) से रहित होकर आलाप द्वारा आह्लाद उद्भूत करने वाली प्राथमिक नादमात्रस्वभावा पश्यन्ती ही स्थूल पश्यन्ती है—

तत्र या स्वरसन्दर्भसुभगा नादरूपिणी।।
सा स्थूला खलु पश्यन्ती वर्णाद्यप्रविभागतः।। (तन्त्रालोक)

२. सूक्ष्मा पश्यन्ती— जिगासा (गाने की इच्छा) का अनुसन्धान ही सूक्ष्मा पश्यन्ती है।

३. पर पश्यन्ती— उपाधिशून्या एवं परचिदात्मस्वरूपा पश्यन्ती ही पर पश्यन्ती है। आचार्य अभिनवगुप्त तन्त्रालोक (आह्निक-३) में कहते हैं—

अस्मिन् स्थूलत्रये यत्तदनुसन्धानमादिवत्।।

पृथक्-पृथक् तत्त्रितयं सूक्ष्ममित्यभिधीयते।
षडजं करोमि मधुरं वादयामि ब्रुवे वचः।।

पृथगेवानुसन्धानत्रयं संवेद्यते किल।
एतस्यापि त्रयस्याद्यं यद्रूपमनुपाधिमत्।।
तत्परं त्रितयं तत्र शिवः परचिदात्मकः।।

योगिनीहृदय में पश्यन्ती का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी।
वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता।।

इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।।

अमृतानन्द कहते हैं कि जैसे बीज में वृक्ष अन्तर्निहित रहता है, उसी प्रकार ३६ तत्त्वों से निर्मित विश्व परारूप कारण में तन्मात्रा के रूप में स्थित रहता है। 'उत्पत्ति' का अर्थ है— कारण से कार्य की अभिव्यक्ति। गर्भ में स्थित सन्तान के बाहर निकलने के समान जब 'वामा' विश्व का वमन कर देती है। 'पश्यन्ती' का सम्बन्ध इच्छा-शक्ति से है। इच्छाशक्ति वामा शक्ति के साथ सामरस्यापन्ना होकर पश्यन्ती कहलाती है— 'इच्छाशक्ति-र्वामांशशक्तिसामरस्यमापन्ना पश्यन्तीरूपेण स्थिता।[१]'

मध्यमा : विशेष स्पन्द—

'तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन्मध्यमावागित्युच्यते।'[२]

---

१. दीपिका-अमृतानन्द। २. सौभाग्यभास्कर।

मध्यमा वाक् का सम्बन्ध ज्ञानशक्ति से है—

१. इच्छाशक्ति— इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

२. ज्ञानशक्ति— ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।[1]

ज्ञानशक्ति + ज्येष्ठा = मध्यमा वाक्।

३. क्रियाशक्ति का सम्बन्ध वैखरी वाक् से है। (योगिनीहृदय)

अमृतानन्द कहते हैं 'ऋजुरेखामयी अत्र शृङ्गाटाग्ररेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता मध्यमामातृकात्वमापन्ना।'

मध्यमा के दो प्रकार हैं—

१. सूक्ष्मा मध्यमा : नवनादमयी।

२. स्थूला मध्यमा : नवनादमयी।

योगिनीहृदय में वैखरी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैवं शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।[2]

सौभाग्यभास्कर में भास्करराय कहते हैं— 'अथ तदेव (शब्दब्रह्म) वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपपरं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टतरं प्रकाश-रूपबीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते।'

'वैखरी विश्वविग्रहा।' भास्कर राय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं—

'विशेषेण खर कठिनस्तस्येयं वैखरी सैव रूपं यस्या:। घनभावमापन्नेति यावत्। वै निश्चयेन खं कर्णविवरं राति गच्छतीति व्युत्पत्ति:। सौभाग्यसुधोदये कथिता— प्राणेन विखराख्येन प्रेरिता वैखरी पुन:।[3]'

योगिनीहृदय में वैखरी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा।
तत्संहतिदशायां तु वैन्दवं रूपमास्थिता।।

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।

प्रपञ्चसारतन्त्र में आचार्य शंकर कहते हैं—

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भाव: पराख्य:।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्य:।।

व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तो: सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

---

१. योगिनी हृदय
२. सौभाग्य भास्कर
३. सौभाग्य भास्कर
४. प्रपञ्चसार तन्त्र

वाणियों का स्थान—

१. मूलाधार— परा वाक् ३. बुद्धि से संयुक्त होने पर— मध्यमा

२. हृदय— पश्यन्ती ४. कण्ठ— वैखरी।

कामकलाविलास की दृष्टि एवं लक्ष्मीधर का मत— मध्यमा' वाणी की तृतीय वृत्ति है। लक्ष्मीधर के मतानुसार इसका स्वरूप इस प्रकार है— 'मध्यमानाम परापश्यन्त्यो उच्चानुच्चावस्थात्मिका।[1]'

लक्ष्मीधर के अनुसार मध्यमा के दो रूप हैं— वामादि व्यष्टिरूपा (स्थूला) और वामादि समष्टिरूपा (सूक्ष्मा)।

वामादिक शक्तियों के चार भेद हैं— वामा, ज्येष्ठा, रौद्री एवं अम्बिका। ये चारो शक्तियाँ श्रीचक्र में अधोमुख एवं चतुर्योन्यात्मिका हैं तथा इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रिया-शक्ति, शान्ता शक्ति एवं परा शक्ति ऊर्ध्वमुख एवं शक्तियोन्यात्मिका हैं। इन्हीं नव व्यूहात्मिका शक्तियों से भगवती को 'नवात्मा' कहा गया है।

श्रीचक्र में शक्तियों की स्थिति[2]

- अधोमुख एवं चतुर्योन्यात्मिका
  - वामा शक्ति
  - ज्येष्ठा शक्ति
  - रौद्री शक्ति
  - अम्बिका शक्ति
- ऊर्ध्वमुख एवं शक्तियोन्यात्मिका
  - इच्छाशक्ति
  - ज्ञानशक्ति
  - क्रियाशक्ति
  - शान्ता शक्ति
  - परा शक्ति

कामकलाविलास में कहा भी गया है—

एका परा तदन्या वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा।
तेन नवात्मा माता जाता सा मध्यमाऽभिधानाभ्याम्।।

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृति: स्थिरा सूक्ष्मा,
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा तु भूतलिप्याख्या।
आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतो:,
सैवेयं न हि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमदभीष्टम्।।

१. एका परा— इन वाणियों में एक तो 'परा वाणी' है और वह गुणत्रय की समरसा-वस्था या साम्य स्थिति है— 'एका परेति सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यरूपा।'

२. तदन्या पश्यन्ती— यह वाणी (वाक्तत्त्व) 'पश्यन्ती' कहलाती है और अन्य-तर गुणवैषम्यरूप है। इस स्तर पर गुणसाम्य नहीं रहे जाता। परा = गुणत्रय की साम्या-वस्था, पश्यन्ती = गुणों की वैषम्यावस्था।[3]

---

१. लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)।

२. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा टीका (सौन्दर्य लहरी की टीका)।

३. लक्ष्मीधर : सौन्दर्य लहरी की टीका (लक्ष्मीधरा)।

३. मध्यमा— मध्यमा वाक् वामादि व्यष्टिरूपा एवं स्थूला है। ये वामादिक शक्तियाँ बैन्दव स्थान के दोनों ओर सम्पुट रूप से अवस्थित हैं। इसीलिये इन्हें 'व्यूह' शब्द से अभिहित किया गया है और इन्हें 'नवात्मा' भी कहा गया है।[१]

समष्टिरूपा मध्यमा परा शक्ति में अन्तर्भूत है। इसी कारण माता (मातृका) 'नवात्मा' कही जाती है और नवात्मक स्वरूप होकर उत्पन्न होती है। वही मध्यमा विभिन्न अभिधानों में व्यवहृत होकर दो प्रकार की कही जाती है— स्थूला एवं सूक्ष्मा।[२]

मध्यमा वाक् का सूक्ष्म स्वरूप स्थिर है। उसकी यह स्थिरावस्था तो मात्र समाधिगम्य है— 'स्थैर्यावस्थायां युक्तावस्थायामेव अवभास्या।'

स्थूल मध्यमा वाक् नौ नादों से युक्त है। 'नवनादमयी' कहे जाने का अर्थ यही है कि मध्यमा में नौ नाद अनुस्यूत हैं और वे नौ नाद हैं— अ, क, च, ट, त, प, य, श, क्ष। इसी को स्पष्ट करते हुये कहा भी है— 'नवनादाः अकचटतपयशक्षाः। '

ये सभी भिन्नजातीय हैं; क्योंकि स्वर (अ) एवं क च ट त प य श क्ष वर्ग परस्पर भिन्न-भिन्न प्रतीयमान हैं। इनमें 'आद्या कारणमन्या' अर्थात् इन वाणियों में पूर्ववर्ती वाणी परवर्ती वाणी का कारण है अर्थात् आद्या (सूक्ष्मा) मध्यमा परवर्ती स्थूलरूपा नववर्गात्मिका मध्यमा का कारण है। कहा भी है— 'आद्या सूक्ष्मारूपा मध्यमा कारणं स्थूलरूपायाः मध्यमायाः नववर्गात्मिकायाः (कार्यस्य)।'

सूक्ष्म एवं स्थूल मध्यमा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है—
'सैवेयं नहि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमदभीष्टम्।' (कामकलाविलास) मध्यमात्मिका चिच्छक्ति भी नवात्मा है; क्योंकि सर्वत्र अभेद है।

वैखरी वाक् एवं मध्यमा— वैखरी मातृकाओं का जो वासनात्मक सूक्ष्म रूप है, वही मध्यमा वाक् कहलाता है। वैखरी में वर्ण स्थूल होते हैं और मध्यमा वाक् में सूक्ष्म होते हैं।

मध्यमा वाक् हिरण्यगर्भ वर्ण हैं। इन्हें ही तान्त्रिक आचार्यों ने 'नाद' कहा है। शब्दब्रह्म वायु की सहायता से नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्त होता हुआ निश्चयात्मिका बुद्धि से संवलित होकर विशेष स्पन्दात्मक प्रकाशस्वरूप एवं नादात्मक स्वरूप में 'मध्यमा वाक्' कहलाता है।

प्रकाशांश ज्येष्ठा शक्ति एवं विमर्शांश ज्ञानशक्ति की संयोगजन्य परिणति ही मध्यमा है। मध्यमा विष्णु के पर्याय 'ज्येष्ठा शक्ति' तथा विष्णु शक्ति पृथ्वी के पर्याय 'ज्ञान शक्ति' का संयोग है।

---

१. लक्ष्मीधरः लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)
२. लक्ष्मीधरः लक्ष्मीधरा (सौन्दर्य लहरी की टीका)

प्रकाशांश	विमर्शांश	
१. वामा शक्ति	१. इच्छा शक्ति	
२. ज्येष्ठा शक्ति +	२. ज्ञान शक्ति →	'मध्यमा वाक्'।
३. रौद्री शक्ति	३. क्रिया शक्ति	

क. प्रकाशस्यांशभूता वामाज्येष्ठारौद्रय: शक्तयस्तिस्रो ब्रह्मविष्णुरुद्रा: पुंरूपा:। तत्समष्टि शान्तात्मिका शक्तिस्तुरीया।

ख. विमर्शस्यांशभूता इच्छाज्ञानक्रिया:।[1]

जो वाणियों का त्रिकोण △ बनता है, उस त्रिकोण की जो ऋजु रेखा है, उसे ही मध्यमा कहते हैं—

ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा।।[2]

मध्ये मा बुद्धिर्यस्या: सा मध्यमा।[3]

नटनानन्द चिद्वल्ली में कामकलाविलास के सत्ताइसवें श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

१. सूक्ष्मा मध्यमा नवनादमयी है और स्थूला मध्यमा नववर्गात्मा है।

२. अन्तर्मुखी योगी ही मध्यमा का साक्षात्कार कर सकते हैं, अन्य नहीं—

क. सा अन्तर्मुखपरमयोगिभि: दृश्या मध्यमा।

ख. तत्र सूक्ष्मा समाधिस्थलेन अनुभूयमाना।

ग. स्थूलाकृत्या पण्डितपामराभिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना।

घ. वायु का कुम्भक प्राणायाम के द्वारा निरोध करके 'स्वाधिष्ठान' आदि कमलों का उद्भेदन करते हुये द्वादशान्त:स्थित महापंकज में स्थित 'परमशिव' के क्रोड़ में आरोहण करती हुई 'महामातृका कुण्डलिनी' अनेक प्रकार की नादात्मक ध्वनियाँ करती हुई सुनी जाती है और मित्रावरुण-सदन से शिवाङ्कपर्यन्त उपसर्पण करती हुई यह मातृकात्मिका शक्ति समाधिस्थ योगियों (महामाहेश्वर, समाधिस्थ योगियों) के द्वारा अपनी आत्मा के रूप में ग्रहण की जाती है। गुदा का अवष्टम्भन करके और आधार चक्र से वायु को उत्थापित करके तथा स्वाधिष्ठान की परिक्रमा करते हुये मणिपूरक चक्र में प्रवेश करके तथा अनाहत चक्र को अतिक्रान्त करके एवं विशुद्ध चक्र में प्राणों को निरुद्ध करके आज्ञा चक्र की ओर अग्रपद होती हुई तथा ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करती हुई और मूलाधार

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश)

२. नित्याषोडशिकार्णव (६ विश्राम)

३. प्रपञ्चसारतन्त्र की व्याख्या : पद्मपादाचार्य।

से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त व्याप्त महाकुण्डलिनी का स्वरूप प्रारम्भ से अन्त तक नादात्मक रूप में ही अनुभूत होता है।

'स्थूलमध्यमा' नववर्गात्मा, अ-क-च-ट-त-प-य-शलात्मिका, स्थूला, सर्वव्यवहारविषयिणी कहलाती है।

तन्त्रसद्भाव की दृष्टि— समस्त मातृकायें परतेजसमन्वित हैं और उनके द्वारा समस्त भुवनों से ब्रह्म तक सभी व्याप्त हैं। इनमें नाद भी अनुस्यूत है—

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम्।।

तत्रस्थश्च यथा नादो व्यापितश्च सुरार्चिते।
अवर्णस्थो यथा वर्णा स्थित: सर्वगत: प्रिये।।

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्तियाँ ही तो पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी हैं— 'इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयस्तु पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपा इति प्रपञ्चिता।' चतु:शती में भी कहा गया है—

इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

परा शक्ति ही विभक्त होकर नववर्गात्मिका बन जाती हैं—

आभ्यो युक्ता विविक्ताभ्य: सञ्जातो नववर्गक:।
नवधा च स्मृता या तु नववर्गोपलक्षिता।।

नव नादों से ही सूक्ष्म नववर्गात्मा 'स्थूल मध्यमा' (अ एवं क च ट त प य श लस्वरूप नववर्ग) का जन्म होता है।

नवनाद (सूक्ष्म मध्यमागत ९ नाद)

नववर्गात्मा स्थूल मध्यमा (सूक्ष्म नववर्ग)	स्थूल मध्यमा = सूक्ष्म नववर्ग-	स्थूल नववर्गात्मा या स्थूल वर्णात्मा वैखरी वाक् का जन्म।

वर्णमाला

सूक्ष्म (मध्यमा)	स्थूल (वैखरी)

हंसोपनिषद् और नाद के भेद

हंसोपनिषद्प्रोक्त नाद के निम्नांकित दस भेद हैं—

१. चिनि
२. चिनिचिनि
३. घण्टानाद
४. शंखनाद
५. तन्त्रीनाद
६. तालनाद
७. वेणुनाद
८. भेरीनाद
९. मृदंगनाद
१०. मेघनाद

नौ नादों का अनुभव हो जाने के बाद ही दसवें नाद का अभ्यास करना चाहिये। मन का उसमें लय हो जाने पर संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं और गुणावगुण जल जाते हैं, तभी सदाशिव का साक्षात्कार होता है। वे शक्तिमय, सर्वव्यापक, स्वयंज्योति, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरञ्जन एवं शान्त हैं।

जिन वामा, ज्येष्ठा, रौद्री के संयोग से वाणियों का उद्भव होता है, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

वामा विश्वस्य वमनात् ज्येष्ठा शिवमयी यतः।
द्रावयित्री रुजं रौद्री दोग्ध्री चाखिलकर्मणाम्।।

अम्बिका स्फुरत्तात्मिका महासत्ता है— 'अम्बिका च सा स्फुरत्ता महासत्तेति।' वह सर्वातिशायी, परिपूर्णरूपा एवं स्वात्मस्फुरणावलोकनचतुरा है। चतुःशती में कहा भी गया है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

शान्ता शक्ति तो निष्कल, निष्क्रिय, शान्ता, निरंकुशा एवं चिन्मयी शक्ति है— शान्ता च निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्यादिश्रुत्या निरङ्कुशा चिन्मयी शक्तिः (चिद्वल्ली)। अमृतानन्दनाथ ने भी कहा है— 'निरंशौ नादबिन्दू चेत्यत्र निरङ्कुशा शान्ता शक्तिः, शान्ताया निरंशत्वं चिद्रूपत्वादिति।'

मध्यमा— 'मध्यमा परापश्यन्त्योः समरसावस्था' (चिद्वल्ली)।

वामा— 'वामानाम स्वान्तःस्थितप्रपञ्चवमनाद्विश्वजनयित्रीत्यभिधीयते' (चिद्वल्ली)।

ज्येष्ठा— 'ज्येष्ठा सर्वमङ्गलकारिणी' (चिद्वल्ली)।

रौद्री— 'रौद्री सर्वरोगविद्राविणी' (चिद्वल्ली)।

अम्बिका— 'अम्बिका समस्तेष्टप्रदा शक्तिः' (चिद्वल्ली)।

पश्यन्ती— 'वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मावामादिशान्तान्तशक्तिनवकमयी यतस्तेन कारणेन सा माता पश्यन्ती नाम जननी।'

स्वच्छन्दतन्त्र और नाद के भेद

स्वच्छन्दतन्त्र में नाद के आठ भेद हैं—

१. घोष	३. स्वन	५. स्फोट	७. झाङ्कार
२. राव	४. शब्द	६. ध्वनि	८. ध्वंकृति।

नव नादों का अवस्थान कहाँ है? इस विषय में वरिवस्यारहस्यम् की प्रकाश टीका में इस प्रकार कहा गया है— 'ततो नवनादाः अविकृतशून्यादयो जाताः, तत्समष्टिश्च नाद-ध्वन्यादिपदवाच्या नातिसूक्ष्मा परावन्नातिस्थूला वैखरीवदतो मध्यमाख्या मातृका मध्यमा-

वयवरूपमविकृतशून्यस्पर्शनादध्वनिबिन्दुशक्तिबीजाक्षराख्यं नादनवकं मूलाधारादिषट्के नादे नादान्ते ब्रह्मरन्ध्रे च स्थितम्।'

भास्कर राय के अनुसार नव नादों की समष्टि ही 'मध्यमा' है। परा वाक् की भाँति सूक्ष्म एवं वैखरी की भाँति स्थूल— दोनों न होने के कारण (दोनों के मध्य में रहने के कारण) इसे 'मध्यमा वाक्' कहा जाता है।

मध्यमा के अन्य भेद— 'स्थूल मध्यमा, सूक्ष्म मध्यमा, पर मध्यमा एवं यत्तु चर्मावनद्धादि किञ्चित्तत्रैष यो ध्वनिः।'

स स्फुटास्फुटरूपत्वान्मध्यमा स्थूलरूपिणी।।

(तन्त्रालोक-३ आ०)

अर्थात् चमड़े से मढ़े मृदंगादि में कराघातजन्य ध्वनि स्थूल मध्यमा की ध्वनि होती है। स्फुटास्फुट होने से यही 'स्थूलरूपिणी मध्यमा' कही जाती है।

यह पश्यन्ती की तुलना में अधिक स्फुट एवं वैखरी की तुलना में अस्फुट होने के कारण स्फुटास्फुट है।

वादनेच्छा के अनुसन्धान को 'सूक्ष्म मध्यमा' कहते हैं। यह वाक् संवेदनात्मक मात्र होती है।

वादनेच्छारहित चिदात्मक स्वरूप ही 'पर मध्यमा' है।

सोमानन्दपाद की दृष्टि— शिवदृष्टि में वे कहते हैं कि शब्दब्रह्म अर्थप्रतिपादन की इच्छा से विवक्षोपहित होकर बिन्दुनामक प्राणापानात्मक वायु के क्रम से उल्लसित होने पर मध्यमा वाक् कहलाता है—

आस्ते विज्ञानरूपत्वे स शब्दोऽर्थविवक्षया।
मध्यमा कथ्यते सैव बिन्दुनादमरुत्क्रमात्।।

ब्राह्मणगीता के अनुसार—

केवलं बुद्ध्युपादानक्रमरूपानुपातिनी।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते।।

अर्थात् जो वाणी बुद्धिरूप उपादान वाली है, सूक्ष्म प्राणवृत्ति की अनुगामिनी है और अन्तःसन्निवेशयुक्त है तथा क्रम न होने पर भी क्रम को ग्रहण किये हुये के समान है, वही मध्यमा वाक् है। वाक्यपदीय की टीका में भी कहा गया है—

'मध्यमा त्वन्तःसन्निवेशिनी परिगृहीतक्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना सूक्ष्मप्राणवृत्त्यनुगता।'

पञ्चतन्मात्रा, मन, बुद्धि एवं अहंकारस्वरूप पुर्यष्टक से युक्त प्राणशक्ति की आश्रयस्वरूपा सुषुम्ना नाड़ी में विश्रान्त मन, बुद्धि और अहंकारात्मक अन्तःकरण को जो विमर्श शक्ति प्रेरणा प्रदान करती है, वही मध्यमा वाक् है। उससे अनुप्रेरित होकर ही अन्तःकरण—

संकल्पन, निश्चयात्मक निर्धारण, अभिमनन एवं विकल्पन आदि अपने व्यापार में प्रवृत्त होता है। उस काल में वह विमर्शसंवलिता वाणी संकल्परूप ग्राह्य एवं संकल्पयितारूप ग्राहक भेदोपहित होकर स्फुटक्रम से उपरक्त होती है, तब चिन्तनस्वरूपा वह ज्ञानशक्ति एवं मध्यमा कही जाती है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में इसी तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

'अन्त:करणं मनोबुद्ध्यहङ्कारलक्षणं मध्यभूमौ पुर्यष्टकात्मनि प्राणाधारे विश्रान्तं या विमर्शशक्तिः प्रेरयति सा मध्यमा वाक्।'

'तत्प्रेरितं च तदन्त:करणं सङ्कल्पने, निश्चये, अभिमनने च स्वस्मिन् व्यापारे विकल्पन-लक्षणे प्रवर्तते। तत्काले सा विमर्शमयी वाक् सङ्कल्प्यादिकं ग्राह्यं सङ्कल्पयित्रादिरूपं च ग्राहकं स्वेन अभिधानस्य 'इमं घटमहं सङ्कल्पयामि' इत्यादेर्वाचकस्य शब्दस्य शब्दस्य भेदेन स्फुटेन क्रमेण आभुंक्ते गाढं परामृशति यतस्ततांश्चिन्तनशब्दवाच्या मध्यभवत्वात् मध्यमा ज्ञानशक्तिरूपा।'

भास्कर राय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि 'अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन् मध्यमा वागित्युच्यते।

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भाव: पराख्य:।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्य:।।

विमर्श शक्ति और परा-पश्यन्ती आदि वाणियाँ— आचार्य जयरथ कहते हैं कि पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के रूपों में स्वात्मचमत्कारमयी विमर्शशक्ति ही उल्लसित होती है— 'पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपतया स्वात्मचमत्कारमयी विमर्शशक्तिरेव विजृम्भते।'
(तन्त्रालोक-१.२७०)

नादव्यूह और शब्दवृत्तियाँ— महाभैरव 'नवात्मा' कहे जाते हैं; क्योंकि वे नव-व्यूहात्मक हैं। उनके नव व्यूह निम्नांकित हैं—

१. कालव्यूह	४. ज्ञानव्यूह	७. बिन्दुव्यूह
२. कुलव्यूह	५. चित्तव्यूह	८. कलाव्यूह
३. नामव्यूह	६. नादव्यूह	९. जीवव्यूह

मातृका के चार रूप हैं—

१. परा वाक्	३. मध्यमा वाक्
२. पश्यन्ती वाक्	४. वैखरी वाक्

लक्ष्मीधर ने कहा भी है— 'मातृकाया: परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी इति चत्वारि रूपाणि।'

कामकलाविलास की दृष्टि से मध्यमा के दो भेद हैं— सूक्ष्मा मध्यमा,और स्थूला मध्यमा।

मध्यमा वाक्— पद्मपादाचार्य का कथन है कि मध्यमा वाक् बाह्यान्तःकरणाद्यात्मिका, हिरण्यगर्भरूपिणी, बिन्दुतत्त्वमयी, नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्त तथा विशेषस्पन्दरूपा, संकल्पादिस्वरूपा एवं बिन्दुमयी है— 'अथ बाह्यान्तःकरणाद्यात्मिका हिरण्यगर्भरूपिणीं बिन्दु-तत्त्वमयीं नाभ्यादिहृदयान्ताभिव्यक्तिस्थानां विशेषस्पन्दसङ्कल्पादि-सत्तात्वात् मध्यमां वाचमाह।'

पद्मपाद्‌ाचार्य मध्यमा की व्याख्या 'मध्ये स्थिता मध्यमा' कहकर भी करते हैं।

सौभाग्यभास्कर में भास्कर राय कहते हैं कि—

तदुक्तं पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहिः।
स्फुटतरनिखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात्।।

अर्थात् मध्यमा वाक् न तो पश्यन्ती की भाँति केवल उत्तीर्णा है और न ही वैखरी की भाँति पूर्णतया बाह्यवर्ती और स्फुटतम रूप में पूर्णतः प्रकाशित है; प्रत्युत यह पश्यन्ती की अपेक्षा स्फुटतर है। आचार्य पद्मपाद के अनुसार मध्यमा वाक् बिन्दुमयी है तो आचार्य भास्कर राय इसे नादमयी स्वीकार करते हैं। सौभाग्यभास्कर में वे कहते हैं कि 'अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपं नादमयं सन्मध्यमा वागित्युच्यते।'

राघवभट्ट के अनुसार मध्यमा वाक नादबिन्दुरूपिणी है, लेकिन अन्य आचार्य ने 'सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी' कहकर इसका निरूपण किया है। राघवभट्ट ने शारदातिलक के प्रथम पटल के १०० वें श्लोक की व्याख्या में मध्यमा को नादबिन्दुमयी कहते हुये मध्यमा को नादरूपिणी मानने वाले किसी अन्य आचार्य के मत का भी उल्लेख किया है।

शारदातिलक में कहा गया है कि 'बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः।' अर्थात् मध्यमा के तीन भेद हैं— बिन्दु, नाद एवं बीज। इनके उद्भव का क्रम इस प्रकार है—

आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।

शक्ति के पूर्व विद्यमान थे— सच्चिदानन्दविभवसकलपरमेश्वर; कहा भी है—

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।।

सच्चिदानन्द विभव सकल परमेश्वर → शक्ति → नाद → बिन्दु।

आचार्य पद्मपाद (प्र. सा. तन्त्र की टीका में) मध्यमा को बिन्द्वात्मक एवं पश्यन्ती को नादात्मक कहते हैं।

शारदातिलक में 'बिन्दुर्नादबीजमिति' के द्वारा बिन्दु, नाद एवं बीजरूप क्रम का उल्लेख किया गया है, जबकि दूसरी ओर 'आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः' के द्वारा शक्ति-नाद-बिन्दुरूप क्रम का निर्देश किया गया है और ऊपर बिन्दु नाद- बीज का क्रम है।

सामान्यत: पश्यन्ती को बिन्द्वात्मक और मध्यमा को नादात्मक माना गया है। हाँ, नाद एवं बिन्दु के भी दो रूप हैं— कारणस्वरूप नाद एवं कार्यस्वरूप नाद तथा कारणस्वरूप बिन्दु एवं कार्यस्वरूप बिन्दु।

'स बिन्दुर्भवति त्रिधा' कहकर राघवभट्ट ने बिन्दु को तीन प्रकार का स्वीकार किया है, लेकिन 'एतौ नादबिन्दू प्रथमोक्तनादबिन्दुभ्यामन्यौ तत्कार्यरूपौ ज्ञेयौ' वचन के द्वारा उन्होंने नाद एवं बिन्दु के दो रूप भी बताये हैं— कारणरूप नाद एवं कार्यरूप नाद तथा कारणरूप बिन्दु एवं कार्यरूप बिन्दु।

मध्यमा के भेद— पुण्यानन्द के अनुसार मध्यमा के दो भेद हैं— सूक्ष्मा मध्यमा (नवनादमयी) एवं स्थूला मध्यमा (अक्षरों के नव वर्गों से युक्त, भूतलिपि नाम वाली) कहा भी है—

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा।
नावनादमयी स्थूला नववर्गात्मा तु भूतलिप्याख्या।।

इसी को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं— 'मध्यमानाम शक्तिर्द्विविधा द्विप्रकारा स्थूल-सूक्ष्मभावात्। तत्र सूक्ष्मा समाधिस्थलेन अनुभूयमाना (समाधिद्वारा अनुभवैकगम्या)। स्थूला-कृत्या पण्डितपामराभिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना।' अर्थात् दूसरी स्थूला मध्यमा पण्डितों एवं पामरों द्वारा अभिलपन के योग्य एवं वर्णात्मिका है। इसीलिये मध्यमा को द्विस्वरूपा कहा गया है— 'एतदेव व्याचष्टे— सूक्ष्मा नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा इति।'

स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों मध्यमारूपों में तत्त्वत: कोई भेद न होकर अभेद ही है। इसीलिये कामकलाविलास (२८) में पुण्यानन्द कहते भी हैं—'सैवेयं न हि भेद: तादात्म्यं हेतुहेतुमतोर्दिष्टम्।'

नटनानन्द द्वारा उल्लिखित नादों के प्रकार— नटनानन्द ने सूक्ष्मा मध्यमा एवं नव नादों का निरूपण किया है, वे नव नाद निम्नवत् हैं—

१. चिणि	४. शंखनाद	७. वेणुनाद
२. चिणिचिणी	५. तन्त्रीनाद	८. भेरीनाद
३. घण्टानाद	६. तालनाद	९. मृदंगनाद

नवनादमयी सूक्ष्मा का स्वरूप— नटनानन्द के चिद्वल्ली में नादों के दस प्रकार बतलाये हैं; वे कहते हैं— 'नादं विभजते। स च दशविध:— 'चिणी'ति प्रथम:, 'चिणि-चिणी'ति द्वितीय:, 'घण्टानाद'स्तृतीय:, 'शङ्खनाद'श्चतुर्थ:, पञ्चमस्'तन्त्रीनाद:', षष्ठ-'स्तालनाद:', सप्तमो 'वेणुनाद:', अष्टमो 'भेरीनाद:', नवमो 'मृदङ्गनाद:', दशमो 'मेघनाद:'। नवमं परित्यज्य दशमेवाभ्यसेत्। तस्मिन् विलीने मनसि गते सङ्कल्पे विकल्पे च दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिषत्। मूलाधारे दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिद:

मूलाधारे महेश्वरीत्यादिना च न वेदविधिगोचरमित्यन्तं नववर्गात्मा अ-क-ट-त-प-य-श-लात्मिका स्थूला सर्वव्यवहारविषयिणीत्युच्यते।'

स्वात्माराम मुनीन्द्रप्रोक्त नादों के प्रकार— स्वात्माराम मुनीन्द्र (हठयोगप्रदीपिका) ने नादतत्त्व का निरूपण करते हुये स्पष्ट किया है कि नाद की चार अवस्थायें हैं— आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति; जिनका विवरण निम्नवत् है—

१.	अनाहत क्वणक का नाद	नाद की आरम्भावस्था	ब्रह्मग्रन्थिभेदन।
२.	विमर्द एवं भेरी का नाद	नाद की घटावस्था	विष्णुग्रन्थिभेदन।
३.	मर्दल ध्वनिजन्य नाद	नाद की परिचयावस्था	
४.	वैणव नाद एवं वीणानाद	नाद की निष्पत्ति अवस्था	रुद्रग्रन्थिभेदन।

क्वणक नाद (आरम्भावस्था)— भेरी का नाद (घटावस्था)— मर्दल नाद (परिचयावस्था)— वैणव एव तन्त्री नाद— निष्पत्त्यवस्था (राजयोग)।

सुषम्ना में प्राणों के लय से आविर्भूत अनाहत नादों के प्रकार— स्वात्माराम मुनीन्द्र ने हठयोगप्रदीपिका में बारह नादों का क्रम इस प्रकार बतलाया है—

नादानुसन्धान जन्य नादक्रम

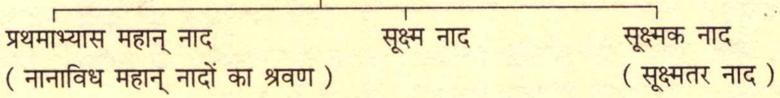

नादक्रम[1]

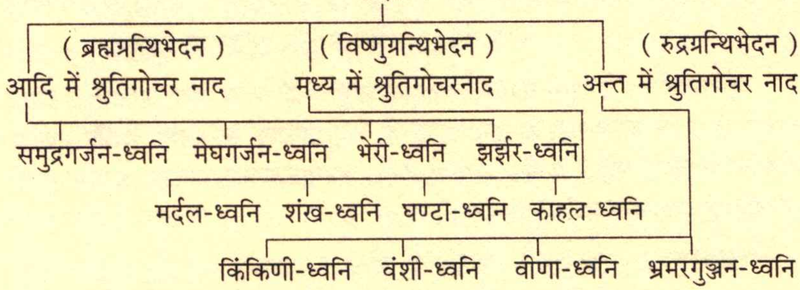

इसी को निरूपित करते हुये हठयोगप्रदीपिका में कहा भी गया है—

आदौ जलधिजीमूतभेरीझर्झरसम्भवा:।
मध्ये मर्दलशङ्खोत्था घण्टाकाहलजास्तथा।
अन्ते तु किङ्किणीवंशवीणाभ्रमरनि:स्वना।।

---

१. हठयोगप्रदीपिका

शिवसंहिताप्रोक्त नाद-विधान एवं नाद-क्रम

(प्रथमो ध्वनिः)			
प्राथमिक नाद →		मध्यवर्ति नाद →	अन्तिम नाद
मत्तभ्रमरगुञ्जार-सदृश नाद	वंशनाद (वीणानाद)	घण्टानाद	मेघगर्जनसदृश भीषण नाद

मत्तभृङ्गवेणुवीणासदृशः प्रथमो ध्वनिः।
घण्टानादसमः पश्चाद् ध्वनिर्मेघो रवोपमः।। (शिवसंहिता)

हठयोगप्रदीपिकानिर्दिष्ट विधान—

अवस्थाद्वय

आरम्भावस्था	घटावस्था
अनाहत चक्र में स्थित—	विशुद्धाख्य चक्र में स्थित—
१. ब्रह्मग्रन्थि का (प्राणायामाभ्यास से) भेदन— आनन्दाविर्भाव।	१. घटावस्था में प्राणवायु अपने साथ अपान, नाद एवं बिन्दु इन सभी को एकीकृत करके कण्ठ-स्थान में स्थित मध्यचक्र में पहुँच जाता है।
२. शून्यसम्भव (हृदयाकाशरूप शून्य में उत्पन्न)।	२. इसमें विष्णुग्रन्थि का भेदन होने के साथ-साथ परमानन्द का आविर्भाव होता है, जो कि ब्रह्मानन्द है।
३. विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः। क्वणक— 'भूषणानान्तु शिञ्जितम्। निक्वाणो निक्वणः क्वाणः क्वणः क्वणनमित्यपि।' (अमरकोषः)	३. यहाँ कण्ठाकाश (अतिशून्य) में विमर्द एवं भेरीनाद श्रुतिगोचर होता है।

'शून्यसम्भवः' में शून्य का अर्थ हृदयाकाश ही क्यों ग्रहण किया जाता है? इसका तात्पर्य यह है कि हृदयाकाश का नाम 'शून्य' है, विशुद्धाकाश 'अतिशून्य' है और भृकुटि-मध्य का आकाश महाशून्य है। कहा भी है— 'हृदयाकाशविशुद्धाकाश-भ्रूमध्याकाशाः शून्यातिशून्यमहाशून्यशब्दैर्व्यवह्रियन्ते।' (ज्योत्स्ना : ब्रह्मानन्द)

घटावस्था— प्राणापानौ नादबिन्दू जीवात्मपरमात्मनोः।
मिलित्वा घटते यस्मात्तस्मात्स घट उच्यते।।

यह प्राणवायु, अपानवायु, नाद, बिन्दु, जीवात्मा एवं परमात्मा— इन सबों को मिलाकर घटित होती है, इसीलिये इसे 'घटावस्था' कहा जाता है।

परिचयावस्था— आज्ञाचक्र में स्थित—

१. भृकुटिद्वय के मध्य स्थित महाशून्य या भ्रूमध्याकाश में संयम करने से अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

२. इस आकाश में मर्दल (ढोलक) की ध्वनि श्रुतिगोचर होती है।

३. इस अवस्था में प्राण भ्रूमध्य में पहुँच जाता है।

तृतीयां तु विज्ञेयो विहायो मर्दलध्वनिः (विहायः विहायसि = भ्रूमध्याकाश में)।

४. महाशून्यं तदा याति सर्वसिद्धिसमाश्रयम्।

५. चित्तानन्द के त्यागपूर्वक सहजानन्द का आविर्भाव (सहजानन्दसम्भवः)।

निष्पत्त्यवस्था— आज्ञाचक्र में स्थित रुद्रग्रन्थि का भेदन करके शर्वपीठ (ईश्वर के पीठ) में प्राणों के लीन करने से—

१. निष्पत्ति अवस्था में प्राण ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है।

२. ब्रह्मरन्ध्र में प्राण के प्रवेश करने पर वेणु एवं वीणा की ध्वनि के समान नाद श्रुतिगोचर होता है—

निष्पत्तौ वैणवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत्। (हठयोगप्रदीपिका)

३. इस दशा में विषय एवं विषयी में ऐक्य हो जाता है; अतः यह दशा 'राजयोग' होती है।

वैखरी वाक्— नटनानन्द चिद्वल्ली में कहते हैं कि वैखरी वाक् परा वाक् का ही एक भावित रूप है, क्योंकि वह परा वाक् के त्रिभाविताकारा में से एक आकार है। उसका स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में चिद्वल्लीकार कहते हैं कि 'सैव वैखरी नाम अभिलपनरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकतान्त्रिकशब्दजालात्मिका शक्ति-रुच्यते।'

वाक् तत्त्व एवं श्रीचक्र में सामरस्य

'सुभगोदयवासना' के अनुसार—

१. परा वाक् = बीजोत्पादन की भूमि।

२. पश्यन्ती वाक् = गुच्छसमुद्भवा वल्ली।

३. मध्यमा वाक् = सौरभ (पुष्प का परिमल)।

४. वैखरी वाक् = अक्षमाला।

परा भूजन्म पश्यन्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।।

'कामकलाविलास' के अनुसार मातृकाओं एवं श्रीचक्र में सामरस्य है— चक्रतां याता।

चिदानन्दवासना के अनुसार—

विवक्षाव्यवसायोक्तिरूपा एतास्त्रिमातरः।
पश्यन्त्यादिमहादेव्याः स्वरूपा नात्र संशयः।।

परा को जो 'त्रिमातृकात्मिका' कहा गया है, उसकी तीन मातृकायें— पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी ही हैं।

श्रीचक्र त्रिखण्डात्मक है और परा वाक् त्रिमातृकात्मक है। इन दोनों में ऐक्य है—

'त्रिखण्डात्मकचक्रैक्यम्।' त्रिमातृकाओं एवं श्रीचक्र की त्रिखण्डात्मकता में सामरस्य है।

वाक्तत्त्व एवं श्रीचक्र में सामरस्य

'नटनानन्दनाथ' के अनुसार त्रैलोक्यमोहन, सर्वानन्दमय, बैन्दव आदि नव आवरणात्मक श्रीचक्र (जो कि भगवती सुन्दरी का अधिष्ठान है) और उसके अधिष्ठाव्य भगवती सुन्दरी में लेशमात्र भी भेद नहीं है; बल्कि उनमें सामरस्य है— 'चक्रस्य .... सुन्दर्य-धिष्ठानभूतस्य महेश्या: तदाधिष्ठाव्या: सुन्दर्याश्च भेदलेश: ईशद्भेदोऽपि बुधैर्विशेषज्ञै: न भाव्यते नानुभूयते।'

उपनिषदों में इसका प्रमाण इस प्रकार है—

महत्तरा महिमा देवतानां नवयोनिर्नवचक्राणि दीधिरे। नवैव योगा: नवयोगिनीश्च नवानां चक्राणामधिनाथस्योनातवमुद्रानवभद्रामहीनं एका आसीत्, प्रथमा सा नवासीत्।

'वामकेश्वरतन्त्र' के अनुसार—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भव: ।।

एतच्चक्रावतारं तु कथयामि वरानने।
यथा सा परमा शक्ति: .... ।।

से प्रारम्भ करके— 'चक्रं कामकलारूपप्रसारपरमार्थ:' पर्यन्त वाक्यों द्वारा अभेदात्मकता का ही प्रतिपादन किया गया है।

'क्रोधभट्टारक' ने भी कहा है—

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोशमथितं संसारचक्रात्मकम्।

अन्य प्रकार के सामरस्य या अभेद

शब्द की जागरावस्था— शब्द का घोषात्मक एवं अघोषात्मक बाह्य व्यवहार ही उसकी जागरावस्था है। पर-श्रूयमाण शब्द सघोष एवं मात्र स्वयं-श्रुत या अघोष शब्द उपांशु हैं। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (अध्याय-१. वि०) में कहा गया है कि 'उपगता: स्व-समीपमेव प्रविष्टा अंशव: प्रसरा यस्य स उपांशु:।'

जागृतावस्था में सघोषात्मक एवं अघोषात्मक वाग्व्यापाररूप शब्दानुविद्धता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। इसे ही स्थूल शब्दवृत्ति या वैखरी वाक् कहते हैं।

विखर (शरीर) में समुद्भूत एवं शरीरेन्द्रियपर्यन्त चेष्टानिष्पादिका वाणी ही वैखरी वाक् है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहा भी है— 'विखर: शरीरं, तत्र भवा तत्पर्यन्त-चेष्टासम्पादिका।'

'अभिनवगुप्तपादाचार्य' ने अपने तन्त्रालोक में वैखरी के तीन भेद किये हैं— स्थूल वैखरी, सूक्ष्म वैखरी एवं पर वैखरी।

स्फुट वर्णों के जन्म का जो कारण है, उसे स्थूल वैखरी कहते हैं; साथ ही पद, वाक्य आदि स्थूल वैखरी के कार्य हैं। तन्त्रालोक (तृ० आ०- श्लोक-२४६) में वे कहते भी हैं— 'या तु स्फुटानां वर्णनामुत्पत्तौ कारणं भवेत्' सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादिभूयसा।।

अभिनवगुप्तपाद तन्त्रालोक (श्लोक-२४७) में कहते हैं कि विवक्षात्मक अनुसंधान को सूक्ष्म वैखरी कहते हैं। अनुपाधिमान चिदात्मक स्वरूप ही वैखरी वाक् का पर रूप है। वैखरी को 'क्रियाशक्ति' भी कहा गया है। यद्यपि अस्फुट क्रियाशक्ति अपनी बीजा-वस्था (परमा कला) में रहती है, किन्तु वह इस स्तर पर (वैखरी अवस्था में) स्फुट रूप ग्रहण करती है।

वैखरी का मूल मध्यमा एवं मध्यमा का मूल पश्यन्ती है, किन्तु पश्यन्ती का भी कोई मूल है और वह मूल शब्दवृत्ति है, परा वाक् है। वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार परा वाक् जब स्वनिष्ठ स्फुरत्ता का ईक्षण करती है, तभी विश्वचक्र का उदय होता है। नित्याषोडशिकार्णव (६ वि०) में कहा भी गया है—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

इस परमा शक्ति का ईक्षण त्रिरूपात्मक है—

ईक्षण → इच्छा → ज्ञान→ क्रिया या **ईक्षण** = शक्तित्रयात्मक

इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति

भास्कर राय की दृष्टि— भास्कर राय सेतुबन्ध (टीका) में ईक्षण की व्याख्या करते हुये कहते हैं कि श्रुति में जो यह कहा गया है कि 'तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेय' इसमें 'ईक्षण' पद के साथ 'बहु स्याम्' शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि बहुत्व के आकार-ग्रहण के पूर्व ही बहुस्यां की वृत्ति में इच्छा-ज्ञान दोनों अनुस्यूत हैं अर्थात् परमात्मा के एक से बहुत होने की इच्छा में सूक्ष्म इच्छा, सूक्ष्म ज्ञान एवं सूक्ष्म क्रिया— तीनों ही अनुस्यूत हैं— 'वस्तुतस्तुं 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतावीक्षणस्य बहु-स्यामित्याकारकताप्रदर्शनात्प्राथमिकी वृत्तिरिच्छाज्ञानोभयरूपा।'[१]

आचार्य अभिनवगुप्त भी स्वीकार करते हैं कि क्रिया विमर्शात्मिका होती है और वह संवेदन का आश्रय लेने के कारण ज्ञान की पूँछ है।

'वैखरी वाक्' के सम्बन्ध में आचार्य अभिनवगुप्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (अ० १, वि० १) में इस प्रकार कहते हैं—

१. सा हि क्रिया मूलभूमौ संवेदनमेव अवलम्बते विमर्शरूपत्वात्।

---

१. सेतुबन्ध (भास्करराय)

२. तथैव परं प्रति जिज्ञापयिषु: प्राणे स्फुटीभूता वैखरी शरीरे तु स्पनदनरूपा क्रिया। इयति च सर्वत्र विमर्शरूपतैवानुगता। अतएव ज्ञानस्यैव क्रिया पुच्छभूता।

३. विमर्शरूपानधिकस्वभावा हि समस्ता क्रियेत्युक्तम्।

वैखरी वाक् को रौद्री शक्ति क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि वैखरी वाक् स्थूल वाक्, कारणबिन्दु, कार्यबिन्दु, मूल नाद, अंकुर आदि स्तरों का अतिक्रमण करके अपने बिन्द्वात्मक स्वरूप में परावर्तनात्मक संहारावस्था की बोधिका है।

वैखरी वाक् है क्या? उसका मूल स्वरूप क्या है? इसका समाधान यह है कि वस्तुत: प्रकाशांशरूपा रौद्री एवं विमर्शांशरूपा क्रिया शक्ति का संयोग ही वैखरी वाक् है।

रौद्री + क्रिया शक्ति (प्रकाशांश + विमर्शांश) = वैखरी।

शृङ्गाट वपु— वैखरी वाक् के स्तर पर ही विश्वचक्रक त्रिकोण का आकार ग्रहण करने से वैखरी उज्ज्वल शृंगाट वपु (श्वेत सिंघाड़े का शरीर = सिंघाड़े के आकार वाली) कही गई है। योगिनीहृदय में कहा भी गया है—

तत्संहतिदशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता।।
प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।

सौभाग्यभास्कर में भास्कर राय मखिन भी कहते हैं कि 'अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपपरं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टतर-प्रकाशरूपबीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते।'

बिन्दु, नाद एवं बीज (चिन्मात्रतत्त्व के विचिकीर्षु होने के परिणामस्वरूप (घनी-भूत होने पर) बिन्द्वाकार ग्रहण करने पर काल द्वारा भिद्यमान होकर बिन्दु, नाद एवं बीज बन जाता है— शंकराचार्य की यही दृष्टि है) की त्रयी में वैखरी वाक् बीज है।

परा वाक्स्वरूप शब्दब्रह हृदय से मुखपर्यन्त (वायु के द्वारा कण्ठादि स्थानों में) अभिव्यक्त होकर अकारादि वर्णरूप ग्रहण करके श्रोत्रग्राह्य स्पष्टतर एवं प्रकाशस्वरूप बन कर स्थूल भाव ग्रहण कर लेता है। विराट् पुरुष एवं स्थूल वैखरी वाक् में तादात्म्य भी है। इसी विचार को आचार्य भास्कर राय ने सौभाग्यभास्कर में अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

'ननु शब्दार्थयोस्तादात्म्यस्यैव शक्तिपदार्थत्वान्निर्गुणस्यापि ब्रह्मण: शब्दब्रह्माभिन्नत्वेन किमिति तत्र सत्यादिशब्दानां लक्षणेत्याशङ्क्य वैखर्यात्मकपदानां विराट्पुरुषेणैव सह तादात्म्येन शुद्धब्रह्मतादात्म्यं नास्त्यैवेति समाधित्सया वाचं विभजते।'

पद्मपादाचार्य ने प्रपञ्चसारतन्त्र की टीका में कहा है कि—

१. विशेषेण खरत्वात् वैखरी।

२. अथ विराड्रूपिणी बीजात्मिकां हृदयाद्यस्यान्तमभिव्यज्यमानां शब्दसामान्यात्मिकां वैखरीमाह वक्त्र इति।

आचार्य शंकर प्रपञ्चसारतन्त्र (द्वितीय पटल) में कहते हैं कि पवनप्रेरित वर्णसंघ मुख एवं उसके उच्चारण-स्थानों से अभिव्यक्त होने पर वैखरी कहा जाता है—

वक्त्रे वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा।
बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः।।

कामकलाविलास की टीका में कहा गया है कि वैखरी वाक् अभिलापात्मक है और वह पञ्चदशाक्षरराशिमय है तथा सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिक शब्दों की आत्मा है— 'वैखरी नाम अभिलापरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकलौकिकशब्दनात्मिका शक्तिरित्युच्यते।'

अभिलाप का अर्थ है— वर्णात्मक शब्द। अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि आन्तर शब्दात्मक सञ्जल्प ही 'अभिलाप' है— 'अभिलक्ष्यते आभिमुख्येन विषयिविषयपर-वशतात्यागेन बोधस्वातन्त्र्ये शब्देन च विषयस्य तादात्म्यापादनेन व्यक्ततया प्रमातृसाक्षात्कार-पर्यन्ततया उच्यते परामृश्यते येन सोऽभिलापः आन्तरशब्दलक्षणः सञ्जल्पः।'[1]

बौद्ध आचार्य धमकीर्ति की दृष्टि में अभिलाप बाह्य एवं चिन्तनसंवलित वाग्व्यापार है।

भर्तृहरि की दृष्टि में जब पदार्थस्वरूप शब्द के द्वारा एकीकृत जैसा प्रतीत होता है तब वह 'अभिजल्प' कहलाता है—

सोऽयमित्यभिसम्बन्धादूपमेकीकृतं यदा।
शब्दस्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते।।[2]

वैखरी और पञ्चदशी मन्त्र— चिद्वल्ली में आचार्य नटनानन्द ने वैखरी वाक् को पञ्चदशी मन्त्र से एक्रीभूत माना है। वैखरी वाक् तो वर्णमालारूपात्मक होने के कारण इक्यावन अक्षरों वाली है, किन्तु आचार्य भास्कर राय ने भी इसे पञ्चदश्यात्मक ही माना है। उनका कथन है कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी के तीन रूप हैं, जो कि स्थूल, सूक्ष्म एवं पर के नाम से जाने जाते हैं। इन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है—

सुन्दरी के तीन रूप

स्थूल रूप	सूक्ष्म रूप	पर रूप
(कर-चरण आदि से युक्त साकार स्थूल रूप)	(भगवती का मन्त्रात्मक या मन्त्रमय स्वरूप)	(वासनारूपात्मक स्वरूप)

सूक्ष्म	सूक्ष्मतर	सूक्ष्मतम
पञ्चदशाक्षरी विद्या	कामकला	कुण्डलिनी शक्ति

१६ चान्द्र, २४ सौर एवं १० आग्नेय कलाओं से युक्त : ५० कलाओं रूपी मातृकाओं से युक्त।

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी- वि. अ. २ वि० २।

२. वाक्यपदीयम्।

५० कलायें, ५० मातृकायें पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में ही अन्तर्भूत है। १५ अक्षरों वाले पञ्चदशी मन्त्र से ५० मातृका वर्णों का भी ग्रहण हो जाता है।[१]

पञ्चदशाक्षरी विद्या

(खण्डत्रय)

सूर्यात्मक	अनलात्मक	सोमात्मक
सूर्यखण्ड	अग्निखण्ड	चन्द्रखण्ड
सौरखण्ड	आग्नेय खण्ड	सौम्य खण्ड

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

▼

१. आचार्य पुण्यानन्द ने भी वैखरी वाक् को पञ्चदशाक्षरमयी कहा है।

तृतीय परिच्छेद

(अध्याय : १६-२२)

▼

मन्त्रतत्त्व

* मन्त्रतत्त्व *

महामन्त्र : ॐ

॥ श्रीः ॥

तृतीय परिच्छेद

मन्त्र-तत्त्व

अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात् त्वं तु पञ्चदशाक्षरी।। (चिदम्बररहस्यम्)

इति कामकला विद्या देवी चक्रक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपा।।

(कामकलाविलास)

मननात्त्राणधर्माऽसौ मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः। (सङ्केतपद्धति)

शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः।। (योगिनीहृदयम्)

सैषा षोडशी 'श्रीविद्या' पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुरसुन्दरी बालाम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयं वरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा-धूमावती-सावित्री-सरस्वती-गायत्री-ब्रह्मानन्दकलेति।। (भावनोपनिषत्)

सैषा परा शक्तिः। सैषा 'शाम्भवी विद्या कादिविद्ये'ति वा 'हादिविद्ये'ति वा 'सादिविद्ये'ति वा रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा।। (बह्वृचोपनिषत्)

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा एषा श्रीमहाविद्या।।

(देव्युपनिषत्)

एतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत। ततो देवी प्रीता भवति स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतै'र्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति स सर्वं' पश्यति सोऽमृतत्वं स गच्छति।। (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

चित्तं मन्त्रः। (शिवसूत्रम्)

चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वमिति चित्तम्, पूर्णस्फुरत्ता सतत्त्वप्रासाद-प्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्, तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्, अन्तर अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः। अतएव च पर'स्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता' भेदमय'संसारप्रशम-नात्मकत्राणधर्मता' च अस्य निरुच्यते।

अथ च मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्त तत्सामरस्यमाराधकचित्तमेव मन्त्रः।।

(शिवसूत्रविमर्शिनी : आचार्य क्षेमराज)

षोडश अध्याय
श्रीविद्या एवं मन्त्रतत्त्व

जिस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी कोई नारी होती है, उसे मन्त्र न कहकर 'विद्या' कहा जाता है। पञ्चदशी या पञ्चदशाक्षर मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुरमहासुन्दरी हैं; अत: उनके मन्त्र को 'मन्त्र' न कहकर 'श्रीविद्या' कहा जाता है। चूँकि यह श्रीविद्यारूप मन्त्र भगवती का वर्णात्मक या मन्त्रात्मक सूक्ष्म स्वरूप है; अत: श्रीविद्या को महात्रिपुरसुन्दरी देवता का बोधक भी माना जाता है—

सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी।
श्रीविद्या करुणानिधि: शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे।।

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

इसे मन्त्र भी कहा गया है—

भूमिश्चन्द्र: शिवो माया शक्ति: कृष्णाध्वमादनौ।
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते।
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवा:।। (ज्ञानार्णवतन्त्रम्)

ऐक्येन नादमयताविभावनं मन्त्रविषुवाख्यम्। (१.४५)

श्रीविद्याकूटावयवेषु ककारादिषून्मनान्तेषु।। (१.४९)

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

श्रीविद्या की मन्त्रात्मकता का जो सूक्ष्म विवेचन किया गया है, वह अत्यन्त गुह्य एवं रहस्यमय है। वरिवस्यारहस्यम्, कामकलाविलास, भावनोपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरतापिन्युपनिषद् आदि श्रीविद्या के ग्रन्थों में मन्त्र को १. देवतात्मक, २. नादात्मक, ३. पञ्चभूतात्मक, ४. मातृकात्मक, ५. श्रीचक्रात्मक, ६. षट्चक्रात्मक, ७. अनन्त शक्तियों द्वारा शक्त्यात्मक, ८. अवस्थापञ्चात्मक, ९. पञ्चशून्यात्मक, १०. शिवशक्त्यात्मक, ११. षट्त्रिंशदात्मक, १२. विश्वात्मक, १३. विश्वातीत, १४. कामकलात्मक, १५. सर्वसामरस्यात्मक, १६. गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि, पीठ आदि से युक्त कहा गया है—

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्।।

(कामकलाविलास)

'नक्षत्ररूपिणी विद्यापि गणेशरूपिणी।' आदि।

शून्य-भावना

रेफ, बिन्दु, रोधिनी, नादान्त एवं व्यापिका को पाँच शून्य एवं उनका स्वरूप मयूरपंख के अर्धचन्द्र के समान विभावित करना चाहिये।

तृतीय कूट के रेफ में जाग्रतावस्था की भावना करनी चाहिये।

तृतीय कूट के हृल्लेखा में स्वप्नावस्था की भावना करनी चाहिये।

तृतीय कूट के बिन्दु में सुषुप्ति की भावना करनी चाहिये।

नाद की अवस्था (चैतन्य की उदयकारिणी अवस्था) = तुरीयावस्था।

अर्धचन्द्र एवं आगे के तीन वर्ण = तुरीयावस्था।

आनन्दैकघन, वाण्यातीत अवस्था = तुर्यातीतावस्था। इसमें नादान्त आदि पाँच वर्णों की भावना करनी चाहिये। शून्यत्रय से परे महाशून्य है।

नादभावना

प्राण + आत्मा + मन का संयोग → 'प्राणविषुव।'

प्रथम कूट के नाद, अनाहत से ब्रह्मरन्ध्र तक व्याप्त नाद एवं चारो बीज तथा आत्मा की नादमयी विभावना → 'मन्त्रविषुव।'

मूलाधारोत्थ एवं ब्रह्मरन्ध्र तक व्याप्त नाद, जो कि षट्चक्रों की बारह ग्रन्थियों को सुषुम्ना के मार्ग से भेदित करता है— 'नाडी विषुव।'

ऐसे नाड़ीगत नाद एवं वर्णों का संयोग—

रेफ, कामकला (ई) बिन्दु से आरब्ध एवं ह्रीं के नादान्त तक व्याप्त सूक्ष्मतर नाद का शक्ति में विलय → 'प्रशान्तविषुव।'

शक्ति के साथ लीन नाद की भावना को समना में लीन करना → 'शक्तिविषुव।'

उक्त नाद की भावना उन्मनी में करना— नाद → तत्त्वज्ञान + शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति → 'कालविषुव।'

(अ) मन्त्रतत्त्व

सर्वोच्च मन्त्र मन्त्रराज है—

श्रीमन्त्रराजसदृशो यथा मन्त्रो न विद्यते। (ललितासहस्रनाम)

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणाम्।

अर्थात् मन्त्रों में श्रीविद्या के समतुल्य कोई मन्त्र नहीं है।

क्या मन्त्र कतिपय विशिष्ट ध्वनियों के संघात हैं या विशिष्ट क्रम में संयोजित विशिष्ट वर्णों की समष्टि हैं? क्या वे यादृच्छिक वर्ण-समष्टि की यादृच्छिक संरचनायें हैं या अर्थहीन शब्दों की निरर्थक शब्द-योजनायें-मात्र हैं? ये प्रश्न एवं शंकायें केवल

नास्तिकों ने ही नहीं; अपितु विश्व के सर्वोच्च महासिद्धों, महान् सन्तों, तत्त्वविदों एवं धर्म-सुधारकों ने भी प्रस्तुत किये हैं। सन्त कबीरदास पूछते हैं कि 'यदि राम कहने-मात्र से ही समस्त संसारी प्राणियों का उद्धार हो जाता तो 'चीनी' (खाँड़) कहने से ही मुँह भी मीठा हो जाता, 'आग' कहने-मात्र से ही पैरों में जलन पैदा हो जाती और 'पानी' कहने-मात्र से ही प्यास बुझ जाती'—

रामा कह्यां दुनिया गति पावै, खाँड कह्यां मुख मीठा।
पावक कह्यां पाव जे दाझै जल कहि त्रिषा बुझाई।। आदि

तान्त्रिकों की दृष्टि— शैव, शाक्त एवं वैष्णव तान्त्रिकों ने भी इसी के समतुल्य प्रश्न उठाये हैं, क्योंकि वे साधना में बाह्याचार एवं प्रदर्शन के विरोधी थे। उन्होंने मन्त्रादिक की जो तात्त्विक व्याख्यायें की हैं, वे पूर्णतया तार्किक एवं वैज्ञानिक हैं। श्रीविद्यासम्प्रदाय में भी ये ही अभिनव व्याख्यायें एवं मौलिक स्थापनायें श्रेयस्कर मानी गई हैं।

मन्त्रतत्त्व की तात्त्विक दृष्टि एवं उसका तात्त्विक स्वरूप—

महेश्वरानन्द की दृष्टि— 'महार्थमञ्जरी' नामक अपने ग्रन्थ में महेश्वरानन्द ने मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है—

मणणमयी णिअविहवे णिअसंकोए मअम्मि ताणमई।
कवलिअवीसविअप्पा अणुभूई कावि मन्तसद्दत्थो।।४९।।

अर्थात् मन्त्र निजविभव में मननात्मक है, निजसंकोचात्मक अवस्था में त्राणात्मक है तथा यह 'कवलितविश्वकल्पानुभूति' है।

आचार्य महेश्वरानन्द कहते हैं कि मन्त्रानुसन्धायकों की दो अवस्थायें होती हैं— विभव एवं संकोच। विभव का अर्थ है— पूर्णाहम्भाव (पूर्णाहन्ता) का विकास और संकोच का अर्थ है— पाशवावस्था, अपूर्णत्वाभिमान। विश्व एवं विश्वोत्तर दोनों में सामरस्य की स्थापना करते हुये जो पूर्णाहम्भावभावनात्मक विकास किया जाता है, उसी पारमैश्वर्य को 'विभव' कहा जाता है। इसमें विभव तो स्वाभाविक है, किन्तु संकोच स्वारोपित है— ऐसी विवेक बुद्धि का मनन मन्त्र का कार्य है। मन्त्र दोनों क्षेत्रों में दो भिन्न-भिन्न कार्य करता है, एक में मनन एवं दूसरे में त्राण। प्रत्यभिज्ञाहृदय में कहा भी गया है— 'सङ्कोचो विचार्यमाणश्चिदैकात्म्येन प्रथमानत्वाच्चिन्मय एव। अन्यथा तु न किञ्चित्।' प्रपञ्च के समस्त विकल्पों को कवलित करके आत्मपरामर्श की अनुभूति करना ही 'मन्त्र' है।

श्रीराजराजभट्टारक की दृष्टि— इस दृष्टि के अनुसार वर्णों के संयोजन से निर्मित मन्त्रों को ही 'मन्त्र' मानना अनुपपन्न है। नादोल्लास ही 'मन्त्र' है। जैसा कि कहा भी है—

वर्णात्मको न मन्त्रो दशभुजदेहो न पञ्चवदनोऽग्निः।
सङ्कल्पपूर्वकोटौ नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः।।

स्तोत्रभट्टारक की दृष्टि— इसके अनुसार 'मन्त्र' का स्वरूप इस प्रकार है—

चिदग्निसंहारमरीचिमन्त्रः संविद्धिकल्पान् ग्लपयन्नुदेति।

श्रीक्रमकेलि की दृष्टि— इसके अनुसार स्वयं भगवती संवित् देवी ही 'मन्त्र' हैं—

सेयमेवंविधा भगवती संविद्देव्येव मन्त्रः।

भट्ट श्रीभूपतिराज की दृष्टि— चूँकि समस्त जगत् शक्ति की क्रोड़ में स्थित है; अतः देवी ही मन्त्र हैं—

सर्वक्रोड़ीकारेण स्थितत्वाद्देव्येव मन्त्रः।

मन्त्र और मन्त्री का तादात्म्यभाव ही मन्त्रसाधना का मूल है। इसी दृष्टि से कहा भी है—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा न प्रसिद्ध्यति।।

(महार्थमञ्जरी : स्वोपज्ञ परिमल)

'आचार्य महेश्वरानन्द' स्वोपज्ञ परिमल में कहते हैं कि स्वात्मसंवित्स्वरूप को ही मन्त्र का मुख्य शब्दार्थ मानना चाहिये— 'स्वात्मसंवित्स्वरूपस्यैव मन्त्रशब्दार्थत्वं मुख्यम्।' अक्षरसन्निवेश को 'मन्त्र' कहना मात्र उपचारदृष्टि है— 'अक्षरसन्निवेशेषु पुनरुपचारेणोच्यत इत्युक्तं भवति।' इसीलिए तो कहा भी है—

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान् विदुः।
मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः।।

(महार्थमञ्जरी : स्वोपज्ञ परिमल)

अर्थात् जो मुख द्वारा उच्चारित वर्णसमष्टि 'मन्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है, वस्तुतः वह 'मन्त्र' नहीं है। मन्त्रस्वरूप के मिथ्याज्ञानात्मक स्वरूप से तो देवता एवं गन्धर्व भी भ्रम में पड़े हुये हैं।

महेश्वरानन्द कहते हैं कि वैश्वात्म्यानुभूति ही 'मन्त्र' है; अतः समस्त वाग्व्यवहार और उसका परामर्श भी 'मन्त्र' ही है— 'मन्त्रस्य च वैश्वात्म्यानुभूतिरूपत्वात् सर्वोऽपि वाग्व्यवहारस्तत्परामर्शात्मतयैवोत्पद्यते।' 'जप' जनन-पालनस्वभाव है— 'जननपालनस्वभावतया हि जप इत्युच्यते।'

मन्त्र एवं जप में गुरु, देवता एवं मन्त्र की एकता प्रधान है— 'गुरुदेवतामनूनामैक्यं सम्भावयन् धिया शिष्यः।'

मन्त्र और उसके जप की साधना का फलितार्थ— मन्त्री या जापक का 'मन्त्र' एवं 'जप्य' के साथ एकीकरण है। मन्त्र की इस साधना के उच्चतर धरातल पर अनुभूतियों के अनेक सोपान हैं; यथा—

देवी, मन्त्र एवं जगत् में अभेद की अनुभूति (मन्त्र का भावार्थ)— 'तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थः।' (वरिवस्यारहस्यम्-७३)

ब्रह्म एवं जगत् तथा जगत् एवं श्रीविद्या में अभेद की अनुभूति (मन्त्र का सम्प्रदायार्थ)— 'ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थः।'

अपने दीक्षागुरु एवं परमशिव में तथा अपने एवं परमशिव में अभेद की अनुभूति (मन्त्र का निगर्भार्थ)— 'परमशिवे निष्कलता तदभिन्नत्वं स्वदेशिकेन्द्रस्य तत्करुणातः स्वस्मिन्नपि तदभेदो निगर्भार्थः।' (वरिवस्यारहस्यम्-८२)

परदेवता, विद्या, चक्रराज, श्रीगुरु एवं अपनी अभेदानुभूति (मन्त्र का कौलिकार्थ)— 'अथ परदेवतायाः विद्यायाश्चक्रराजस्य श्रीगुरोरात्मनश्चैक्यं कौलिकार्थः।'

(भास्करराय : वरिवस्या-रहस्यम् टीका)

इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।।

भगवती कुण्डलिनी, श्रीविद्या, त्रिपुरा देवी एवं स्वयं में अभेदात्मकता की अनुभूति (मन्त्र का रहस्यार्थ)—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।

(वरिवस्यारहस्यम्-१०७)

कूटत्रयों में से प्रत्येक का अर्थ है— 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है'— इसकी अनुभूति (श्रीविद्या का सामरस्यार्थ)—'शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थः।।' (वरिवस्यारहस्यम्-१२०)

शाक्तों की अद्वैत-साधना अत्यन्त वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक नींव पर प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार 'H_2O' (हाइड्रोजन के दो परमाणु एवं आक्सीजन का एक परमाणु मिला देने पर पानी का निर्माण हो जाता है) का गणितीय सूत्र सत्य है, उसी प्रकार भगवान् शिव का यह कथन भी सत्य है कि 'जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः।' किन्तु जप तो मन्त्रों का किया जाता है और मन्त्र तो मात्र कतिपय वर्णों के संयोगमात्र हैं, फिर उनकी अनवरत आवृत्ति करने से यथाकाम फलों की निष्पत्ति कैसे सम्भव है?

महात्मा तुलसीदास की दृष्टि— तुलसीदास कहते हैं—

१. नाम और रूप— ये दोनों ईश्वर की दो उपाधियाँ हैं।

२. नाम के प्रभाव से ही भगवान् के रूप का साक्षात्कार हुआ करता है।

३. विना नाम के रूप का प्रत्यक्षीकरण भी निष्फल हुआ करता है।

४. नाम एवं रूप— दोनों की गति अकथ्य है। उनका रहस्यानुभव करने पर उनसे अतीव आह्लाद प्राप्त होता है, किन्तु उनकी आत्मनिहित शक्तियों एवं प्रभावों का वर्णन करना सम्भव नहीं है।

५. यदि बाह्य एवं आन्तर— दोनों जगतों को प्रकाशित करना हो तो अपनी जीभ-रूपी घर के देहरी-द्वार पर रामनामरूपी मणिदीप रखना चाहिये। इससे बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकाशित हो उठेंगे।

६. ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण— दोनों रूपों से श्रेष्ठतर भगवान् का नाम (मन्त्र) है।

७. ब्रह्म से बढ़कर तो कोई नहीं है, किन्तु नाम तो ब्रह्म से भी बढ़कर है।

८. भगवान् का नाम लेते ही संसाररूपी दुस्तर समुद्र सूख जाता है।

९. महान तत्त्ववेत्ता, अप्रतिम दार्शनिक, सिद्धों के भी सिद्ध एवं महान् ज्ञानी शुकदेव, सनक, सनातन, सनन्दन एवं सनत्कुमार-जैसे सिद्ध योगी एवं महामुनि नाम की कृपा से ही ब्रह्मसुख का आनन्दोपभोग करते हैं। उनकी भी साधना का मूल सम्बल नाम (मन्त्र) की साधना है। यही बात आध्यात्मिक इतिहास के कीर्तिमान या युगपुरुष— ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, हनुमान आदि के विषय में भी कही जा सकती है और परम यथार्थ तो यह है कि स्वयंब्रह्म राम भी अपने नाम के गुणों (महिमा) का वर्णन नहीं कर सकते—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।[१]

प्रश्न उठता है कि तोता भी तो राम-राम कहता रहता है तो क्या वह भी तर जाता है? कबीर कहते हैं—

नर कै सथि सुवा हरि बोले। हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जँगल में। बहुरि न सुर तै आनै।

कबीर का प्रश्न— इसीलिये कबीर प्रश्न करते हैं कि— १. यदि 'राम' कहने से ही व्यक्ति संसारसागर से तर जाता तो 'चीनी' कहने से मुख मीठा हो जाता, 'आग' कहने से पाँव जल जाते, 'जल' कहने-मात्र से प्यास बुझ जाती और 'भोजन' कहने से भूख मिट जाती। यदि ऐसा हो सकता तभी 'राम'मात्र कहने से (नाम या मन्त्र का जप करने से) सारे लोग तर जाते; किन्तु ऐसा न तो होता है और न हो सकता है। अत:— २. मैं कहता हूँ कि पण्डित लोग नाम (मन्त्र) की इस महिमा के विषय में व्यर्थ में मिथ्या वादविवाद करते हैं—

पण्डित वाद वदन्ते झूठा।
रामा कह्यां दुनियां गति पावै, खाँड कह्यां मुख मीठा।
पावक कह्यां पाव जे जाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्यां भूख जे भाजै, तो सब कोइ तिरि जाई।।

(कबीरदास : कबीर, पृष्ठ-३२०)

तो क्या तुलसीदास जी ने नाम का जो महत्त्व बताया वह मिथ्या था? नहीं। तुलसी-दास कहते हैं कि 'साधक तो वह है जो कि नाम में अपने को लयीभूत करके नाम का जप करता है और वह अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त करके सिद्ध बन जाता है।'—

१. नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।

देखिअहीं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना।।
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी।।

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर।।

उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम ते।

कहउँ नामु बड़ राम ते निज विचार अनुसार।
ब्रह्म राम ते नामु बड़ वरदायक वरदानि।।

नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं।।
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।।
साधक नाम जपहिं लय लाऐं। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए।।

अर्थात् तोतारटन्त 'राम' नाम की वह महिमा नहीं है, जो कि पहले बताई गई है। नामजप के साथ लय एवं भाव (प्रेम) आवश्यक है, किन्तु यदि प्रयास करने पर भी प्रेम (भाव) एवं लय उत्पन्न नहीं होता, लेकिन जप किया जाता रहता है तो वह जप भी भावमय ही मान लिया जाता है; क्योंकि विना भाव के नामजप का कृच्छ्र एवं प्रयत्नज प्रयास आरम्भ ही कैसे किया जायेगा? इसीलिये तुलसीदास जी ने कहा है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

तुलसीदास जिस राम (मन्त्र) का जप करते हैं वह शब्द नहीं है; प्रत्युत बीजात्मक शक्ति से संयुक्त अग्नि (रं) एवं चन्द्रमा (मं) के मणिकाञ्चन योग से निष्पन्न अचिन्त्य शक्तियों की समष्टि है—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।

तन्त्र में लिखा है कि 'रकारो अग्निबीजः स्यात् मकारश्चन्द्रबीजकः।' 'रं' अग्निबीज है और 'मं' चन्द्रबीज है। 'राम' (मन्त्र) अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा की रहस्यात्मक शक्ति-समष्टि है।

सरोरुहवज्र की दृष्टि— यदि वैज्ञानिक संधान के विना एवं रहस्यात्मक तथ्यों की अभिज्ञता के विना मन्त्र का जप किया जाता है तो सरोरुहवज्र (बौद्धसिद्धसरहपा) उसे व्यर्थ मानते हैं। वे कहते हैं—

मन्त्रजाप करने से शान्ति कभी नहीं प्राप्त हो सकती। जो दीवार गिर चुकी क्या वह कभी उठ सकती है? क्या फल देखने-मात्र से ही उसकी गन्ध प्राप्त हो जाती है?

क्या वैद्य को देख लेने मात्र से रोग दूर हो सकता है—

मन्तह मन्ते स्सन्ति ण होइ। पडिल भित्ति कि उट्टिअ होइ?
तरुकल दरिसणे णउ अगघाइ। वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ?
किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वं?

नानकदेव की दृष्टि— सिक्ख पन्थ के उद्भावक एवं संस्थापक गुरु नानकदेव तो कहते हैं कि मुझे भगवान् के नाम या मन्त्र में इतना विश्वास है कि—

यदि एक जीभ के स्थान पर मेरी लाख जीभें हो जायँ और लाख से बढ़कर बीस लाख जीभें हो जायँ तो भी मैं एक-एक जीभ से लाख-लाख बार एक परमात्मा का ही नाम जपूँगा—

इकदू जीभै लख होइ लख होवहि लख बीस।
लखु लखु गेडा आखीअहि एकु नामु जगदीस।। (जपुजी)

यदि मैं नाम का जप करूँ तभी जीवित रहूँ, किन्तु यदि मैं उसे भूल जाऊँ तो मर जाऊँ— 'आखा जीवा विसरै मरिजाउ।'

परमात्मा ही एकमात्र परम सत्य है और मात्र उसका नाम या मन्त्र ही परम सत्य है— 'साचा साहिबु साचै नाइ।'

धन्य है कागज, धन्य है वह लेखिनी, धन्य है वह मसिपात्र, धन्य है वह स्याही एवं धन्य है वह लेखक, जो परमात्मा के सत्य नाम का लेखन करता है—

धनु सु कागदु कमलधनु धनु भांडा धनु मसु।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु।।

योगिराज ज्ञानेश्वर की दृष्टि— योगी होते हुए भी ज्ञानमार्गी ज्ञानेश्वर 'मन्त्र' एवं भगवन्नाम के प्रति अत्यन्त निष्ठावान हैं। वे 'हरिपाठ' नामक अपने मराठी ग्रन्थ में कहते हैं—

हरि का नाम-भजन ही स्वर्ग है और भजनानन्दी के लिए भजन (नाम-स्मरण) अणु-अणु में सर्वत्र व्याप्त है—

ज्ञानदेवा पाठ हरि हा वैकुण्ठ। भरला घनदाट हरि दिसे।।

आशुतोष (शिव) का प्रिय मन्त्र राम नाम है। उस 'राम' नाम का तू निरन्तर यथाशक्ति जप कर। संसार का श्रेष्ठतम नाम मात्र हरिनाम (मन्त्र) है। जो इसे प्राप्त कर लेता है, उसे अज्ञान के केन्द्र द्वैत का बन्धन कभी बाधित नहीं करता। योगियों को उनकी श्रेष्ठतम कला में जो अमृतपान की अनुभूति होती है, वही आनन्दानुभूति वैष्णवों को हरिनाम (मन्त्र) के जप से होती है; साथ ही वह नाम परमात्मप्राप्ति का सबसे सुलभ साधन है—

रामकृष्ण वाचा भाव हा जिवाचा। आत्मा जो शिवाचा राम जप।।
एक तत्त्व नाम साधिती साधन। द्वैताचें बंधन न बाधिजे।।
नामामृत गोडी वैष्णवा लाधली। योगिया साधली जीवन कल।।
ज्ञानदेव म्हणे नाम हैं सुलभ। सर्वत्र दुर्लभ बिरला जाणें।।

भगवान् के नामोच्चारण से अनन्त पापों का क्षणमात्र में उसी प्रकार ध्वंस हो जाता है, जैसे कि अग्नि से सम्बन्ध होते ही तृण जल जाता है। निरन्तर जप करने वाला जापक हरिरूप हो जाता है। हरिनाम का उच्चारण ही अगाध 'मन्त्र' है—

हरिं उच्चारणीं अनंत पापराशी। जातील लयासी क्षणमात्रें।
तृण अग्निमेलें समरस झालें। तैसे नामें केलें जपां हरि।
हरि उच्चारण मन्त्र हा अगाध...।।

समस्त शास्त्र एवं वेद यही कहते हैं कि श्री नारायण का नाम ही सार है। अत: तू उनका भजन कर; क्योंकि हरिभजन-शून्य जप-तप सभी व्यर्थ है—

वेदशास्त्र प्रमाण श्रुतीचें वचन। एक नारायण सार जपा।
जप तप कर्म हरी विण धर्म। वाउगाचि श्रम व्यर्थ जाय।।

नाम के सामने तो योग, याग, क्रिया, धर्म एवं अधर्म— सभी माया हैं। यज्ञ, याग, क्रिया, धर्म— ये सभी हरिरूप हैं। हरिस्मरण के विना अन्य नियम-धर्म कुछ है ही नहीं—

योगयाग धर्माधर्म माया। गेले ते विलया हरिपाठें।
ज्ञानदेवां यज्ञयाग क्रिया धर्म। हरि विण नेम नाहीं दुजा।।

हरिनामस्मरण के विना जीवन को व्यर्थ मान कर मैंने श्रीराम-कृष्ण के नामस्मरण का मार्ग स्वीकार कर लिया है—

ज्ञानदेवा जिणें नामें विण व्यर्थ। रामकृष्णी पंथ क्रमियेला।।

ज्ञानेश्वर कहते हैं कि. मैंने अपने गुरु 'निवृत्तिनाथ' से पूछा कि 'नाम' का क्या महत्त्व है तो उन्होंने कहा कि उसकी महिमा क्या बताऊँ? भगवन्नाम (मन्त्र) तो आकाश से भी अधिक विशाल है—

ज्ञानदेव पुसे निवृत्तीसी चाउ। गगनाहूनि वाउ नाम आहे।।

कबीर की दृष्टि— कबीर को नाम-जप (मन्त्र-जप) में अटल विश्वास था। वे कहते हैं कि 'नाम' में तो इतनी शक्ति है कि वेश्या एवं सदना कसाई भी तर गये—

जो जन नाम अमल रस चाखा, तर गई गनिका सदन कसाई।।

कबीर नाम को गले का हार मानते हैं—

पायो सतनाम गरे कै हरवा।

कबीर कहते हैं कि मैं तो राम के जप में इतना तन्मय हो गया हूँ कि मेरा मन ही राम बन गया है—

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।।

जो व्यक्ति राम नाम के मन्त्र का त्याग करके अन्य मन्त्र का जप करता है वह वेश्या के उस पुत्र के समान है, जो बार-बार प्रश्न करने पर भी इसका उत्तर नहीं प्राप्त कर पाता कि मैं अपना पिता किसे कहूँ—

राम पियारा छाडि कर करै आन का जाप।
बेस्वा केरा पूत ज्यूं कहै कौन सूँ बाप?

कबीर ने तो राम नाम का इतना जप किया कि उनके जीभ में छाले पड़ गये—

जीभडिआँ छाला पड्या नाम पुकारि पुकारि।

कबीर कहते हैं कि मेरे केवल दो ही साथी हैं— वैष्णव और नाम—

मेरे संगी दोइ जणां एक वैष्णों एक नाम।।

कबीरदास भारतीय योगियों, तान्त्रिकों, वैयाकरणों एवं मन्त्रशास्त्रियों की भाँति मन्त्र को 'नाद' (शब्दब्रह्म) मानते हुये शब्दसाधना करने का भी उपदेश देते हैं—

साधो शब्द-साधना कीजै।।

यह मन्त्र-जप की यौगिक-तान्त्रिकी दृष्टि है। इसीलिये कबीर यह अवश्य कहते है कि 'मन्त्र' जान लेने पर भी यदि मन्त्र का रहस्य न जाना जा सका तो मन्त्रजप का कोई लाभ नहीं है—

जब लग भेद न जाणिये राम कह्या तो काँइ।।

ऐसे जप से क्या लाभ?

(आ) मन्त्र-विज्ञान

क. शब्दब्रह्म, बिन्दु, महामाया एवं मन्त्र— शिवसूत्रकार ने कहा है कि चित्त ही 'मन्त्र' है— 'चित्तं मन्त्रः' एवं मन्त्र की उपासना ही मन्त्रोपासना है।

शब्दब्रह्म ही 'आदिमन्त्र' और 'महामन्त्र' है। इसे ही 'प्रणव' भी कहते हैं। शब्दब्रह्म (ॐकार) परमात्मा का नादात्मक स्वरूप है। परममन्त्र भी ॐ ही है। ब्रह्म के दो रूप हैं— शब्दब्रह्म (ॐ) और परब्रह्म। शब्दब्रह्म को अतिक्रान्त करके परब्रह्म तक पहुँचना ही साधना का लक्ष्य है। शब्दब्रह्म में है निष्णातता— परब्रह्म की प्राप्ति। ॐकार भी दो स्वरूपों वाला है— अमात्रक और समात्रक। पुनः अमात्रक भी अप्रमेय एवं अखण्ड तथा समात्रक शुद्ध एवं अशुद्ध के भेद से दो-दो स्वरूपों वाला होता है। शब्दब्रह्म ही 'परा वाक्' है ।

परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं— चिद्रूपा एवं अचिद्रूपा। अचिद्रूपा शक्ति ही 'बिन्दु' है। यही 'महामाया' भी है। यही 'चिदाकाश' या 'कुण्डलिनी' है। यही परमात्मा की 'परिग्रह शक्ति' या 'उपादान शक्ति' भी है। चिद्रूपा शक्ति परमात्मा की 'समवायिनी शक्ति' है। परिग्रह शक्ति (परमेश्वर से भिन्न) या बिन्दु में क्षोभ होता है। क्षोभ → बिन्दु में तरंगों का उत्थान। यह तरंग (बिन्दु में उठी तरंग) ही 'ज्योति' और 'नाद' के रूप में बाहर प्रकटित होती है। नाद → वाक्। ज्योति → अर्थ।

'उन्मना' अशेष विश्व के अभेद-साक्षात्कार में स्फुरित होती है। भगवान् की स्वतन्त्रभूता, नित्यसमवेता स्वरूपाशक्ति 'उन्मना' उल्लासरूपिणी परा भक्ति है। 'महामाया' समना, विकल्प, इच्छाशक्ति, विशुद्धतम मन का स्वरूप है। इस अवस्था में मननात्मक बोध तो रहता है, पर उसमें कोई विषय नहीं रहता। यह मन्तव्यहीन अविकल्प है।

अविकल्प मन के द्वारा अविकल्पात्मक शुद्ध मन का भी त्याग करना आवश्यक है। एकाग्रता का पूर्ण प्रकर्ष प्राप्त होते ही शुद्ध मन भी परित्यक्त हो जाता है। मन की इच्छा-हीन अवस्था ही विशुद्ध कैवल्य दशा है।

'महामाया' माया से ऊपर स्थित है। 'महाशून्य' के उत्तरवर्ती भूमि में अर्थात् महाशून्य के बाद महामाया का दर्शन होता है। महामाया प्रणव की अन्तिम कला है। योगियों ने इसे ही मनस्वरूप या 'इच्छाशक्ति' कहा है। इसके बाद ही 'निष्कल परमपद' है, जिसमें ॐकार परब्रह्म के साथ अभिन्नतया अवस्थित है। महामाया के गर्भ में बिन्दु से समना-पर्यन्त समस्त मन्त्रावयव स्थित हैं। 'बिन्दु' से 'समना' तक सभी अंग 'आज्ञा' से 'सहस्रार' तक फैले हैं। यह मायातीत तो है, किन्तु महामाया भी विशुद्ध विकल्प से युक्त है। यह भी बन्धनप्रद है। महामाया शुद्ध राज्य है। इसे ही समना (मन्त्र की ग्यारहवीं अन्तिम कला) भी कहते हैं।

मन एवं मन्त्र की मात्रायें— मन्त्र की मात्राओं का विवरण इस प्रकार है—

माया जगत् में मन्त्र की मात्रायें छः हैं।

मायातीत पद में मन्त्र की मात्राओं का पूर्ण योग एक है।

स्पष्ट है कि मन्त्र की कुल मात्रायें ६ + १ = ७ हैं।

मन्त्र की मात्रायें

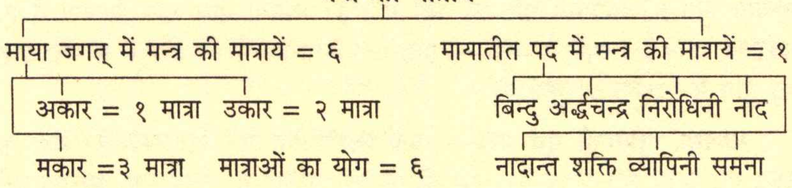

भाग्नांश इस प्रकार हैं—

१. बिन्दु— १/२ मात्रा
२. अर्धचन्द्र— १/४ मात्रा
३. निरोधिनी— १/८ मात्रा
४. नाद— १/१६ मात्रा
५. नादान्त— १/३२ मात्रा
६. शक्ति— १/६४ मात्रा
७. व्यापिनी— १/१२८ मात्रा
८. समना— १/१२८ मात्रा
९. उन्मना—

मात्रायोग = १ मात्रा

१. अकार की मात्रा— १
२. उकार की मात्रा— २
३. मकार की मात्रा— ३
(१–३) — ६ मात्रायें
४. बिन्दु की मात्रा— १/२
५. बिन्दु से समना तक के मात्रांशों को जोड देने पर १ मात्रा होती है।
समस्त मात्राओं का योग = १ मात्रा।

बिन्दु में क्षोभ → तरंगोत्पत्ति → १. ज्योति, २. नाद। नाद → वाक्तत्त्व। ज्योति → अर्थसमष्टि।

मन्त्र और मन— मात्रा से मात्राहीन में जाना ही मन्त्रसाधना है। इसीलिये मन्त्र के जप के अंगों में बिन्द्वादि— उन्मनान्त अवयवों में मन की मात्रा का सतत् न्यून होते जाना (मात्रांश-भग्नता) ही अभीष्ट है और इन अंगों में मात्रा-क्षीणता का क्रम भी है। ये ही मन की भी मात्रायें हैं। मन की जिस मात्रा से जगत् का अनुभव होता है, उसे एक मात्रा कहते हैं। १/२ मात्राओं में बिन्द्वादि उन्मनान्त ९ अवयव हैं। भग्नांश इस प्रकार हैं—

१. बिन्दु	१/२	मात्रा	५. नादान्त	१/३२	मात्रा
२. अर्धचन्द्र	१/४	मात्रा	६. शक्ति	१/६४	मात्रा
३. निरोधिनी	१/८	मात्रा	७. व्यापिनी	१/१२८	मात्रा
४. नाद	१/१६	मात्रा	८. समना	१/१२८	मात्रा

'समस्त मात्राओं का योग— १ मात्रा।'

शाब्दी वृत्तियाँ और मन्त्र— शब्द की चार वृत्तियाँ हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। वैखरी वाक् शब्द का निम्नतम स्तर है। अत: ऐसा होने के कारण इस स्तर पर की गई मन्त्रोपासना यथार्थ मन्त्रोपासना नहीं होती; क्योंकि मन्त्र नादात्मा और चिद्रश्मिमय होते हैं, किन्तु वैखरी वाक् के स्तर पर न तो 'नाद' है और न ही 'चिद्रश्मिसम्पात'। अत: यहाँ मन्त्र-साधना यथार्थ स्वरूप में प्रारम्भ ही नहीं हो सकती। 'मध्यमा वाक्' के स्तर पर जो मन्त्रोपासना की जाती है, वही 'मन्त्रोपासना' पदवाच्य है। मध्यमा भूमि को मन्त्रमयी भूमि भी कहा गया है। मध्यमा वाक् मन्त्र के रूप में ही प्रकाशित होता है । स्मृति-परिशुद्धि के द्वारा सांकर्य-परिहार वैखरी वाक् से मध्यमा वाक् की भूमि में पदार्पण का मार्ग है।

मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा— तीनों चिद्रश्मिमय एवं नादात्मक हैं। यहाँ के शब्द एवं अक्षर चैतन्ययुक्त हैं। शब्द की जो चार वृत्तियाँ हैं, उनमें परा, मध्यमा एवं पश्यन्ती— तीनों चेतन शब्दों के स्तर हैं और वैखरी जड़ शब्द का स्तर है। जड़ वाक् चेतन वाक् का साधन है— वैख़री वाक् मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा वाक् तक पहुँचने का साधन है।

जड़ शब्द (वैखरी वाक्) चेतन शब्दों (मध्यमा, पश्यन्ती, परा) के राज्य में प्रवेश कराने का एक मार्ग है। चेतन शब्द आत्मा की ही अभिव्यक्तियाँ होने के कारण 'मन्त्र'पदवाच्य हैं, किन्तु वैखरी वाक् 'जड़'शब्दात्मक होने के कारण 'मन्त्र' पदवाच्य नहीं है।

शब्द के प्रकार और मन्त्र—

शब्द के प्रकार (स्थूल से सूक्ष्म)

वैखरी	मध्यमा	पश्यन्ती	परा
(जड़)	(चेतन)	(चेतन)	(चेतन)

जड़ के द्वारा चेतन तक पहुँचना सम्भव नहीं है। इसीलिए वैखरी स्तर के जड़भाव से साधना प्रारम्भ तो की जाती है, किन्तु उसे अतिक्रान्त करके चेतनभाव में प्रवेश करने के पूर्व मन्त्रसाधना प्रारम्भ नहीं होती।

मूल मन्त्र का स्वरूप— योगशिखोपनिषद् का मत है कि समस्त मन्त्रों का मूल होने, समस्त चक्रों के आधार (मूलाधार) से उत्पन्न होने एवं मूलस्वरूप लिंग धारण करने के कारण ही इसे 'मूलमन्त्र' कहते हैं—

मूलत्वात् सर्वमन्त्राणां मूलाधारसमुद्भवात्।
मूलस्वरूपलिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः।।

जिसकी मननशक्ति से पूर्णाहन्ताभाव का आत्मा से स्फुरण होता है, जिससे जीवभाव या संसार के दुःख से रक्षा की जाती हो, उसे 'मन्त्र' कहते हैं—

पूर्णाहन्ताऽनुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मतः।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।।

मनन से, चेतना लाने के कारण, मेरे रूप के ज्ञान का कारण होने के कारण और मेरी स्थितिभूमि होने के कारण (अर्थात् शब्दब्रह्मत्व होने से) इसे 'मन्त्र' कहा जाता है—

मननात् प्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात्।
मन्त्रमित्युच्यते ब्रह्मन् ! मदधिष्ठानतोऽपि वा।।

भास्कर राय ने कामकलाक्षर को ही 'मूल मन्त्र' कहा है—

वस्तुतस्तु मूलमन्त्रशब्दाभ्यां कामकलाक्षरमुच्यते।

'मन्त्र' चित्तत्त्व की चेतन रश्मियाँ हैं—

मन्त्राश्चिन्मरीचयः।

मनन-त्राणधर्मात्मक होने के कारण भी इसे 'मन्त्र' कहते हैं।

कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

मननात्तत्त्वरूपस्य देवस्यामिततेजसः।
त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः।।

बिन्दु या महामाया तथा शब्द— भेदवादी तान्त्रिक आचार्य तीन रत्न मानते हैं— शिव, शक्ति और बिन्दु। ये तीन तत्त्व ही समस्त तत्त्वों के उपादान एवं अधिष्ठान हैं।

शुद्ध तत्त्वात्मक, कार्यात्मक शुद्ध जगत् का उपादान बिन्दु है और उसका कर्ता शिव एवं करण शक्ति है। अशुद्ध तत्त्वात्मक कार्यजगत् का आधार भी बिन्दु, कर्ता एवं करण शक्ति है।

बिन्दु का ही अपरपर्याय है— महामाया। यह बिन्दु ही शब्दब्रह्म, कुण्डलिनी, विद्याशक्ति, अनाहत और व्योम— भुवन एवं भोग्यादि के रूप में परिणत होकर शुद्ध जगत् की उत्पत्ति करता है।

बिन्दु-क्षोभ → १. शुद्ध देह, इन्द्रिय, भोग, भुवन : 'शुद्ध अध्वा' → २. शब्दोत्पत्ति।

बिन्दु-क्षोभ

- शुद्ध अध्वा
  - शुद्ध देह
  - इन्द्रिय
  - भोग
  - भुवनादि
- शब्दोत्पत्ति : मन्त्र
  - सूक्ष्मनाद
  - अक्षरबिन्दु
  - वर्ण

'सूक्ष्म नाद' अभिधेय बुद्धि का कारण एवं बिन्दु का प्रथम स्फार है— प्राथमिक प्रसार है और चिन्तनाविरहित है।

'अक्षरबिन्दु' सूक्ष्म नाद का कार्य है और परामर्शज्ञानस्वरूप है। यह मयूराण्डरसन्यायवत् अचिन्त्य एवं अनिवर्चनीय है।

'वर्ण' आकाश एवं वायु के संयोग से उत्पन्न एवं श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य ध्वनिसमष्टि वर्ण है।

कालोत्तरतन्त्र में स्थूल बिन्दु को 'शब्द', सूक्ष्म को 'चिन्तामय' एवं पर को 'चिन्ताशून्य' कहा गया है—

स्थूलं शब्द इति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत्।
चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम्।।

बिन्दु जड़ अवश्य है, किन्तु शुद्ध है। इसे ही पाञ्चरात्र आदि में 'विशुद्ध सत्त्व' आदि कहा गया है।

परमात्मा और बिन्दु महामाया : अन्तस्सम्बन्ध

प्रथम मत— परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं— समवायिनी एवं परिग्रहरूपा। समवायिनी शक्ति चिद्रूपिणी, विकारशून्या, नैसर्गिकी, अकृत्रिमा एवं अपरिणामिनी है। यही शिवसमवेता, शिवाभिन्ना 'शक्तितत्त्व' है। परिग्रह शक्ति अचेतन और परिणमन स्वभाव वाली है। इसी का नाम है— 'बिन्दु'।

बिन्दु के भी दो रूप हैं— शुद्ध और अशुद्ध। बिन्दु के शुद्ध रूप को ही 'महामाया' या 'बिन्दु' के नाम से जाना जाता है और बिन्दु का अशुद्ध रूप 'माया' कहलाता है। ये दोनों ही रूप नित्य हैं। मायोपरि तत्त्व शुद्ध अध्वा में स्थित रहता है—

महामाया → शुद्धाध्वा। माया → अशुद्धाध्वा।

द्वितीय मत— बिन्दु → शुद्धाध्वा, अशुद्धाध्वा।

महामाया (बिन्दु) की तीन अवस्थायें— परा, सूक्ष्मा, और स्थूला।

माया अनित्य है; जबकि प्रथम मत में माया भी नित्य है। माया कार्य है। बिन्दु-क्षोभ → शुद्ध जगत्, माया-क्षोभ → अशुद्ध जगत्।

बिन्दु की परावस्था ही महामाया, परामाया एवं कुण्डलिनी आदि है। यह परम कारण एवं नित्य है। सूक्ष्म एवं स्थूल बिन्दु कार्यरूप हैं; अतः अनित्य हैं। महामाया का

विक्षोभ → शुद्ध धाम, मन्त्रों (विद्यांओं) एवं मन्त्रेश्वरों (विद्येश्वरों) के शरीर, इन्द्रिय की रचना। मायातीत सृष्टि → शुद्ध सृष्टि।

महामाया का द्वितीय रूप 'माया' है। माया रूपपरिणमन कला आदि तत्त्वसमष्टि का अविभक्त स्वरूप है। माया— समस्त अशुद्धाध्वा। 'महामाया' का तृतीय विकास 'प्रकृति' है, जो कि त्रिगुणरूपा है।

बिन्दु शिव-समवेत नहीं है। बिन्दु परिणामी एवं जड़ है। चिद्रूप परमात्मा से बिन्दु का समवाय सम्बन्ध नहीं है।

कतिपय भेदवादी तान्त्रिक परमात्मा के साथ बिन्दु का समवाय सम्बन्ध मानते भी थे (बिन्दुसमवायवादी थे); उनके मतानुसार परामात्मा की शक्तियाँ होती हैं—

दृक् शक्ति = ज्ञान शक्ति। एवं क्रियाशक्ति = कुण्डलिनी = बिन्दु।

माया बिन्दु से पृथक् है। यह शिवसमवेता भी नहीं है।

बिन्दु-क्षोभ → शुद्ध जगत्। माया-क्षोभ → अशुद्ध जगत्। अम्बा, ज्येष्ठा, रौद्री, वामा शक्तियाँ समस्त शक्तियों का कारण अवश्य हैं; परन्तु ये भी मातृका (शब्द) से सम्बद्ध हैं।

१. परा वाक् ही परा शक्ति— द्वैतमत में 'परा वाक्' बिन्दु की वृत्तिविशेष है। बिन्दु शुद्ध होने पर भी जड़ है। अद्वैतमत के अनुसार परा वाक् परमेश्वर की स्वतन्त्र शक्ति है। वह चिद्रूपा शक्ति है। परमात्मा की यह शक्ति अद्वैतमत में वाक्रूपा है। इसकी परावस्था 'पूर्णाहन्ता' है। इसका स्वरूप महामन्त्रात्मक है। इसके गर्भ में ही अकार से क्षकारपर्यन्त समस्त शक्तिचक्र स्थित है।

मन्त्र का (वाक् का) शक्ति से तादात्म्य सम्बन्ध है। वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार—
प्रकाश (शिव) के ४ अंश हैं— अम्बिका, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री।
विमर्श (शक्ति) के ४ अंश हैं— शान्ता, इच्छा, ज्ञान, क्रिया।

२. मन्त्रसाधना ही शक्तिसाधना— अम्बिका और शान्ता की सामरस्यावस्था में (शान्ताभावापन्ना) 'परा वाक्' नाम से परा शक्ति स्थित है। यह आत्मस्फुरण की अवस्था है—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

आत्मस्फुरण की अवस्था = समग्र विश्व बीजरूप में (अस्फुटरूप में) आत्मसत्ता में वर्तमान रहता है। शान्ता से इच्छा का उदय → अव्यक्त विश्व का उदय (विश्वशक्ति की कुक्षि में जगत् का जन्म)। तब इच्छाशक्ति का वामा शक्ति से तादात्म्यप्राप्ति → 'पश्यन्ती वाक्'। फिर ज्ञानशक्ति का आविर्भाव (ज्ञानशक्ति ज्येष्ठा के साथ एकाकार है और 'मध्यमा' के नाम से प्रसिद्ध है)।

जिस समय परा शक्ति अपने स्फुरण को देखती है, उस समय अम्बिकारूप प्राप्त करके 'परा वाक्' कहलाने लगती है। क्रिया शक्ति रौद्री शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्त करने पर 'वैखरी' कहलाने लगती है। सारांश यह है कि वाणी का प्रत्येक रूप और मन्त्र का प्रत्येक अंश शक्ति ही है— परा शक्ति का रूपान्तरमात्र है।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी परस्पर मिलकर 'मूल त्रिकोण' या 'महायोनि' का निर्माण करते हैं। शान्ता और अम्बिका का सामरस्य अर्थात् परा वाक् ही इस त्रिकोण का बिन्दु या केन्द्र है। मूल त्रिकोण या महायोनि और ४ वाणियाँ निम्नवत् हैं—

१. त्रिकोण का बिन्दु = केन्द्र = 'परा वाक्'।

२. त्रिकोण की वाम रेखा = 'पश्यन्ती'।

३. त्रिकोण की दक्षिण रेखा = 'वैखरी'।

४. त्रिकोण की सरल रेखा = 'मध्यमा'।

मन्त्र परा शक्ति की अचिन्त्य शक्तियों का केन्द्र है और देवीस्वरूप है। मन्त्र की साधना ही शक्ति की साधना है। शक्ति का उदय वैखरी में नहीं होता और मन्त्रोदय भी वैखरी स्तर पर नहीं होता।

वैखरी वाक् में चिदंश आच्छन्नप्राय रहता है; जबकि अन्य तीनों स्तरों पर उदग्र एवं उन्मिषित रहता है। वैखरी वाक् की भूमि में मनोमय, प्राणमय एवं अन्नमय कोशों की ओर आकर्षण रहता है। मन एवं प्राण की क्रिया से समन्वित स्थूल देह के प्रति आकर्षण होने से इस स्तर पर देहात्मबोध भी प्रबल रहता है।

मध्यमा के स्तर पर नादात्मक चिद्रश्मि नित्य रहती है। वैखरी वाक् के स्तर पर ये रश्मियाँ दृष्टिगत नहीं होतीं। वैखरी से इनके उन्मिषित होने पर ये उज्ज्वल आलोक के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु इनके साथ भी चिदनुसन्धान नहीं रहता।

मध्यमा भूमि में उत्थान के लिए गुरुशक्ति, स्वकीय प्रयत्न एवं जप— तीनों आवश्यक हैं।

१. वैखरी भूमि में लक्ष्य बाह्योन्मुख, निम्नाभिमुख या मूलाधारोन्मुख रहता है।

२. मध्यमा भूमि में लक्ष्य अन्तरोन्मुखी या ऊर्ध्वमुखी रहता है। अतः यह सहस्रारोन्मुखी या गुरुधामोन्मुखी रहता है।

भावना के साथ जप मध्यमा भूमि में प्रवेश का उत्कृष्ट साधन है।

मध्यमा = मध्यवर्ती : एक ओर वैखरी एवं दूसरी ओर पश्यन्ती और उनके मध्य में स्थित है— मध्यमा (व्यक्ताव्यक्त वाक्)।

१. पाशव वाक् 'वैखरी' (प्रारम्भ में)	२. मध्यमा (मध्य में स्थित)	३. दिव्य वाक् पश्यन्ती (अन्त में)	४. परदिव्य वाक् : परा वाक् (शब्दब्रह्म) (सबके अन्त में)

पाशव वाक् वैखरी वाक् है। इस लौकिक शब्द में चैतन्य रश्मि प्रच्छन्न रहती है, जबकि मध्यमा वाक् में यह प्रस्फुट रहती है।

शब्दावस्थायें

परा पश्यन्ती मध्यमा

१. स्फुटचैतन्यात्मिका
(प्रस्फुट चैतन्य से युक्त)
२. प्रस्फुट नादात्मता से युक्त
३. अनन्त आकाश में व्याप्त
४. मूलत: बीजात्मक
५. बीज बिन्दुरूपी केन्द्र में
नित्यावस्थित रहता है।

शब्द : अव्यक्त एवं व्यक्ताव्यक्त

मध्यमा वाक् (व्यक्ताव्यक्त के मध्य स्थित)
पश्यन्ती वाक् (अव्यक्त)
परा वाक् (अव्यक्त)

वैखरी

अस्फुटचैतन्यात्मिका
(प्रच्छन्न चिदंश भाववाली)
१. स्फुट
२. नादहीन
३. बाह्योन्मुखी
४. पाशव वाक् से सम्बद्ध
५. अनित्य
६. देहात्मभावोन्मुखी
७. मूलाधारोन्मुख
८. निम्नाभिमुखी
(वैखरी वाक्)

मन्त्र चिद्रश्मिमय है। वैखरी वाक् में चिद्भाव गुप्त रहने के कारण इसके वर्णों में मन्त्रमयता नहीं होती। मन्त्रात्मता से शून्य वैखरी वाक् भी मन्त्रमय चिद्रश्मि का वाचक होने के कारण मन्त्रमय मान ली जाती है— इसके अक्षरों से निर्मित स्थूल विद्या भी 'मन्त्र' मान लिया जाता है— 'मन्त्राश्चिन्मरीचय:। तद्वाचकत्वाद्वैखरीवर्णविलासभूतानां विद्यानां मननात्त्राणता।'

पश्यन्ती वाक्
(आत्मा की अमृत कला)

→ १. देवताओं का प्रकाशन
→ २. विष्णु के परम पद का भी दर्शन
→ कारणस्थ चैतन्य की स्फूर्ति देवस्वरूप।
→ ऋषित्व की प्राप्ति— ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:।
← विन्देम देवतावाचममृतामात्मन: कलाम्।

परा वाक् = चिन्मय, परमाव्यक्त, ऊपर से नीचे तक सर्वत्र व्याप्त, समष्टि देवतात्मक। सहस्रार से मूलाधार तक प्रसृत।

३. मन्त्र ही सृष्टि का आदि, मध्य एवं अन्त— ॐकार से ही समस्त सृष्टि का उद्भव हुआ है, उसी में सृष्टि संस्थित है और लयोपरान्त उसी में चिरविश्रान्ति प्राप्त कर लेती है; अत: मन्त्र सृष्टि का आदि, मध्य एवं अन्त सभी कुछ है। मन्त्र विश्वमय, विश्वातीत एवं ब्रह्मस्वरूप है।

परमात्मा के दो रूप हैं— शब्दब्रह्म और परब्रह्म। इनमें से शब्दब्रह्म महामन्त्रात्मक है। यह शब्दब्रह्म ही अवरोहणक्रम में परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी बन जाता हैं। वैसे तो परा वाक् ही 'शब्दब्रह्म' है, किन्तु वाक् के रूप में उसे 'परा वाक्' कहना ही समीचीन होगा। वाणी के चार रूपों का उल्लेख वेदों में भी किया गया है—

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति।।

शब्दब्रह्म और मन्त्र— यदि 'मन्त्र' शब्दब्रह्मरूप आदि मन्त्र के ही प्रस्फुरण हैं और समस्त वर्णसमष्टि ब्रह्म का ही रूपान्तर है तो प्रत्येक मन्त्र अपने मूलस्वरूप में ब्रह्मात्मक, चिदात्मक, अनन्त शक्तिगर्भित, अविनश्वर, अनन्त देवी-देवताओं से युक्त, विश्वमय एवं विश्वातीत, शक्त्यात्मक, सच्चिदानन्द-रूपात्मक, नादात्मक, आत्मस्वरूप, नित्य, पञ्चविध कृत्यनिष्पादक, सृष्टि का मूल— आधार-स्थिति एवं लय का अधिष्ठान और अन्ततः परब्रह्म के साथ सामरस्य प्राप्त करके उसमें अभिन्नतया अवस्थित होने वाला तत्त्व होना चाहिए।

शास्त्रकारों ने इन लक्षणों एवं विशेषताओं को मन्त्र में स्थित पाया भी है।

शब्दब्रह्म की परा गति परब्रह्म में लय है; अतः प्रत्येक मन्त्र की भी परा गति परब्रह्म में लय ही होनी चाहिए, क्योंकि—

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

प्रत्येक मन्त्र के आदि में ॐ लगाया जाता है। चूँकि ॐ परमात्मा का ध्वन्यात्मक (नादात्मक) स्वरूप है; अतः प्रत्येक मन्त्र अपने विशुद्ध स्वरूप में ध्वन्यात्मक एवं नादात्मक रूप में ही अवस्थित रहता है और अपनी इस अवस्था में वे शब्द-समष्टि नहीं; प्रत्युत ब्रह्म होते हैं।

सृष्टिक्रम एवं लयक्रम— दोनों में शब्दतत्त्व परात्पर तत्त्व है। वह पञ्चभूतों एवं पञ्चभूतात्मक सृष्टि का अधिष्ठान है; क्योंकि लयक्रम में— पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का शब्द में, शब्द का शब्दतन्मात्रा में एवं शब्दतन्मात्रा का शब्दब्रह्म में लय हो जाता है; अतः सृष्टि की लय-प्रक्रिया में अन्तिम तत्त्व 'शब्दब्रह्म' ही शेष रहेगा और बाद में वह भी परब्रह्म के साथ तादात्म्य ग्रहण करके परब्रह्मस्वरूप हो जाएगा। सृष्टिक्रम में इसी शब्दब्रह्म से समस्त तन्मात्रायें, पञ्चभूत, त्रिगुण प्रकृति, महामाया, माया, प्रकृति एवं समस्त पिण्ड, ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, शिवाण्ड एवं शाक्ताण्डों की सृष्टि होती है। चूँकि शब्दब्रह्म ही जगत् का अधिष्ठान है; अतः विश्वमय भी है और चूँकि मन्त्र लयोपरान्त भी स्थित रहता है; अतः विश्वातीत भी है।

४. प्राणात्मक बीजों से मन्त्र की उत्पत्ति— मन्त्र हंसरूप या प्राणात्मक है। चूँकि

मन्त्र अपने मूल रूप में नादात्मक हैं और नाद प्राणात्मक है या प्राण की गति है; अत: मन्त्र प्राणात्मक हैं।प्राण का स्वाभाविक धर्म 'उच्चारण' है। इसकी द्विविधात्मक वृत्तियाँ हैं—

१. सामान्यस्पन्दात्मक एवं भेदहीन।

२. प्राणादि पञ्चभेदात्मक।

जो प्राणात्मक उच्चार है, उससे निरन्तर अव्यक्त ध्वनि स्फुरित होती रहती है। यह अखण्डात्मक उच्चार 'अनाहत नाद' पदवाच्य है। यह प्रत्येक प्राणी के हृदय में निरापद एवं अखण्ड रूप से प्रवहमान या गुञ्जरित रहता है। यह स्वाभाविक धर्म है। समस्त वर्ण इसी में विद्यमान रहते हैं; अत: यह वर्णों का उत्पत्ति-केन्द्र है।

अनाहत नाद समस्त वर्णों एवं ध्वनियों का केन्द्र है। अनाहत नाद स्वयं भी दो बीजों से उत्पन्न होता है। वे दो बीज निम्नांकित हैं—

१. सृष्टिबीज 'स'	सोऽहं : 'हंस:'	सकार
२. संहारबीज 'ह'	अजपा जप	हकार

इन दोनों बीजों का आश्रय लेकर ही नाद (मन्त्र) आविर्भूत होता है।

एक अहोरात्र में मनुष्य स्वाभाविक रूप से २१६०० श्वास-प्रश्वास की क्रीड़ा में निरत रहता है। 'हम्' ध्वनि करती हुई श्वास का निर्गमन 'प्रश्वास' एवं 'स' ध्वनि करती हुई श्वास का आन्तर प्रवेश 'नि:श्वास' कहलाता है।

हङ्कारेण बहिर्याति स:कारेण विशेत्पुन:।

हं वर्ण पूरके हय स:वर्ण रेचके वय।
अहर्निश करे जपं हंस हंस बलिया।। (रामप्रसाद)

किन्तु यह कथन अशास्त्रीय है।

योगबीज—

गुरुवाक्यात् सुषुम्नायां विपरीतोऽभवज्जप:।
सोऽहं सोऽहमिति प्राप्तो मन्त्रयोग: स उच्यते।।

प्राणी श्वास-प्रश्वास के द्वारा 'हंस' मन्त्र (अजपा गायत्री) का अहर्निश जप करता रहता है। 'हंस', की गति रोककर इसे विपरीत रूप में 'सोऽहम्' गति में परिवर्तित करना ही मान्त्रिक साधना है। इससे 'इडा' एवं 'पिंगला' में सञ्चरित वायु की वक्र गति बन्द होकर सुषुम्णा में सरल गति से श्वाससञ्चार होने लगता है। ब्रह्ममार्ग सुषुम्णा में प्रवेशार्थ वायु एवं मन की ऊर्ध्व गति आवश्यक है। सरल गति अर्थात् गतिहीन अवस्था की प्राप्ति। प्राणापान व्यापार ही हंसमन्त्र है। 'प्राण' अपान को एवं 'अपान' प्राण को अपनी ओर खींचता है; किन्तु दोनों गतियाँ विपरीतगामी हैं— यही वैषम्य का कारण है। साम्यावस्था भंग होने से दोनों में विरुद्ध गति का उदय हुआ; किन्तु वे अनजाने ही साम्यभाव में प्रतिष्ठित होकर विरोध का त्याग करना चाहते हैं। जब तक यह साम्यभाव

अधिगत नहीं होगा, तबतक शान्ति कहाँ? योगी इन दोनों विरुद्ध गतियों में साम्यभाव स्थापित करना चाहता है ।

हकार = अपान का सञ्चार। सकार = प्राण का सञ्चार। हंसविद्या = प्राणापान-संयोग। अहं = जीवात्मा का सूचक। स: = शक्ति का वाचक। 'अहं ही स: है' = यही साधना का लक्ष्य है। (इसकी अनुभूति ही सारी साधनाओं का उद्देश्य है।) 'स:' प्राणरूप है। 'हं' अपान है। 'स:' एवं 'हम्'— मन्त्र के ये दो भाग प्राणापान वृत्ति से शरीर में निरन्तर सञ्चरित हैं। 'हंस:' में हकार पुरुष एवं सकार प्रकृति है। अत: 'हंस:' जगत् की अभिव्यक्ति भी है—

हकार: पुरुष: प्रोक्त: स इति प्रकृतिर्मता।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्।।

अनाहत नाद की अभिव्यक्तिस्थान के दो बीज हैं— सृष्टिबीज 'स' एवं संहारबीज 'ह'। इन्हीं दोनों से 'नाद' निर्गत होता है; अत: नादरूप मन्त्र प्राणात्मक एवं हंसरूप है।

चिदाकाश का प्रथम स्पन्दन → प्राण के आदि मूल का उदय → अनाहत नादरूप 'हंस:' का उदय।

चिदाकाश का स्पन्दन भी स्वत:सिद्ध नहीं है। यह स्पन्दन भी परम पुरुष एवं परमा प्रकृति की योगावस्था से उद्भूत हुआ है।

'हं' परम पुरुष है। और 'स:' परमा प्रकृति। दोनों की संयोगावस्था है— 'हंस:'। 'प्राण' को संवित् का प्रथम परिणाम भी कहा गया है। श्वास-प्रश्वास की क्रीड़ा हंसरूपी प्राण-व्यापार का पर्याय है। हंकार = अनन्त की ओर गति। स:कार = अन्त:प्रवेश = देह में प्रत्यावर्तन। इस गमनागमन का नियामक 'परमहंस' है। यह जप ही 'अजपा मन्त्र' है। मन्त्र इसी अजपाजप या हंसमन्त्र का स्वरूप है और चूँकि यह प्राण के उच्चारात्मक सृष्टिबीज एवं संहारबीज की अभिव्यक्ति है; अत: नादात्मक मूल मन्त्र प्राणात्मक एवं हंसात्मक है और उसका आदर्श स्वरूप है— 'प्राणात्मक सोऽहं मन्त्र।'

मन्त्र मन की मात्राओं को क्षीणतर करते जाने का विधान— मन यदि एक मात्रा में स्थित हो जाय तो एकाग्र भूमि की प्रतिष्ठा होती है। एकाग्र भूमि में प्रतिष्ठित मन की मात्रा को पुन: तोड़ने पर उसका नाम होता है— 'अर्धमात्रा'। मन की मात्रा जितनी ही क्षीण होगी, चैतन्य और आनन्द उतना ही संवर्द्धित होता जायगा— चिदालोक बढ़ता जायगा— मनन एवं त्राण उतने ही अधिक सशक्त होते जायेंगे। यदि मन्त्र 'चिन्मरीचि' है तो चित् की मरीचियों में भी वृद्धि होती जायगी। अन्तिम अवस्था में मन इतना सूक्ष्म हो जाता है कि तब उसके रहने पर भी वह न रहने के समतुल्य रहता है। 'उन्मना' मन के क्षीणतम अवस्था में भी उन्मूलन का स्तर है।

मन्त्र आत्मा की रश्मियाँ— मन्त्रसाधना आत्मसाधना है; क्योंकि 'मन्त्राश्चिन्मरीचय:' अर्थात् मन्त्र आत्मा की रश्मियाँ हैं।

भास्कर राय एवं योगिनीहृदय की दृष्टि— ऋषियों द्वारा विशिष्ट शक्तिसम्पन्न वर्णों का विशिष्ट क्रम में विन्यस्त वर्णसमुदाय, अवस्था, शून्य, विषुव, चक्र एवं प्रत्येक वर्ण व उसकी समष्टि के अर्थ का चिन्तन जिसमें समाविष्ट हो, वही वर्णसंघटन जपात्मक 'मन्त्र' है। इसीलिए जप करते समय मन्त्रांग के रूप में इनका स्मरण आवश्यक होता है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

मन्त्र अपने संघटक वर्णों के अभिधेयार्थ (शक्यार्थ) का ही व्यञ्जक नहीं है; प्रत्युत 'मन्त्र' वह शाब्दिक विशिष्ट आर्ष रचना है, जिसमें भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ, महातत्त्वार्थ, नामार्थ, शब्दरूपार्थ, नामैकदेशार्थ, शाक्तार्थ, सामरस्यार्थ, समस्तार्थ, सगुणार्थ एवं महावाक्यार्थ आदि दिव्य अर्थ अन्तर्गर्भित हैं। इसके साथ ही उसके यथार्थ स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत अवस्थायें; मन्त्रविषुव, नाड़ीविषुव, प्रशान्तविषुव, शक्तिविषुव एवं तत्त्वविषुव; बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मनी ९ नाद; ९ चक्र एवं शून्य के साथ ही जगत्, मन्त्र, चक्र, गुरु, देवता आदि के साथ सामरस्य की अनुभूति भी आवश्यक है।

५. मन्त्रसाधना शक्तिसाधना— 'मन्त्र' जगदम्बिका का स्वस्वरूप है और इसीलिए कहा भी गया है— 'मन्त्राधीनाश्च देवता'। मन्त्र के भगवत्स्वरूप या शक्तिस्वरूप होने के कारण मन्त्रसाधना शक्तिसाधना है। इसीलिए तन्त्रसद्भाव में कहा गया है कि मन्त्र का प्राण या उसका जीवन तो शक्ति है; अतः जिस मन्त्रसाधना में शक्ति का अभाव हो— शक्ति-साधना नहीं हो, वह मन्त्रसाधना निष्फल है—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फलाः शरदभ्रवत्।।

शिवसूत्र में मन्त्र को 'शाक्तोपाय' स्वीकार किया गया है। 'शाक्तोपाय' में शक्ति मन्त्र-वीर्यस्फाररूपा होती है— 'तत्र शक्तिः मन्त्रवीर्यस्फाररूपा।'

आचार्य क्षेमराज ने शिवसूत्रविमर्शिनी में मन्त्र की इस प्रकार व्याख्या की है—

'चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तम्, पूर्णस्फुरत्तासतत्त्वप्रासादप्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्, तदेव मन्त्र्यते गुप्तम्, अन्तर अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः।'

'अत एव च परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता, भेदमयसंसारप्रशमनात्मकत्राणधर्मता चास्य निरुच्यते।'

'अथ च मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यमाराधकचित्तमेव मन्त्रः।'

समस्त वर्ण मन्त्र हैं। सारे मन्त्र शक्तिस्वरूप हैं। शक्ति मातृकास्वरूप है; अतः शिवात्मिका भी है—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।। (तन्त्रसद्भाव)

स्पन्दसूत्र (स्पन्दकारिका) में कहा गया है कि मन्त्र सर्वज्ञता आदि समस्त सिद्धियों एवं शक्तियों से ओतप्रोत हैं और शिवधर्मी हैं—

तयाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनः।।२६।।

तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपाः निरञ्जनाः।
सह साधकचित्तेन तेनैते शिवधर्मिणः।।२७।।

हंसपारमेश्वर का कथन है—

क. वर्णरूप मन्त्र पशुभाव में स्थित हैं।

ख. सुषुम्नामार्ग से उच्चारण करने पर वे मन्त्र पशुपति बन जाते हैं।

मन्त्र की दो अवस्थायें होती हैं— पशु अवस्था और पशुपति अवस्था। 'श्री वैहायसी' में कहा गया है कि 'नाद' शक्ति है; अतः मन्त्र के साथ उसका नादोर्ध्वध्वनिबोधित जप करना चाहिए; क्योंकि मन्त्रों में नाद शक्तिसूत्र में ग्रथित मनकों की भाँति होता है। वह शक्ति परम व्योम में निवास करती है और परमामृतमयी होती है। उक्त रीति से जप करने पर ही मन्त्र अपने स्वरूप को प्रकट करता है, अन्यथा प्रकट नहीं करता; बल्कि अपने को गुप्त रखता है।

'श्रीकालपरा' में कहा गया है कि शब्द नादात्मक हैं; अतः उनके साथ प्रत्यय एवं संवित् संलग्न रहना चाहिये। मन्त्रबोध के स्वरूप में स्थित संवित् अभिन्न है; अतः आत्म-बोध कराती है। उत्पलाचार्य 'स्पन्दप्रदीपिका' में कहते हैं कि चिच्छक्ति के बल का स्पर्श न होने से मन्त्र के वर्ण जड़ अक्षरमात्र बनकर रह जाते हैं। परम तत्त्व का बोध हो जाने पर मन्त्र किङ्कर बन जाते हैं। बीज, पिण्ड, पद एवं नाम को उत्पलाचार्य मन्त्र का मुख्य तत्त्व मानते हैं।

६. शक्ति के रूप : वाणी और मन्त्र—

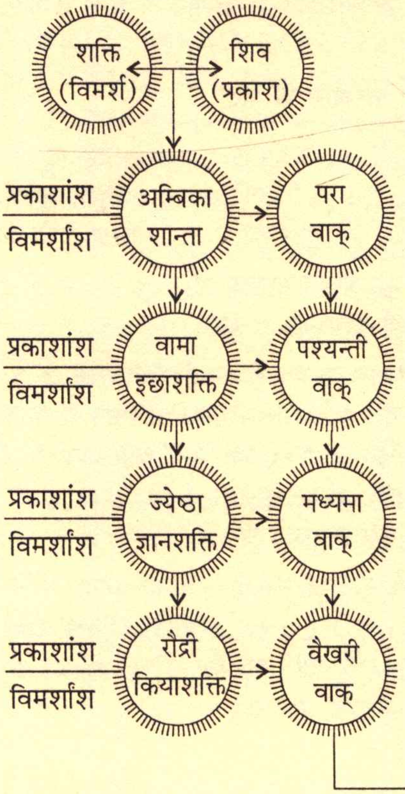

श्रीचक्र का प्रथम भाग—

वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, परा

श्रीचक्र का द्वितीय भाग—

इच्छा, ज्ञान, क्रिया = ९ अंग। ये ही श्रीचक्र के ९ त्रिकोण हैं। यही त्रिकोण ९ चक्रों के रूप में परिणत हो जाता है।

चक्रों की नाद से एकता—

१. मूलाधार चक्र	परा वाक्	त्रिकोण
२. स्वाधिष्ठान चक्र	पश्यन्ती वाक्	अष्टार
३. मणिपूर चक्र	मध्यमा वाक्	दशारद्वय
४. विशुद्ध चक्र	वैखरी वाक्	चतुर्दशार
५. आज्ञा चक्र	नाद, नादान्त	शिव-चतुष्कोण
६. सहस्रार चक्र	नादबिन्दु कलातीत	परा संवित्

१. अम्बिका + शान्ता → परा वाक्।
२. वामा + इच्छाशक्ति → पश्यन्ती वाक्।
३. ज्येष्ठा + ज्ञानशक्ति → मध्यमा वाक्।
४. रौद्री + क्रियाशक्ति → वैखरी वाक्।

परा वाक्— आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।
अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।।

पश्यन्ती वाक्— इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

मध्यमा वाक्— ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
ऋजेरेखामयी अत्र शृङ्गाटाग्ररेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता।।

वैखरी वाक्— क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।

मन्त्र वर्णों की समष्टि नहीं है; प्रत्युत यह शक्ति का परिणमन है; अतः यह परा

शक्ति का एक विशिष्ट रूप है। इसीलिये भास्करराय मखिन ने वरिवस्यारहस्यम् (१.५) में कहा है कि परमात्मा की 'विमर्श शक्ति' ही चार रूपों में परिणत हो जाती है और उनमें एक परिणमन शब्दमय है।

शक्ति के परिणाम : परिणाम के भेद[1]

अर्थमयी	शब्दमयी	चक्रमयी	देहमयी
(शिवादिक्षित्यन्त षट्त्रिंशत्तत्त्वरूप)	(परा, पश्यन्ती मध्यमा वैखरी)	(बिन्द्वादि भूगृहान्ता)	(स्थूल, सूक्ष्म कारण आदि)

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टि:।।[2]

मन्त्र विश्वविज्ञान के मनन एवं संकटों से त्राण का एक विधान है। 'नारदपाञ्चरात्र' के अन्तर्गत 'माहेश्वर तन्त्र' के ज्ञानखण्ड में कहा गया है कि जिसके द्वारा विश्वविज्ञान का मनन किया जाता है और संसार के संकटों से त्राण किया जाता हो, उसे 'मन्त्र' कहा जाता है—

मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारसङ्कटात्।
यत: करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते प्रिये।।

मन्त्र शब्द 'मन्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है— विचार करना। 'मन्त्रि गुप्तभाषणे' (चु० प० से०) से घञ् प्रत्यय (३.३.१९-१८) लगाने पर 'मन्त्र' शब्द निष्पन्न होता है। मेदिनी कोष में इसके निम्न अर्थ बताये गए हैं—

मन्त्रो वेदविशेषे स्याद्देवादीनां च साधने।
गुह्यवादेऽपि च पुमान् .... ।।

मन्त्र्यते अनेन इति मन्त्र:।

वर्णमाला के समस्त वर्ण पिण्डस्थ यौगिक केन्द्रों (चक्रों = पद्मों) के विभिन्न दलों पर स्थित हैं। प्रत्येक केन्द्र (पद्म) में केन्द्रीय तत्त्व का बीजमन्त्र भी स्थित है। चूँकि कुण्डलिनी ज्योतिर्मयी एवं मन्त्रमयी दोनों है; अत: उसको जागृत करने के लिये भी मन्त्र का प्रयोग करना पड़ता है। तन्त्रशास्त्र का अंगभूत यह मन्त्रतत्त्व इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसका स्वतन्त्र नाम ही 'मन्त्रशास्त्र' के रूप में प्रचलित हो गया अर्थात् मन्त्र साधना की एक विशिष्ट शाखा एवं विशिष्ट शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। 'वेध दीक्षा' में गुरु मन्त्र के द्वारा शिष्य में शक्ति स्थानान्तरित करता है।

मन्त्रों के द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, द्वेषण (आभिचारिक षट् कर्म), होम, तर्पण, प्रार्थना, आत्मसाधना, दीक्षा, कुण्डलिनी-जागरण, भक्ति, मन्त्र-योग, भगवत्पूजा आदि समस्त आध्यात्मिक एवं यौगिक-तान्त्रिक साधनायें निष्पन्न की जाती हैं।

---

१. वरिवस्यारहस्यम् —भास्कर राय। २. वरिवस्यारहस्यम् —भास्कर राय।

'मन्त्र' विचार-साधना का ही एक रूप है। विचार-साधना के रूप में पाश्चात्य देशों में पर-चित्त-ज्ञान (Thought reading), विचार-सम्प्रेषण (Thought transference), सम्मोहनजन्य निर्देश (Hypnotic suggestion), मेस्मेरिक शक्तिपात आदि प्रचलित हैं; किन्तु 'विचार-विज्ञान' अज्ञात है। यह विचार-विज्ञान ही 'मन्त्रविद्या' है। मन्त्र-विद्या कतिपय वर्णों का अविरत उच्चारणमात्र नहीं है; इसीलिये पतञ्जलि ने योगसूत्र में 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' कहकर इन विशिष्ट शब्दविन्यासों (मन्त्रों) के साथ अर्थभावन (विचार-प्रवाह, ध्येय का चिन्तन) भी आवश्यक माना था।

विचार एवं मन्त्र : एक शक्ति के विभिन्न रूप— भारतीय चिन्तन यह मानता है कि विचार भी एक शक्ति है। यह उतना ही सत्य एवं यथार्थ है, जितना कि बाह्य पदार्थ हैं। विश्वचेता अर्थात् विश्वसृष्टि का आदिविचारक परमात्मा विश्व की सृष्टि अपने विचारों में ही करता है अर्थात् उसके विचार-जगत् में ही यह पादार्थिक सम्पन्न जगत् उत्पन्न हो जाता है। उसकी सिसृक्षा ही सृष्टि है— उसका रचनात्मक विचार ही जगत् है— उसका चिन्तन ही जगत् का अनन्त विकास है।

७. मन्त्र और देवता का सम्बन्ध— मन्त्र देवता का शाब्दिक स्वरूप या शाब्दिक शरीर है और देवता मन्त्र का स्थूल तैजस स्वरूप या साकार विग्रह है।

'मन्त्र' और 'देवता' नाम और नामी हैं। 'मन्त्र' वाचक है और 'देवता' वाच्य है। 'मन्त्र' नाम है और 'देवता' नामी है। 'मन्त्र' शब्द है और 'देवता' उसका अर्थ है। नाम एक शाब्दिक सूत्र है, जिससे नामी पकड़ में आता है। 'देवता' का मूल स्वरूप उसका नाम है और उसका रूप इसी नाम के आधीन है; क्योंकि उसके विना उसके रूप का ज्ञान सम्भव नहीं है—

देखियहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना।।
रूप विशेष नाम विनु जानें। करतलगत न परहिं पहिचाने।।

'जप' में जिस मन्त्र का उच्चारण किया जाता है या जिस देवता के नाम का जप किया जाता है, वह उस देवता का 'वाचक' होता है। 'नाम' या 'मन्त्र' शब्द है और 'देवता' उसका अर्थ है।

मन्त्र के जप के द्वारा देवता को जगाया जाता है। शाक्त साधक कहते हैं कि जप सुषुप्त (देवता) को जगाने की एक पद्धति है— देव-जागरण की प्रक्रिया है।

अधरोष्ठ 'शक्ति' है और उत्तरोष्ठ 'शिव' है। दोनों की टकराहट (संघर्ष) से मन्त्र के देवता का जन्म होता है; अतः देवता को साधक का पुत्र भी कहा गया है।

बीज से ही देवता के शरीर का जन्म होता है—

देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.९६)

ध्यान के द्वारा जिस रूप का साक्षात्कार होता है, वही 'मन्त्र' का अर्थ है—

ध्यानेन परमेशानि ! यद्रूपं समुपस्थितम्।
तदेव परमेशानि ! मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति !।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.९७)

अर्थात् 'देवता' मन्त्र का अर्थ है। 'नाम' अभिधान है और 'देवता' अभिधेय है।

कामधेनु तन्त्र में जिन नव तत्त्वों का उल्लेख किया गया है, उनमें से एक तत्त्व देवतत्त्व भी है और वह प्रथम तत्त्व है—

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं बिन्दुतत्त्वं च सुन्दरि।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च।।
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.९७)

देवता कोई भौतिक पदार्थ नहीं है; प्रत्युत 'मन्त्र' का अर्थमात्र है— 'मन्त्रार्थं देवता-रूपं चिन्तनं परमेश्वरि।' क्योंकि मन्त्र एवं देवता में वाच्य-वाचकभाव है—

वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः। (शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

जिस प्रकार वाच्य एवं वाचक में अभेद होता है, उसी प्रकार मन्त्र और देवता में भी अभेद होता है— 'अभेदं मन्त्रदेवयोः।' (शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

८. मन्त्र और देवता : वाचक-वाच्य सम्बन्ध— जब कोई 'घट' शब्द कहता है तब घटनामक पदार्थ का (मन में) भाव उत्पन्न होता है, तभी 'घट' शब्द की सार्थकता होती है, अन्यथा नहीं; क्योंकि घट एक शब्द है, जिसका उद्देश्य अपने अर्थ का बोध कराना है अर्थात् जिस प्रकार वाचक की चरितार्थता अपने वाच्य का बोध कराने में है, उसी प्रकार मन्त्र की चरितार्थता (शाब्दिक पुनरावृत्तिमात्र नहीं है) मन्त्रार्थ का बोध कराने में है। मन्त्र का अर्थ ही तो देवता है। अतः यदि मन्त्र अपने अर्थ (देवता) का साक्षात्कार कराने में समर्थ नहीं हुआ तो वह 'मन्त्र' नहीं; प्रत्युत वर्णों का समुच्चयमात्र है। इसीलिये कहा गया है कि मन्त्र के साथ मन्त्रार्थ (देवता) का ध्यान भी करना चाहिए—

आदौ ध्यानं ततो मन्त्रो ध्यानस्यान्ते मनुं जपेत्।
ध्यानमन्त्रसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति साधकः।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.१२)

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता।
चिन्तयित्वा तदाकारं मनसा जपमाचरेत्।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.१४)

क्योंकि मन्त्र वाचक है और देवता वाच्य है। वाचक के इस वाच्य-वाचकभाव का साक्षात्कार कर लेने पर भी देवता प्रसन्न हो उठता है; क्योंकि मन्त्र देवता का ही तो शाब्दिक प्रतीक है—

वाच्या हि देवता देवमन्त्रो हि वाचकः स्मृतः।
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.२)

९. मन्त्राक्षर और देवता के अंगों का सम्बन्ध— मन्त्र के साथ मन्त्र के श्रोत्र, नेत्र, प्राण आदि जानने की अनिवार्यता का इसीलिये विधान किया गया है। जैसे कि 'काली मन्त्र' को लें—

१. श्रोत्र = बिन्दु, २. मुख = नाद, ३. हृदय = ककार, ४. नेत्र = वह्नि।[१]

श्यामा का— १. मस्तक = क्रींकार, २. नासिका = हुंकार, ३. कर्णयुगल = रींकार, ४. चिबुक = दकार, ५. दाँत = क्षिकार, ६. ओष्ठ= णेकार, ७. स्तनद्वय = काकार, ८. पृष्ठदेश = लिकार, ९. बाहु = केकार, १०. उदर = 'क्रींकार' = उदर (नाभि, नितम्ब, मस्तक, ललाट, नेत्रत्रय आदि सभी क्रींकार के प्रतीक हैं), ११. योनि = हंकार, उरुयुग्म, १२. पदद्वय = स्वा, १३. नख = हाकार।

ताराविद्या का— १. मुख = व्याहृति। प्रणव, २. लोचन = माया के नीचे का बिन्दु, ३. श्रोत्र = हसकार, ४. हृदय = दीर्घस्वर, ५. योनि, उदर = फट्कार, ६. स्तनद्वय = अकार, ७. पदयुग्म = रेफयुग्म, ८. भाललोचन = नकार, ९. भुजायें = नादयुग्म आदि।[२]

मन्त्र और कुण्डलिनी— कुण्डलिनी शक्ति जागृत् होकर चार रूपों में अभिव्यक्त होती है—

१. क्रियावती = आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नृत्य, शारीरकम्पादिक।
२. कलावती = ३६ तत्त्वों के व्यतिरेक और शुद्धि-क्रियायें।
३. वर्णमयी = परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी एवं मन्त्रमयी।
४. वेधमयी = षट्चक्र एवं उनका वेधन।

इस प्रकार कुण्डलिनी का मन्त्र एवं वर्णों के साथ अपृथक् सम्बन्ध है।

मन्त्र और नाद— मन्त्र नादात्मा है। 'नाद' शक्ति का ध्वन्यात्मक रूप है। चूँकि मन्त्र नादात्मक हैं और नाद शक्ति के रूप हैं; अतः मन्त्र भी शक्ति के ही रूप हैं। नाद के दो रूप हैं—

१. आहत नाद— यथा संगीत के सप्त स्वर, वर्णमाला।

२. अनाहत नाद— योग में वर्णित एवं चक्रों में गुञ्जित अव्यक्त एवं अन + आहत नाद (यथा १० नाद)।

सच्चिदानन्द सकल परमेश्वर से 'शक्ति' का प्राकट्य होता है। शक्ति से 'नाद' का आविर्भाव होता है और नाद से 'बिन्दु' का आविर्भाव होता है।

---

१. शाक्तानन्दतरंगिणी। २. यामल, शाक्तानन्दतरंगिणी (९.३७-४०)।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।।

समस्त वाक्यात्मक मन्त्र वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, भाषायें, सप्तस्वर, गाथायें सभी 'नाद' से उत्पन्न होती हैं। यह नादरूपा सरस्वती देवी समस्त प्राणियों की बुद्धि-गुहा में निवास करती है—

सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः।
पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि।।
सप्तस्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुद्भवाः।
एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहाश्रया।।
(योगशिखोपनिषद्)

मन्त्र और जीव— मन्त्र शिव एवं शक्ति के रूप हैं। अजपा गायत्री के स्वयम्भू मन्त्र 'हंसः' को लीजिये। 'हं' शिव का एवं 'सः' शक्ति का वाचक है। 'हं' का वाच्य शिव एवं 'सः' का शक्ति है। यही विपरीत स्थिति में 'सोऽहं' मन्त्र बन जाता है। प्राणी शिवशक्त्यात्मक 'हंसः' मन्त्र का अखण्ड जप करता रहता है—

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

क. 'हंसः' मन्त्र = जीववाचक। ┐ ह + स = हसौ।
ख. 'सोऽहं मन्त्र = ब्रह्मात्मैक्यवा ┘ मन्त्र = प्रेतबीज।

उच्छ्वास → 'सः'। निःश्वास → 'हं'। बीजमन्त्र 'ह्रीं' को लें— ह = आकाश। र = स्पन्द। ई = शक्ति। अनुस्वार = ब्राह्म तेज।

मन्त्र और देवता— 'मन्त्राणां मातृका देवी' कहकर मन्त्रों की प्रत्येक मातृका (वर्ण) को देवी का साक्षात् रूप घोषित किया गया है। ललितासहस्रनाम में देवी को 'सर्वमन्त्रस्वरूपिणी' कहकर मन्त्र एवं देवी में तादात्म्य स्थापित किया गया है—

सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।

(इ) श्रीविद्या

भगवती राजराजेश्वरी ही आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीषोडशाक्षरी विद्या एवं श्रीविद्या है—

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता।
श्रीषोडशाक्षरी विद्या त्रिकूटा कामकोटिका।।

विमर्शस्वरूपा भगवती कोई अन्य नहीं, श्रीविद्या ही हैं—

विमर्शरूपिणी विद्या वियदादि जगत्प्रसूः। (ललितासहस्रनाम)

मन्त्रों में श्रेष्ठतमा विद्या 'श्रीविद्या' ही है— 'श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां' और श्रीविद्या में भी श्रेष्ठतर 'कादि विद्या' है— 'तत्र कादिर्यथा परा।' (ललितासहस्रनाम)

षोडशाक्षरी विद्या की अवर्णनीय महत्ता— करोड़ों वाक्यों एवं करोड़ों जिह्वाओं से भी षोडशाक्षरी विद्या का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है—

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

समस्त विद्यायें भगवती के भेद ही तो हैं— 'विद्या समस्तास्तव देवि भेदा:।' सारी स्त्रियाँ भी देवी के रूप हैं— 'स्त्रिया: समस्ता सकला जगत्सु।'

सौभाग्यभास्कर में कहा गया है कि 'श्रीविद्या' का स्वरूप निम्नानुसार है—

कामराजाख्यमन्त्रान्ते श्रीबीजेन समन्विता।
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता।।

कामेश्वर एवं कामेश्वरी का एक बिन्दु में मिलन ही 'श्रीविद्या' है। मोक्ष का विधान करने वाली विद्या तो मात्र 'श्रीविद्या' ही है— 'मोक्षैकहेतुविद्या सा श्रीविद्या नात्र संशय:।'

शंकराचार्य ने कहा था कि ब्रह्मगतिप्रदा विद्या ही यथार्थ विद्या है— 'विद्या हि का? ब्रह्मगतिप्रदा या।'

भगवती ललिता ही वास्तविक 'विद्या' है— 'विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवी।' (सप्तशती-४.९)।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी 'श्रीविद्या' से अभिन्न हैं। इसी कारण भगवती को 'परमा विद्या' भी कहा गया है— 'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।' (सप्तशती-२.७) और मुक्ति का कारण भी। विश्वमाता ही 'श्रीविद्या' है।

भगवती राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ही 'श्रीविद्या' भी हैं; कहा गया है कि पिपीलिका से ब्रह्माण्डपर्यन्त स्थित समस्त जीवों की स्फुरणा या जृम्भण के रूप में स्थित जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति में भासक तत्त्व के रूप में अनुस्यूत करुणावरुणालय जगदम्बिका भगवती राजराजेश्वरी ही श्रीविद्या हैं—

आब्रह्माण्डपिपीलिकान्ततनुभृत् सूज्जृम्भमाणा स्फुटं
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभासकतया सर्वत्र या दीव्यति।
सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी
श्रीविद्या करुणानिधि: शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे।।

'श्रीविद्या' गुरुमुखैकगम्या है और इसकी उपासना सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के बाद ही करनी चाहिए; क्योंकि पुस्तकस्था विद्या (मन्त्र) को देखकर जो उसका जप करता है, वह जीवितावस्था में ही चाण्डाल है और मृत्यूपरान्त वह कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करता है—

पुस्तके लिखितान्मन्त्रान्दृष्ट्वा जपति यो नर:।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृत: श्वा चाभिजायते।।

'श्रीविद्या' आदिविद्या है और विश्वमाता है। श्रीदेव्यथर्वशीर्ष में कहा भी गया है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्।।

यही 'काम योनि' भी है : 'कामो योनिः।' सुन्दरी के विना सौन्दर्य कहाँ? सौन्दर्य के विना काम का विस्तार कहाँ? वह काम एवं सौन्दर्य दोनों की योनि है। यद्यपि कामारि ने काम को भस्म कर दिया था, तथपि 'सुन्दरी' ने उसे अनंग के रूप में पुनः जीवित कर दिया। 'श्रीविद्या' की उपासना करने वालों में मन्मथ भी एक हैं और उनका 'मन्मथ सम्प्रदाय' भी है ।

इसी श्रीविद्या मन्त्र से 'गायत्री मन्त्र' का भी आविर्भाव हुआ है। गायत्री मन्त्र का रहस्यात्मक एवं गुप्त स्वरूप 'पञ्चदशी विद्या' ही है।

विद्वान् वह नहीं कहलाता, जो शिल्पादिक ज्ञान का मर्मज्ञ है; प्रत्युत विद्वान् वह है, जो श्रीविद्या का रहस्यवित् हो तथा ज्ञान की सभी शाखायें विद्यायें नहीं हैं; प्रत्युत 'श्रीविद्या' ही विद्या है—

न शिल्पादिज्ञानयुक्ते विद्वत्शब्दः प्रयुज्यते।
मोक्षैकं हेतु विद्यावान् स वै विद्वानितीर्यते।
तस्माद्विद्या तु श्रीविद्या तद्विद्विद्वानितीर्यते।।

श्रीचक्रराज की अर्चना करने के अनन्तर पञ्चदशाक्षरी विद्या का जप करने का विधान है। ललितासहस्रनाम में कहा भी गया है— 'चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।'

भगवती का अपना नाम सिद्धविद्या, सिद्धमाता, विद्याऽविद्यास्वरूपिणी, सर्वमन्त्र-स्वरूपिणी, मातृकावर्णरूपिणी, त्रिकूटा (श्रीविद्या के कूटत्रय) एवं श्रीषोडशाक्षरी विद्या, आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीविद्या भी है।

श्रीविद्या पञ्चभूतात्मिका, सर्वमातृकात्मा, तत्त्वस्वरूपा, षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी एवं तत्त्वातीता है।

श्रीविद्या के दो रूप हैं— विश्वमय एवं विश्वातीत।

भगवती के विश्वमय एवं विश्वातीत स्वरूप— योगिनीहृदय (मन्त्रसंकेत-३२, ३३, ३४) में उक्त तथ्यों की पुष्टि में कहा गया है—

व्याप्ता पञ्चदशार्णैः सा विद्या भूतगुणात्मिका।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः।।३२।।

स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी।
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।।३३।।

तत्त्वातीतस्वभावा च विद्यैषा भाव्यते सदा।।३४।।

कामकलाविलास में भी इसकी पुष्टि की गई है—

अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रयसमष्टिभेदैर्विभाविताकारा ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

ठीक भी है; क्योंकि—

मायान्तमात्मतत्त्वं विद्यातत्त्वं सदाशिवान्तं स्यात्।
शक्तिशिवौ शिवतत्त्वं तुरीयतत्त्वं समष्टिरेतेषाम्।।

'स्वात्मैव ललिता प्रोक्ता मनोज्ञा विश्वविग्रहा' कहकर भगवती को जो 'आत्मा' कहा गया है और उसे साधक की 'स्वात्मा' से अपृथक् कहकर देवता (श्रीविद्या) एवं उपासक के साथ तादात्म्यभाव स्थापित किया गया है, उसी की पुष्टि में महेश्वरानन्दनाथ 'महार्थमञ्जरी' में कहते हैं कि ज्ञाता और ज्ञेय की सामरस्यरूपा एकरसात्मिका संसृष्टि की अभिन्नता (अभेदता) ही 'शुद्धविद्या' का स्वस्वरूप है—

ज्ञाता स आत्मा ज्ञेयस्वभावश्च लोकव्यवहारः।
एकरसां संसृष्टिं यत्र गतौ सा खलु निस्तुषा विद्या।।१६।।

मन्त्र एवं यन्त्र में सामरस्य— लकार = भूपुर, सकार = षोडशदल, हकार = अष्टदल, भुवनेश्वरीरूप एकार = चतुर्दशार, एकार = दशावतारस्वरूप बहिर्दशार, हृल्लेखागत रेफ = अन्तर्दशार, ककार = अष्टार, अर्धचन्द्र = त्रिकोण।

श्रीविद्यान्तर्गत लं बीज → पृथ्वी (वृक्ष, पहाड़, नगर, देश, समुद्र, नदी, ३६ तत्त्व आदि)। इसी में ५१ पीठ, समस्त तीर्थ।

मन्त्र → ग्रह, राशि, नक्षत्र, तारे आदि का आविर्भाव।

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्।।

आकाश के बीजरूप 'हं' एवं भुवनेश्वरी के बीजरूप 'ईकार' से चौदह भुवनों की उत्पत्ति होती है। विष्णुस्वरूप 'एकार' वैष्णवी शक्तिस्वरूप है। 'रं' बीजरूपात्मक 'रेफ' ज्योतिर्मयी परा शक्ति ही है। पञ्चदशी विद्या का 'ककार' सर्वार्थपूरिका, सर्वकामदा शक्ति का वाचक है। अर्धचन्द्र (ँ) विश्वयोनि का वाचक है। बिन्दु (ं) महाकामेश्वरी का वाचक है। 'बिन्दु' ही ब्रह्माभिन्न सर्वानन्दमय चक्र का वाचक है। यहीं बिन्दु में महाकामेश्वरी एवं महाकामेश्वर दोनों का निवास है और दोनों में ऐक्य होने से सामरस्य भी है। यह सामरस्य ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान एवं इदन्ता तथा अहन्ता और प्रकाश तथा विमर्श की एकता का ज्ञापक है। सर्वानन्दमय चक्र ही 'उड्डीयान पीठ' है। उड्डीयान में निवास बिन्दुमण्डल में निवास के समतुल्य है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का विश्वात्मक रूप— भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही ३६ तत्त्व हैं, ३६ तत्त्वों से संघटित जगत् हैं एवं समस्त जागतिक सृष्टि त्रिपुरास्वरूपा है—

'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।' इसके अतिरिक्त विश्व की समस्त भौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ भगवती का ही अपना स्वस्वरूप हैं या आत्मविस्तार हैं।

विश्व में जिस-जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति है, वह सभी सर्वेश्वरी भगवती देवी एवं सर्वेश्वर कामेश्वर का ही स्वरूप है—

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः।। (मन्त्रसङ्केत-३.१)

श्रीविद्या की रसात्मकता (श्रीविद्या की रस एवं अमृत के साथ एकता)—

विद्यास्थैश्चन्द्रबीजैस्तु स्थूलसूक्ष्मो रसः स्मृतः।
सम्बन्धो विदितो लोके रसस्याऽप्यमृतस्य च।।
(योगिनीहृदय/मन्त्रसंकेत-४१)

(ई) श्रीविद्या या पञ्चदशी मन्त्र

श्री— 'श्री' शब्द लक्ष्मी का वाचक है। इसका बीजमन्त्र है— 'श्रीं'। श्री के निम्न अर्थ हैं—

१. 'श्रयति हरिमिति श्रीः' जो विष्णु को श्रेष्ठ बनाती है, वही 'श्री' है।

२. 'श्रीयते सर्वैरिति श्रीः' जो सभी तरह से श्रेष्ठ बनाती है, वह 'श्री' है।

३. 'श्रीयते सर्वः यया सा' जिससे सभी को श्रेष्ठता प्राप्त होती है, उसे 'श्री' कहते हैं ।

विद्या— 'विद्या' का स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में दुर्गासप्तशती में इस प्रकार कहा गया है—

१. सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी। (२.७)

२. विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवी। (४.९)

परम मुक्ति की हेतुभूता सनातनी देवी ही विद्या है। अतः परम मुक्तिप्रदात्री श्री महात्रिपुरसुन्दरी ही 'श्रीविद्या' है। आचार्य शंकर कहते हैं— 'विद्या हि का? ब्रह्मगतिप्रदा या।' अर्थात् जो ब्रह्मगति प्रदान करती है, वही विद्या है। जो मुक्ति प्रदान करती है, वही विद्या है— 'सा विद्या या विमुक्तये।'

श्रीयुक्त विद्या ही 'श्रीविद्या' है। जो मोक्षैकहेतु विद्या है, वही 'श्रीविद्या' है— 'मोक्षैक-हेतु विद्या सा श्रीविद्या नात्र संशयः।' जो इस श्रीविद्या को जानता है, वही विद्वान् है और श्रीविद्या ही यथार्थ विद्या है—

न शिल्पादिज्ञानयुक्ते विद्वत् शब्दः प्रयुज्यते।
मोक्षैकहेतुविद्यावान् स वै विद्वानितीर्यते।
तस्माद्विद्या तु श्रीविद्या तत्तद्विद्वानितीर्यते।।

शिल्पादि विषयों के ज्ञाता को 'विद्वान्' नहीं कहा जा सकता। केवल मोक्षप्रदा विद्या 'श्रीविद्या' का साधक ही यथार्थ विद्वान् है और श्रीविद्या ही 'ब्रह्मविद्या' है।

जिस प्रकार राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ललिता देवी शुद्धातिशुद्ध 'परा विद्या' हैं, उसी प्रकर मन्त्रों में उनका मन्त्रराज श्रीविद्या 'ब्रह्मविद्या' है। आदिविद्या विश्वमाता श्रीविद्या ही हैं। वही काम या कन्दर्प की योनि है। समस्त विद्याओं की नींव श्रीविद्या ही है। समस्त विद्यायें भगवती के ही विभिन्न भेद हैं और समस्त नारियाँ भी देवी के ही रूप हैं—

विद्या समस्तास्तव देवि ! भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।।

कामेश्वरी और कामेश्वर का एक बिन्दु में मिलन ही 'श्रीविद्या' है। शक्तिसाधना की परम्परा में मातृशक्ति को 'परा शक्ति' के रूप में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। नारी को 'श्री' भी कहा गया है—

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन। (मनुस्मृति-६.२६)

'श्री' प्राप्त करने का साधन होने के कारण भी यह श्रीविद्या कहलाती है। त्रिपुर-सुन्दरी श्रीदेवी होने के कारण 'महालक्ष्मी' भी है।

विद्या का मान्त्रिक स्वरूप— महात्रिपुरसुन्दरी की श्रीविद्या का मान्त्रिक स्वरूप इस प्रकार है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्।।

सौभाग्यभास्कर में श्रीविद्या का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

कामराजाख्यमन्त्रान्ते श्रीबीजेन समन्विता।
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता।।

भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं कि षोडशाक्षरी विद्या ही श्रीविद्या है— 'षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता, विद्यायाः = पञ्चदश्याः षोडश्या वा।' मूल विद्या पञ्चदशाक्षरी है; इसीलिए यह 'पञ्चदशी' भी कहलाती है।

यद्यपि 'श्री' लक्ष्मीवाचक है, किन्तु यह लक्ष्मी से स्वतन्त्र अर्थ भी रखता है; यथा— 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या।'

श्रीबीज से युक्त होने के कारण ही षोडशाक्षरी विद्या को 'श्रीविद्या' कहा जाता है और इसे ही 'पञ्चदशी' भी कहा जाता है— 'श्रीविद्या पञ्चदशीस्वरूपा' (भास्करराय)। श्रीविद्या आदि ब्रह्मविद्या है। इसका करोड़ों जिह्वाओं से भी वर्णन नहीं किया जा सकता—

वाक्यकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।

श्रीविद्या के मन्त्रावयव

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी (श्लोक-३२) में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्रावयवों का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीतकरणः।
स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिताः
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि ! नामावयवताम्।।

शिव (ककार), शक्ति (एकार), काम (ईकार), क्षिति (लकार), अथ (अवसान), रवि (हकार), शीतकिरण (सकार), हंस (हकार), शक्र (लकार), तदनु च (अवसान), परा (सकार), मार (ककार), हरि (लकार), अमी (१२ वर्ण), हृल्लेखाभिः (ह्रींकारों द्वारा), तिसृभिः (त्रित्वविशिष्ट), अवसानेषु (विरामस्थान चतुष्क पञ्चक त्रिकों के ऊपर), घटित (योजित), भजन्ते (प्राप्त करते हैं); वर्णाः (ककारादिक शब्द), तव (आपका), जननि (हे जननी !), नामावयवता (त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र के प्रतीक या अंग)।

(हे जननि ! शिवः शक्तिः कामः क्षितिः अथ रविः शीतकिरणः स्वरः हंसः शक्रः तदनु परामारहरयः इत्येते वर्णाः तिसृभिः हृल्लेखाभिः अवसानेषु घटिताः ते वर्णाः तव नामावयवतां भजन्ते।)

भगवती के पञ्चदशी (पञ्चदशाक्षरी) मन्त्र के खण्ड—

१. आग्नेय खण्ड : शिव, शक्ति, काम, क्षिति = ४ वर्ण।
२. सौर खण्ड : रवि, शीतकिरण, स्मर, हंस, शक्र = ५ वर्ण।
(इन दोनों खण्डों के मध्य रुद्रग्रन्थिस्थानीय हृल्लेखाबीज स्थित है।)

३. सौम्य खण्ड : परा, मार, हरि = ३ वर्ण।
(सौम्य एवं सौर खण्ड के मध्य विष्णुग्रन्थिस्थनीय भुवनेश्वरीबीज स्थित है।)

४. चन्द्रकला खण्ड : एकाक्षर तुरीय वर्ण।

(सौम्य खण्ड एवं चन्द्रकला खण्ड के मध्य ब्रह्मग्रन्थिस्थानीय हृल्लेखाबीज स्थित है; चन्द्रकला खण्ड अप्रकाश्य है, केवल गुरु-प्राप्य है।) कहा भी गया है— 'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः।' यहाँ अवरोहणक्रम का अनुवर्तन किया गया है।

त्रिखण्ड = १. सोम, सूर्य, अनल।
२. इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति।
३. जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति।
४. विश्व, तैजस, प्राज्ञ।
५. सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण।

ध्यातव्य बिन्दु— यद्यपि त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र में १५ वर्ण हैं (मन्त्र पञ्चदशाक्षरी के रूप में प्रख्यात है); तथापि वर्णों की संख्या १६ है। आचार्य लक्ष्मीधर कहते भी हैं—

तथाहि त्रिपुरसन्दरीमन्त्रस्य षोडश वर्णाः अर्थात् मन्त्र के सोलह वर्ण हैं।

ते च षोडशवर्णा: षोडशनित्यातया स्थिता: अर्थात् ये सोलह वर्ण सोलह नित्याओं से युक्त हैं।

सोलह कलाओं को 'नित्य' इसलिये कहा गया है क्योंकि उनका 'चन्द्रकला' के रूप से साम्य है। यह कला एक 'परा कला' है और चिदेकरसा है— 'सा च परा कला चिदेकरसा।' इसी की छाया 'विशुद्धिचक्र' (षोडशार) में कलात्मता के रूप में भ्रमण करती है या सुशोभित होती है। वह प्रधान या प्रकृति हैं और पन्द्रह नित्यायें इसकी अंग हैं।

यद्यपि ककार आदि श्रूयमाण पन्द्रह वर्ण केवल सम्प्रदाय से ही ज्ञात हो सकते हैं, तथापि एक वर्ण षोडशकलात्मक है और वही प्रधानभूत है। यद्यपि 'षोडशी कला' गुरु-मुखमात्रैकगम्य, गुरूपदेशावगन्तव्य है, तथापि उसका यत्किञ्चित् व्याख्यान किया गया है।[१] इस कला का उपदेश अधिकारी को ही किया जाना चाहिये; अन्य को नहीं—

सच्छिष्यायोपदेष्टव्या गुरुभक्ताय सा कला।[२]

कामराज विद्या, जो कि १५ अक्षरों से संघटित है, द्विविध भेदात्मक है। उसके दो भेद हैं— शाक्त और शाम्भव। शाक्त 'कामराज विद्या' ऊर्ध्वाम्नाय से सम्बद्ध है और 'कीलक' के बन्धन से मुक्त है। शाम्भव कामराज विद्या पूर्वाम्नाय से सम्बद्ध है और सदोष है।

१५ अक्षरों से संघटित 'लोपामुद्रा विद्या' भी दो प्रकार की है— शाक्त लोपामुद्रा विद्या और शाम्भव लोपामुद्रा विद्या।

१५ अक्षरों से संघटित 'कादि विद्या' तन्त्रराज एवं त्रिपुरा उपनिषद् में प्रतिपादित है।

१५ अक्षरों से संघटित 'हादि विद्या' अनेक शाक्त उपनिषदों में प्रतिपादित है। बह्वृचोपनिषद् में शाम्भव विद्या के प्रसंग में कादि विद्या, हादि विद्या एवं सादि विद्या का विवेचन किया गया है। यह भी कहा गया है कि दुर्वासा १३ अक्षरों से संघटित हादि विद्या की उपासना करते थे। दुर्वासा ने 'ललितास्तवरत्न' एवं 'परशम्भुस्तोत्र' लिखा था। इनका अपरनाम 'क्रोधभट्टारक' था। क्रोधभट्टारक (दुर्वासा) ने 'महिम्नस्तोत्र' भी लिखा था, जिसमें भगवती त्रिपुरा की स्तुति है और जिस पर विद्यानन्दनाथ (श्रीनिवास भट्ट गोस्वामी) के शिष्य नित्यानन्दनाथ ने टीका भी लिखी थी।

कतिपय विद्वानों के मत में कादिमत में निम्न ग्रन्थ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—

१. योगिनीहृदय
२. तन्त्रराजतन्त्र
३. मातृकार्णव
४. त्रिपुरार्णव

सुभगानन्दनाथ ने मनोरमा (तन्त्रराजतन्त्र की टीका) एवं भास्कर राय ने भावनोपनिषद् की टीका में इसे स्वीकार भी किया है। भास्कर राय ने योगिनीहृदय की हादि विद्यासम्मत व्याख्या को भी प्रामाणिक स्वीकार किया है।

---

१. लक्ष्मीधर : लक्ष्मीधरा।

२. केवल शिष्यों को उपदेश्य है, अन्य को नहीं। लक्ष्मीधर कहते हैं कि जो मेरी पुस्तक पढ़कर इसे जान पाये हों, वे मेरे ही शिष्य समझे जाने चाहिये। यह केवल मेरा हां अनुग्रह है।

भगवती की पूजा के जो तीन भेद— बहिर्याग (बाह्य पूजा), जप एवं अन्तर्याग (आन्तर पूजा) बताये गये हैं; यद्यपि ये विशिष्ट पद्धतियाँ अवश्य हैं, किन्तु पूर्णतया स्वतंत्र (Exclusive) नहीं हैं। त्रिपुरातापिनी उपनिषद् एवं अन्य उपनिषद् बहिर्याग एवं जप पर आधृत हैं; जबकि भावनोपनिषद् भावना (ध्यान) पर बल देता है। भावनोपनिषद् यह बताता है कि कालचक्र में स्थित श्रीचक्र का ध्यान किस पद्धति से किया जाना चहिये। अन्य ग्रन्थकारों ने इन ध्यानों (भावनाओं) के दो प्रकार को तन्त्रप्रतिपादित माना है— कादि मत के अनुसार भावना (ध्यान) और हादि मत के अनुसार भावना (ध्यान)।

अन्तर्याग का सिद्धान्त यह मानता है कि चक्रों को शरीर में स्थित मान कर उनकी नमस्या, पूजा या वरिवस्या अनुष्ठेय है । भले ही विभिन्न मार्ग विभिन्न पद्धतियाँ स्वीकार करें।

भावनोपनिषद् का मत है कि मानवशरीर को 'श्रीचक्र' के रूप में कल्पित करना चाहिये। भावनोपनिषद् कादिमत की दृष्टि से व्यवस्था देता है, कादिदृष्टि प्रस्तुत करता है। इस दिशा में 'नित्याहृदय' (योगिनीहृदय), 'तन्त्रराज' एवं 'बिन्दुसूत्र' द्रष्टव्य है। भावनोपनिषद् का मत है कि—

- मानवशरीर स्वयं एक 'श्रीचक्र' है; क्योंकि शरीर स्वात्मा की अभिव्यक्ति है।
- शरीर को आत्मा से पृथक् न माना जाय।
- समस्त बाह्य प्रपञ्च एवं मानवशरीर— ये दोनों आत्मा से अभिन्न (Non different) हैं।
- यह प्रापञ्चिक बाह्य रचना काल एवं देश पर आधृत है और यह देशकालजन्य है।

लक्ष्मीधर आदि आचार्यों का कथन है कि चन्द्रमा की 'दर्शा', 'दृष्टा' आदि कलायें अर्थात् प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की पन्द्रह सौर तिथियाँ 'कामेश्वरी' से 'चित्रा'प्रभृति पन्द्रह 'नित्याओं' से अभिन्न हैं। सोलहवीं कला 'सादाख्या' स्बयं भगवती ललिता हैं और 'षोडशी कला' भगवती ललिता से अभिन्न है।

साधक को मानना चाहिये कि कालचक्र में जो कुछ भी दृष्टिगत होता है, वह सब कुछ वही है, जो कि श्रीचक्र में नित्याओं के रूप में दृष्टिगत होता है। तिथिचक्र (Wheel of time) सतत् नित्य घूम रहा है और उसके भीतर ही श्रीचक्र है। योगियों की दृष्टि से विचार किया जाय तो मनुष्य के द्वारा प्रतिदिन ली जाने वाली २१६०० श्वासें तिथियों से अभिन्न हैं।

इन दार्शनिकों ने 'काल' की भाँति ही 'देश' पर भी विचार किया है। पौराणिक सृष्टि-विज्ञान के अनुसार तो विश्व की संरचना-तन्त्र चौदह लोकों (जम्बूद्वीप से मधुरोद तक, जम्बूद्वीप से परे मेरु से परव्योम (मधुरोद से परे) तक प्रसृत है।

नित्यामण्डल इस प्रकार घूमता है कि प्रत्येक 'नित्या' अपनी वार्षिक यात्रा में किसी विशिष्ट देशीय विभाजन के सम्पर्क में आती है; अत: प्रथम वर्ष में नित्यायें मेरु से प्रारम्भ

करती हैं और सोलहवें दिन वे 'परव्योमन्' से प्रारम्भ करती हैं। यही है— 'देशचक्र'। योगिनीहृदय का स्वतन्त्र एवं विशिष्ट आन्तर पूजाविधान है। चिद्गगनचन्द्रिका, महार्थमञ्जरी एवं क्रमसम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थ इस विषय पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं।[1] विभिन्न विद्या-सम्प्रदायों, मतों का संक्षेपण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

श्रीविद्या के सम्प्रदाय

(त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या के उपासक)

मनु, चन्द्र कुबेर लोपामुद्रा मन्मथ अगस्त्य अग्नि सूर्य इन्द्र स्कन्द शिव दुर्वासा

(कामराज विद्या)

शाक्त कामराज विद्या शाम्भव कामराज विद्या

(शाक्त लोपामुद्रा विद्या)

शाम्भव लोपामुद्रा विद्या शाम्भव लोप विद्या

प्रमुख विद्यायें—

१. कादिविद्या।
२. हादिविद्या।
३. सादिविद्या।
४. कहादिविद्या।

श्रीविद्या और उसके मन्त्राक्षर— श्रीविद्या आदि ब्रह्मविद्या है। मन्त्रों की दृष्टि से इस विद्या के मुख्यत: दो अंग हैं— कादि विद्या और हादि विद्या। कादि का 'क' एवं हादि का 'ह' (दोनों कूटों के प्रथमाक्षर) शिव एवं शक्ति के द्योतक हैं। इन्हीं के आधार पर सम्पूर्ण विद्यायें सिद्ध होती हैं। शक्ति के योग के विना शिव का अकेला अक्षर 'मन्त्र' नहीं बन सकता। तृतीयाक्षर 'सदाख्य तत्त्व', चतुर्थाक्षर 'महेश्वर' एवं पञ्चमाक्षर 'शुद्ध विद्या' का प्रतीक है। अक्षरद्वय के पश्चात् तृतीयाक्षर 'काम' का द्योतक है। फिर चतुर्थाक्षर 'शिव'-वाचक है, जिसका काम (ईक्षण = इच्छा) पृथ्वीपर्यन्त सर्वत्र व्याप्त है। पञ्चमाक्षर 'पृथ्वी'-वाचक है। इस प्रकार ईश्वर, जीव एवं विश्व का भेद दिखाने वाला द्वितीय कूट 'विद्या कला' को संकेतित करता है। तृतीय कूट 'शक्तिकूट' है, जो कि 'प्रतिष्ठा' एवं 'निवृत्ति' को संकेतित करता है।

सौन्दर्यलहरी के आदि में यह कथन कि 'शक्ति के योग से ही शिव सृष्टि करता है— शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुम्। न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।।' 'श्रीविद्या' का प्रतिपादन करता है। कादि के 'क' एवं हादि के 'ह' (शिव + शक्ति) के योग के विना अकेला शिव का अक्षर मन्त्र नहीं बना सकता— यह भी उसी तथ्य की पुष्टि करता है।

तन्त्रराजतन्त्र : एक विहङ्गमावलोकन

तन्त्रराजतन्त्र के तीन भाग हैं और प्रत्येक भाग (खण्ड) देवता के ध्यान एवं पूजा के विषय में स्वतन्त्र सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। ये तीन भाग— कादि, हादि एवं कहादि सिद्धान्तों का पृथक्-पृथक् रूप से प्रतिपादन करते हैं। 'कहादि' को 'शक्तिसंगम' भी कहा जाता है।

१. डॉ. गोपीनाथ कविराज- योगिनीहृदय की भूमिका।

कादिमत— तन्त्रराज में कादिमत के प्रतिपादक ३६ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में १००-१०० श्लोक हैं।

'क' काली के बीजमन्त्र 'क्रीं' का आद्यक्षर है। 'ह' शिवबीज है। जब देवी शिव से प्रश्न करती हैं कि 'कादि क्या है?' (१०-७.८) तो भगवान् शिव कहते हैं कि 'तुम्हारा रूप ही कादि का अर्थ है— कादिसंज्ञा भवद्रूपा।' त्रिकोण देवी का रूप है। बंगाली एवं देवनागरी लिपि के प्राचीन स्वरूप में 'क' अक्षर बायें भाग में एक त्रिकोण बनाता था।

त्रिकोण— 'वर्णोद्धार' एवं 'कामधेनुतन्त्र' के अनुसार (शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत) त्रिकोण की वाम रेखा रक्त वर्ण के ब्रह्मा हैं, दक्षिण रेखा श्वेत वर्ण के विष्णु हैं और आधार रेखा हरित वर्ण के रुद्र हैं। मात्रा श्वेतवर्णा साक्षात् देवी सरस्वती हैं। दक्षिण भाग में वक्राकार (अंकुशाकार) भाग विद्युदाभ कुण्डलिनी है। त्रिकोण का रिक्त स्थान श्वेत सुदर्शन है, जो कि लाखों चन्द्रों के प्रकाशतुल्य श्वेत है। उसके साथ कैवल्य-जननी काली हैं और कोणत्रय में ज्येष्ठा, वामा एवं रौद्री शक्तियाँ स्थित हैं। यन्त्रत्रिकोण 'योनि-मण्डल' कहलाता है, जो कि त्रिपुरा देवी का आसन है। वह ज्ञानात्मा है और उसकी चार कलायें हैं। ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया की समष्टि होने के कारण वह 'प्रकृति' है।

ककार से काम का आविर्भाव होता है। यह 'मूल प्रकृति' है।

१. वह समस्त वर्णों की मूल प्रकृति है।
२. वह स्फुरण की अक्षय शक्ति है।
३. वह समस्त देवताओं की जननी है।
४. वह महानिर्वाण की प्रदायिका है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि 'कं ब्रह्म' ('क' ब्रह्म है)। यह वह शक्ति है, जो कि नव नाथों के द्वारा चारो ओर फैलायी जाकर (अर्थात् २ कर्ण, १ मुख, २ आँख, २ नासारन्ध्र एवं २ पायूपस्थ के द्वारा फैलायी जाकर) प्रत्येक कल्प में समस्त पृथ्वी में एवं कल्पान्त में अभिव्यक्त होती है। शिव-शक्ति अभिन्न हैं। जहाँ एक की पूजा होती है, वहाँ दूसरा भी पूजित होता है।

सम्मोहनतन्त्र में कहा गया है कि 'कादिमत' वह सिद्धान्त है, जिसमें कि मन्त्र 'क' से प्रारम्भ होता है। 'हादिमत' वह सिद्धान्त (मत) है, जिसमें मन्त्र 'ह' अक्षर से प्रारम्भ होता है। इसे 'हंसराज' भी कहते हैं। 'कहादिमत' कादि एवं हादि मन्त्रों का मिश्रण या योग है और उत्तराम्नायगोचर है। कहादिमत का सर्वोच्च तन्त्र 'कुलार्णवतन्त्र' है। यह ऊर्ध्वाम्नाय है।

कादिमत के तन्त्र (मनोरमा के अनुसार) ९ हैं—

१. सौन्दर्यलहरी	४. मातृक	७. बहुरूपाष्टक
२. नित्या षोडशिकार्णव	५. सम्मोहन	८. प्रस्तारचिन्तामणि
३. चन्द्रज्ञान	६. वामकेश्वर	९. मेरुप्रस्तार

भास्कर राय ने मनोरमा के इस निर्णय को प्रश्नवाचक चिह्न से चिह्नित किया है। वे 'सेतुबन्ध' में इस विचार की प्रामाणिकता के विरुद्ध तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। भास्कर राय कहते हैं कि 'नित्याषोडशिका' वामकेश्वरतन्त्र का एक भाग है और 'सुन्दरी' या 'योगिनीहृदय' नित्याषोडशिका का एक भाग है। अत: ये तीनों एक तन्त्र का निर्माण करते हैं। वे सेतुबन्ध में यह भी कहते हैं कि 'बहुरूपाष्टक' एक तन्त्र नहीं है। 'सम्मोहनतन्त्र' को यदि उक्त ९ ग्रन्थों में परिगणित किया जाता है तो यह समीचीन नहीं है; क्योंकि यह वैष्णवतन्त्र है और इसमें ४०,००० श्लोक हैं। हाँ, इसके अतिरिक्त कोई अन्य सम्मोहनतन्त्र हो तो बात दूसरी है। सर जान वुडरफ़ का कथन है कि इस नाम का एक अन्य तन्त्रग्रन्थ है, जो कि नेपाल के पुस्तकालय में है और वह 'कादितन्त्र' माना जाता है।

कादितन्त्र शक्ति की उपासना को अनेक रूपों में स्वीकार करता है; यथा— स्थूल, सूक्ष्म, पर। साधक स्थूलोपासना से प्रारम्भ करता है और परोपासना तक पहुँचता है। साधना का लक्ष्य है— अद्वैत वेदान्त के सत्य की व्यावहारिक अनुभूति। सारांश यह कि भगवती ललिता (त्रिपुरसुन्दरी) के तीन रूप हैं— स्थूल, सूक्ष्म एवं पर तथा उसकी पूजा-पद्धति भी त्रिविधात्मिका है— कायिक, वाचिक एवं मानसिक। इसे ही बहिर्याग, अन्तर्याग एवं भावना कहा गया है।

पूजा के प्रकार

अन्तर्याग बहिर्याग भावना

यह तन्त्र तीनों रूपों का प्रतिपादन करता है, जिसकी सहायता से साधक गुरु की कृपा से अद्वैत सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होता है।

अद्वैतभावना— 'गुरु' आद्या शक्ति या 'विमर्श' के साथ अभिन्न है और सभी का मूल कारण है। उसके शरीर की नवात्मकरूपता नौ रन्ध्रों द्वारा देखी जाती है—

गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते।।

नौ गुरु इन्हीं नौ रूपों के प्रतिनिधि हैं। साधक का शरीर 'श्रीचक्र' ही है, जो कि ९ चक्रों से निर्मित है। श्रीचक्र की पूजा का उद्देश्य ज्ञाता (होता), ज्ञान (अर्घ्य) एवं ज्ञेय (हवि) के साथ अभेदभावना है—

ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविःस्थितम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरीतम्।।

तन्त्रराजतन्त्र के वासनापटल में साधनापद्धति एवं श्रीचक्र के विभिन्न अंगों की विवेचना की गई है।

त्रिपुरातापिनी उपनिषद् कायिक एवं वाचिक कर्म का ही प्रतिपादन करता है; जबकि भावनोपनिषद् भावना (मानस कर्म) का प्रतिपादन करता है।

तन्त्रराजतन्त्र के वासनापटल का प्रारम्भ 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' से होता है और यह 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' सूत्र से समाप्त होता है।

शाक्तसाधना अद्वैतात्मिका होने के कारण 'साहं' (She I Am) या 'सोऽहं' या 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की साधना है। She I Am या He I Am (साऽहं या सोऽहं) 'अहं ब्रह्माऽस्मि' की औपनिषदिक अद्वैतानुभूति है।

तन्त्रशास्त्र मानवशरीर के प्रत्येक तत्त्व को दिव्य शक्ति मानता है और पूरे व्यक्तित्व को अनेक गतिमय (Dynamic) शक्तियों का समुच्चय मानता है। यह शास्त्र प्रत्येक देवता का अपना एक पृथक् यन्त्र, मन्त्र, बीज, वाहन, शक्ति, वर्ण, तत्त्व आदि मानता है। जैसे कि श्रीयन्त्र को भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना (पूजा) का विशिष्ट यन्त्र माना जाता है। यह चक्र नवयोन्यात्मक है। इसमें मूलतः नौ त्रिकोण हैं। ४ शिवत्रिकोण हैं और ५ शक्तित्रिकोण हैं।

नित्याहृदय, सुन्दरीहृदय या योगिनीहृदय की व्याख्या दो दृष्टियों से की गई है, जो निम्नांकित है—

१. अमृतानन्द नाथ : दीपिका : 'हादिमत' का प्रतिपादन (लोपामुद्रा विद्या)।

२. भास्कर राय : सेतुबन्ध : 'कादिमत' का प्रतिपादन (कामदेव विद्या)।

शाक्तों की परम्परागत उपासना का सम्बन्ध १२ उपासकों से है और ये ही 'श्रीविद्या' के १२ सम्प्रदाय कहलाते हैं; जो कि मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, शिव, दुर्वासा आदि नाम से जाने जाते हैं। इनमें से और सम्प्रदाय तो नष्ट हो गये; केवल दो शेष रह गए—

१. लोपामुद्रा विद्या : लोपामुद्रा सम्प्रदाय : हादि मत : १५ वर्ण।

२. कामदेव विद्या : मन्मथ सम्प्रदाय : कादि मत : १५ वर्ण।

किन्तु आजकल मात्र कादिमत (मन्मथ विद्या) ही प्रचलित है। कामराजविद्या (कादिमत) के दो प्रकार हैं और हादिमत के भी दो प्रकार हैं—

श्रीसम्प्रदाय (१२ सम्प्रदाय)

१. कादिमत (कामराजविद्या)   २. हादिमत   शेष १० सम्प्रदाय अन्य हैं।

शाक्त   शाम्भव   शाक्त   शाम्भव

ऊर्ध्वाम्नाय   पूर्वाम्नाय   (लोपामुद्रा विद्या)

(कीलक से मुक्त)   (कीलित)

कादिमत तन्त्रराजतन्त्र एवं त्रिपुरा उपनिषद् द्वारा भी प्रतिपादित है।

मनु द्वारा उपासित विद्या : १८ अक्षर।

दुर्वासा द्वारा उपासित विद्या : १३ अक्षर।

चन्द्र एवं कुबेर द्वारा उपासित विद्या : २२ अक्षर।

(कहीं-कहीं इन्द्र एवं अग्नि के स्थान पर नन्दी एवं विष्णु का नाम पाया जाता है।)

कादिमत के प्रतिपादक प्रधान ग्रन्थ हैं— योगिनीहृदय, तन्त्रराजतन्त्र, मातृकार्णव एवं त्रिपुरार्णव। सुभगानन्दनाथ (तन्त्रराजतन्त्र पर टीका 'मनोरमा') एवं भास्कर राय (भावनोपनिषद् पर टीका) दोनों मानते हैं कि 'योगिनीहृदय कादिमत का ग्रन्थ' है, तथापि भास्कर ने वरिवस्यारहस्यम् में योगिनीहृदय को कादिमत का ग्रन्थ मान कर ही उसकी व्याख्या की है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के तीन प्रकार हैं— अन्तर्याग, बहिर्याग और जप।

त्रिपुरातापिनी उपनिषद् का प्रतिपादक : बहिर्याग और जप।

भावनोपनिषद् का प्रतिपादन : मात्र अन्तर्याग एवं भावना (ध्यान) का प्रतिपादक है।

श्रीविद्या के सम्प्रदाय— त्रिपुरासिद्धान्त के प्रतिपादक श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय हैं, जो कि निम्नांकित हैं—

प्रवर्तक	सम्प्रदाय	प्रवर्तक	सम्प्रदाय	प्रवर्तक	सम्प्रदाय	प्रवर्तक	सम्प्रदाय
मनु	मनु सम्प्रदाय	चन्द्र	चन्द्र सम्प्रदाय	कुबेर	कुबेर सम्प्रदाय	लोपामुद्रा	लोपामुद्रा सम्प्रदाय
मन्मथ	मन्मथ सम्प्रदाय	अगस्त्य	अगस्त्य सम्प्रदाय	अग्नि	अग्नि सम्प्रदाय	सूर्य	सूर्य सम्प्रदाय
इन्द्र	इन्द्र सम्प्रदाय	स्कन्द	स्कन्द सम्प्रदाय	शिव	शिव सम्प्रदाय	दुर्वासा (क्रोधभट्टारक)	दुर्वासा सम्प्रदाय

प्रागैतिहासिक युग एवं तत्कालीन आचार्य

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा। — आद्य द्वादश आचार्य
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।।

कामकलाविलास के टीकाकार नटनानन्दनाथ (चिद्वल्ली) के अनुसार श्रीविद्यारत्नागम में मात्र दो सन्तानें हैं— कामराजसन्तान एवं लोपामुद्रासन्तान। कहा भी है—

इह श्रीविद्यारत्नागमे सन्तानद्वयमस्ति, कामराजसन्तानो लोपामुद्रासन्तानश्चेति।

कामराजसन्तानक्रम— 'कामराजसन्तानक्रमस्तु सकलविद्याऽनुसन्ध्यविच्छिन्न इति प्राचीनगुरवोऽप्याचक्षते।'

लोपामुद्रासन्तानक्रम— 'लोपामुद्रासन्तानक्रमस्तु विच्छिन्नतया प्रवर्तत इति वर्णयन्ति।'

विद्यायें	परिचय
१. कामराज विद्या 'कादि विद्या'	त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड में एक आख्यान आता है कि कामदेव ने कठोर तपस्या करके श्रीविद्यादेवी को सन्तुष्ट करके अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये। कामराजविद्या ककारादि पञ्चदशवर्णात्मिका है, इसीलिये इसे 'कादि-विद्या' भी कहते हैं।
२. लोपामुद्रा विद्या 'हादि विद्या'	लोपामुद्रा का ऋग्वेद में भी उल्लेख आया है और वे ऋग्वेद की अन्यतमा ऋषि हैं (ऋग्वेद-१.१७९.१-२)। इस ऋषि के पति अगस्त्य हैं। लोपामुद्रा ने अत्यन्त कठोर तप करके और 'श्रीविद्या' की आराधना करके सिद्धि प्राप्त किया। जिस मन्त्र-साधना से उन्होंने सिद्धि प्राप्त किया, उसी का नाम है— 'लोपामुद्रा विद्या।' हकारादि पञ्चदशवर्णात्मिका यह विद्या 'हादि विद्या' भी कहलाती है।
३. अगस्त सम्प्रदाय	अगस्त्य श्रीविद्या के अन्यतम आचार्य हैं। उनके द्वारा प्रणीत 'शक्तिसूत्र' एक प्रख्यात ग्रन्थ है, जिसका आदिसूत्र 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' है।
४. दुर्वासा सम्प्रदाय	दुर्वासा द्वारा प्रणीत सूत्रग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। उनके द्वारा प्रणीत 'त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्' तथा उसकी नित्यानन्दविरचित व्याख्या प्रकाशित है। रुद्रांश से समुत्पन्न होने के कारण दुर्वासा को 'क्रोधभट्टारक' भी कहते हैं। त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र की पुष्पिका में इन्हें 'सकलागमाचार्य' नाम से भी अभिहित किया गया है।

दत्तात्रेय एवं परशुराम भी श्रीविद्या सम्प्रदाय के अप्रतिम आचार्यों एवं सूत्रकारों में से एक हैं। दत्तात्रेय ने त्रिपुरातत्त्व के रहस्य के विवृत्त्यर्थ अष्टादशसाहस्री 'दत्तसंहिता' का प्रणयन किया था। परशुराम ने उसे संक्षिप्त कर ५०० खण्डों एवं ६ हजार सूत्रों में प्रस्तुत किया। तदुपरान्त हारितायन ने 'परशुरामकल्पसूत्र' को दस खण्डों में संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया। त्रिपुरा देवी के उपासकों के सम्प्रदायों में परशुराम विशेषतया प्रख्यात थे। परशुराम ने दत्तात्रेय के समीप परमेश्वरी त्रिपुरा के माहात्म्य को सुनकर उनकी उपासना के रहस्य एवं पद्धति को जानने की उत्कण्ठा व्यक्त करने के उपरान्त वे स्वयं ही परमार्थसम्बन्धी समस्या के समाधान हेतु भगवान् दत्तात्रेय के समीप गये।

त्रेता युग में भगवान् रामचन्द्र से पराभूत होने से लज्जावनत होने के कारण दुःखी होकर परशुराम संवर्त ऋषि के पास गये, जहाँ सवर्त ऋषि ने परमार्थतत्त्वोपदेश द्वारा उनका शोक निवृत्त किया; किन्तु परशुराम संवर्तोपदिष्ट तत्त्वोपदेश के सारार्थ को हृदयङ्गम नहीं कर पाये। इसके उपरान्त उन्होंने दत्तात्रेय जी के पास जाकर संवर्त-तत्त्वोपदेश के रहस्य को समझाने हेतु निवेदन किया। दत्तात्रेय जी ने संवर्तकथित परमार्थ तत्त्व की व्याख्या करके उसे परशुराम जी को समझाया। यह समस्त प्रसंग त्रिपुरारहस्य के ज्ञानकाण्ड में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

ऐतिहासिक युग के आचार्य

इतिहास-सम्मत युग में अनेक आचार्य हुये। इस इतिहासप्रमाणित युग में श्रीविद्या सम्प्रदाय में अनेक युगान्तरकारी महान् आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ; जिनमें गौड़पाद, शंकराचार्य, पुण्यानन्दनाथ, अमृतानन्दनाथ, भास्करराय, उमानन्दनाथ, रामेश्वर सूरिप्रभृति प्रमुख थे।

१. आचार्य गौडपाद— शंकराचार्य के परमगुरु (गुरु के गुरु) गौड़पादाचार्य का प्रादुर्भाव छठवीं-सातवीं शती के मध्य हुआ था। उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में 'सुभगोदय स्तोत्र' एवं 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' अधिक प्रख्यात है। शंकरारण्य ने श्रीविद्यारत्नसूत्र पर 'दीपिका' नामक टीका लिखी थी।

२. शंकराचार्य— इनका अविर्भाव सातवीं-आठवीं शती के मध्य हुआ था। इन्होंने 'श्रीविद्या' के उपास्य अद्वैत ज्ञान को प्राप्त किया था। इनकी 'सौन्दर्यलहरी' नामक रचना तथा 'ललितात्रिशतीभाष्य' में श्रीविद्यातत्त्व का पुष्कल विवेचन किया गया है। इनके 'सौन्दर्य-लहरी' एवं 'आनन्दलहरी' नामक स्तोत्र में अनुपमेय कवित्व तथा दार्शनिक दृष्टि का मणिकाञ्चन संयोग मिलता है। सौन्दर्यलहरी की 'लक्ष्मीधरा' टीका (१२६८-१३७९ ई०) अधिक प्रख्यात है।

स्वयं आदिशंकराचार्य जी ने शृंगेरी मठ में प्रधानोपास्य के रूप में 'श्रीविद्या' की स्थापना की थी। उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारो पीठों में आज भी गुरुपरम्परा द्वारा श्रीविद्या की उपासना प्रचलित है।

३. पुण्यानन्दनाथ— पुण्यानन्दनाथ भी श्रीविद्या के उपासक आचार्य थे। उन्होंने 'कामकलाविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। टीकाकार नटनानन्दनाथ ने उक्त ग्रन्थ पर 'चिद्वल्ली' नामक वैदुष्यपूर्ण टीका लिखी है। 'त्रिपुरासिद्धान्त' भी त्रिपुरासिद्धान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

४. अमृतानन्दनाथ— वामकेश्वरतन्त्र के एक अंश की व्याख्या 'योगिनीहृदयदीपिका' नाम से करके आचार्य अमृतानन्दनाथ ने श्रीसम्प्रदाय के सिद्धान्तों की सूक्ष्म व्याख्या की है।

५. भास्कर राय— भास्कर राय भी श्रीविद्या के अन्यतम आचार्य थे। ये श्रीविद्या के उपासक भी थे। १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इनका आविर्भाव हुआ था। ये शाक्त दार्शनिक थे। इनका अपर नाम 'भासुरानन्दनाथ' था। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ 'शाक्तदर्शन' के निगूढ़ तत्त्वों की अत्यन्त मार्मिक व्याख्या के लिये प्रसिद्ध हैं। वरिवस्यारहस्यम्, सौभाग्य-भास्कर, ललितासहस्रनामभाष्यम्, नित्याषोडशिकार्णव की टीका 'सेतुबन्ध', गुप्तवती (श्रीचण्डीटीका), कौल मत से सम्बद्ध 'कौलत्रिपुरा' आदि ग्रन्थ भास्कर राय के अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

६. उमानन्दनाथ— उमानन्दनाथ भास्करराय के प्रिय शिष्य थे। इनका आविर्भाव-

काल १७५५ खीष्टाब्द है। इन्होंने 'नित्योत्सवपद्धति' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है।

७. रामेश्वर सूरि (रामेश्वर)— रामेश्वर भास्कर राय के प्रशिष्य थे। इनका आविर्भाव १८३१ खीष्टाब्द में हुआ था। इन्होंने परशुरामकल्पसूत्र की टीका 'सौभाग्य-सुधोदय' के अभिधान से की है। महाराष्ट्र एवं सुदूर दक्षिण भारत में अद्यापि भास्करराय का शिष्य-सम्प्रदाय वर्तमान है।

८. नित्यानन्द प्रभु— चैतन्य महाप्रभु के अभिन्नहृदय एवं अभिन्न सहयोगी तथा अवधूत संन्यासी श्री नित्यानन्दप्रभु श्रीविद्या के उपासक थे। इनके द्वारा आराधित, उपासित एवं पूजित 'श्रीविद्यायन्त्र' (श्रीचक्र) खड़दह में आज भी पूजा जाता है।

'त्रिपुरोपनिषद्' एवं 'त्रिपुरातापिन्युपनिषद्' वैदिक रचनायें हैं, जिनमें श्रीविद्या एवं उसकी उपासना का प्रतिपादन किया गया है। श्रीविद्या एवं उसकी उपासना वेद से ही तन्त्रशास्त्र में गृहीत हुई है।[१]

श्रीयन्त्र और श्रीविद्या

'श्रीयन्त्र' और 'श्रीविद्या' मूलत: अभिन्न हैं, तथापि व्यवहारत: भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीयन्त्र भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्थूल शरीर है और श्रीविद्या उनका सूक्ष्म शरीर है। बिन्दुपीठ में स्थित पराभट्टारिका ऊर्ध्वमुख त्रिकोण के ऊर्ध्व बिन्दु में स्थित है। यही 'कामपीठ' है। इनके शिव की आख्या है— 'ऊर्ध्व देवनाथ', जो कि भगवती कामेश्वरी के साथ विराजमान हैं। ये त्रेता युग के गुरु हैं और 'वाग्भव पीठ' के अधिष्ठाता हैं। दक्षिण कोण में 'जालन्धर पीठ' है। इसके अधिष्ठाता श्री 'षष्ठदेव नाथ' हैं, जो अपनी शक्ति 'वज्रेश्वरी' के साथ आसीन हैं। ये 'कामराजबीज' के अधिष्ठाता और द्वापर युग के गुरु हैं। उत्तर कोण में 'पूर्णगिरि पीठ' पर 'मित्रदेवनाथ' स्थित हैं, जो कि भगमालिनी शक्ति से समन्वित हैं। ये 'शक्तिबीज' के अधिष्ठाता हैं। ये बालगुरु कलियुग के सम्प्रदायप्रवर्तक हैं। 'सर्वानन्दमय चक्र' बिन्द्वात्मक है। उस बिन्दु की अधीश्वरी (अधिष्ठात्री देवी) त्रिकोण के त्रिबिन्दु रूप में ही विकसित है। अत: बैन्दव चक्र ही 'प्राण' है। 'त्रिकोणचक्र' में भगवती कामेश्वरी द्वारा ७ दिव्यौघ, ४ सिद्धौघ एवं ८ मानवौघ गुरुओं का उदय हुआ। इनके द्वारा श्रीविद्या का सम्प्रदाय पृथ्वी पर अवतरित हुआ। इनके १२ उपासक प्रसिद्ध हैं। आजकल तो केवल 'कामराजसन्तान' ही अविच्छिन्नतया प्रचलित है, किन्तु पुण्यानन्दनाथ ने हादिविद्या— लोपामुद्राविद्या को स्वीकार किया है; तथापि उन्होंने कादिविद्या को भी उसके समकक्ष, समतुल्य माना है। सतयुग के गुरु 'चर्यानन्दनाथ' हैं और पीठ 'श्रीपीठ' है।

दश महाविद्यायें

काली	तारा	षोडशी	भुवनेश्वरी	भैरवी	छिन्नमस्ता	धूमावती	बगला	मातंगी	कमला

इन्हें ही श्रीविद्या भी कहा गया है।

१. शाक्तदर्शनम्- चक्रेश्वर भट्टाचार्य

श्रीविद्या के द्वादश सम्प्रदाय

मनु सम्प्रदाय | चन्द्र सम्प्रदाय | कुबेर सम्प्रदाय | लोपामुद्रा सम्प्रदाय | मन्मथ सम्प्रदाय | अगस्त्य सम्प्रदाय | अग्नि सम्प्रदाय | सूर्य सम्प्रदाय

इन्द्रसम्प्रदाय | शिवसम्प्रदाय | स्कन्दसम्प्रदाय | क्रोधभट्टारक | दुर्वासासम्प्रदाय

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।।

इन दशों श्रीविद्योपासकों का अपना पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय था, किन्तु इनमें से अधिकांश सम्प्रदाय धीरे-धीरे विलुप्त हो गये।

नटनानन्दनाथ द्वारा कामकलाविलास की टीका 'चिद्वल्ली' में कथित दो सन्तानों (कामराजसन्तान एवं लोपामुद्रासन्तान) में भी कादि अर्थात् कामराजसन्तान की ही प्रधानता है। जैसा कि कहा भी गया है—

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा।

दश महाविद्याओं में 'षोडशी' नामक तृतीया विद्या ही 'श्रीविद्या' के नाम से प्रसिद्ध है।

दश महाविद्याओं में प्रधान विद्यायें

काली महाविद्या | तारा महाविद्या | षोडशी महाविद्या

नाद एवं श्रीविद्या का भी अन्तःसम्बन्ध है।

नादतत्त्व एवं श्रीविद्या का अन्तःसम्बन्ध— स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि—

१. समस्त मन्त्र वर्णों से बनते हैं।

२. वर्ण ध्वनियों से बनते हैं।

३. ध्वनियाँ नादों से बनती हैं।

४. मन्त्र नादों से बनते हैं। सम्पूर्ण मन्त्र नादों पर ही आश्रित हैं।

५. चूँकि नादोत्थान के विना मन्त्र की मन्त्रमयता यथार्थ नहीं रहती; अतः नाड्याधार 'नाद' ही मन्त्र का प्राणतत्त्व है और उसी से जगत् एवं श्रीविद्या— दोनों संघटित हैं।

६. भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् में 'नादनवक' को प्रमुख जपांग माना है—
नव च मनोरर्थांश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।।

७. स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि—

नाड्याधारस्तु नादो वै भित्वा सर्वमिदं जगत्।
अधःशक्त्या विनिर्गत्य ऊर्ध्वशक्त्यवसानकः।।[1]

१. नाड्यां ब्रह्मबिले लीनस्त्वव्यक्तध्वनिलक्षणः। (स्वच्छन्दतन्त्र)

सप्तदश अध्याय

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् (प्रथमोपनिषत्) में प्रतिपादित द्वादश विद्यायें

१. लोपामुद्राविद्या— एवमाद्यां विद्यामभिधायैतस्याः शक्तिकूटं शक्ति शिवाद्या। लोपामुद्रेयं द्वितीये धामनि।।२७।।

२. क्रोधमुनि विद्या— पूर्वेणैव मनुना बिन्दुहीना शक्तिभूतहृल्लेखा क्रोधमुनिनाऽधिष्ठिता तृतीये धामनि।।२८।।

३. कौबेरी विद्या— पूर्वस्या एव विद्याया यद्वाग्भवकूटं तेनैव मानवीं चान्द्रीं कौबेरीं विद्यामाचक्षते।।२९।।

४. मानवी विद्या— मदनाधः शिवं वाग्भवम्, तदूर्ध्वं कामकलामयम्, शक्त्यूर्ध्वं शाक्तमिति मानवी विद्या चतुर्थे धामनि।।३०।।

५. चान्द्री विद्या— शिवशक्त्याख्यं वाग्भवं तदेवाधः शिवशक्त्याख्यमन्यत्तृतीयं चेयं चान्द्री विद्या पञ्चमे धामनि ध्येयेयम्।।३१।।

६. कौबेरी विद्या— चान्द्री कामाधः शिवाद्यकामा सैव कौबेरी षष्ठे धामनि व्याचक्षत इति य एवं वेद।।३२।।

७. आगस्त्य विद्या— हित्वेकारं तुरीयस्वरं सर्वादौ सूर्याचन्द्रमस्केन कामेश्वर्यै-वागस्त्यसंज्ञा सप्तमे धामनि।।३३।।

८. नन्दि विद्या— तृतीयमेतस्या एव पूर्वोक्तायाः कामाद्यं द्विधाऽधः कं मदनकलाऽऽद्यं शक्तिबीजं वाग्भवाद्यं तयोरर्धावशिरस्कं कृत्वा नन्दिविद्येयमष्टमे धामनि।।३४।।

९. प्रभाकरी विद्या— वाग्भवमागस्त्यं वागर्थकलामयं कामकलाऽभिधं सकलमायाशक्तिः प्रभाकरीविद्येयं नवमे धामनि।।३५।।

१०. षणमुखी विद्या— पुनरागस्त्यं वाग्भवं शक्तिमन्मथशिवशक्तिमन्मथोर्वीमाया-कामकलालयं चन्द्रसूर्यानङ्गधूर्जटिमहिमायां तृतीयं षण्मुखीयं विद्या दशमे धामनि।।३६।।

११. परमशिव विद्या— विद्या प्रकाशितयाभूय एवागस्त्यविद्यां पठित्वा भूय एवेमा-मन्त्यमायां परमशिवविद्येयमेकादशे धामनि।।३७।।

१२. वैष्णवी विद्या— भूय एवागस्त्यं पठित्वा एतस्या एव वाग्भवं यद्धनजं कामकलाऽऽलयं च तत्सहजं कृत्वा लोपामुद्रायाः शक्तिकूटराजं पठित्वा वैष्णवी विद्या द्वादशे धामनि व्याचक्षत इति य एवं वेद।।३८।।[१]

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ।

श्रीचक्र एवं मन्त्र में ऐकात्म्य— श्रीचक्र भगवती त्रिपुरसुन्दरी का अपना शरीर है। योगिनीहृदय में इस तथ्य की पुष्टि करते हुये इस प्रकार कहा गया है—

इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रं देवतायाः परं वपुः।। (मन्त्रसङ्केत-५६)

श्रीचक्र एवं श्रीविद्या नामक मन्त्र एकात्म हैं। इस प्रकार श्रीचक्र एवं श्रीविद्या मन्त्र में एकात्मता है। कहा भी है— 'इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रम्।' सौभाग्यविद्या (श्रीविद्या) एवं श्रीचक्र तथा देवता के शरीर मूलतः एक ही हैं।

'चक्रं देवतायाः परममन्यद्वपुः' कहकर सेतुबन्ध में चक्र, मन्त्र एवं देवता की एकता प्रतिपादित की गई है, क्योंकि चक्र स्वयमेव 'श्रीविद्या' से एकाकार है।

श्रीविद्या : पञ्चदशाक्षरी विद्या : द्वादश विद्यायें

आदिविद्या— कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीम्।

कूटत्रय— क. आद्यखण्ड : वाग्भव कूट : 'कएईलह्रीम्'।
ख. कामकूट : कामकूट : 'हसकहलह्रीम्'।
ग. शक्तिकूट : शक्तिकूट : 'सकलह्रीम्'।

द्वादश विद्यायें—

१. शक्तिशिव विद्या— 'सक'।
२. लोपामुद्रा विद्या— 'हसकहलह्रीम्'।
३. क्रोधभट्टारक दुर्वासा मुनि विद्या— 'हसकहलह्रीम्'।
४. मानवी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं सकलह्रीम्'।
५. चान्द्री विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं हसकलह्रीम्'।
६. कौबेरी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं हसकहलह्रीम्'।
७. अगस्त्य विद्या— 'हसकएलह्रीं हसहकहलह्रीं हससकलह्रीम्'।
८. नन्दिविद्या— 'हहसकहसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीम्'।
९. प्रभाकरी विद्या— 'कएईलह्रीं हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं हसकहलह्रीं, सकलह्रीम्'।
१०. षण्मुखी विद्या— 'ह्रीं क्लीं हं सः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोहं क्लीं हंसः ह्रीं हंसः सोहं हंसः'।
११. परमशिव विद्या— 'ह्रीं क्लीं हंसः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोहं क्लीं हंसः ह्रीं हंसः सोहं हंसः हसकएलह्रीं हसहससकलह्रीं, हससकलह्रीम्'।
१२. वैष्णवी विद्या— 'हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीम्'।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में वाग्भवकूट, कामकूट एवं शक्तिकूट अर्थात् समस्त कूटत्रय को गायत्री मन्त्र से समन्वित किया गया है। इन विद्याओं के सम्प्रदायों के प्रवर्तक

आचार्य थे— मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ या कामदेव, शिव और दुर्वासा। इनमें से सभी के सम्प्रदाय कालान्तर में लुप्त हो गये। मात्र दो ही शेष रहे— कामदेव-सम्प्रदाय और लोपामुद्रासम्प्रदाय। इनमें भी आज कामदेवोपासिता विद्या एवं तत्सम्बद्ध सम्प्रदाय ही प्रचलित है।

मनु की विद्या १८ वर्णों से संघटित थी। चन्द्र एवं कुबेर की विद्या २२ वर्णों से संघटित थी। कहीं-कहीं इन्द्र एवं अग्नि के स्थान पर प्रवर्तकों के नामों में 'नन्दी' एवं 'विष्णु' का भी उल्लेख किया गया है।[१]

एक ही मूल मन्त्र के विभिन्न रूप एवं विभिन्न मन्त्र हैं, जैसे कि 'पञ्चदशाक्षरी विद्या'—

१. आदिविद्या—

क. वाग्भवकूट : कएईलह्रीं।

ख. कामकूट : हसकहलह्रीं।

ग. शक्तिकूट : सकलह्रीं।

कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं (आदिविद्या— कादि, हादि, सादि)

२. लोपामुद्रा विद्या— 'हसकहलह्रीं'।

३. क्रोधमुनि विद्या— 'हसकहलह्रीं'।

४. मानवी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं सकलह्रीं'।

५. कौबेरी विद्या— 'हसकहलह्रीं कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं'।

६. अगस्त्य विद्या— 'हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं'।

७. नन्दि विद्या— 'हहसकहसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं'।

८. षण्मुखी विद्या— 'ह्रीं क्लीं हं सः क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोऽहं क्लीं हंसः ह्रीं हंसः सोऽहं हंसः'।

९. प्रभाकरी विद्या— 'कएईलह्रीं, हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं (सूर्यविद्या)।

१०. चान्द्री विद्या— 'हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं'।

११. शक्तिशिवविद्या— 'स क'।

१२. वैष्णवी विद्या— 'हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं, कएलह्रीं, हसकहलह्रीं, कएलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं, हसकहलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं'।

१३. परमशिवविद्या— 'ह्रीं क्लीं हंसः, क्लीं लं ह्रीं, हसकहलह्रीं, सोऽहं क्लीं हंस, ह्रीं हंसः सोऽहं हंसः हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं, हससकलह्रीं'।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में लोपामुद्रा, कौबेरी, मानवी, आगस्त्य, चान्द्री, नन्दि, प्रभा-

---

१. गोपीनाथ कविराज : योगिनीहृदय की भूमिका।

करी, षण्मुखी, वैष्णवी, क्रोधमुनिविद्या एवं परमशिवविद्या का स्पष्टत: उल्लेख किया गया है तथा इन सभी विद्याओं के स्वरूप की व्याख्या भी की गई है। इन मन्त्रों में जो बीजाक्षर प्रयुक्त हुये हैं, उनके षण्मुखी विद्यान्तर्गत अर्थ निम्नांकित है—

'ह्रीं' = शक्तिबीज। 'क्रीं' = मन्मथबीज। 'हंस' = शिवशक्तिबीज।

'लं' = उर्वीबीज। 'ह्रीं' = मायाबीज। 'सोऽहं' = चन्द्रसूर्यबीज।

'क्लीं' = अनंगबीज। 'हं' = धूर्जटिबीज। 'स' = महिमाबीज। (षण्मुखी विद्या)

द्वादश विद्याओं का संघटनतन्त्र

चान्द्री विद्या— इस विद्या को चन्द्रोपासिता विद्या भी कहते हैं। इसके चार खण्ड हैं— हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं और सकलह्रीं। आदि में शिवशक्त्यात्मक 'हादि लोपामुद्रा विद्या', फिर वाग्भवकूट 'कादि विद्या', फिर शिवशक्त्यात्मक 'सादि विद्या' के योजन से 'चान्द्री विद्या' का आविर्भाव होता है।

कौबेरी विद्या— कुबेर द्वारा उपासित इस विद्या के पाँच खण्ड हैं— हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं और हसकहलह्रीं। यदि चान्द्री विद्या के चार खण्डों के साथ अन्त में शिवाद्यकामा 'हादिविद्या' (लोपामुद्रा विद्या) योजित कर दी जाती है तो 'कौबेरी विद्या' निर्मित हो जाती है और इसका साधक कुबेरतुल्य हो जाता है।

अगस्त्य विद्या— अगस्त्य द्वारा उपासित इस विद्या के तीन खण्ड हैं— हसक-एलह्रीं, हसहसकहलह्रीं और हससकलह्रीं। इन तीनों खण्डों में हादि 'लोपामुद्रा' योजित किये जाने पर 'अगस्त्य विद्या' का आविर्भाव होता है। इसके उपासना का फल है— स्वेप्सित कामनाओं की पूर्ति, निरवधिक ऐश्वर्यप्राप्ति और कामैश्वर्य की प्राप्ति।

नन्दिविद्या— नन्दी द्वारा उपासित यह विद्या तीन खण्डों में विभक्त है— हहसक-हसकएलह्रीं, हसहसकहलह्रीं और हससकलह्रीं।

प्रभाकरी विद्या— सूर्योपासित इस विद्या के सात खण्ड हैं— कएईलह्रीं, हसक-एलह्रीं, हसहस, कहलह्रीं, हससकलह्रीं, हसकहलह्रीं और सकलह्रीं। इसमें प्रारम्भ में वाग्भवकूट है। फिर आगस्त्य विद्या का प्रथम खण्ड है। तत्पश्चात् हादि सकलमायाशक्ति शक्तिकूट आदि को एकीकृत कर मन्त्र का आविर्भाव किया गया है।

षण्मुखी विद्या— यह विद्या कार्तिकेय द्वारा उपासिता विद्या है। इसका मन्त्र है— 'ह्रीं क्लीं हं स: क्लीं लं ह्रीं हसकहलह्रीं सोऽहं क्लीं हंस: ह्रीं हंस: सोऽहं हस:।' इसमें 'ह्रीं' शक्तिबीज है, 'क्लीं' मन्मथबीज है, 'हंस:' शिवशक्तिबीज है, 'क्रीं' मन्मथबीज है, 'लँ' पृथ्वी-बीज है, 'ह्रीं' मायाबीज है, 'हादि षडक्षर' कामकलालय हैं, 'सोऽहं' चन्द्र-सूर्यबीज है, 'क्लीं' अनंगबीज है, 'हं' धूर्जटिबीज है और 'स:' महिमाबीज है।

इसी प्रकार आगस्त्यविद्या, कौबेरी विद्या का हादिषट्क (कामकूट = लोपामुद्रा विद्या) एवं सादि शक्तिकूटराज के समन्वय से विष्णवोपासित 'वैष्णवी विद्या' का आविर्भाव होता है।

पञ्चदशी मन्त्र और चक्र

चक्र	मूला धारचक्र	स्वाधि- ष्ठानचक्र	मणिपूर चक्र	अनाहत चक्र	विशुद्ध चक्र	आज्ञा चक्र	सहस्रार चक्र	बिन्दु चन्द्र	अर्द्ध	रोधिनी	नाद
चिह्न वर्ण	क ए	ई ल	ह् र् ई	हसक	हल	ह्रीं सकल	ह्रीं	÷	◡	▽̆	०।०
चक्र	नादान्त	शक्ति	व्यापिका	समना	उन्मनी	महाबिन्दु					
चिह्न/ वर्ण	०V̐	। ००	▽̐ ०	० । ०	ँ । ◡	०।					

कुण्डलिनी खण्ड एवं पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के कूट

कुण्डलिनी	खण्ड	कूट
१. अध: कुण्डलिनी	अग्निखण्ड	वाग्भव कूट
२. मध्य कुण्डलिनी	सूर्यखण्ड	कामराज कूट
३. ऊर्ध्व कुण्डलिनी	सोमखण्ड	शक्तिकूट
४. परा कुण्डलिनी	परा खण्ड	तूर्य कूट

चक्र एवं खण्ड

खण्ड	चक्र
अग्निखण्ड	मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र
सूर्यखण्ड	मणिपूर एवं अनाहत चक्र
सोमखण्ड	विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र

'त्रिखण्डो मातृका मन्त्र: सोमसूर्यानलात्मक:।'

पञ्चदशाक्षरी विद्या सोमसूर्यानलात्मिका है[1]—

१. पञ्चदशी का आग्नेय खण्ड— शिव। शक्ति। काम। क्षिति।

२. पञ्चदशी का सौर खण्ड— रवि। शीतकिरण। स्मर। हंस। शक्र।
इन दोनों खण्डों के मध्य 'रुद्रग्रन्थि' स्थानीय ह्ल्लेखाबीज है।

३. पञ्चदशी का सौम्य खण्ड— परा। मार। हरि।

---

१. शिव: शक्ति: काम: क्षितिरथ रवि: शीतकिरण:
स्मरो हंस: शक्रस्तदनु च परामारहरय:।
अमी ह्ल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।। (सौन्दर्यलहरी-३२)

सौम्य एवं सौरखण्ड के मध्य 'विष्णुग्रन्थि' स्थानीय भुवनेश्वरीबीज स्थित है।

४. चन्द्रकला खण्ड— चतुर्थ एकाक्षर चन्द्रकला खण्ड है। सौम्य एवं चन्द्रकला खण्ड के मध्य 'ब्रह्मग्रन्थि' स्थानीय हल्लेखाबीज है। चन्द्रकला खण्ड गुप्त है. प्रकाश्य नहीं है।

आचार्य लक्ष्मीधर के अनुसार उपर्युक्त के अतिरिक्त श्रीविद्या के निम्न विभाग भी हो सकते हैं—

श्रीविद्या के खण्ड

ज्ञान इच्छा क्रिया | जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति | विश्व तैजस् प्राज्ञ | तम रज सत्त्व

श्रीविद्या और उसके पचास वर्ण— 'श्री' षोडशी कला एवं 'रमाबीज' या 'श्रीविद्या' है। रमाबीजात्मक चन्द्रकलाक्षर से संयुक्त पञ्चदशाक्षरी विद्या में १६ चान्द्र कलायें, २४ सूर्य कलायें एवं अग्नि की १० कलायें भी आ जाती हैं (१६ + २४ + १० = ५०)। ये ५० कलायें ही मातृकावर्ण हैं, जो कि 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' के अन्तर्भूत हैं—

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

श्रीविद्या के खण्डत्रय इस प्रकार हैं— 'क ए ई ल ह्रीं'; 'ह स क ह ल ह्रीं' और 'स क ल ह्रीं'।

'पञ्चदशाक्षरी विद्या' का उद्धार 'कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम्' (देव्यथर्वशीर्षोक्त) मन्त्र के द्वारा किया गया है। श्रीविद्या में सन्निविष्ट ककारादि वर्ण, षोडश स्वर एवं तिथिस्वरूप त्रिपुरसुन्दरी आदि नित्याओं (महात्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी (महावज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नील- पताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनिका, चित्रा) के प्रकृतिभूत हैं।

आचार्य लक्ष्मीधर की दृष्टि— शिव, शक्ति इत्यादि शब्दों का आचार्य शंकर ने जो प्रयोग किया है, वह कहीं लक्षितलक्षणा, कहीं लक्षणा एवं कहीं ककारादि वर्णपर है। त्रिपुरसुन्दरीमत में १६ वर्ण हैं। वे १६ वर्ण षोडश नित्याओं में आत्मस्वरूपवत् स्थित हैं। १६हवीं कला का चन्द्रकलात्व रूप से साम्य होने के कारण नित्यात्व व्यपदेश है। वह परा कला तो चिदेकरसात्मिका है। उसकी छाया 'विशुद्धि चक्र' के 'षोडशार' में कला के रूप में स्थित है। वह प्रधान एवं प्रकृति है। इसकी अंगभूता १५ नित्यायें हैं।

'षोडशी कला' क्या है? इस प्रश्न पर आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं— 'षोडशी कला नाम शकार-रेफ-ईकार-बिन्द्वतो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्या। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्या इति रहस्यम्।'

ककारादिक वर्ण षोडश नित्याओं की प्रकृति हैं। वे षोडश नित्यायें शुक्ल प्रतिपदा

से आरम्भ करके पौर्णमासी-तिथिरूपा हैं और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अमावास्यान्त तिथिरूपा हैं। ये सभी 'चन्द्रकला' कहलाती हैं। चन्द्रकला ही प्रतिपदा आदि तिथियाँ हैं, यह ज्योतिषशास्त्र में भी प्रसिद्ध है—

प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्लकृष्णयोः।

अर्थात् चन्द्रमा की प्रथमा कला का नाम 'प्रतिपदा' है। वह सूर्यमण्डल से निर्गत हुई है और कृष्णपक्ष में सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो जाती है। शुक्लपक्ष में सूर्यमण्डल से निर्गत द्वितीया कला को द्वितीया तिथि कहते हैं, जो कि कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि या द्वितीया कला में प्रविष्ट हो जाती है। यही क्रम सभी कलाओं एवं तिथियों का है।

पौर्णमासी एवं अमावस्या का स्वरूप— सूर्य एवं चन्द्रमा की १५ कलाओं का जहाँ व्यवधान होता है, वहाँ 'पौर्णमासी' होती है— 'पञ्चदशकलाव्यवधानं सूर्यचन्द्रयोर्यत्र सा पौर्णमासी।'

सूर्य एवं चन्द्रमा की १५हवीं कला में जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का अत्यन्त संयोग हो, वह 'अमावस्या' कहलाती है— 'पञ्चदश्यां कलायां सूर्यचन्द्रयोरत्यन्तसंयोगः सा अमावस्येति ज्ञेयम्।'

इसीलिये 'कौलमत' में चन्द्रकलात्मिका षोडश नित्याओं में प्रतिदिन केवल एक नित्या की पूजा की जाती है, किन्तु 'समयिमत' में सभी नित्याओं की पूजा की जाती है। 'षोडशी कला' का तो १५हों तिथियों में अनुष्ठान विहित है; क्योंकि उसमें १५हों कलायें अन्तर्भूत हैं। यही सम्प्रदायक्रम है।

ध्यान एवं उपासना-विधानक्रम

तिथि	शक्ति (नित्यायें)
प्रतिपदा	त्रिपुरसुन्दरी कला का ध्यान करना चाहिये।
द्वितीया	कामेश्वरी कला का ध्यान करना चाहिये।
तृतीया	भगमालिनी कला का ध्यान करना चाहिये।
चतुर्थी	नित्यक्लिन्ना कला का ध्यान करना चाहिये।
पञ्चमी	भेरुण्डा कला का ध्यान करना चाहिये।
षष्ठी	वह्निवासिनी कला का ध्यान करना चाहिये।
सप्तमी	महावज्रेश्वरी, महाविद्येश्वरी कला का ध्यान करना चाहिये।
अष्टमी	रौद्री कला का ध्यान करना चाहिये।
नवमी	त्वरिता कला का ध्यान करना चाहिये।
दशमी	कुलसुन्दरी कला का ध्यान करना चाहिये।
एकादशी	नीलपताका कला का ध्यान करना चाहिये।

द्वादशी	विजया कला का ध्यान करना चाहिये।
त्रयोदशी	सर्वमंगला कला का ध्यान करना चाहिये।
चतुर्दशी	ज्वाला कला का ध्यान करना चाहिये।
पञ्चदशी	मालिनी कला का ध्यान करना चाहिये।

समस्त तिथियों पर चिद्रूपा कला 'षोडशी' की उपासना की जानी चाहिये।

प्रतिपदा को जो त्रिपुरसुन्दरी 'नित्या' के नाम से उल्लिखित है, वह चिद्रूपात्मिका नहीं है। अत: चिद्रूपात्मिका मूल विद्या का पृथक् रूप से अनुष्ठान किया जाता है और इस दिशा में मन्त्रभेद भी है। वह मन्त्र प्रतिपदा तिथि को ही अनुष्ठेय है, द्वितीया तिथि को नहीं।

इन समस्त षोडश नित्याओं का स्थान 'विशुद्धि चक्र' एवं 'षोडशार' में है। वहाँ वे पूर्वादि क्रम से चक्र के कोणों में स्थित हैं। उसके नीचे स्थित द्वादशार 'संवित्कमल' में प्रादक्षिण्यक्रम से द्वादश सूर्य भ्रमण करते हैं। इन द्वादश आदित्यों का द्वादश मासों पर अधिकार है। ये सारी बातें सनत्कुमारसंहिता में निरूपित की गई हैं। यहाँ इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. सूर्य एवं चन्द्र का देवयान-पितृयान से युक्त इडा-पिंगला मार्ग से अहर्निश सञ्चरण होता रहता है।

२. चन्द्रमा वाम नाड़ीमार्ग से सञ्चरण करते हुये ७२ हजार नाड़ीमार्ग को अमृत से आप्लावित करता है।

३. सूर्य दक्षिण नाड़ीमार्ग से सञ्चरण करता हुआ तदुत्क्षिप्त अमृतकणों को उपाहृत करता है।

४. जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का 'आधारचक्र' में प्रवेश होता है, तब 'अमावस्या' तिथि उत्पन्न होती है। उनसे कृष्णपक्ष की तिथियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव कुण्डलिनी शक्ति आधारकुण्ड में सूर्यकिरण के सम्पर्क से विलीन चन्द्रमण्डल के मध्य से स्रवित पीयूष पीती है। उसकी स्वापावस्था ही 'कृष्णपक्ष' है (उसके सोने की दशा ही कृष्णपक्ष है)।

५. जब योगी समाहितचित्त होकर चन्द्रमा को चन्द्रस्थान में एवं सूर्य को सूर्यस्थान में वायु द्वारा निरुद्ध करने में सक्षम होता है, तब निरुद्ध किये हुये सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों अमृतसेचन एवं अमृत के आहरण में असमर्थ हो जाते हैं।

६. उस समय वायु से प्रेरित स्वाधिष्ठानवह्नि से शुष्कीभूत अमृतकुण्ड में निराहार कुण्डलिनी सोते से जगकर सर्प की भाँति फुफकारती हुई एवं ग्रन्थित्रय का भेदन करके सहस्रदल कमलवर्ती चन्द्रमण्डल को डस लेती है। उस दंशन से स्रवित पीयूषधारा आज्ञाचक्रोपरिस्थित चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती है। उन स्रवित अमृत की धाराओं के द्वारा देह को भी आप्लावित करती है।

७. आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्रमा की कलायें १५ नित्यायें ही हैं। वे १५

नित्यायें अपने नीचे स्थित 'विशुद्धिचक्र' का आश्रय लेकर भ्रमण करती हैं। सहस्रदलकमल में स्थित चन्द्रमण्डल ही 'बैन्दवस्थान' है। उसकी कला चिन्मयी एवं आनन्दरूपा आत्मा है और वही 'त्रिपुरसुन्दरी' है।

८. योगीश्वरगण शुक्लपक्ष में कुण्डलिनी का जागरण करने में तो समर्थ हैं, किन्तु कृष्णपक्ष में नहीं। शुक्लपक्ष की समस्त तिथियाँ 'पौर्णमासी' कहलाती हैं— यही उनका नाम है। कृष्णपक्ष की समस्त तिथियाँ 'अमावस्या' में ही अन्तर्भुक्त हैं। इसीलिए एक अमावस्या ही समस्त कृष्णपक्ष का पर्याय है। अत:—

क. आधारचक्र 'अन्धतामिस्र' है।

ख. स्वाधिष्ठानचक्र सूर्यकिरणों के सम्पर्क से 'मिश्रलोक' है।

ग. मणिपूरचक्र अग्निस्थान होने पर भी वहाँ स्थित जल में सूर्यकिरण के प्रतिबिम्ब के कारण 'मिश्रलोक' है।

घ. अनाहत चक्र 'ज्योतिर्लोक' है। इस प्रकार अनाहत चक्रपर्यन्त चक्र ज्योति एवं तम के मिश्रण से मिश्रकलोक है।

ङ. विशुद्धि चक्र 'चान्द्रलोक' है।

च. आज्ञा चक्र चन्द्रस्थान होने के कारण 'सुधालोक' है। इन दोनों लोकों का सूर्य-किरणों से सम्पर्क होने के कारण यहाँ चन्द्रिका नहीं है।

सहस्रदल कमल 'ज्योत्स्नामय लोक' है। वहाँ स्थित चन्द्रमा नित्य कलायुक्त है। चन्द्रबिम्ब ही 'श्रीचक्र' है— 'चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्।'

छ. कला 'सादाख्या' है।

ज. 'त्रिकोण' आधार चक्र है।

झ. 'अष्टकोण' स्वाधिष्ठान चक्र है।

ञ. 'दशार' मणिपूरक चक्र है।

ट. 'द्वितीय दशार' ही अनाहतचक्र है।

ठ. 'चतुर्दशार' ही विशुद्धि चक्र है।

ड. 'शिवचतुष्टय' ही आज्ञा चक्र है।

ढ. 'बिन्दुस्थान' चतुरस्र सहस्रदल कमल है।

ण. आज्ञाचक्र में स्थित चन्द्रमा में पन्द्रह कलायें हैं। उसमें षोडशी कला का प्रति-फलन भी है।

त. श्रीचक्ररूप चन्द्रबिम्ब में एक ही कला है और वही 'परमा कला' है। ये सभी मिलकर षोडश कलायें हैं; यथा—

षोडशेन्दो: कला भानो: द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी।।

थ. ये ५० कलायें पचास वर्णों से युक्त हैं और 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' में अन्तर्भूत हैं। जिस प्रकार 'अल्' प्रत्याहार के भीतर 'अ' से 'ल्' तक के सारे वर्ण समाविष्ट हैं, उसी

प्रकार यही लकार एकारपरवर्ती अकार के द्वारा प्रत्याहृत होकर ५० वर्णों का ग्राहक है। इसी प्रत्याहारग्रहण से ५० वर्णों से युक्त मातृकाग्रहण में ककार एवं लकार दोनों का प्रत्याहारग्रहण का प्रयास किस उद्देश्य से?

उत्तर— ककारादि-लकारान्त शब्दों की 'कला' शब्दवाच्यता गौण है; क्योंकि व्यञ्जन स्वरों के अंग हैं। कलाओं (व्यञ्जनों) में स्वर की प्रधानता है— इस प्रकार गुणप्रधान भाव के प्रदर्शनार्थ इसमें दो प्रत्याहारों का आश्रय लिया गया है, जो कि सनत्कुमार आदि ऋषियों को अभीष्ट है और उन्होंने उनका संहिता में प्रतिपादन किया है।

चारो अनुस्वार बिन्दु का लक्षक है। अत: उस बिन्दु से तदुपरि प्रतीयमान 'नाद' संगृहीत है। इस प्रकार नाद-बिन्दु एवं कला से युक्त श्रीचक्र को 'त्रिखण्डात्मक' कहा गया है। 'सादाख्या' नाम्नी कला 'श्रीविद्या' की अपर पर्याय है और नाद बिन्दुकला से अतीत है। ये सभी षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत हैं।

श्रीविद्या में समस्त मातृकाओं का अन्तर्भाव— १६ स्वर, कादि-तान्त १६ वर्ण— थादि-सान्त वर्ण १६ एवं यह षोडश त्रिक षोडश नित्याओं में अन्तर्भूत हैं। हकार, जो कि आकाश का बीज है, बैन्दवाकाश में विलीन है। लकार-अन्त:स्थ स्वान्तर्भूत होने पर भी ककार द्वारा प्रत्याहारार्थ पुन: गृहीत कर लिया गया है। क्षकार तो मात्र 'क' एवं 'ष' का समुदित रूपमात्र है। ककारादि-सान्त वर्ण तो षोडश नित्याओं में स्वरसहित अन्तर्भूत हैं।

अकार द्वारा प्रत्याहृत क्षकार 'अक्षमाला' कहलाता है। क्षकार के द्वारा समस्त मातृकायें संगृहीत होती हैं। इसी कारण अन्तिम खण्ड (स क ल ह्रीं) में ककार तथा लकार के योग से 'कला' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'क' एवं 'ष' के योग से क्षकार निष्पन्न होता है। इस प्रकार इस मन्त्र से समस्त मातृकाओं का ग्रहण हो जाता है।

ऐक्यचतुष्टय— सारांश यह कि—

१. षोडश नित्याओं का मन्त्रगत षोडश वर्णों के साथ ऐकात्म्य।
२. षोडश वर्णों का पचास वर्णों के साथ ऐकात्म्य।
३. मन्त्रगत वर्णों का सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि के साथ ऐकात्म्य।
४. मन्त्रगत वर्णों का सूर्य-चन्द्र-अग्नि के रूप में त्रिखण्डत्व।

इस प्रकार 'ऐक्यचतुष्टय' सिद्ध होता है।

सुभगोदय का मत— इसी प्रकार 'चक्र' एवं 'मन्त्र' की भी एकात्मता है; क्योंकि ह्रीकार एवं श्रीबीज शिवचक्रचतुष्टयात्मक त्रिकोण में बिन्दुरूप से अन्तर्भूत है।

'स क ल'— इस मन्त्रगत वर्णत्रय से संगृहीत मातृका अक्षमालात्मिक है। दोनों मातृकायें चक्र में अन्तर्भूत हैं।

श्रीविद्या में वर्णमाला के वर्णों का अन्तर्भाव— अन्त:स्थचतुष्टय, ऊष्मचतुष्टय—

८ वर्ण 'श्रीचक्र' के अष्टकोणवत् हैं। कादिमावसान पञ्चवर्गीय वर्णों को छोड़कर शेष दोनों 'दशारों' में अन्तर्भूत हैं। पाँच वर्गों (कवर्ग, चवर्ग आदि) के अन्तिम पञ्चम वर्ण अनुस्वार-रूप से 'बिन्दु' के भीतर अन्तर्भूत हैं। 'चतुर्दशार' में १४ स्वर अन्तर्भूत हैं। अनुस्वार एवं विसर्ग का 'बिन्दु' के अन्दर अन्तर्भाव है। इसी प्रकार सुभगोदय ग्रन्थ के मतानुसार 'श्रीचक्र' एवं 'मन्त्र' में एकता प्रतिपादित की गई है।

कला, यन्त्र एवं मन्त्र की एकता— पूर्णोदय मत के अनुसार सोम-सूर्य-अनल से युक्त होने के कारण 'श्रीविद्या' त्रिखण्डात्मिका है। इस प्रकार 'मन्त्र' भी त्रिखण्डात्मक है। चन्द्रमा की १६ कलायें 'इन्दुखण्ड' में अन्तर्भूत हैं। वह इन्दुखण्ड द्वन्द्वात्मक 'यन्त्रखण्ड' में अन्तर्भूत हैं।

इसी प्रकार सूर्य की २४ कलायें 'भानुखण्ड' के अन्तर्गत अन्तर्भूत हैं। वह खण्ड 'यन्त्र' में अन्तर्भूत है और इस तरह दश आग्नेय कलायें 'आग्नेय खण्ड' में अन्तर्भूत हैं। वह खण्ड यन्त्र में 'आग्नेय खण्ड' में अन्तर्भूत है। इस प्रकार कला, यन्त्र एवं मन्त्र— तीनों में एकता प्रतिपादित होती है।

सुभगोदय में नित्याओं का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है—

दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

इसका अर्थ यह हुआ कि 'दर्शा' से 'पूर्णिमापर्यन्त' समस्त १५ कालखण्ड 'तिथियाँ' कहे जाते हैं। ये 'दर्शा' आदि चन्द्रमा की कलाओं के नाम हैं। निष्कर्ष यह कि समस्त चान्द्र कलायें तिथियाँ हैं।

'दर्शा' अमावस्या तिथि के बाद आने वाली प्रतिपदा तिथि का अभिधान है— 'दर्शा नाम अमावास्यानन्तरभाविनी प्रतिपत्कला।' चूँकि वह स्वल्पांशगोचरा है; अतः ईशद्दर्शन के कारण उसे 'दर्शा' कहा गया है। 'दर्शाद्याः' का अर्थ है— 'दर्शा'नामक 'चान्द्र कला' जिसके आदि में हो।

पूर्णिमान्त अर्थात् पूर्णिमा जिसके अन्त में हो; आशय यह कि दर्शा से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त— 'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ततिथयः।'

दर्शाद्या पूर्णिमान्त कलायें (श्रुतिनिर्दिष्ट आख्यायें)— 'दर्शा' से प्रारम्भ कर 'पूर्णिमा'पर्यन्त कलायें निम्नवत् हैं—

१. दर्शा	६. आप्यायमाना	११. आपूर्यमाणा
२. दृष्टा	७. आप्यायमाना	१२. आपूर्यमाणा पूरयन्ती
३. दर्शता	८. आप्याया	१३. पूर्णा
४. विश्वरूपा	९. सूनृता	१४. पौर्णमासी
५. सुदर्शना	१०. इरा	

अधिदेवता— दर्शा, दृष्टा, दर्शता आदि पन्द्रह कलाओं की अधिदेवता त्रिपुरसुन्दरी आदि नित्यायें हैं।

षोडशी कला चिद्रूपात्मिका है और सादाख्य तत्त्व है; अत: वह अधिदेवान्तर नहीं है, क्योंकि वह सभी कलाओं एवं अधिदेवताओं की भी अधिदेवता है। इन सभी नित्याओं की अभिमानिनी देवता कामदेव है— 'एतासां नित्यानां अभिमानिनी देवता कामदेव एक एव।' एक ही कामदेव इन सभी नित्याओं का देवता है।

अधिष्ठान देवता— अधिष्ठान देवता एक है और वह है— 'कामेश्वरी।' निष्कर्षत: मूल विद्यागत पन्द्रह वर्ण, दर्शादिक कलायें, नित्या कलायें आदि मात्र विग्रहान्तर हैं और तत्त्वत: भिन्न-भिन्न नहीं हैं; अत: दर्शा आदि कलाओं का भी त्रिखण्डात्मक होना सिद्ध हो गया। कलायें भी त्रिखण्डात्मिका हैं और वे खण्डत्रय हैं— आग्नेय खण्ड, सौरखण्ड एवं चान्द्र खण्ड। दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा और सुदर्शना 'आग्नेय खण्ड' है। आप्य-यमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता और इरा 'सौर खण्ड' है एवं आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा और पौर्णमासी 'चान्द्र खण्ड' है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुभगोदयमत के अनुसार निष्कर्षत: कलाओं और नित्याओं में ऐक्य है।

क. आग्नेय खण्ड : प्रथम खण्ड— यह खण्ड पञ्चतत्त्वात्मक है तथा अग्नितत्त्व ही यहाँ अधिदेवता है। कामदेव तीनों खण्डों के अधिदेवता हैं और कामेश्वरी तो सभी खण्डों की अधिष्ठात्री हैं। इसकी कलाओं का विवरण निम्नवत् है—

१. दर्शा कला — शिवतत्त्वात्मिका।
२. दृष्टा कला — शक्तितत्त्वात्मिका।
३. दर्शता कला — मायातत्त्वात्मिका।
४. विश्वरूपा कला — शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका।
५. सुदर्शना कला — जलतत्त्वात्मिका।

ख. सौर खण्ड : द्वितीय खण्ड— इस खण्ड का देवता सूर्य है। कामदेव सभी खण्डों का देवता है एवं कामेश्वरी भी सभी खण्डों की अधिष्ठात्री देवता है। इसकी कलाओं का विवरण निम्नवत् है—

१. आप्यायमाना कला — तेजस्तत्त्वात्मिका।
२. आप्यायमाना कला — वायुतत्त्वात्मिका।
३. आप्याया कला — मनस्तत्त्वात्मिका।
४. सूनृता कला — पृथ्वीतत्त्वात्मिका।
५. इरा कला — आकाशतत्त्वात्मिका।
६. आपूर्यमाणा कला — विद्यातत्त्वात्मिका।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आपूर्यमाणा कला तो 'चान्द्र खण्ड' के अन्तर्गत आती है, फिर आचार्य लक्ष्मीधर ने उसे 'सौर खण्ड' में परिगणित क्यों किया?

इसका समाधान यह है कि आपूर्यमाणा कला चन्द्रखण्डान्तर्गता होने पर भी सौर खण्ड में अन्तर्भूत है। 'इरा कला' एवं 'आपूर्यमाणा कला' में ऐक्य है।

ग. चान्द्र खण्ड : तृतीय खण्ड— इस खण्ड का अधिदेवता सोम है; इसीलिये इसे 'सौम्य खण्ड' के नाम से भी जाना जाता है। कामदेव सभी खण्डों के अधिदेवता हैं और कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्री हैं। इसकी कलाओं का विवरण निम्नवत् है—

१. आपूर्यमाणा कला — महेश्वरतत्त्वात्मिका।
२. पूरयन्ती कला — परतत्त्वात्मिका।
३. पूर्णा कला — आत्मतत्त्वात्मिका।
४. पौर्णमासी कला — सदाशिवतत्त्वात्मिका।

'नित्या कला' सादाख्यतत्त्वात्मिका है।

ये सभी 'विशुद्धि चक्र' में 'षोडशार' में प्रागादि क्रम से सोलहों दिशाओं में भ्रमण करती हैं। यह समस्त विवरण सुभगोदय ग्रन्थ के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। संक्षिप्त रूप से सुभगोदय के मत को इस प्रकार समझा जा सकता है—

१. 'आज्ञाचक्र' के ऊपर चन्द्रमण्डल की सोलह कलायें स्थित हैं।
२. १५ कलायें 'षोडशार' में परिभ्रमण करती हैं।
३. षोडशी कला का 'सहस्रदलकमल' में अवस्थान है।
४. 'सहस्रदलकमल' में स्थित नित्या कलाओं का प्रभापटल 'षोडशार' में स्फुरित होता है।

आचार्य शंकर ने अपने सौन्दर्यलहरी में जो ३२वाँ श्लोक प्रस्तुत किया है, उसकी व्याख्या में भी ये ही निष्कर्ष समाविष्ट हैं। उपर्युक्त श्लोक निम्नवत् है—

शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीतकिरणः
स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिताः
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।।

इस श्लोक में शिव, शक्ति, काम, क्षिति शब्दावली में—

१. शिव— 'क'	शिवतत्त्वात्मिका 'दर्शाख्या कला' त्रिपुरसुन्दरी का वाचक है। उसका प्रकृतिभूत 'ककार' लक्षित है।
२. शक्ति— 'ए'	शक्तितत्त्वात्मिका 'दृष्टा कला' द्वारा 'एकार' लक्षित है।
३. काम— 'ई'	काम देवता 'दर्शता कला' बोधित है। दर्शता कला द्वारा 'ईकार' लक्षित है।

४. क्षिति— 'ल'	'लकारः क्षितितत्त्वं' से क्षिति 'लकार' का बोधक है।
५. रवि— 'ह'	सूर्यखण्डात्मक होने के कारण 'रवि' शब्द 'हकार' का बोधक है।
६. शीतकिरण— 'स'	शीतकिरण अर्थात् चन्द्रमा। 'सकारः चन्द्रबीजं' के अनुसार शीतकिरण शब्द 'स' का बोधक है।
७. स्मर— 'क'	'स्मर' शब्द कामराजप्रकृतिभूत होने के कारण 'ककार' का लक्षक एवं स्मारक है।
८. हंस— 'ह'	'हंस' शब्द सूर्य का पर्यायवाची और हकाराधिपति है।
९. शक्र— 'ल'	'शक्र' इन्द्र का नाम है। 'लकारः इन्द्रबीजं' के अनुसार शक्र शब्द से 'लकार' लक्षित है।
१०. परा— 'स'	'परा' चन्द्रकला की बोधिका है। चन्द्रबीज सकार 'परा' शब्द का बोधक है।
११. मार— 'क'	मार (कामदेव) कामराजबीजप्रकृतिभूत 'ककार' का लक्षक है।
१२. हरि— 'ल'	'हरि' शब्द इन्द्र का बोधक है और इन्द्र लकारात्मक है; अतः इन्द्र 'ल' का बोधक है।

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकगत शिव, शक्ति आदि शब्द मन्त्रगत ककारादिक वर्णों के लक्षक हैं। ये लक्षितलक्षक हैं।

इस प्रकार पञ्चदश नित्याओं के समूहस्वरूप मन्त्र का १५ तिथियों में अनुष्ठान विहित है। पृथक् नित्यानुष्ठान प्रतिदिन के लिये पृथक् रूप से नियत है। सारांश यह कि— 'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।'

तैत्तिरीय ब्राह्मण की दृष्टि में श्रीविद्या— तैत्तिरीय शाखा के काठक में 'इयं वाव सरघा' (३.१०.१०) वाक्य दृष्टिगोचर होता है। यह चन्द्रकला सादाख्या सरघा की भाँति मधुस्यन्दिनी (अमृतस्यन्दिनी) है। निष्कर्ष यह कि श्रीचक्र का चन्द्रमा 'सरघा' है।

'तस्या अग्निरेव सारघं मधु' (तैत्तिरीय ब्राह्मण-३.१०.१०) अर्थात् उस सरघा का अग्निस्थान ही बैन्दव त्रिकोण सारघ (सरघोद्भूत) मधु है। यह इसलिये कि भगवती का धाम सुधासिन्धु है। उस सारघ मधु का उपचयापचयप्रकार क्या है? इस प्रश्न पर कहा गया है कि— 'या एताः पूर्वपक्षापरपक्षयोः रात्रयः।' 'पूर्वपक्षापरपक्षयोः' अर्थात् शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की रात्रियाँ। 'ता मधुकृतः' (तैत्तिरीय ब्राह्मण-३.१०.१०) अर्थात् वे रात्रियाँ मधु का निर्माण करती हैं। यह तो लोकप्रसिद्ध ही है कि—

१. रात्रि में ही मधुमक्षिकायें मधु का संग्रह करती हैं।

२. रात्रि में ही चन्द्रकलारूपा 'श्रीविद्या' का अनुष्ठान किया जाता है; दिन में इसका अनुष्ठान नहीं किया जाता।

३. पूर्वपक्ष की रात्रियाँ दर्शादिपौर्णमास्यान्त हैं।

कृष्णपक्ष की रात्रियों के नाम क्या हैं? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०.१) में कहा गया है कि—

सुता सुन्वती प्रसुता सूयमानाऽभिषूयमाणा,
पीती प्रपा सम्पा तृप्तिस्तर्पयन्ती कान्ता।
काम्या कामजाताऽऽयुष्मती कामदुघा।।

शुक्लपक्ष के दिनों के नामों का निरूपण भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में ही इस प्रकार किया गया है—

संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत।
सङ्कल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपक्लृप्तम्।
क्लप्तमाश्रयो वसीय आयत् सम्भूतं भूतम्।।

इसी प्रकार कृष्णपक्ष के दिनों के नाम भी बताये गये हैं—

प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपम्।
शुक्रममृतं तेजस्वि तेजः समिद्धमरुणम्।
भानुमन्मरीचिमदभितपत्तपस्वत् ।।

शुक्ल-कृष्णपक्ष के अहोरात्र के नाम जानने का दो फल हैं— बैन्दवस्थान में सुधा-प्राप्ति और इष्टापूर्त (वाञ्छितार्थ की प्राप्ति)।

निष्कर्ष यह कि १. चन्द्रकला विद्यानुष्ठान, मातृका एवं मन्त्र में ऐक्य-स्थापना, २. मन्त्र एवं चक्र में एकता, ३. चक्र एवं नित्याओं में ऐक्य तथा ४. नित्या एवं प्रतिपदादिक कलाओं में ऐक्य— यही 'समयीमत' है। इस अनुष्ठान में शुक्ल एवं कृष्णपक्ष तथा दिवस-रात्रि का विवेक आवश्यक है।

५. दर्शादिपौर्णमास्यान्त तिथियों (कलाओं) में चतुर्विध ऐक्य का अनुसन्धान स्पृहणीय है, न कि अमावस्या में।

उपासना हेतु प्रशस्त एवं निषिद्ध तिथियाँ— 'कृष्णपक्ष' शब्द अमावस्यापर है। अमावस्या की भाँति शुक्लपक्ष के दिनों में भी अनुष्ठान करना उचित है। सम्पूर्ण कृष्णपक्ष में नहीं; प्रत्युत अमावस्या के दिन उपासना का निषेध किया गया है। अमावस्या छोड़कर समस्त रात्रियों में (दिनों में नहीं) उपासना विहित है।

श्रीविद्या और कामदेव— आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि अनंग ने पञ्चाशत् वर्णात्मक (५० वर्णों वाले) षोडश नित्यात्मक, षोडश कलात्मक विद्यारत्न को अनेकों स्मृतियों, पुराणों एवं आगमों में विप्रकीर्ण देखा। फिर उन्होंने विप्रकीर्ण इस मन्त्र को गुम्फित कर डाला। उन्होंने ५० वर्णों को तीन भागों में विभाजित करके एवं उनके तीन खण्ड करके और उसमें त्रिपुरसुन्दरी आदि षोडश नित्याओं को अन्तर्भूत करके

प्रतिपदा आदि १६ तिथियों को भी वहीं अन्तर्भूत करके और वहीं सोम-सूर्य एवं अनल, ब्रह्मा-विष्णु एवं महेश, सत्त्व-रज एवं तम, जाग्रत्-स्वप्न एवं सुषुप्ति तथा सृष्टि-स्थिति एवं लय से उन्हें उपहित स्वीकार करके श्रीविद्यात्मक चतुर्थ खण्ड में १५ कलाओं को अन्तर्भूत करके भुवनेश्वरीप्रभृति नौ योगिनी विद्याओं के त्रिकों का एक-एक ह्रींकार में अन्तर्भाव करके सर्व-भूतात्मक, सर्वमन्त्रात्मक, सर्वतत्त्वात्मक, सर्वावस्थात्मक, सर्वदेवात्मक, सर्ववेदार्था-त्मक, सर्वशब्दात्मक, सर्वशक्त्यात्मक, त्रिगुणात्मक, त्रिखण्डात्मक, श्रीविद्या को सादाख्या-पर्यायात्मक, षड्विंशशिवशक्तिसम्पुटात्मक, त्रिगुणातीतात्मक भगवती से एकीकृत मानकर १५ वर्णों को मूल विद्या से गुम्फित कर दिया। उसके बाद स्यूत मन्त्रराज को ग्रीवा में पहन कर कामदेव ने ध्यानयोग द्वारा चिर काल तक उसकी पूजा की और उसके बाद चन्द्रकलामृता का स्वाद लिया। वही मन्मथ ऋषि इस मन्त्र के ऋषि हैं।

श्रीविद्या एवं महात्रिपुरसुन्दरी की अभिन्नता— श्रीविद्या आदि ब्रह्मविद्या है। उसके मुख्यत: दो स्वरूप (अंग) हैं— कादि विद्या और हादि विद्या। वैसे तो सादि एवं कहादि विद्या भी इसके ही रूप हैं, किन्तु श्रीविद्या के मुख्य भेद कादि एवं हादि ही माने जाते हैं। इनमें भी कादि विद्या का महत्त्व अधिक है। कादि एवं हादि विद्याओं के प्रथमाक्षर शिव एवं शक्ति के द्योतक हैं।

श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा है; क्योंकि बह्वृचोपनिषद् के अन्त में श्रीविद्या को जहाँ 'पञ्चदशाक्षरी मन्त्र' के रूप में स्वीकार किया गया है; वहीं उसे षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातंगी, स्वयंवरकल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, तिरस्करिणी, राजमातंगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढा, प्रत्यंगिरा, धूमावती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री एवं ब्रह्मानन्दकला से अभिन्न मानकर उसे उनका स्वरूप भी स्वीकार किया गया है— 'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति वा मातंगीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति, चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति .... धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।'

इसी परा चिच्छक्ति महात्रिपुरसुन्दरी को 'परा शक्ति' कहकर उसके पर्याय के रूप में एवं उसके स्वस्वरूप के रूप में शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या एवं ॐकार को भी प्रस्तुत किया गया है— 'सैषा परा शक्ति:। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमामों वाचि प्रतिष्ठा।'

देव्युपनिषद् में भी ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती दुर्गा को आत्मशक्ति, विश्वमोहिनी, पाशांकुशधनुर्बाणधरा के साथ-साथ 'श्रीमहाविद्या' भी कहा गया है— 'एषाऽऽत्मशक्ति:। एषा विश्वमोहिनी पाशांकुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या।'

ब्रह्म के दो रूप हैं— शब्दब्रह्म और परब्रह्म। त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (२०) में कहा भी गया है— 'द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये शब्दब्रह्मपरं च यत्।' वहीं पर 'शब्द ब्रह्म' से ही

'परब्रह्म' की प्राप्ति भी कही गयी है— 'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।'

चूँकि 'मन्त्र' ब्रह्म का अपना शाब्दिक (वर्णात्मक, ध्वन्यात्मक) स्वरूप होता है; अतः यदि ॐ को 'शब्दब्रह्म' कहा जा सकता है तो प्रत्येक मन्त्र को भी शब्दब्रह्म का रूप कहा जा सकता है। अतः मन्त्रों को देवता के साथ अभिन्न मानकर उन्हें देवतास्वरूप प्रस्तुत किया गया हो तो अनुपपन्न भी नहीं है। सारांश यह कि श्रीविद्या अपने मूल स्वरूप में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न है और इस प्रकार 'पञ्चदशाक्षरी' (श्रीविद्या-मन्त्र) एवं 'भगवती महात्रिपुरसुन्दरी' दोनों में मूलतः ऐकात्म्य है।

प्रत्येक देवता का मन्त्र अपने देवता से अभिन्न होता है। इसीलिये कहा भी गया है— 'मन्त्राधीनाश्च देवताः।'

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में ही श्रीविद्या के लिये 'त्रिपुरा विद्या' (द्वि० उप०), 'विद्या' (प्र० उ०), 'महाविद्येश्वरी विद्या, सर्वरक्षाकरी विद्या, शक्तिशिवरूपिणी विद्या, त्रिपुरवासिनी विद्या, त्रिपुरेश्वरी विद्या' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या— आचार्य भास्कर राय का कथन है कि गायत्री के जो दो रूप हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

गायत्री मन्त्र

प्रथम रूप	द्वितीय रूप
१. तत्सवितुर्वरेण्यम्	परोजसे सावदोम्[1]
२. भर्गो देवस्य धीमहि	(चतुर्थ चरण)
३. धियो यो नः प्रचोदयात्	(अस्पष्ट गायत्री)
(चरणत्रय) (स्पष्ट गायत्री)	(श्रीविद्या)

त्रिपुरामहामनु— तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् परो रजसेऽसावदोम्।।[2]

भास्करराय कहते हैं कि गायत्री के प्रथम तीन (प्राथमिक) चरण 'स्पष्ट गायत्री' के बोधक हैं— 'चरणत्रयं तत्सवितुरित्यादि स्पष्टम्।' चतुर्थ चरण 'परोजसे सावदोम्' 'अस्पष्ट गायत्री' का बोधक है और यह द्वितीय रूप ही 'श्रीविद्या' है— 'परं श्रीविद्याख्यं द्वितीयं रूपम्।'[3]

श्रीविद्या का महत्त्व— श्रीविद्या की व्यावर्तक विशेषतायें एवं उसका महत्त्व इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है—

१. वेदमाता गायत्री का भी सार श्रीविद्या है।

२. श्रीविद्या वैदिक मन्त्र है और वैदिक काल से चला आ रहा है।

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्

२. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्

३. वरिवस्यारहस्यम् (प्रथम अंश)

३. यह महात्रिपुरसुन्दरी का अपना ही मन्त्रात्मक या अक्षरात्मक स्वरूप है अर्थात् यह भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की अक्षरात्मक या मन्त्रात्मक स्वात्माभिव्यक्ति है।

४. श्रीविद्या के १५ अक्षरों की पृथक्-पृथक् अधिष्ठात्री देवियाँ हैं; अतः इसका प्रत्येक अक्षर शक्तिरूप है एवं समष्टिरूप में यह विद्या महात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा है।

५. समस्त विद्याओं में श्रीविद्या ही श्रेष्ठतमा है—

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा।

६. श्रीविद्या का विकास ही (दश महाविद्याओं की शेष) नौ विद्याओं में हुआ है । दश महाविद्यायें 'श्रीविद्या' का ही स्वविस्तार हैं।

दश महाविद्याओं में तृतीय 'महाविद्या' श्रीविद्या 'षोडशी' है, किन्तु इन दशों विद्याओं में भी प्रमुख विद्यायें तीन हैं— काली, तारा एवं षोडशी। इन तीनों विद्याओं में भी श्रेष्ठतर विद्या है— 'श्रीविद्या।' यही श्रीविद्या उक्त तीनों महाविद्याओं का मूल है। दश महाविद्याओं में (षोडशी को छोड़कर) शेष नौ महाविद्याओं का मूल भी यही है। (ग्रन्थ-गौरव-भय से इसे विस्तार से यहाँ नहीं समझाया जा रहा है।)

६. श्रीविद्योपासना भोग-मोक्ष दोनों प्रदान करती है। जहाँ भोग होता है, वहाँ मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती तथा जहाँ मोक्ष की प्राप्ति होती है वहाँ भोग की प्राप्ति नहीं होती; किन्तु भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना से दोनों फलों की एक साथ ही प्राप्ति होती है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

देव्युपनिषद् में भी कहा गया है कि यह 'श्रीमहाविद्या' भोग-मोक्ष दोनों प्रदान करती है—

तापापहारिणीं देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्।।१९।।

७. भगवती त्रिपुरा की उपासना किसी अन्य देवता की उपासना नहीं है; बल्कि अपनी आत्मा की ही उपासना है; क्योंकि भगवती ललिता स्वात्मदेवता हैं—

स्वात्मैव ललिता प्रोक्ता मनोज्ञा विश्वविग्रहा।

प्रपञ्चसारतन्त्र की दृष्टि—

अथ प्रवक्ष्यामि सुदुर्लभाप्तिं विद्यां विशिष्टां त्रिपुराभिधानाम्।
या सा त्रिभेदाऽपि जगत्यवाप्तत्रिंशत्प्रकारा त्रिदशाभिवन्द्या।।१।।

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात्त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।२।।

व्योमेन्दुवह्न्यधरबिन्दुभिरेकमन्यद्रक्ताच्छकेन्द्रशिखिभिः सरमार्धचन्द्रैः।
अन्यद्द्युशीतकरपावकमन्वमत्तैर्बीजैरमीभिरुदिता त्रिपुरेति विद्या।।३।।

आचार्य शंकर प्रपञ्चसारतन्त्र के नवम पटल में कहते हैं—

क. त्रिपुरा नाम वाली विशिष्ट विद्या प्राप्त कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है।

ख. यह त्रिदशाभिवन्द्य (देव-नमस्कार्य) है, त्रिभेदात्मिका एवं त्रिंशत्प्रकारा (३० भेद वाली) है।

ग. पद्मपाद 'प्रपञ्चसारविवरण' में कहते हैं कि 'त्रैपुर मन्त्र' क्रियाप्रधान है।

घ. बीजत्रय की दृष्टि से इसके तीन भेद हैं, किन्तु तद्गत बीज एवं बिन्दु आदि की दृष्टि से इसके तीस भेद हैं। पारायणभेद से इसके अनन्त भेद हैं। कादि-हान्ताक्षरादिक की दृष्टि से इसके तीन सौ (३००) भेद हैं।

श्रीविद्या भगवती त्रिपुरसुन्दरी से पृथक् नहीं है और न ही विश्व से पृथक् है।

श्रीविद्या एवं जगत् में तादात्म्य— जगत् पञ्चभूतात्मक है और 'श्रीविद्या' भी पञ्चभूतात्मिका है। योगिनीहृदय में कहा गया है—

पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सदानघे।
तन्मयी मूलविद्या च तदद्य कथयामि ते।। (मन्त्रसंकेत-२८)

क्योंकि श्रीविद्या में स्थित वर्ण पञ्चभूतात्मक हैं—

हकराद् व्योमसम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः।
रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः।। (मन्त्रसंकेत-२९)

लकारात्पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा।। (मन्त्रसंकेत-३०)

निष्कर्षतः 'श्रीविद्या' विश्वमयी है।

अष्टादश अध्याय

श्रीविद्या का स्वरूप

आचार्य भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् में कहा है कि गायत्री मन्त्र ही 'पञ्चदशाक्षरी' (पञ्चदशी) विद्या है।

आचार्य भास्कर श्रीविद्या के परिचय में प्रथमत: 'विमर्श शक्ति' की जगद्रूपता का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि जगत् विमर्श शक्ति का ही परिणाम है और भगवती का विश्वात्मक परिणमन चार रूपों में होता है— अर्थमयी सृष्टि, शब्दमयी सृष्टि, चक्रमयी सृष्टि और देहमयी सृष्टि। इस चतुर्धा विभक्त सृष्टि के मूल में (उपादान कारण बन कर) वही 'विमर्श शक्ति' स्थित है, जो कि 'विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन विश्वसंहारेण अकृत्रिमाहम् इति विस्फुरणम्' स्वरूप में अवस्थित है।[1]

विमर्श शक्ति और श्रीविद्या— आचार्य भास्कर कहते हैं कि यदि ३६ मूल तत्त्वों एवं षट्त्रिंशदात्मक जगत् को तत्त्वत: जानना हो तो उसके मूलाधार परमतत्त्व शक्तितत्त्व को भी जानना आवश्यक होगा; क्योंकि जगत् का शब्दात्मक, चक्रात्मक, अर्थात्मक एवं देहात्मक समस्त विस्तार भगवती 'विमर्श शक्ति' का अपना अविकृत परिणमनमात्र ही है—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टि:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.५)

गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या का तादात्म्य— आचार्य भास्कर कहते हैं कि उस 'विमर्शशक्ति' के ज्ञान के लिये यद्यपि १४ विद्यायें हैं, किन्तु इन १४ विद्याओं में जो सारगर्भित विद्या है, वह तो मात्र वेद (श्रुतियाँ) ही है और श्रुतियों में भी जो सारभूत विद्या है, वह 'गायत्री' है—

तज्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दश प्रोक्ता:।
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.६)

वेद की सारभूत विद्या— 'गायत्री' के निम्न तीन रूप हैं—

क. अस्पष्ट एवं परम (अत्यन्त) गोपनीय।

ख. कामो योनि: कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्र:।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

इस ऋचा के द्वारा संकेतित अप्रकट गायत्री विद्या।

---

१. वरिवस्यारहस्यम्।

ग. तीसरा रूप है— सांकेतिक शब्दों से व्यवहृत एवं अप्रकट विद्या। यही 'श्रीविद्या' है, जिसे वेद भी निम्न ऋचा द्वारा सांकेतिक (प्रतीकात्मक) शब्दों के द्वारा अप्रकट शब्दों में ही व्यक्त करने का प्रयास करता है—

कामो योनि: कमलेत्येवं साङ्केतिकै: शब्दै:।
व्यवहरति न तु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोऽपि।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.८)

श्रीविद्या के इस अवतरण को रेखात्मक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

गायत्री और श्रीविद्या

गायत्री के दो रूप

स्पष्ट अस्पष्ट

तस्या: गायत्र्या: स्पष्टमस्पष्टञ्चेति पदच्छेद आवृत्या। (वरि०)

अस्पष्ट गायत्रीचारो वेदों में परमात्यन्त गोपनीय एवं अस्पष्ट 'श्रीविद्या'। (वरि०)

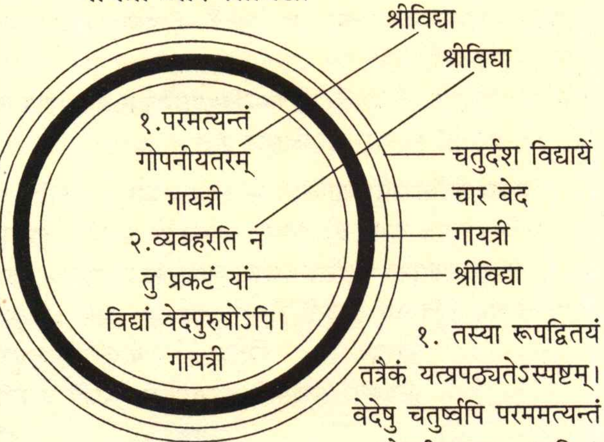

१. तस्या रूपद्वितयं तत्रैकं यत्प्रपठ्यतेऽस्पष्टम्। वेदेषु चतुर्ष्वपि परममत्यन्तं गोपनीयतरम्।। (वरि०)

२. व्यवहरति न तु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोऽपि। (वरि०)

गायत्री एवं पञ्चदशी मन्त्र में अभिन्नता, एकरूपता एवं तादात्म्यता का प्रतिपादन वरिवस्यारहस्यम् के बहुत पूर्व स्वयं श्रुति (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्) में ही किया जा चुका है; यथा—

१. भर्गो देवस्य धीमहीत्येवं व्याख्यास्याम:। धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान् परमेश्वर:। भर्गो देवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वान्तरभूतं तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्यवर्तीत्येवं व्याख्यातं भर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते।।१२।।

२. सवितुर्वरेण्यमिति षूङ् प्राणिप्रसवे सविता प्राणिन: सूते प्रसूते शक्ति: सूते। त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।

३. त्रिकोणशक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते। तस्मादेकार एव गृह्यते।

४. वरेण्यं श्रेष्ठं भजनीयमक्षरं नमस्कार्यम्। तस्माद्वरेण्यमेकाराक्षरं गृह्यत य एवं वेद ।

'पञ्चदशी विद्या' के तीनों कूटों (वाग्भव कूट, कामराज कूट एवं शक्तिकूट) का

गायत्री मन्त्र के साथ समन्वय करते हुये त्रिपुरतापनीयोपनिषद् में इन तीनों की गायत्री मन्त्र के साथ अभेदात्मकता स्थापित की गई है। त्रिपुरतापनीयोपनिषद् में सर्वप्रथम पञ्चदशी के 'वाग्भव कूट' एवं 'गायत्री मन्त्र' में समन्वय स्थापित किया गया है और कहा गया है कि 'परं गह्वरं व्याख्यास्याम:' अर्थात् परम गूढ़ार्थ की व्याख्या करूँगा। वह परम गूढ़ार्थ क्या है? महामन्त्र गायत्री के प्रथमाक्षर 'तत्' एवं 'पञ्चदशी विद्या' के आद्यक्षर 'क' (प्रथम खण्ड वाग्भव कूट के प्रथमाक्षर 'क') के अर्थों में एकता है— यही रहस्य है, गूढार्थ है। 'क' एवं 'तत्' ब्रह्म का सूचक है। वह निर्लक्षण, निरुपाधि, निरञ्जन परब्रह्म मूलाविद्याबीजांश के योग से ईश्वर बन कर 'स ईक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति' के माध्यम से उन्मीलित होता है, दृश्यत्वेन जगद्रूप में भासित होता है— 'देव उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्यभावं काम-यत इति स एको देव: शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते कामं जायते।'

निष्कर्षत: गायत्री मन्त्र और पञ्चदशी विद्या में एकात्मता है।

एकोनविंश अध्याय

श्रीविद्या के विभिन्न अंग

आचार्य भास्कर राय ने श्रीविद्या के दो अंग स्वीकार किये हैं— आन्तरिक एवं बाह्य। इनका सम्पूर्ण विवरण निम्नांकित है—

बाह्य अंग

ऋषि छन्द देवता विनियोग बीज शक्ति कीलक न्यास ध्यान नियम पूजा

आन्तरिक अंग

श्रीविद्या-वर्ण-संख्या उद्धार मात्रा उच्चारण स्थान प्रयत्न रूप विभिन्न स्थितियाँ अर्थ

विद्यावर्णेयतोद्धार: कालस्तदुच्चार:।
उत्पत्तिस्थानं तद्यत्नो रूपं स्थितिस्थानम्।। (२.१५९)

आकार: स्वं रूपं विभाव्यमर्थोऽन्तराङ्गाणि।
ऋषयश्छन्दोदैवतविनियोगा बीजशक्तिकीलानि।। (२.१६०)

न्यासा ध्यानं नियमा: पूजादीनि बहिरङ्गाणि।
बाह्यान्यङ्गानि पुन: प्रायो लोके प्रसिद्धकल्पानि।। (२.१७१)

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।
तोषायैषा तेषामत: प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या।। (२.१६२)

बाह्याडम्बरजन्य अंग (साधन) एवं उपासना—

क. अन्तरंग— एतामुत्सृज्य जडै: क्रियमाणा बाह्याडम्बरोपास्ति:।
प्राणविहिनेव तनुर्विगलितसूत्रेव पुत्तलिका।। (२.१६३)

१. विद्यावर्णों की इयत्ता (संख्या)— श्रीविद्या (पञ्चदशी विद्या) में ५८ वर्ण हैं— प्रथम कूट में १८ वर्ण, द्वितीय कूट में २२ वर्ण एवं अन्तिम कूट में १८ वर्ण।

२. उद्धार— क्रोधीश: श्रीकण्ठारूढ: कोणत्रयं लक्ष्मी:।
मांसमनुत्तररूढं वाग्भवकूटं प्रकीर्तितं प्रथमम्।।९।।

शिवहंसब्रह्मवियच्छक्रा: प्रत्येकमक्षरारूढा:।
द्वितीयकं कथितं तत् कामराजाख्यम्।।१०।।

शिवतो वियतो मुक्तं तृतीयमिदमेव शक्तिकूटाख्यम्।
हल्लेखानां त्रितयं कूटत्रितयेऽपि योज्यमन्ते स्यात्।।

(श्रीकण्ठ = अ। क्रोधीश = क। कोणत्रययोनि = त्रिभुजात्मक ए। लक्ष्मी = ई।

अनुत्तर = अ। मांस = ल। शिव = ह्। हंस = स्। ब्रह्मा = क। वियत् = ह्। शक्र = ल्। अक्षर = अ। शिव = ह। वियत् = ह। हृल्लेखा = ह्रीं।)

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

(कामो + मातरिश्वा = 'ककार'। योनि = 'एकार'। कमला = 'ई'। तुरीय स्वर। वज्रपाणि = 'ल'। गुहाद्वय— माया + लज्जाबीज = 'हसेति सकलेति च स्वरूपम्। सकारो दीर्घः। एवं लकारोऽपि।' अभ्र = हकार।— 'एतादृशैः साङ्केतिकैः शब्दैर्व्यवहारादत्यन्त-गोपनीयत्वं समर्थितं भवति।'— शाङ्खायन श्रुति)।

३. काल— विद्या के अक्षरों का उच्चारण काल। 'कालस्त्रिलवोनैकत्रिंशन्मात्रात्मको विद्यायाः' अर्थात् (३१ मात्राओं में) ३ लव कम ३१ मात्राओं का काल ही 'श्रीविद्या' के मन्त्र का उच्चारणकाल है। उच्चारण— 'एकलवोनाः ऊनत्रिंशन्मात्रा उच्चारणस्य।' उच्चारण की मात्रा १ लव कम ३० मात्रा।। यही है— श्रीविद्या के वर्णों का उच्चारण।

४. उत्पत्तिस्थान— कण्ठ, कण्ठ-तालु आदि मुखस्थान।

५. यत्न— बाह्य यत्न एवं आन्तर यत्न ही 'यत्न' है।

६. रूप— प्रलयाग्निनिभं प्रथमं मूलाधारादनाहतं स्पृशति।
तस्मादाज्ञाचक्रं द्वितीयकूटं तु कोटिसूर्याभम्।।
तस्माल्ललाटमध्यं तार्तीयं कोटिचन्द्राभम्।
मालामणिवद्वर्णाः क्रमेण भाव्या उपर्युपरि।।

व्यष्टि-समष्टिभेद से स्वरूप।

७. स्थान— 'मूलाधार' से प्रारम्भ करके, 'अनाहत' से प्रारम्भ करके एवं 'आज्ञाचक्र' से प्रारम्भ करके— ये ३ स्थान (चक्रों के स्थान) बिन्द्वादिरहित कूटत्रय के हैं।

'सुषुम्णा' नामक नाडीमूलाग्र में २ 'सहस्रदल कमल' हैं। मध्य में ८ दलों वाले, ६ दलों वाले ३० कमलों का 'स्वच्छन्दसंग्रह' में सविस्तार वर्णन किया गया है। वहाँ गुदा से दो अंगुल ऊपर लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य में अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञानामक ४, ६, १०, १२, १६, २ दल एवं दो-दो ग्रन्थियों के मध्य संदष्ट 'चक्र'पदवाच्य अन्य ६ पद्म हैं।

८. अर्थ— गायत्री के कौलिकार्थ, महातत्त्वार्थ, रहस्यार्थ आदि १५ अर्थ हैं। ये अन्तरंग उपासकों के लिए अत्यावश्यक हैं— 'इमान्यन्तरङ्गत्वादुपासकानामत्यावश्यकानि' (भास्कर)।

ख. बहिरंग—

१. ऋषि— हयग्रीव, अगस्त्य आदि ऋषि।

२. **छन्द**— पंक्त्यादिक छन्द।

३. **दैवत**— भगवती त्रिपुरसुन्दरी।

४. **विनियोग**— इष्टार्थजनकत्व।

५. **बीज**— वाग्भव आदि।

६. **शक्ति**— परा आदि शक्तियाँ।

७. **कीलक**— कामराज आदि।

८. **न्यास**— ऋष्यादि न्यासजाल।

९. **ध्यान**— 'अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीम्' आदि।

१०. **नियम**— पुण्ड्र-इक्षु-दण्ड-भक्षण-वर्जन-संकल्पादिक।

११. **पूजा**— पात्र-आसन आदि शान्तिस्तवान्त पूजोपकरण, जो कि नित्यादिभेद से त्रिविधात्मक हैं, परादिभेद से त्रिविधात्मक हैं तथा केवलादिभेद से पञ्चविध हैं।

आदिना = होम-तर्पण आदि परिग्रह। ये बहिरंग होने पर भी आवश्यक हैं—'इमान्यन्तरङ्गत्वादुपासकानामत्यावश्यिकानि। एतानि बहिरङ्गत्वेनावश्यिकानि।'

अन्तरंग एवं बहिरंग साधनों या अंगों में वरीयताक्रम—

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायो अन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।
तोष।यैषा तेषामतः प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या।।

आन्तरिक अंग प्रायः दुर्लभ हैं। इनका अन्तर्मुखी उपासकों द्वारा समादर किया जाता है। उन्हीं की तुष्टि हेतु इस रहस्यवरिवस्या का प्रतिपादन किया गया है।

इनका त्याग करके जड़ लोगों के द्वारा जो बाह्याडम्बरों की उपासना की जाती है, वह प्राणहीन शरीर या सूत्रहीन पुत्तलिका की भाँति अग्राह्य एवं त्याज्य है।

कामकलाबीज से मूल मन्त्र का विकास होता है। मूल मन्त्र से शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य विस्तार होते हैं। यद्यपि इन दोनों में साम्य है, तथापि अन्तरंग का प्राधान्य है—

बीजान्मूलं मूलात् क्षेत्रस्यान्तःस्थबाह्यविस्तारौ।
यद्यप्यनयोः साम्यं प्राधान्यमथापि चान्तराङ्गस्य।। (२.१६४)

('बीज' = धान्यादिक बीज के समान कामकलारूपात्मक बीज। 'मूलं' = वृक्षपाद (मन्त्र)। 'क्षेत्र' = शरीर (केदार)। दोनों में साम्य है, तथापि 'अन्तरङ्गनाशे बाह्याङ्गसहित-वृक्षनाशः, बाह्याङ्गमात्रनाशेन वृक्षस्य न वान्तरङ्गस्य नाशः' (भास्कर)।

गुरुतत्त्व— सद्गुरु (पक्षान्तर में श्वसुर) के कुल से उसकी कृपा से प्राप्त यह विद्या समस्त कामनाओं की पूर्णता उत्पन्न करती है। विना गुरुकृपा के अपनी बुद्धिमात्र से उत्पन्न होने पर यह विद्या अपनी कन्या की भाँति पाप उत्पन्न करती है—

सद्गुरुकुलतः कृपया लब्धा कामानियं सूते।
निजबुद्धिमात्रजन्या पापं कन्या यथा स्वीया।। (भास्कर-२.१६५)

पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विता:।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचय:।।

अन्त में भास्कर कहते हैं कि 'अकथ' आसन पर स्थित 'हलक्ष' त्रिभुज के कोणों पर वर्तमान मेरे ही आनन्द को मुझे देने वाले मेरे गुरुचरणों की नित्य जय हो—

अकथासनं हलक्षान्तरं समासाद्य मामकं ज्ञानम्।
मामकमेवानन्दं मह्यं ददतो जयन्ति गुरुचरणा:।।

(भास्कर-२.१६६)

श्रीविद्या एवं श्रीविद्योपासना के अंग— यद्यपि भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश में आन्तरिक एवं बाह्य अंगों का प्रस्तुतीकरण करते हुये यह सुस्पष्ट नहीं किया है कि ये (आन्तरिक एवं बाह्य अंग) श्रीविद्या के हैं या कि श्रीविद्या की उपासना के; तथापि उन्होंने अन्तरंगों के विवेचन में आन्तरिक अंगों को 'रहस्यवरिवस्या' कहा है—'तोषायैषा तेषामत: प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या' (२.१६२)। स्पष्ट है कि वे इन्हें 'श्रीविद्योपासना का ही अंग' मान कर चले हैं, किन्तु प्रश्न उठता है कि वे आन्तरिक अंगों को वरिवस्यारहस्यम् के प्रथम अंश में (श्रीविद्योपासना के अंग के रूप में नहीं; प्रत्युत) 'श्रीविद्या' (पञ्चदशी मन्त्र) के अंग के रूप में प्रस्तुत कर चुके हैं। श्लोक ७ में वे कह रहे हैं कि मैं अत्यन्त गोपनीय गायत्री— 'श्रीविद्या' के स्वरूप के विषय में प्रकाश ड़ाल रहा हूँ और 'वेदेषु चतुर्ष्वपि परमत्यन्तं गोपनीयतरम्'— ऐसा कहकर श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) के उद्धार, उनके काल, उच्चारण, मात्रा, यत्न, वर्णसंख्या, उत्पत्तिस्थान आदि का वर्णन करने लगते हैं और 'प्रकाश' में स्पष्टत: कहते हैं— 'विद्यास्वरूपस्य काल:' अर्थात् श्रीविद्या के उच्चारण में इतने काल का प्रयोग होता है; अत: अन्तरंग उपासनांग नहीं, बल्कि श्रीविद्या के अंग ही सिद्ध होते हैं। अंग अंगी के निर्माणक तत्त्व होते हैं, उनके विना अंगी निर्मित ही नहीं हो सकता। अन्तरंग वे ही अंग हैं, किन्तु भास्कर राय ने जिन्हें बहिरंग कहा है, वे श्रीविद्या के निर्माणक स्वांगभूत अवयव नहीं हैं, क्योंकि उनके न रहने पर भी श्रीविद्या का निर्माण हो जाता है। वे श्रीविद्या की उपासना के अंग अवश्य कहे जा सकते हैं, किन्तु श्री भास्कर राय ने उन्हें गौण अंग माना है और अन्तरंग को प्रधान माना है— 'यद्यप्यनयो: साम्यं प्राधान्यमथापि चान्तरङ्गस्य' (१६४)।

इस विरोधाभास का कारण क्या है? इस समस्या का समाधान क्या है? शायद भास्कर राय यह कहना चाहते हैं कि बाह्यांगों को उपासना का मेरुदण्ड मानकर जो उपासना की जाती है, वह यथार्थ उपासना नहीं है; क्योंकि ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, शक्ति, कीलक, न्यास, ध्यान, नियम एवं पूजा आदि बाह्यांगों को उपासना में सम्मिलित कर लेने पर भी यदि अन्तरंग (विद्या के वर्ण, उनकी संख्या, उद्धार, काल, उच्चारण, स्थान, प्रयत्न, रूप, विभिन्न स्थितियाँ, आकार एवं विभिन्न अर्थ) को सम्मिलित नहीं किया गया तो वह उपासना यथार्थ उपासना नहीं होगी; साथ

ही उपासना में बाह्यांगों का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना कि अन्तरंग साधनों के ज्ञान एवं उनके स्वरूप पर ध्यान देकर उपासना में उनके उपयोग का महत्त्व होता है। वे आगे 'बाह्याडम्बरोपास्ति' की भी बात करते हैं और उसे प्राणहीन एवं सूत्रहीन कठपुतली मानते हैं, किन्तु वे बाह्याडम्बर किसे मानते हैं— इसका उन्होंने कोई उदाहरण नहीं दिया है। वे आन्तरिक अंग को दुर्लभ मानकर उसी के प्रयोजनार्थ 'रहस्यवरिवस्या' को प्रतिपादित करना अपना मुख्य लक्ष्य घोषित करते हैं— 'प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या' (२.१६१)।

आन्तरिक साधनों की श्रेष्ठता— श्रीविद्या के आन्तरिक अंग ही श्रेष्ठतर और दुर्लभ हैं, कहा भी है—

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।

अन्तरंग साधनों का आत्मीकरण अन्तर्मुखी साधकों द्वारा बडे आदर के साथ किया गया है। आचार्य भास्कर राय का कथन है कि उन्हीं की तुष्टि के लिए 'वरिवस्यारहस्यम्' प्रदिष्ट हुई है।

बाह्याडम्बरों का खण्डन— श्रीविद्या की उपासना के मुख्य साधनांग आन्तरिक अंग हैं और इसमें प्रयुक्त बाह्याडम्बरोपासना प्राणहीन, शरीर एवं सूत्रहीन पुतली की भाँति है, जो कि निरर्थक है—

एतामुत्सृज्य जडैः क्रियमाणा बाह्याडम्बरोपास्तिः।
प्राणविहीनेव तनुर्विगलितसूत्रेव पुत्तलिका।।
(वरिवस्यारहस्यम्-२.१६३)

१. अन्तर्मुखी साधकों की साधना (मुख्य साधना)— यह साधना श्रीविद्या के आन्तरिक अंगों की साधना है—

दुर्लभमान्तरमङ्गं प्रायोऽन्तर्मुखजनैस्तदादृत्यम्।
तोषायैषा तेषामतः प्रदिष्टा रहस्यवरिवस्या।।

२. जड़ लोगों की साधना— बाह्याडम्बरोपासना = हेय साधना—

एतामुत्सृज्य जडैः क्रियमाणा बाह्याडम्बरोपास्तिः।

कामकला एवं मन्त्र (मन्त्रोत्पत्ति)— जिस प्रकार धान्य या बीज से वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार कामकलाबीज से मन्त्रों की उत्पत्ति होती है— 'बीजान्मूलं मूलात्' (वरिवस्यारहस्यम्-२.१६४)।

'बीजात् कामकलारूपाद्धान्यादिरूपाच्च मूलं वृक्षपादो मन्त्रश्च।' (प्रकाश)।

बाह्यांगों की विवेचना— 'ऋषि' = हयग्रीव, अगस्त्य आदि। 'छन्द' = पंक्त्यादिक। 'देवता' = त्रिपुरसुन्दरी। 'विनियोग' = इष्टार्थजनकत्व। 'बीज' = वाग्भव आदि। 'शक्ति' = परा आदि। 'कीलक' = कामराज आदि। 'न्यास' = ऋष्यादिन्यास। 'ध्यान' = अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीम् आदि। 'नियम' = पुण्ड्रेक्षुदण्डभक्षणवर्जनसंकल्पादि। 'पूजा' = पात्रासन

आदि शान्तिस्तवान्त त्रिविध— नित्यादिभेद से त्रिविध, परादिभेद से त्रिविध एवं केवलादिभेद से पञ्चविध। 'आदि' = होम-तर्पणादि परिग्रह।

ये सभी बहिरंग होने के कारण तदात्मक साधना के लिए उपयोगी होने से आवश्यक हैं— 'एतानि बहिरङ्गत्वेनावश्यकानि' (वरिवस्यारहस्यम्)।

मातृका और श्रीविद्या— श्रीविद्या का मेरुदण्ड तो मातृका ही है। मातृका श्रीविद्या के प्रत्येक वर्णों को भी कहा गया है। भास्कर राय कहते हैं—

यावन्मातृकमुदितान्येकसमेतानि पञ्चाशत्।
पीठानि पुनर्गणितान्येजापूकानि चत्वारि।। (२.९७)

'मातृका' निरपेक्ष एवं सर्वकर्त्री होने के कारण स्वतन्त्र है। यह अलुप्ता, क्रियाशक्तिरूपा, वर्णरूपा, स्फोटादिध्वनिनिरूपिणी, क्रियाशक्तिमहेश्वरी, सर्ववाङ्मयरूपिणी, अशुद्ध विश्वों की जननी, मन्त्ररूपा, 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त ५० वर्णभट्टारकों के रूप में रूपायित, अज्ञात माता, मातृका कहलाने वाली, परमा, परमेश्वरी एवं घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झांकार एवं ध्वंकृति के आठ प्रकार के शब्दों में व्याप्त एवं शुद्धाशुद्ध दोनों संसारों की प्रसवित्री एवं अक्रमा-सक्रमा उभयरूपा है—

यदा स्वतन्त्रा लुप्ता सा क्रियाकरणरूपिणी।।

वर्णरूपाष्टभेदेन स्फोटादिध्वनिरूपिणी।
मातृका सा विनिर्दिष्टा क्रियाशक्तिर्महेश्वरी।

'मातृका शक्ति' ज्ञान के पर एवं अपर दोनों रूपों का आधार है। 'पर स्वरूप' अभेद-प्रथात्मक है और 'अपर स्वरूप' भेदप्रथात्मक ज्ञान है। 'पुरुष' और 'पशु' में अन्तर यह है कि—

अकारादि-क्षकारान्त शब्दसमूह से उद्भूत ब्राह्मी आदि शक्तियाँ पुरुषों का उपभोग करती हैं और परिणामतः पुरुष इन शक्तियों की ककार आदि कलाओं द्वारा स्वस्वभाव (स्वातन्त्र्य के वैभव) से स्खलित हो जाता है, उसका स्वस्वभाव विलुप्त हो जाता है और 'पशु' कहलाने लगता है।

पुरुष का स्वस्वरूप 'परामृत रस' है। इसी स्वस्वरूप से च्युत होने पर वह अपनी स्वतन्त्रता खोकर 'पशु' बन जाता है।

मातृका शक्ति वर्णात्मिका, शक्तिपुञ्ज, शिवमयी तथा ज्ञात होने पर मुक्तिदा एवं अज्ञात होने पर बन्धनप्रदा होती है।

स्पन्दकारिका की दृष्टि— स्पन्दकारिका उपर्युक्त भावों को ही इन वाक्यों द्वारा प्रस्तुत करती है—

शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स पशुः स्मृतः।।४५।।

परामृतरसापायः तस्य यः प्रत्ययोद्भवः।
तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचरः।।

स्वरूपावरणे चास्य शक्तयः सततोत्थिताः।
यतः शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भवः।।

सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।।

दुर्वासा की दृष्टि— स्वदेहोत्पन्न ५० अक्षरों से उद्भूत अनेक धातुओं से विश्व को व्याप्त करके चिदात्मा के रूप से 'अहं'रूपात्मिका मातृका शक्ति ही विलास कर रही है—

विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके।

वर्ण एवं शक्ति में सम्बन्ध— 'तन्त्रसद्भाव' में कहा गया है—

सर्वे वर्णात्मकाः मन्त्राः ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

या सा तु मातृका देवी परतेजःसमन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्।।

परा वाक्, मातृका, पराहन्ता, विमर्श एवं ललिताभट्टारिका— स्फुरण से अन्वित, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, ज्ञानरूप प्रकाश (ब्रह्म) का आनन्दांश ही 'पराहन्ता, विमर्श, परा ललिताभट्टारिका' है। शब्दसृष्टि के सूक्ष्म रूप को धारण करने वाली त्रिपुरसुन्दरी ही परा वाक् है। वरिवस्यारहस्यम् में कहा भी गया है—

'स्फुरणान्वयि ज्ञानमेव प्रकाशाभिधं ब्रह्म। तच्च सर्वज्ञत्व-सर्वेश्वरत्व-सर्वकर्तृत्व-पूर्णत्व-व्यापकत्वादिशक्तिसंवलितम्। तस्य चानन्दरूपांश एव स्फुरणं पराहन्ता-विमर्श-परालिलता-भट्टारिका त्रिपुरसुन्दरी।'

शक्ति एवं वर्ण

मातृका

१. मात्रिकाद्य (अ) २. मातृकान्त (क्ष)

अकारादि-क्षकारान्त वर्ण : 'शक्ति'—

कलामण्डलमास्थाय शक्तिरूपं महेश्वरि।
ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शक्तिरूपिणः।।

वर्ण शक्ति के रूप हैं।

वर्णमाला 'अक्षमाला' है।

वह मातृकात्मिका अक्षमाला है—

अकारः प्रथमं देवि ! क्षकारोन्त्यस्ततः परम्।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी।। (परात्रिंशिका)

मातृका

१. 'विलोम मातृका' (प्रचलित मातृका का उल्टा (विपरीत) रूप ही विलोम मातृका है।)

२. 'अन्तर्मातृका' (चक्रों में मातृका वर्णों का क्रम से (साधकों द्वारा) किया गया न्यास अन्तर्मातृका कहा जाता है।)

३. 'बहिर्मातृका' (लिपिमयी मातृका देवी। इसमें अकारादि वर्णों द्वारा देवी के अंगों का निर्माण किया जाता है।)

मातृका के भेद

स्थूला मातृका	सूक्ष्मा मातृका	सूक्ष्मतरा मातृका	(मातृका च त्रिधा स्थूला
(वैखरी वाक्)	(मध्यमा वाक्)	(परा एवं पश्यन्ती)	सूक्ष्मा सूक्ष्मतरापि च।)
(वर्णमाला)		(सुसूक्ष्म मातृका)	(मध्यमा सूक्ष्म मातृका)

'सूतसंहिता' कहता है कि ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों से अचिन्त्य रूप वाला चिन्मय एवं शिवा-भिन्न वाणी का भी एक स्वरूप है, जो कि अचिन्त्य है—

वाचामगोचराकारो मातृकायास्तथा परः।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानामचिन्त्यः सूक्ष्मतावधिः।
चिन्मयः परचिद्रूपः शिवाभिन्नः स एव हि।।

वाणी का यही रूप 'परा वाक्' है। 'कारणकार्यबिन्द्वात्मिका परापश्यन्तीरूपा सूक्ष्मतरा मातृकोत्तमा' (तात्पर्यदीपिका)। 'मातृका का पररूप ही परा और पश्यन्ती से परे बिन्दुनादात्मक है' (सूतसंहिता की टीका : टीकाकार-माधवाचार्य)।

'मातृका' को भगवती कहा गया है और कहा गया है कि 'भगवती मातृका' ही समस्त वाच्यावाच्यात्मक जगत् के अद्वैत के भोगानन्द को प्रदान करने वाली शब्दराशि की विमर्शिनी है। मातृका 'मन्त्रमाता' है। यही बुद्धि में स्थित होने पर 'मध्यमा वाक्' कहलाने लगती है। मन्त्र, वेद, वाणी, शक्तिप्रचय एवं ३६ तत्त्वों के रूप में यह 'मातृका परम देवी' ही प्रकट होती है। वही मुख के उच्चारणस्थानों से (वायु की सहायता से) अभिव्यक्त होने पर 'वैखरी वाक्' कहलाती है—

मन्त्राणां मातृभूता च मातृका परमेश्वरी।
बुद्धिस्था मध्यमा भूत्वा विभक्ता बहुधा भवेत्।।
सा पुनः क्रमभेदेन महामन्त्रात्मना तथा।।

मन्त्रात्मना च वेदादिशब्दाकारेण च स्वतः।
सत्येतरेण शब्देनाप्याविर्भवति सुव्रताः।।

मातृका परमा देवी स्वपदाकारभेदिता।
वैखरीरूपतामेति करणैर्विशदा स्वयम्।।

(सूतसंहिता-१८-२१)

'माधवाचार्य' ने यज्ञवैभव खण्ड में परा, पश्यन्ती से परे एवं उसकी पूर्ववर्ती अवस्था का भी प्रतिपादन किया है— 'परापश्यन्त्याद्यवस्थातः प्राक् बिन्दुनादाद्यात्मकं यन्मातृकायाः सूक्ष्मं रूपम्।'

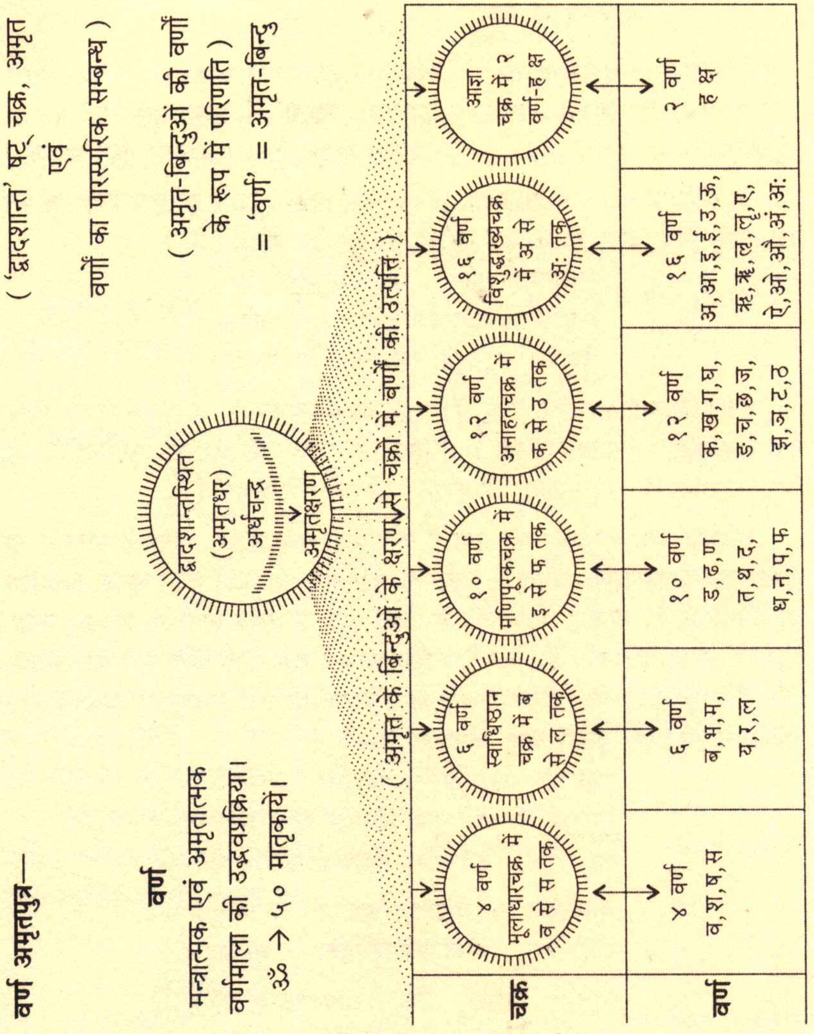

मूलाधारात् स्फुरिततडिदाभाप्रभासूक्ष्मरूपो-
द्रच्छन्त्यामस्तकमणुतरा तेजसां मूलभूता।
सौषुम्णाध्वाचरणनिपुणा सा सवित्रानुविद्धा
ध्याता सद्योऽमृतमथ रवेः स्रावयेत्सार्धसोमात्।।

शिरसि निपतिता या बिन्दुधारा सुधायाः।
भवति लिपिमयी सा ताभिरङ्गं मुखाद्यम्।।

(तात्पर्यदीपिका)

आशय यह कि 'न विद्या मातृकापरा' मातृका से परे और कोई विद्या है ही नहीं; मातृकाओं की उत्पत्ति तो ॐकार से हुई है।

तात्पर्यदीपिका की दृष्टि है कि 'आधारादिषट्ककमलदलेषु पातिता द्वादशान्तस्थित-चन्द्रमण्डलात्सृता अमृतबिन्दवो अकारादिक्षकारान्तवर्णात्मना परिणता:।'

वर्णों का वर्ण (रंग)

१. सम्पूर्ण वर्णों का रंग श्वेत है। (एक मत)

२. प्रत्येक वर्ण का रंग पृथक्-पृथक् है। (कामधेनुतन्त्र एवं मातृकाविवेक)

३. 'सनत्कुमारसंहिता' का मत—

क. अकारादि स्वरों का रंग धूम्र है।

ख. 'क' से 'ठ' पर्यन्त वर्णों का रंग सिन्दूराभ है।

ग. लकारादि पाँच वर्ण स्वर्णाभ हैं।

घ. 'ह' एवं 'क्ष' का रंग तडित् के समान है।

४. 'तन्त्रान्तरमत'—

क. स्वर स्फटिकवत् हैं।

ख. स्पर्श वर्ण विद्रुमवत् हैं।

ग. यकारादि ९ वर्ण पीत वर्ण के हैं।

घ. क्षकार अरुण वर्ण का है।

अकाराद्या: स्वरा धूम्रा: सिन्दूराभास्तु कादय:।
ठादिफान्ता गौरवर्णा अरुणा: पञ्च वादय:।
लकाराद्या: काञ्चनाभा: हकारान्त्यौ तडिन्निभौ।।

(सनत्कुमारसंहिता)

ङ. स्फटिकाभा: स्वरा: प्रोक्ता: स्पर्शा विद्रुमसन्निभा:।
यादयो नव पीता: स्यु: क्षकारस्त्वरुणो मत:।।

सर्वे वर्णा: शुक्ला इत्यपि क्वचित्।

च. समस्त वर्ण अग्नीषोमात्मक हैं— 'प्रपञ्चसारतन्त्र।'

समस्त वर्णभट्टारक (वर्ण) 'मन्त्र' हैं।

छ. समस्त वर्णों के दो भेद हैं— 'योनि' अर्थात् व्यञ्जन एवं 'बीज' अर्थात् स्वर। योनिवर्ण 'शक्ति' है एवं बीजवर्ण 'शिव' है।

मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोग

मन्त्र— 'मकार' और 'त्रकार' अक्षरों से 'मन्त्र' शब्द बना है। 'मकार' का अर्थ है— मनन एवं 'त्रकार' का अर्थ है— बुद्धि। बुद्धिपूर्वक मानसिक व्यापार या बुद्धि एवं मानस

का संयोग करते हुये दैवाराधन करना ही 'मन्त्र' है। इस प्रकार मन्त्र के दो अवयव है— मकार = मानस एवं त्रकार = बुद्धि। जहाँ मानस (हृदयतत्त्व = भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति) एवं त्रकार (बुद्धि = तात्त्विक ज्ञान, प्रातिभ ज्ञान, सत्त्वपुरुषान्यताख्याति, पुरुष-प्रकृति-विवेक-सम्बद्ध आत्मज्ञान, शुद्ध बौद्धिक तात्त्विक ज्ञान) का जहाँ संयोग हो अर्थात् भक्ति एवं आत्मज्ञान का जहाँ सामरस्य हो, वही 'मन्त्र' है—

मकारं मानसं प्रोक्तं त्रकारं बुद्धिलक्षणम्।
बुद्धिमानससंयोगे मन्त्र इत्यभिधीयते।।

मन्त्र और विद्या— जो मनन किये जाने पर त्राण करे, वही 'मन्त्र' है— 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः।' पुरुष देवता— शिव, गणेश, भैरव आदि के मन्त्रों को 'मन्त्र' कहते हैं, किन्तु शक्ति (दुर्गा, काली, भैरवी आदि नारी देवताओं) को 'विद्या' कहते हैं।

माहेश्वरतन्त्र के ज्ञानखण्ड में कहा गया है कि विश्वविज्ञान का मनन एवं संसार के संकटों से त्राण जिस प्रक्रिया के द्वारा साधित हो, वही 'मन्त्र' है—

मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारसङ्कटात्।
यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते प्रिये।।

मन्त्रोपासना के अनिवार्य तत्त्वों में जप, ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, मन्त्र के संस्कार आदि विधान अत्यावश्यक हैं। मन्त्रजप के भी विभिन्न अंग हैं, जिनका विवरण निम्नांकित है—

मन्त्रजप के अंग— ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, कीलक, अंगन्यास आदि 'न्यास' और 'ध्यान' मन्त्रजप के मुख्य अंग हैं। इन अंगों के विना मन्त्रजप निरर्थक हो जाता है। इस सम्बन्ध में विभिन्न तन्त्रों में इस प्रकार बताया गया है—

ऋषिछन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलदो भवेत्।
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम्।। (गौतमीय तन्त्र)

ऋषिछन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदि।
करोति साधको यच्च तत्सर्वं विफलं भवेत्।।
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः।।
(गीतारहस्योद्धृत स्मृतिशास्त्र)

जप के सप्तांग— जप के मुख्यतः सात अंग हैं और वे हैं— ऋषि, छन्द, बीज, कीलक, शक्ति, अंगन्यास और ध्यान। कहा भी गया है—

ऋषिश्छन्दश्च बीजञ्च कीलकं शक्तिरेव च।
अङ्गन्यासस्तथा ध्यानं मन्त्राङ्गानां च सप्तकम्।।

वरिवस्यारहस्यम् के अनुसार जपांग-विधान इस प्रकार है— अवस्था, शून्य, विषुवत्, चक्रों का स्मरण, मन्त्राक्षर का उच्चारण और मन्त्रार्थचिन्तन अर्थात् देवता का ध्यान। कहा भी है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।। (१.५२)

देवता का शक्तिव्यूहात्मक नादात्मक स्वरूप ही 'मन्त्र' है। मन्त्र चेतन संवित् तत्त्व की रश्मि है— 'मन्त्राश्चिन्मरीचयः।' जिसके मनन से साधक का त्राण होता है, वह 'मन्त्र' है— 'मननात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्र उदाहृतः।' मन्त्र में तीन तत्त्व निहित हैं— व्याहृति (प्रणव), बीज एवं देवता।

व्याहृति या प्रणव— इसे प्रायः प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में लगाया जाता है। यह 'शब्दब्रह्म' है। अ + उ + म् के योग से 'ओम्' बनता है, किन्तु लिखा जाता है— 'ॐ'। योगसूत्रकार पतञ्जलि इसे परमात्मा का वाचक कहते है— 'तस्य वाचकः प्रणवः।' यह सर्वव्यापी परमात्मा की एकाक्षरी नादाभिव्यक्ति है। इसमें 'शक्तिमान' और 'शक्ति' दोनों का निवास है। अ + उ + म् के रूप में त्रिदेव भी इसमें स्थित हैं; अतः इसमें सृष्टि, स्थिति एवं संहाररूप तीनों व्यापार सन्निहित हैं। यह निर्गुण (शब्दातीत) एवं निष्कल ब्रह्म की प्रथम व्यक्त अभिव्यक्ति है। यही सृष्टि का प्रथम 'नाद' है।

ॐ के अकार + उकार + मकार शक्तियों के द्योतक हैं। 'अर्द्धमात्रा' उपनिषदों के 'शान्तं शिवमद्वैतम्' की महिमा का प्रकाशक है— 'अर्द्धेन एकांशेन मीयन्ते परिच्छिद्यन्ते अनया इति अर्द्धमात्रा' अर्थात् जिसके अर्द्ध (एकांश) में जीव जगत् विवर्तित है— 'एकांशेन स्थितं जगत्' है— वही 'अर्द्धमात्रा' है। जगत् के समस्त रहस्य, भगवान् के 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' दोनों रूप— सभी प्रणव के भीतर स्थित हैं। अकार + उकार + मकार के द्वारा हम स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणतत्त्व का भेदन करके गुणातीत, अखण्ड, अद्वय एवं तत् तत्त्व के निकट पहुँचते हैं।

यन्त्र— जहाँ यह वैश्वी, अपरिमेय एवं विराट शक्ति बीजाकार रूप में नियन्त्रित होकर स्थित है और जहाँ से यह विश्वबीज प्रकट होता है, उस मूलाधार को हम 'यन्त्र' कहते हैं।

बीज— सम्पूर्ण विराट विस्तार को अपने भीतर केन्द्रित किये हुये एवं उपबृंहीकरण की असीम एवं अचिन्त्य शक्ति को अपने गर्भ में नियन्त्रित किये हुये जो अव्यक्त कारणा-वस्था है, वही 'बीज' है; यथा— न्यग्रोध वृक्ष का बीज (या पीपल का सूक्ष्म बीज)। इसी प्रकार मन्त्रों के बीज भी हैं; यथा— 'क, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, क्लीं, ह्रीं, श्रीं' आदि।

प्रणव के भीतर तो भगवान् का 'विश्वमय' एवं 'विश्वातीत' रूप स्थित है। बीजतत्त्व यह

बताता है कि हमारा यथार्थ स्वरूप क्या है? हमारा परमात्मा से क्या सम्बन्ध है? हमारे विकास की सीमायें क्या हैं? भगवान् ने हमारे जन्म का उद्देश्य क्या निर्धारित किया है? हमारे भीतर कौन-कौन-सी शक्तियाँ अव्यक्त रूप में स्थित हैं? 'मन्त्र' शक्तिसञ्चार की एक प्रणाली है। यह नाम द्वारा नामी से ऐकात्म्य प्राप्त करने की पद्धति है।

मन्त्र के दो रूप हैं— 'पशु' एवं 'पशुपति' अर्थात् 'सिद्ध' एवं 'चेतन मन्त्र'। मन्त्र का पशुरूप ही मन्त्र का वर्णात्मक रूप है—

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-१०.६५)

इसीलिए कहा गया है कि मन्त्र में अक्षरबुद्धि रखकर किया गया सम्पूर्ण तप, पूजा एवं जप व्यर्थ हो जाता है।[१]

जप के अंगभूत तत्त्व— काधेनुतन्त्र के अनुसार जप के अंगभूत तत्त्व नव हैं— देवतत्त्व, प्राणतत्त्व, बिन्दुतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, शक्तितत्त्व, योनितत्त्व आदि। शक्तानन्दतरङ्गिणी (९.८७) में कहा भी है—

देवतत्त्वं प्राणतत्त्वं बिन्दुतत्त्वं च सुन्दरि।
ज्ञानतत्त्वं शक्तितत्त्वं योनितत्त्वं तथैव च।।
नवतत्त्वमिदं प्रोक्तं कामधेनुमतं प्रिये।।

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी-९.८७)

ये तत्त्व भी न्यास की भाँति ही साधक में शक्ति-सञ्चरण के साधन हैं।

▼

---

१. मन्त्रे चाक्षरबुद्धिः स्याद्गुरौ तु मानवः प्रिये।
देवतायाः वरारोहे प्रतिमाबुद्धिस्तु जायते।
किं तस्य जपपूजायां सर्वं व्यर्थं कदर्थनम्।। (कामधेनुतन्त्र)

विंश अध्याय

श्रीविद्या का स्वरूप : गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या

गायत्री और पञ्चदशी श्रीविद्या— वरिवस्यारहस्यम् में आचार्य भास्कर राय ने कहा है कि गायत्री मन्त्र ही 'पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या' है। प्रकाश की जो 'विमर्श शक्ति' है, वही परिणत होकर अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी सृष्टि बन गई। समस्त सृष्टि उपर्युक्त चार स्वरूपों में व्यक्त हुई है। इस चतुर्धा सृष्टि के मूल में भगवती 'विमर्श शक्ति' विद्यमान है। परमशिवरूप 'प्रकाश' की समवायिनी, स्वाभिन्ना, स्वाभाविकी एवं स्फुरणात्मिका, जो विमर्शरूपा शक्ति है, उसी की सहायता से शिव जगत् का सृजन, परिरक्षण (पालन, स्थिति) एवं संहार करते हैं। यह शक्ति विश्वाकारेण, विश्वप्रकाशेन, विश्वसंहारेण, 'अकृत्रिमाहमिति विस्फुरणम्' के रूप में स्थित है। यदि षट्त्रिंशदात्मक समस्त जगत् को जानना हो तो उसके मूल रूप 'विमर्श शक्ति' को जानना ही पड़ेगा—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.५)

गायत्री मन्त्र और श्रीविद्या में तादात्म्य— उस 'विमर्श शक्ति' के ज्ञान के लिए चौदह विद्यायें प्रधान विद्यायें हैं, किन्तु उन १४ विद्याओं में भी जो सारगर्भित विद्या है, वह है— 'श्रुति'। श्रुतियों में भी जो सारभूत विद्या है, वह है— 'गायत्री'। कहा भी है—

तज्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दश प्रोक्ताः।
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.६)

इस वेद के भी सारभूत तत्त्व गायत्री विद्या के दो रूप हैं, जिनमें से एक अस्पष्ट एवं परम गोपनीय है और दूसरा है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहां हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

के माध्यम से संकेतित एवं अप्रकट गायत्री विद्या। यही सांकेतिक शब्दों से व्यवहृत एवं अप्रकट विद्या 'श्रीविद्या' है—

कामो योनिः कमलेत्येवं साङ्केतिकैः शब्दैः।
व्यवहरति न तु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोऽपि।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.८)

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में पहले से ही गायत्री मन्त्र एवं पञ्चदशी मन्त्र में अभिन्नता, एकरूपता एवं तादात्म्यभाव का प्रतिपादन किया गया है।

वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश में भास्कर राय ने गायत्री के उतने ही अर्थ किये हैं, जितने कि पञ्चदशी श्रीविद्या में अक्षर (१५ अक्षर) हैं—

पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या एवं गायत्री

१. गायत्री मन्त्र	**२. पञ्चदशी विद्या**
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।	क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, सकल ह्रीं।
गायत्री मन्त्र— 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' 'तत्' = ब्रह्म। ('ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः', 'तदिति ब्रह्म शाश्वतम्' (श्रुतिः)	'क ए ई ल ह्रीं' 'क' = ब्रह्म। 'कं ब्रह्म' (श्रुतिः)।

तत् सवितुर्वरेण्यम्— 'तत्'

व्याख्या— उक्त मन्त्रांश में सर्वप्रथम शब्द 'तत्' आया है। तत् का अर्थ है— 'वह' अर्थात् ब्रह्म।

प्रमाण— 'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।' अर्थात् ॐ, तत् एवं सत्— ये तीनों 'शब्दब्रह्म' के वाचक हैं। 'तदिति ब्रह्म शाश्वतम्'

सवितुर्वरेण्यम्—

कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः।
सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः।। (वरिवस्यारहस्यम्-६०)

'सवितुर्वरेण्यम्' पदद्वयेनापि जगद्योनित्वं लब्धम्। तेन च कामेश्वरीत्यर्थः। स एव चार्थः, एकारस्य तस्य त्रिकोणत्वात्।

सविता— 'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः।' (अमरकोष) के अनुसार 'सविता' सूर्य का भी वाचक है, क्योंकि वह सर्वोत्पादक है ।

(सुवति। 'षू' प्रेरणे (तु० प० से०)।

'क ए ई ल ह्रीं' (वाग्भवकूट)

व्याख्या— पञ्चदशी मन्त्र में जो कामकूट का प्रथमाक्षर है, वह है 'क'। 'क' भी ब्रह्म का ही वाचक है और इस प्रकार गायत्री का 'तत्' एवं पञ्चदशी का 'क' समानार्थक है एवं ब्रह्म का वाचक है।

प्रमाण— 'कं ब्रह्म' (श्रुतिः), 'सोऽकामयत' (श्रुतिः), 'कामयते कामी जायते स एव निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृभते ..... कामोऽ-भिधीयते तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति' (श्रुतिः)।

'क' = ब्रह्म। कामेश्वर।

'तस्मादीश्वरः कामोऽभिधीयते। तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात्तत्पदार्थ इति य एवं वेद' (त्रिपुरातापिन्युपनिषद्)।

भास्कर राय— 'कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः।' (वरिवस्यारहस्यम्)।

'कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाऽभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या।'

(त्रिपुरोपनिषद्)

तृच् (पा० सू०-३.१.१३३) यत्तुसूयते सूते। 'स्वरतिसूतिसूयति' (पा० सू०-७.२.४४)

इस मन्त्रप्रसंग में (पञ्चदशी मन्त्र की दृष्टि से) 'सविता' कामेश्वरी का वाचक है।

सवितुर्वरेण्यम्—

सविता = 'सवितुर्वरेण्यमिति 'षूङ् प्राणि-प्रसवे' सविता प्राणिन सूते प्रसूते शक्तिः सूते ।' (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

सविता = प्रणियों के प्रसव का आदि कारण। जगत् की योनि। समस्त प्राणियों का प्रसव करने के कारण ही वह वरेण्य (भजनीय, श्रेष्ठ, महनीय, पूज्य) है। वह जगद्योनि है। सविता = कामेश्वरी। सविता कामेश्वरी इत्यर्थः (भास्कर राय)।

भर्गो देवस्य धीमहि—

सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीमहि तुर्यार्थः । (वरिवस्यारहस्यम्-६१)

व्याख्या— भर्ग— सर्वाधार शिव। भृज् + घञ्। (शिव, ब्रह्मा, आदित्य तेज) इस सन्दर्भ में 'भर्ग' = शिव।

कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः।
हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः।।
(अमरकोष)

(भृजी भर्जने (भ्वा० आ० से०) पचाद्यच् (पा० सू०-३.१.१३४) भृज्यते कामादयोऽनेनेति भर्गः।)

देव—

अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः।
सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकसः।।
(अमरकोष)

दिव्यन्तीति देवाः। पचादिषु (पा० सू०-

'कामी कलां कामरूपां चिकित्वा नरो जायते कामरूपश्च काम्यः।' (त्रिपुरोपनिषद्)

'भगः शक्तिर्भगवान् काम ईशः' (त्रिपुरोपनिषद्)

ए— कामकूट का द्वितीयाक्षर 'ए' है।

'ए' कामेश्वरी का वाचक है। 'ए' त्रिकोण है; अतः जगद्योनि का द्योतक होने के कारण 'ए' कामेश्वरी का वाचक है। कहा भी गया है—

'त्रिकोणशक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते तस्मादेकार एव गृह्यते।'
(त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयात्मकम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगद्यापि दृश्यते।।
(वामकेश्वरतन्त्र)

ई— 'ई' पञ्चदशी मन्त्र का तृतीय वर्ण है।

भर्गो देवस्य का जो अर्थ है, वही ईकार का भी अर्थ है— 'ईकारस्याप्येतावानर्थः' (वरिवस्यारहस्यम्)

'तस्माद्भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकारः'(श्रुतिः)।

भास्करराय कहते हैं—

'भर्गोदेवस्य इत्याद्युपक्रम्य तुरीयमक्षरं सर्वान्त-र्भूतम्।'

तुरीय अक्षर = चौथा अक्षर। 'अ आ इ ई'— 'अ' से प्रारम्भ करने पर 'ई' वर्ण चौथा (तुरीय) वर्ण होगा। मन्त्र की दृष्टि से 'ई' तृतीय वर्ण होगा— 'क ए ई'।

भास्करराय कहते हैं—

१. तुरीयाक्षरं पदानां मध्यवर्तित्वेन व्याख्या-तम्— 'तस्माद्भर्गोदेवस्य धीत्येव-मीकारः।' (श्रुतिः)।

२. तुर्यार्थः, मन्त्रे तु तृतीयस्यापि

३.१.१३४) पाठादच्।

देव: सुरे घने राज्ञि देवमाख्यातमिन्द्रिये।
देवी कृताभिषेकायां तेजनीस्पृक्कयोरपि।।

देव = देवता, सर्वान्तर्यामी।

'सर्वान्तर्यामित्वं देवपदस्यार्थ:।'

(वरिवस्यारहस्यम्)

'देवो मध्यवर्ती' (श्रुति:)

धी— धत्त इति धी:। दधत्। जगदाधार इत्यर्थ:। (वरिवस्याहस्यम्)

'धरो धीत्येवं धार्यते।' (श्रुति:)

भर्गो देव:— सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार शिव। (वरिवस्यारहस्यम्)

'ईकार' (पञ्चदशी मन्त्र के 'ई') का भी यही अर्थ है— 'सर्वान्तर्यामी सर्वाधार: शिव इति पर्यवसितम्। ईकारस्याप्येतावानर्थ:।'

(वरिवस्यारहस्यम्)

ग. धीमहि = धी + मही— धी का अर्थ है— धारण करना। धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणम्। (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

'धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान् परमेश्वर:' (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)। भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते।' गायत्री का 'भर्गो-देवस्य धी' = पञ्चदशी का 'ई'।

भर्गोदेवस्य धीमहीत्येवं व्याख्यास्याम:। धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान् परमेश्वर:। भर्गोदेवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वान्तर्भूतं तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्य-वर्तीत्येव व्याख्यातं भर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्मा-द्भर्गोदेवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते।।

(त्रिपुरतापनीयोपनिषद्)

धी + मही— 'महीत्यस्य व्याख्यानं महत्त्वं जडत्वं काठिन्यं विद्यते, यस्मिन्नक्षरे तन्महि' मातृकाक्रमे तुरीयत्वादीकारस्यार्थ: इत्यर्थ:।।

सारांश यह कि पञ्चदशी मन्त्र में 'ई' वर्ण तृतीयाक्षर होने पर भी मातृकाक्रम (वर्णमाला-क्रम) में चतुर्थ वर्ण है, तथापि उसका अर्थ वही है।

'भर्गोदेवस्य धीम्' का जो अर्थ है, वही पञ्चदशी मन्त्र के 'ईकार' का भी है। 'ईकार'—

कामकला का रूप

कामकला = सूर्य

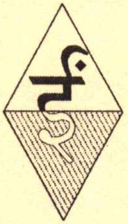

ईकार: परमेशानि स्वयं परमकुण्डली।
ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं तथा।।
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लताकृतिम्।
चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा।।

(कामधेनुतन्त्र)

पारम्परिक व्याख्या— पारम्परिक व्याख्या में 'ईकार' मायावाचक भी है। माया १४ भुवनों की स्वामिनी है; अत: यह 'श्रीचक्र' के 'चतुर्दशार' का और शरीर में 'विशुद्ध चक्र' का द्योतक है—

इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश।
पालयन्ती परात्साच्छक्रकोणं भवेत् प्रिये।।

(ज्ञानार्णव)

प्रस्तुत प्रसंग में 'ई' भर्गोदेवस्य धी (गायत्री मन्त्र) का द्योतक है। धीमहि= धी + मही। 'धी' में 'ई' विद्यमान है।

अर्थात् जिसमें महत्त्व-जड़त्व-काठिन्य विद्यमान हो, वही है— 'मही' अर्थात् पृथ्वी (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)। यहाँ 'मही' का अर्थ है— पृथ्वीमण्डल।

भास्कर कहते हैं कि मही समस्त पञ्चभूतों का उपलक्षण है।

'महि' = पृथ्वी (मूल अर्थ)।

(गायत्री मन्त्र में प्रयुक्त 'महि' शब्द भी पृथिवी का वाचक है।)

मही पृथ्वी महत्त्वात् काठिन्याच्च। पञ्च-भूतानामुपलक्षणमेतत्। (वरिवस्यारहस्यम्)

त्रिपुरतापनीयोपनिषद्— 'धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति लकार: शिवा-धस्तात्तु लकारार्थ: स्पष्टमन्त्यमक्षरं परमं चैतन्यं धियो यो न: प्रचोदयात्।'

'पृथ्वी मही लकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया।' (द्वि०-६१)।

'ल' = पृथ्वी। पञ्चदशी मन्त्र में 'ल' वर्ण भी पृथ्वी का वाचक है— 'अयमेव च पृथिवीबीजस्य लकारस्यार्थ:।'

(वरिवस्यारहस्यम्)

अर्थात् 'मही' शब्द का जो अर्थ है, वही अर्थ पृथ्वी के बीजमन्त्र 'लं' का भी है। पञ्चदशी मन्त्र में 'लं' प्रयुक्त न होकर 'ल' प्रयुक्त हुआ है, किन्तु 'ल' का अर्थ भी 'पृथ्वी' ही है।

'लकार' की व्याख्या करते हुये त्रिपुरताप-नीयोपनिषद् में कहा गया है कि 'ल' ससागर, सपर्वत, ससप्तद्वीप, सकानन पृथ्वीमण्डल का द्योतक है—

'लकार: परं धाम। काठिन्याढ्यं ससागरं, सपर्वतं, ससप्तद्वीपं, सकाननमुज्ज्वलद्रूपं मण्ड-लमेवोक्तलकारेण। पृथ्वी देवी महीत्यनेन व्याचक्षते।' (१३)

सारांश— 'तत्' ('तत्सवितुर्वरेण्यं' का तत्) ब्रह्म का वाचक है— कामेश्वर का वाचक है।

तदिति ब्रह्म शाश्वतं परो भगवान् निर्लक्षणो निरञ्जनो निरुपाधिरहितो देव उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्यभावं कामयत इति स एको देव: शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते कामं जायते स एष निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृम्भते अकचटतपयशान् सृजते। (त्रिपुरतापिन्युपनिषद्)

सारांश— 'क' (पञ्चदशी मन्त्र का प्रथमा-क्षर) 'तस्मादीश्वर: कामोऽभिधीयते। तत्परि-भाषया काम: ककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्त-दिति ककारो गृह्यते। तस्मात् तत्पदार्थ इति य एवं वेद।' 'क' = कामेश्वर। पञ्चदशी का 'काम' ही गायत्री का 'तत्' है। 'काम' ही पञ्चदशी का ककार है।

(त्रिपुरतापनीयोपनिषद्)

ईश्वर: कामोऽभिधीयते।

(त्रिपुरतापनीयोपनिषद्)

धियो यो नः प्रचोदयात्—

जो हम लोगों की बुद्धि-ध्यानादिरहित वस्तु में— निष्प्रपञ्च विषय में— प्रेरित करती है । अर्थात् परतत्त्वविषयक ज्ञान की जननी है। (वरिवस्यारहस्यम्)

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में इसकी व्याख्या

सारांश—

गायत्री मन्त्र	**पञ्चदशी मन्त्र**
१. 'तत्' (ब्रह्म)	'क' (ब्रह्म)
२. 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' 'सावित्री' प्राणिप्रसवित्री	'ए' त्रिपुरा

इस प्रकार की गई है— 'धियो यो नः प्रचोदयात्। परमात्मा सदाशिवः आदिभूतः परः स्थाणुभूतेन लकारेण ज्योतिर्लिङ्गमात्मानं धियो बुद्धयः परे वस्तुनि ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पके प्रचोदयात् प्रेरयेदित्युच्चाररहितं चेत् सैव चिन्तयित्वा भावयेदिति।' (१४)

सम्पूर्ण गायत्री का अर्थ

१. कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पद-स्यार्थः सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः। (वरिवस्यारहस्यम्)

२. सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीति तुर्यार्थः। पृथ्वीमहीलकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया। (वरिवस्यारहस्यम्)

शंका और समाधान— यह शंका उठनी स्वाभाविक है कि गायत्री मन्त्र का आरम्भ तो 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं' से होता है, फिर 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' को ही गायत्री का प्रथम खण्ड मानकर (ॐ भूर्भुवः स्वः छोड़कर) पञ्चदशी से उसकी तुलना क्यों की गई? इसलिये की गई, क्योंकि त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में 'त्रिपुरामहामनुः' के नाम से गायत्री मन्त्र का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् परो रजसेऽसावदोम्।'

सारांशस्वरूप वरिवस्यारहस्यम् में भास्कर राय कहते हैं—

१. कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः। सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः (२.६०)।

२. सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीति तुर्यार्थः पृथ्वीमहीलकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया। (२.६१)

(षूङ् प्राणिप्रसवे)	'एकार' त्रिकोण शक्ति कुण्डलिनी।
३. 'वरेण्यं' श्रेष्ठ, भजनीय, नमस्कार्य (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)	'ए' त्रिकोणशक्ति 'ए' (कुण्डलिनी शक्ति) के रूप में सभी कारणों का कारण है और जगत् का मूल कारण है; अतः वरेण्य या श्रेष्ठ भी है— भजनीय एव पूज्य है।
४. 'भर्गो देवस्य धी'	'ई'
५. 'मही'	'ल'

गायत्री मन्त्र एवं प्रथम कूट का अर्थ— भास्कर राय वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं— समस्त जगत् की सिसृक्षारूप कामना वाले कामेश्वर, जगत्कारणरूपी कामेश्वरी, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वाधार शिव पञ्चभूत आदि के रूप में परिणत होकर परवस्तुमात्रविषयक निर्विकल्पक ज्ञान के जनक निरञ्जन, निर्गुण और वेदों के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं, प्रत्युत लक्षणा शक्ति द्वारा ज्ञात (किन्तु शक्ति के द्वारा अगम्य) ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूप आत्मा वाले परतत्त्व हैं।

'क' एवं 'तत्'— श्रीविद्या के 'ककार' का अर्थ कामना करने वाला 'कामेश्वर' है। गायत्री मन्त्र का 'तत्' पद 'ब्रह्म' का वाचक है।

क. 'क ए ई ल ह्रीं' = 'क' कामेश्वर अर्थात् ब्रह्म (पञ्चदशी विद्या)।

ख. 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' = 'तत्' पद का अर्थ भी है— ब्रह्म (गायत्री मन्त्र)।

'ए' एवं 'सवितुर्वरेण्यम्'— पञ्चदशी विद्या का द्वितीय वर्ण है— 'ए' एवं गायत्री मन्त्र का द्वितीय पद है— 'सवितुर्वरेण्यम्'।

क. 'ए' (योनि, त्रिकोण) देवी का वाचक है। जगज्जननी कामेश्वरी।

ख. 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' के 'सविता' और 'वरेण्य' दोनों शब्द देवी के वाचक हैं ।

'ई' एवं 'भर्गो देवस्य धी'— 'ई' श्रीविद्या का अक्षर है। 'भर्गोदेवस्य धी' गायत्री मन्त्र का पद है। अर्थात् सर्वान्तर्यामी एवं सर्वपोषक शिव।

'ल ह्रीं' एवं गायत्री का चतुर्थ चरण— 'ल' श्रीविद्या का अक्षर। 'ल' अर्थात् पृथ्वी। 'ह्रीं' अर्थात् माया। ये दोनों गायत्री के चतुर्थ चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। भास्कर राय कहते हैं—

कामयते स ककारः कामो ब्रह्मैव तत्पदस्यार्थः।
तत्सवितुर्वरेण्यमिति वै सवितुः श्रेष्ठं द्वितीयवर्णार्थः।।६०।।

सर्वान्तर्यामि दधद्भर्गो देवस्य धीति तुर्यार्थः।
पृथ्वीमहीलकारस्तृतीयतुर्याङ्घ्रिबोधिका माया।।६१।।

'ह स क' एवं 'तत्सवितुर्वरेण्यम्'— द्वितीय कूट के 'ह स क'— इन तीन वर्णों द्वारा प्रथम तीन पदों (गायत्री मन्त्र के 'तत् सवितुः वरेण्यम्) का प्रतिनिधित्व किया जाता है। 'ह स क' 'तत् सवितुर्वरेण्यम्' के बोधक हैं।

'ह' एवं 'भर्गोदेवस्य धी'— श्रीविद्या का 'ह' वर्ण गायत्री मन्त्र के 'भर्गो देवस्य धी' का बोधक है।

'स' एवं 'क'— भास्कर राय कहते हैं— 'अत्र ह्याद्यायाः श्रीविद्याया एव ब्रह्मरूपत्वं गायत्र्यादिप्रतिपाद्यत्वं विद्याप्रतिपाद्यत्वादिकं च तदर्थव्याख्यानदर्शिनां स्पष्टम्। वस्तुतस्तु—

हयग्रीवब्रह्मविद्या वृत्रवधस्तथा।
गायत्र्या स समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः।।

तृतीय कूट के प्रथम दो वर्ण 'स' और 'क' उन्हीं ६ पदों एवं ६ वर्णों को बोधित करते हैं। इन दो (द्वितीय एवं तृतीय) कूटों के शेष वर्णों का उद्धार उपर्युक्त रीति से करना चाहिये। त्रिपुरोपनिषद् एवं भागवत में गायत्री विद्या का अर्थ यही किया गया है।

'शक्तित्रय' एवं 'कूटत्रय'— ब्रह्मा एवं भारती, जो कि 'वामा' एवं 'इच्छा' हैं, हरि एवं क्षिति, जो कि 'ज्येष्ठा' एवं 'ज्ञान' हैं तथा शिव एवं अपर्णा, जो कि 'रौद्री' एवं 'क्रिया' हैं— तीनों मिथुन क्रमशः तीनों कूटों के बोधक हैं। ३ कूट अर्थात् वामा-इच्छा (ब्रह्मा-भारती), ज्येष्ठा-ज्ञान (हरि-क्षिति) एवं रौद्री-क्रिया (शिव-शिवा) के बोधक हैं।

इनकी समष्टित्रय (पुरुष-नारीतत्त्व का संघात) 'शान्ता' एवं 'अम्बिका'रूप में इकारत्रय द्वारा जानी जाती है— 'एतत्समष्ट्यात्मवाच्यं शान्ताम्बिकात्मकम्' (२.६५)।

'प्रकाशांश' अर्थात् वामा, ज्येष्ठा, रौद्री। (शक्तित्रय अर्थात् ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूप देवत्रय) पुरुषरूप है। उनकी समष्टि 'शान्तात्मिका' तुरीया शक्ति है। विमर्शांश अर्थात् इच्छा, ज्ञान, क्रियानामक शक्तित्रय भार्यायें हैं। ये भारती, पृथिवी एवं रुद्राणीरूपा नारियाँ हैं। उनकी समष्टि 'अम्बिकात्मिका' तुरीया शक्ति है।

यहाँ प्रथम मिथुनत्रय ईकारविनिर्मुक्त कूटत्रय का बोधक है। ईकारों का अर्थ है— 'तुरीयमिथुन'।

शाक्तार्थ में एक ही कूट में रेफान्त वर्णषट्क का भी मिथुनत्रय अर्थ ही लिया गया है। योगिनीहृदय में कहा गया है—

अक्षरार्थो ही भावार्थः केवलः परमेश्वरी।
योगिनीभिस्तथा वीरैर्वीरेन्द्रैः सर्वदा प्रिये।
शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः।।

अमृतानन्दनाथ कहते हैं कि भारती आदि योगिनियों, ब्रह्मा आदि वीरेन्द्रों एवं कूटत्रय-वाच्यभूत शिव-शक्तिसमष्टिरूप मिथुन से 'मन्त्रराज' एकारवाच्यभूत या उपलक्षित है। ब्रह्मादिक को श्रेष्ठ साधक होने के कारण 'वीरेन्द्र' कहा गया है।

सारांश यह है कि भारती आदि तीन योगिनी स्त्रियाँ, सकलादिक, ब्रह्मादिक साधक या वीरेन्द्रत्रय हल्लेखाविनिर्मुक्त कूटत्रय के बोधक हैं। हल्लेखा तो शिवशक्तिसामरस्यात्मक चतुर्थ मिथुन का बोधक है। 'ह्रींकार' को उभयात्मक कहा गया है। वाच्यभूत योगिनियों से जनित या युक्त जो है, वही 'मन्त्र' है— 'वाच्यभूतैर्योगिन्यादिभिर्जनितो युक्तो मन्त्र इत्यर्थः।'

पञ्चदशी विद्या की सर्वात्मकता— भारती, सकल एवं ब्रह्मा आदि से आरम्भ होने वाले तीनों 'त्रिक' माया (ह्रीं) से रहित तीन 'कूटों' के बोधक हैं। माया (ह्रींकार) चौथा मिथुन है, जो कि शिव-शक्ति का बोधक है।

यह विद्या सात अक्षरों वाली है, जिसमें वामा-इच्छा आदि ६ एवं ईकार आते हैं; जिन्हें तीन बार दुहराया जाता है। इस प्रकार यह इनके द्वारा व्यक्त शक्तियों से अभिन्न है।

'पर देवता' वामा आदि सात शक्तियों की समष्टि है। यह ३६ तत्त्वों वाली एवं किसी माने में इस मन्त्र से भिन्न नहीं है।

अकार एवं हकार, जो शिव एवं शक्तिस्वरूप हैं, जो शून्याकार वाले एवं परस्परा-श्लिष्ट हैं, स्फुरण एवं प्रकाशरूप हैं। साथ ही परब्रह्म से अभिन्न हैं।

विश्व की सिसृक्षा से युक्त ब्रह्म अपनी अर्धांगिनी शक्ति को देखता हुआ 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है, जिसमें शक्ति 'रक्तबिन्दु' में प्रवेश करती है। हकार चैतन्य से

समन्वित बिन्दुओं का यह मिथुन 'विसर्ग' कहलाता है। इन सबकी मिश्रित समष्टि 'रवि' है, जिसे 'काम' भी कहते हैं। यह अकार-चैतन्ययुक्त है। यह 'अहं' पद चतुर्थ स्वर (ई) 'कामकला' आदि शब्दों द्वारा निर्दिश्यमान विद्या समस्त शब्दार्थ की सृष्टि का बीज है। इसी से यह विश्व अहन्तामय है। स्वतन्त्र मन्त्र में ही अन्तिम कूट के प्रथम एवं मध्य कूट के चौथे वर्ण के रूप में ये दोनों व्यक्त हैं। इस प्रकार देवी, मन्त्र एवं जगत् के अभेद का प्रतिपादन ही 'भावार्थ' है।

श्रीविद्या के वर्ण 'ह क र स ल' पञ्चभूतों के उत्पादक हैं। अत: यह श्रीविद्या पञ्चभूतमयी है। श्रीविद्या के १५ वर्ण पाँचों तत्त्वों के गुणों— शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के वाचक हैं। ये गुण आकाशादि भूतों में ५, ४, ३, २ एवं १ की संख्या में विद्यमान हैं—

व्याप्ता पञ्चदशार्णैः सा विद्या भूतगुणात्मिका।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः।।

गुणों की उत्पत्ति वर्णों से होती है। इनकी संख्या इनके जनक वर्णों की संख्या के समतुल्य है। चारो प्रकार के स्पर्श तीन कामकलाओं एवं तृतीय 'ईकार' से उत्पन्न होते हैं। तीनों लोकों से सम्बद्ध होने के कारण 'लकार' भी मन्त्र में तीन बार आता है। जो-जो वर्ण जिनके-जिनके उत्पादक हैं, वे-वे उनके-उनके उत्पन्न अर्थ हैं।

सारांश यह कि लोकत्रय = लकारत्रय, वर्ण → गुण (प्रकृति के गुण), स्पर्श-चतुष्टय ३ कामकला + तृतीय ईकार → स्पर्श। ह क र स ल → ५ महाभूत। पञ्चदशी के १५ वर्ण = ५, ४, ३, २, १ संख्या वाले (पञ्चभूतों के गुणों की संख्या) १५ गुणों को उत्पन्न करते हैं (पृथ्वी के ५, जल के ४, अग्नि के ३, वायु के २ एवं आकाश का १ गुण = १५)।

पञ्चदशी मन्त्र में निहित ३ ककार 'सकल', 'प्रलयाकल' एवं 'विज्ञानाकल' के बोधक हैं। श्रीविद्या के १० अकार जीवसमूह के वाचक हैं। ११हवाँ स्वर 'ए'कार विद्या का प्राण एवं जीव का वाचक है। श्रीविद्या के बिन्दुत्रय रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव के वाचक हैं। श्रीविद्या के नादत्रय शान्ति, शक्ति एवं शम्भु के प्रतीक हैं।

श्रीविद्या के ३७ अक्षर ३६ तत्त्व एवं सैंतीसवाँ 'तत्त्वातीत' का प्रतीक है—

एवं सप्तत्रिंशत्सङ्ख्याकपदैर्महाविद्या।
षट्त्रिंशतत्त्वानां तत्त्वातीतस्य चाभिधात्रीयम्।।

स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी।
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।
तत्त्वातीतस्वभावा च विद्यैषा भाव्यते मया।।

तत्त्वातीत कौन है? षट्त्रिंशत् तत्त्वातीत ब्रह्म ही ३७वाँ तत्त्वातीत सत्ता है।

व्योमबीज ५, कामकला ४, चन्द्रबीज २, रेफ भूबीज क्रोधीश बिन्दु-नाद ३-३, श्रीकण्ठ १०, स्वर ११ = ३७।

३६ तत्त्व— शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी। (सौभाग्यसुधोदय में इनका उत्पत्तिक्रम देखें।)

१. शिवशक्ति = शुद्धविद्या प्रकृति = बिन्द्वार्थ है।
२. सदाशिवादिपुरुषान्त = ९ नाद हैं।
३. शब्दादिक, आकाशादिक, श्रोत्रादिक, वागादिक ५-५ = हकार।
४. अहंकारादित्रय = ककारत्रय, श्रीकण्ठ।
५. एकादश स्वर = तत्त्वातीत पद। (भास्कर राय की दृष्टि में)

अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रयसमष्टिभदैर्विभाविताकारा ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

जिस प्रकार जन्य-जनक या कार्य-कारण (वाच्य-वाचक) में अभेद है, उसी प्रकार ब्रह्म एवं जगत् में अभेद है। इसी प्रकार जगत् एवं विद्या में भी अभेद है। इसे ही 'सम्प्रदायार्थ' कहते हैं। सर्वातिशायी सत्त्व परम शिव में एकात्मकता या अन्य पदार्थों की निष्कलता (अभाव) अपने दीक्षागुरु एवं परमशिव से अभेद एवं गुरुकृपा से अपने एवं परमशिव में अभेद-दर्शन ही 'निगर्भार्थ' है।

देवी ग्रहरूपा एवं नक्षत्ररूपा है— माता अनुपम तेजोमयी अपने मरीचिरूप आवरण देवताओं की स्वामिनी होने के कारण 'गणेशी' कही जाती है। इच्छादिक (इच्छा-ज्ञान-क्रिया) की समष्टिरूपा, तीनों गुणों से युक्त, अग्नि-सोम-सूर्यरूप नेत्र वाली (त्रिनेत्री) माता उक्त ९ के संयोग से 'ग्रहरूपा' कहलाती है।

१० इन्द्रियों, ४ अन्त:करणों, १० विषयों, प्रकृति, पुरुष एवं गुणतत्त्वों के योग से माता २७ संख्या वाली 'नक्षत्ररूपिणी' कहलाती है।

श्रीविद्या का स्वरूप— नरपतिसंख्या (१६), रवि (१२), काष्ठा (१०), समुद्र (४) एवं दो संख्या वाले अ, क, ड, ब तथा व एवं ह अक्षरों से वेष्टित होने वाली ड, र, ल, क, स एवं ह से आरम्भ होने वाली ६ आकिनियों द्वारा घटित विग्रह वाली माता 'योगिनी' कही जाती है।

देवी विद्या राशिस्वरूपा है— नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय-५, प्राणापानादि ५ एवं जीवात्मा तथा परमात्मा के साथ १२ संख्या वाली यह जगन्माता 'राशिस्वरूपिणी' है।

देवी विद्या गणेशरूपिणी है— 'श्रीविद्या' गणेशरूपिणी भी है; क्योंकि यह अ, क, थ वर्गों से आरम्भ होने वाले क्रमश: शक्ति, कामराज एवं वाग्भव कूट के सोलह वर्णों तथा परा आदि वाक्चतुष्टय द्वारा घटित होती है।

भगवती ग्रहरूपिणी है— तीन बिन्दुओं, तीन नादों एवं तीन कूटों के शेषांशों द्वारा घटित होने के कारण यह 'श्रीविद्या' ग्रहरूपिणी है। उसी प्रकार व्यञ्जनों से दशाक्षरों के अपृथक् रहने से २७ अक्षरों वाली यह विद्या नक्षत्ररूपिणी है।

भगवती विद्या योगिनीरूपा एवं राशिरूपा है—

हृल्लेखात्रयसम्भूतैस्तिथिसंख्यैस्तथाक्षरैः।
अन्यैर्द्वादशभिर्वर्णैरेषा नक्षत्ररूपिणी।।

तीन हृल्लेखाओं (ह्रीं के त्रितय) तथा उससे भिन्न ३ कूटों के योग से यह श्रीविद्या योगिनीरूपा है। तीनों हृल्लेखाओं एवं पूर्ववर्ती 'ल' वर्णों के योग से घटित होने के कारण श्रीविद्या राशिस्वरूपिणी है।

विद्या एवं देवी में अभेद— विद्या एवं देवी के सारूप्य के कारण विद्या एवं देवी में अभेद है । अतः उसका गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी एवं राशिस्वरूप पूर्णतया संगत है—

रेखादलकोणगणैर्घटनाच्चक्रे गणेशत्वम्।
त्रैलोक्यमोहनाद्यैर्नवभिश्चक्रैर्ग्रहत्वं च।।

श्रीविद्या ग्रहस्वरूपा है— रेखाओं, दलों एवं कणों के गणों द्वारा घटित होने के कारण इसका गणेशत्व तथा त्रैलोक्यमोहन आदि नवचक्रों द्वारा निर्मित होने के कारण इसका ग्रहत्व भी सिद्ध है।

श्रीविद्या नक्षत्ररूपा है— तीन वृत्तों, तीन भूगृहरेखाओं एवं १४ कोणों तथा सात अन्य चक्रों की पृथक्-पृथक् गणना के द्वारा श्रीविद्या नक्षत्रस्वरूपा है।

श्रीचक्र योगिनीरूप है— पालन (स्थिति) एवं संहृति नामक दो चक्र, दो पद्म एवं दो अन्य वृत्त तथा भूगृह आदि ६ के योग से यह श्रीचक्र योगिनीरूप है।

श्रीचक्र राशिरूप है— श्रीचक्र ५ शक्तियों, ४ अग्नियों, १ बिन्दु, १ वृत्त एवं १ भूगृह आदि के योग से १२ संख्या वाला होने से राशिरूप है।

श्रीचक्र एवं श्रीविद्या में अभेद— श्रीविद्या के अक्षरों द्वारा निर्मित होने के कारण श्रीचक्र श्रीविद्या से अभिन्न है— 'चक्रं विद्याक्षरैरेव जननात्तदभेदवत्।'

(वरिवस्यारहस्यम्-२.९६)

श्रीविद्या एवं पीठों में एकात्मता है— मातृका के वर्णों की संख्या के समतुल्य इक्यावन पीठ भी हैं। इनमें ही ओड्याण (ओ), जालन्धर (जा), पूर्णागिरि (पू०) एवं कामरूप (का०) नामक पीठ भी हैं।

गणप, ग्रह, भ आदि, जिनकी संख्या क्रमशः शशि (१), निधि (९), तारा (२७), ऋतु (६) तथा सूर्य (१२) है और इस प्रकार कुल ५५ पीठ हैं— 'मेलनतः पीठानि ज्ञेयान्येतेषु पञ्चपञ्चाशत्।'

बिन्दु की उत्पत्ति— 'बिन्दु' की उत्पत्ति तीन ककार एवं ईकार से हुई है। तदनन्तर दो चक्रों (सर्वसिद्धि-प्रद, सर्वरोगहर), ह्ल्लाओं, फिर तीन चक्रों (सर्वरक्षाकर, सर्वार्थ-साधक, सर्वसौभाग्य-दायक) क्रमशः दो हकारों एवं एकार से आगे के दो चक्रों (सर्व-संक्षोभण एवं सर्वाशा-परिपूरक) एवं दो सकारों से तथा चतुरस्र (त्रैलोक्यचक्र) लकारों से उत्पन्न है।

गुरुतत्त्व— अभेद की भावना की 'दृढ़ता' के कारण अपना गुरु उक्त तीनों— देवता, विद्या एवं श्रीचक्र से अभिन्न होता है; अतः वह गणेशादिमय होता है, जिसकी अनुकम्पा से शिष्य स्वयं भी तद्रूप हो जाता है—

एतत्त्रितयाभिन्नः स्वगुरुस्तदभेदभवनाद्दार्ढ्यात्।
तेन गणेशादिमयस्तद्दयया च स्वयं तथारूपः।। (२.१०१)

देवी एवं गुरु के शरीर में अभेद— देवी एवं गुरु के देह में कोई अन्तर नहीं होता—

देव्या देहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च।
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सन् प्रकाशते।।

माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं में अभेद— जगन्माता ललिता, श्रीविद्या, श्रीचक्र, स्वगुरु एवं स्वयं में ऐकात्म्यभाव या एकीभूतता ही मन्त्र का 'कौलिकार्थ' है—

इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।।

कुण्डलिनी, श्रीविद्या, भगवती ललिता एवं साधक में ऐकात्म्य— कुण्डलिनी साक्षात् विद्या एवं जगन्माता ललिता से अभिन्न है। उनसे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का 'रहस्यार्थ' है—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्यायाः रहस्यार्थः।। (२.१०७)

अद्वैतभावना का ग्रहण— वाणी, मन, इन्द्रियों द्वारा अगम्य ३६ तत्त्वों से परे, सबसे महान्, महान् से भी महत्तर, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम से सूक्ष्म, व्योम से भी ऊर्ध्ववर्ती, विश्वाभिन्न, चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म में अपने-आपको अभिन्न अनुभव करना ही 'महातत्त्वार्थ' है।

श्रीविद्या एवं तन्निहित अर्थों में अभिन्नता— श्रीविद्या स्वयं अपने स्वरूप में समवेत अक्षरार्थों से अभिन्न है। उसका स्वरूप उसका प्रत्येक अक्षर है। यही रहस्य श्रीविद्या का 'नामार्थ एवं शब्दरूपार्थ' है—

तत्तद्वर्णार्थेयं तत्तद्वर्णस्वरूपेयम्।
इति तु श्रीविद्याया नामार्थः शब्दरूपार्थः।। (२.११०)

देवी के समस्त नाम, एक नाम तथा सपूर्ण नाम एवं नाम के एकांश में अभिन्नता— भास्कर राय कहते हैं कि कल्याणी, एकाक्षरी, ईशित्री, ललिता आदि देवी के तीन सौ नाम हैं, किन्तु इन सभी तीन सौ मन्त्रों का तात्पर्य मन्त्र के आद्यक्षरों द्वारा व्यक्त होता है। नाम के एकदेश (अंश) के ग्रहण द्वारा समस्त नाम का ग्रहण हो जाता है। समस्त नाम का अर्थ नाम के एक अंश का अर्थ हुआ—

'नामैकदेशमात्रे नामग्रहणस्य', 'प्रोक्तो नामैकदेशार्थः।' (२.११२)

'शाक्तार्थ' के दो भेद हैं— अवयवार्थ एवं शक्तिसमूहार्थ।

वाक्, कामराज एवं शक्तिकूटों द्वारा अंगशः माता का विग्रह क्रमशः किरीट से कण्ठ, कण्ठ से कटि एवं कटि से पादाग्र तक प्रतिपादित होना चाहिये। भगवती का विग्रह किरीट से कण्ठ, कण्ठ से कटि एवं कटि से पादाग्र के रूप में ध्यान का आलम्बन बनना चाहिये।

प्रथम कूट के ६ वर्ग हैं, जिनके अन्त में रेफ है। क्रमश तीन मिथुनों— ब्रह्मा-भारती, विष्णु-लक्ष्मी एवं रुद्र-पार्वती के द्योतक हैं। उपर्युक्त ६ देवता कामकलायें 'ईकार' ही हैं, अन्य नहीं।

अन्य दो कूटों का भी यही अर्थ है। तथापि द्वितीय कूट के दूसरे 'ह' का सम्बन्ध तृतीय कूट के 'सकार' से करना चाहिये। शाक्तों की मान्यता के अनुसार प्रत्येक अक्षर में शक्ति है तथा अक्षरों एवं वामा, इच्छा एवं अन्य शक्तियों में अभेद है— यही 'शाक्तार्थ' है।

'क' एवं 'ह' तथा 'ल' एवं 'स' का अर्थ 'शक्ति' है। हल्लेखा (ह्रीं) का अर्थ शिव एवं शक्ति का सामरस्यरूप परब्रह्म है। उक्त तीनों कूटों में से प्रत्येक का अर्थ है— 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है'। यही विद्या का 'सामरस्यार्थ' है—

ब्रह्मैव शिवः शक्तिश्चेति प्रत्येककूटार्थः।
शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थः।। (२.१२०)

कत्रय + हद्वय = शैव। शेष वर्ण = शाक्त।
ह्रींकार = शैव + शाक्त उभयात्मक।

कत्रयं हद्वयं चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः।
शेषाणि शक्त्यक्षराणि ह्रींकार उभयात्मकः।।

'ककार' का अर्थ है— प्रकाश। 'एकार' (इङ् धातु) = अध्ययन का साधन बुद्धि। क + ए = प्रकाशिका बुद्धि, तृतीय वर्ण = 'ई' व्याप्ति।

'क' एवं 'ह' तथा 'ल' एवं 'स' का अर्थ है— 'शक्ति'। हल्लेखा (ह्रीं) का अर्थ शिव एवं शक्ति का सामरस्य परब्रह्म है। उस बुद्धि की अतिशयता लहरी है तथा उक्त अतिशयता का निर्माण मकार (•) का अर्थ है। हिंसार्थक 'हन्' धातु से निष्पन्न 'ह'

शत्रु के विनाश करने के कारण शौर्यात्मक है। भोगार्थक 'षो' या अभिषवार्थक 'षुञ्' धातु से निष्पन्न 'स' भोग के साधन 'धन' का वाचक है। इच्छार्थक 'कम्' धातु से निष्पन्न 'क' का अर्थ कामिनी आदि कामना के विषय हैं। गमनार्थक 'ओहाङ्' धातु से व्युत्पन्न 'ह' का अर्थ उक्त भोगसाधनों का गमन या प्राप्ति है। इन सभी की अतिशय प्राप्ति लहरी है, जिसके साथ 'ईकार' की सवर्णदीर्घ सन्धि हुई है। दीप्त्यर्थक 'ई' धातु से निष्पन्न 'ईकार' का अर्थ सभी दिशाओं में प्रकाशित होने के कारण कीर्ति है। 'मकार' का अर्थ इन (लहरी एवं ई) दोनों का प्रजनन है।

'वाग्भवकूट' का अर्थ सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति है। 'कामराज कूट' का अर्थ शौर्य, धन, स्त्री एवं कीर्ति का आधिक्य है।

तृतीय कूट के 'स क ल' सम्यक् रूप से क्रिया-विपरिणाम लक्षित करते हैं। हरणार्थिका 'हृ' धातु से निष्पन्न 'हृ' का अर्थ समस्त जगत् की संहर्त्री है। उक्त 'हृ' के साथ प्रश्लिष्ट सन्धिगत 'ई' वर्ण सृष्टि एवं स्थिति के कारणभूत प्रकाश का द्योतन करता है। अन्य शब्दों में 'ह्री' माता का बोधक है, जो हृदयाकाश में प्रकाश करती हुई समस्त दुःखों को दूर करती है। 'स क ल' वर्णों में समाप्त होने वाले पद के साथ ह्रीकार में कर्मधारय समास करना चाहिये, जहाँ नादात्मक या संविदार्थक 'मकार' विशेष्य है।

सिद्ध पुरुषों द्वारा कथित उक्त मन्त्र के इस अर्थ के सम्बन्ध में धातु की अनेकार्थता, बहुलग्रहण, पृषोदरादि गण एवं आकृतिगण में पाठ, लक्ष्य के अनुसार उणादिसूत्र के विनियोग एवं छान्दस साहित्य में सभी शास्त्रीय विधियों के विकल्पित होने के कारण व्याकरणविषयक अनुमति का विधान है।

श्रीविद्या के 'समस्तार्थ' के अन्तर्गत अनेक पदों एवं गुणों का समस्त पुरुषार्थों के साधन का सारकथन है।

'क' ब्रह्मा, 'ए' विष्णु, 'अ' ईश और 'ईड्' पद स्तुत्यर्थक है। दो स्वरों के मध्य में स्थित 'ड' का 'ल' आदेश है। अत: प्रथम कूट ऋग्वेदात्मक, द्वितीय कूट यजुर्वेदात्मक एवं तृतीय कूट सामवेदात्मक सिद्ध होता है।

'ह्रीं' नामक विशेष्य है, जो ब्रह्म का वाचक है और नपुंसक लिंग है। यह ब्रह्म विधि, विष्णु एवं रुद्र द्वारा स्तुत्य है। यही 'प्रथम कूट' का अर्थ है।

प्रथम कूट का अर्थ—

१. प्रथम कूट ऋग्वेदात्मक है।

२. 'ह्रीं' नाम विशेष्य है, जो ब्रह्म का वाचक है और नपुंसक लिंग है।

३. यह ब्रह्म, विधि, विष्णु एवं रुद्र द्वारा स्तुत्य है।

द्वितीय कूट का अर्थ—

द्वितीय कूट यजुर्वेदात्मक है।

१. ककार के मुखवाची होने से 'ह सु क' का अर्थ है— हँसता हुआ मुख।

२. 'ह स' का अर्थ है— आनन्द।

३. 'क' का अर्थ है— सूर्य।

४. 'ह' का अर्थ है— चन्द्रमा।

५. 'क' एवं 'ह' = सूर्य एवं चन्द्र जिसके 'ल' नेत्र हैं, वह सूर्य-चन्द्र नेत्र वाला 'क ह ल' है।

६. प्रकाशक होने के कारण उसका चिद्रूपत्व स्पष्ट होता है।

७. विधि, हरि एवं रुद्र द्वारा 'ब्रह्म क' स्तुत्य होने में हेतु ये ही दोनों 'ह स त्व' एवं 'ह ल त्व' हैं।

८. अत: 'द्वितीय कूट' का अर्थ है— 'ब्रह्म अति असीम आनन्दस्वरूप एवं चिद्रूप है।'

तृतीय कूट का अर्थ—

तृतीय कूट सामवेदात्मक है।

१. समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म 'स क ल' है —यही 'तृतीय कूट' का अर्थ है। इस प्रकार समस्त गुणगण के कथन द्वारा विद्या का सगुण अर्थ है— 'सगुणार्थ' है।

२. 'ह' 'स' आनन्द, 'क' सत्य एवं 'ल' ज्ञान है। इस प्रकार तटस्थ एवं स्वरूप-लक्षणों के द्वारा ब्रह्म का निर्णय करके यह विद्या 'तृतीय कूट' के द्वारा ब्रह्म एवं जीव का तादात्म्य अभेद स्थित करती है।

३. 'स क ल' पद जीव का वाचक है, जिसकी जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति नामक तीन कलायें हैं। शक्तिबीज 'ह्रीं' ब्रह्म का वाचक है।

४. उक्त दोनों में सामानाधिकरण्य होने से उनके द्वारा लक्षित शुद्ध वस्तुयें अभिन्न हैं।

५. तृतीय कूट के 'स क ल' पदों का अभिप्राय है— 'यह सब ब्रह्म है'।

६. इस प्रकार जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप का लाक्षणिक वाक्यों द्वारा वर्णन करके उनका अभेद स्थिर किया गया है।

समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म 'स क ल' है और यही 'तृतीय कूट' का अर्थ है।

'जीव और ब्रह्म में अभेद है'— यही है 'महावाक्यार्थ'।

श्रीविद्या और कुण्डलिनी में एकात्मता— योगिनीहृदय में इस एकात्मता की पुष्टि करते हुये कहा गया है कि—

विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।
तडित्कोटिनिभप्रख्या बिसतन्तुनिभाकृति:।।

(योगिनीहृदय : मन्त्रसंकेत-७१)

गायत्री मन्त्र

परोरजसेऽसावदोम्

गायत्री मन्त्र के चतुर्थ चरण की व्याख्या त्रिपुरतापनीयोपनिषद् में इस प्रकार की गई है—

'परोरजसेऽसावदोमिति तदवस्थाने परज्योतिरमलं हृदि दैवतं चैतन्यं चिल्लिङ्गं हृदयागारवासिनी हृल्लेखेत्यादिना स्पष्टं वाग्भवकूटं पञ्चाक्षरं पञ्चभूतजनकं पञ्चकलामयं व्यापद्यत इति। य एवं वेद।'

रज = धूल। गुणत्रय का उपलक्षण। परोरज = रज से पर (रज से अतीत) त्रिगुणातीत, निर्गुण, निरञ्जन। रज = कालुष्य। परोरज = निष्कलुष, निर्मल, अमल।

'परोरजास्ते पञ्चमः पादः' ऐसा प्रयोग प्राप्त होता है ।

रज = गुणत्रय, प्रकृति का उपलक्षण।

'सावदोम' : सवद + अवद (कथ्य-अकथ्य) शब्दबोध्य, शब्दाबोध्य। सावदोम = प्रणव—

'सवदोऽवदश्च यः प्रणवः।' (वरिवस्यारहस्यम्)

प्रणव = अकार, उकार, मकार— ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

यही 'हृल्लेखा' का भी अर्थ है।

पञ्चदशी मन्त्र

'ह्रीं' (मायाबीज)

'ह्रीं' देवी का प्रणव माना जाता है। 'ॐ' एवं 'ह्रीं' दोनों समानार्थक हैं—

'प्रणवार्थः परतत्त्वमकारोकारमकारैब्रह्मविष्णुरुद्रात्मकम्। एतावानप्यर्थो हृल्लेखायाः।'

(प्रकाश : भास्कर राय)

'सवद'= शाब्दी शक्ति से बोध्य।

'अवद' = शाब्दी शक्ति से अबोध्य।

'शक्यतावच्छेदकधर्मी।'

चतुश्चरणा गायत्री एवं त्रिकूटात्मिका पञ्चदशी का इसी प्रकार समन्वय किया गया है— 'एवं चतुश्चरणायाः गायत्र्यास्त्रिरावृत्ताया अर्थस्य प्रतिपादकं कूटत्रयमिति ...... सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।'

(प्रकाश : भास्कर राय)

गायत्री मन्त्र	**द्वितीय कूट : पञ्चदशी मन्त्र**
१. तत् सवितुर्वरेण्यम्	'ह, स, क' (पञ्चदशी मन्त्र)
२. भर्गो देवस्य धी	'ह' (पञ्चदशी मन्त्र)
गायत्री मन्त्र	**तृतीय कूट : पञ्चदशी मन्त्र**
१. भर्गो देवस्य धी	'स, क' (पञ्चदशी मन्त्र)

द्वितीय एवं तृतीय कूटों के शेष वर्णों का भी उद्धार इसी रीति से करना चाहिये ।

त्रिपुरतापनीयोपनिषद् एवं देवीभागवत पुराण— दोनों में गायत्री विद्या की व्याख्या इसी प्रकार की गई है।

गायत्री मन्त्र	पञ्चदशी मन्त्र	गायत्री मन्त्र
१. 'तत्'	१. 'क' = ब्रह्म	सावदोम = ॐ (प्रणव)
२. 'सवितुर्वरेण्यं'	२. 'ए' = त्रिपुरा	सवद = प्रणव
३. 'भर्गो देवस्य धी'	३. 'ई' = सर्वान्तर्यामी, सर्वपोषक शिव	प्रणव = अकार, उकार, मकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
४. 'मही'	४. 'ल' = पृथ्वीमण्डल	सवद = कथनीय,
५. 'परो रजसेऽसावदोम्'	५. 'ह्रीं' मायाबीज,	अवद = अकथनीय।
(रज या धूल से परे निर्मल, निर्गुण, निरञ्जन, त्रिगुणातीत ('गुण' तीनों गुणों का उपलक्षक है।)	(हृदय) हृदयागार-वासिनी हृल्लेखा (श्रुति)	शक्ति शक्ति की मर्यादा से बोध्य एवं अबोध्य— सवद + अवद।

यो नः अस्माकं धियः ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पे परमात्मनि प्रचोदयात्। तं ज्योतिर्लिङ्ग-मात्मानमनिवर्चनीयं ब्रह्माकारपरिणतचेतसा सोऽहमस्मीतिं भावयेत्।।

गायत्री एवं पञ्चदशी के समन्वय को त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

कामकूट एवं गायत्री का समन्वय

१. अथ तु परं कामकलाभूतं कामकूटमाहुः। तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि द्वात्रिंशदक्षरीं पठित्वा तदिति परमात्मा सदाशिवोक्षरं विमलं निरुपाधितादात्म्यप्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपमनक्षरमक्षरं व्यालिख्यत इति तत्परागव्यावृत्तिमादाय शक्तिं दर्शयति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.१६)

२. तत्सवितुरिति पूर्वेणाध्वना सूर्याश्चन्द्रिकां व्यालिख्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रगं साक्षर-मद्वितीयमाचक्षत इत्याह भगवन्तं देवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम्।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.१७)

३. शिवोऽयं परमं देवं शक्तिरेषा तु जीवजा।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हंसस्तत्पदमुच्यते।।

तस्मादुज्जृम्भते कामः कामान् कामः परः शिवः।
कार्णोऽयं कामदेवोऽयं वरेण्यं भर्ग उच्यते।।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.१७-१९)

४. तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवः क्षीरं सेवनीयमक्षरं समधुघ्नमक्षरं परमात्मजीवात्मनो-

र्यागात् तदिति स्पष्टमक्षरं तृतीयं ह इति तदेव सदाशिव एव निष्कल्मषो द्यो देवोऽन्त्यमक्षरं व्याक्रियते परमं पदम्।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२०)

५. धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति लकार: शिवाधस्तात्तु लकारार्थ: स्पष्टमन्त्यक्षरं परमं चैतन्यं धियो यो न: प्रचोदयात्।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२१)

६. परो रजसेऽसावदोमित्येवं कूटं कामकलाऽऽलयं षडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामैति भगवांश्चैतस्माद्य एवं वेद।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२२)

शक्तिकूट एवं गायत्री का समन्वय

१. अथैतस्मादपरं तृतीयं शक्तिकूटं प्रतिपद्यते द्वात्रिंशदक्षर्या गायत्र्या।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२३)

२. तत्सवितुवरेण्यं तस्मादात्मन आकाश: आकाशाद्वायु: स्फुरते तदधीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्मपरमात्मसमुद्भवस्तं प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्टमापद्यते ।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२४)

३. भर्गो देवस्य धीत्यनेनाधाररूपशिवात्माक्षरं गण्यते महीत्यादिना शेषं काम्यं रमणीयं दृश्यं काम्यं रमणीयं शक्तिकूटं स्पष्टकृतमिति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२५)

फल— ४. एवं पञ्चदशाक्षरं त्रैपुरं योऽधीते स सर्वान् कामानवाप्नोति स सर्वान् भोगानवाप्नोति स सर्वान् लोकान् जयति स सर्वा वाचो विजृम्भयति स रुद्रत्वं प्राप्नोति स वैष्णवं धाम भित्वा परं ब्रह्म प्राप्नोति य एवं वेद।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-१.२६)

पञ्चदशी विद्या की अन्तर्निहित शक्तियाँ— पञ्चदशी विद्या के प्रत्येक अक्षर के अनुसार १५ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम निम्नांकित हैं—

१. मदन्तिका	६. सिद्धिमत्ता	११. पुष्टा
२. मानिनी	७. लज्जा	१२. लक्ष्मी
३. मंगला	८. मति	१३. उमा
४. सुभागा	९. तुष्टि	१४. ललिता
५. सुन्दरी त्रिपुरा	१०. इष्टा	१५. लालपन्ती

ऋग्वेदीय त्रिपुरोपनिषत् में इन्हें इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

मदन्तिका मानिनी मङ्गला च सुभागा च सा सुन्दरी सिद्धिमत्ता।
लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती।।६।।

त्रिपुरोपनिषद् में ही पञ्चदशी मन्त्र को प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नांकित है—

कामो योनिः कामकलावज्रपणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।८।।

व्याख्या— 'कामः' = ककार। 'योनिः' = एकार। 'कामकला' = ईकार आदि।

'नासदीय सूक्त' के अनुसार मन्त्रोद्धार द्वारा अनेक वैदिक ऋचाओं से अनेक मन्त्रों का उदय हुआ है।

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त में निहित बीजमन्त्र— प्रवृत्तिमार्गियों को जो बीजक्रम अभीष्ट है, उसके अनुसार पराशक्ति का (माया-स्तर के ऊर्ध्व में स्थित होने के कारण) प्रथम मूल बीज है— 'ऐं'। सादाख्य स्पन्द में माया बीजात्मना अवस्थित है। अतः वहाँ मूल बीज 'ह्रीं' है। तपःपुञ्ज ईश्वर 'श्रीं' में अवस्थित है और सकाम ईश्वर कामबीज 'क्लीं' में अवस्थित है। सत् और असत् दोनों शक्तियाँ सकार होने के कारण 'सौः' बीज के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। इस तरह ऐं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, सौः (ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः) मन्त्र का भी निर्माण हो जाने से दो मन्त्रों का निर्माण हो जाता है।

दूसरा मन्त्र-निर्माणक्रम

(ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त– अष्टक-८, अ०-७, मं०-१०, सूक्त-१२९)

नासदीयसूक्त	प्रतिनिधि मूल तत्त्व	
		न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यत्र परः किञ्चनाऽऽस।। तम आसीत्तमसा गूल्लमग्रे अप्रकेतमसलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाऽजायकेतम्।। कामस्तदग्रे सववर्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसतिनिरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषाः।। बीजमन्त्रों का यह उद्भवक्रम योगमार्गीय है। योगशिखोपनिषद् की समतुल्यता पर ध्यान दें— महामाया महालक्ष्मीर्महादेवी सरस्वती। आधारशक्तिरव्यक्ता यया विश्वं प्रवर्तते।। (२.११.१२)
१. 'पर'	ॐस्वरूप परमात्मा	
२. 'तम'	माया पराशक्ति 'ह्रीं'	
३. 'तप'	सादाख्य तत्त्व 'श्रीं'	
४. 'एकम्'	ईश्वर का 'ऐं' स्वरूप	
५. 'काम'	ईश्वर का 'क्लीं' स्वरूप	
६. 'मनस्'	सत् मन अर्थात् 'शुद्ध विद्या'	
७. 'रेत'	असत् रेतस् अशुद्ध विद्या	

श्रीविद्योपासना के अंग— आचार्य भास्कर ने अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग के रूप में दो अंग बताये हैं। इनके समस्त अंग निम्नवत् हैं—

श्रीविद्या के अन्तरंग—

१. (श्रीविद्या के वर्णों की) संख्या	६. प्रयत्न (उच्चारणगत प्रयत्न)
२. उद्धार (मन्त्र का उद्धार)	७. विभिन्न स्थितियाँ
३. काल (मात्रा)	८. आकार
४. उच्चारण (वर्णों का उच्चारण)	९. अर्थ
५. स्थान (उत्पत्तिस्थान)	

श्रीविद्या के बहिरङ्ग—

१. ऋषि	४. विनियोग	७. कीलक	१०. नियम
२. छन्द	५. बीज	८. न्यास	११. पूजा आदि।
३. देवता	६. शक्ति	९. ध्यान	

१. विद्यावर्णेयत्तोद्धारः कालस्तदुच्चारः।
उत्पत्तिस्थानं तद्यत्नो रूपं स्थितिस्थानम्।।

२. आकारः स्वं रूपं विभाव्यमर्थोऽन्तरङ्गाणि।
ऋषयश्छन्दोदैवतविनियोगा बीजशक्तिकीलानि।।

३. न्यासा ध्यानं नियमाः पूजादीनि बहिरङ्गाणि।
बाह्यान्यङ्गानि पुनः प्रायो लोके प्रसिद्धकल्पानि।।[1]

सारांश—

१. वर्णसंख्या— विद्या में वर्णों की संख्या ५८ है—
विद्यायां वर्णेयत्ता अष्टपञ्चाशद्रूपा वर्णसंख्या।[2]

२. उद्धार— क्रोधीशः श्रीकण्ठारूढः कोणत्रयं लक्ष्मीः।
मांसमनुत्तररूढं वाग्भवकूटं प्रकीर्तितं प्रथमम्।।

शिवहंसब्रह्मवियच्छक्राः प्रत्येकमक्षरारूढाः।
द्वितीयकं कूटं कथितं तत्कामराजाख्यम्।।

शिवतो वियतो मुक्तं तृतीयमिदमेव शक्तिकूटाख्यम्।
हृल्लेखानां त्रितयं कूटत्रितयेऽपि योज्यमन्ते स्यात्।।[3]

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।[4]

---

१. भास्कर राय : वरिवस्यारहस्यम्।
२. वरिवस्यारहस्यम्- प्रकाशटीका।
३. वरिवस्यारहस्यम्।
४. त्रिपुरोपनिषद, देव्युपनिषद।

३. काल या मात्रा— श्रीविद्या के प्रत्येक वर्ण के उच्चारण में कितनी मात्रायें लगती हैं। उसका विवरण ही काल या मात्रा है—

कालस्त्रिलवोनैकत्रिंशन्मात्रात्मको विद्यायाः।
एकलवोना उनत्रिंशन्मात्रा उच्चारणस्य।।[1]

४. उच्चारण— किस मन्त्राक्षर का कितनी मात्राओं द्वारा उच्चारण होता है, उसका विवरण ही उच्चारण पद से संकेतित किया गया है। उदाहरण—

.........बिन्दुरहितहृल्लेखा मात्राकालयोच्चार्याः।
अन्येषा वर्णानां मात्राकालोऽर्धमात्रया सहितः।
बिन्दोरर्धं मात्रा परे परे चापि पूर्वपूर्वार्धाः।।

संहत्यैकलवोनो मात्राकालोऽस्य नादस्य।
एकादशवाक्कूटे सार्धा एकादशोदिता मध्ये।।

सार्धा अष्टौ शक्तावेकैकलवोनिता मात्राः।
संहत्यैकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे लवत्रयन्यूनाः।।

५. वर्णों का उत्पत्तिस्थान—

कण्ठे च कण्ठतालुनि तालुनि दन्तेषु मूर्ध्नि नासायाम्।
स्पृष्टविवाराद्यान्तरबाह्यैर्यत्नैस्तदक्षरोत्पत्तिः ।।

६. उच्चारण के लिये किये गये यत्न— १. बाह्य, २. आभ्यन्तर।

७. वर्णों का स्थितिस्थान एवं रूप (आकार)—

प्रलयाग्निनिभं प्रथमं मूलाधारादनाहतं स्पृशति।
तस्मादाज्ञाचक्रं द्वितीयकूटं तु कोटिसूर्याभम्।।

तस्माल्ललाटमध्यं तार्तीयं कोटिचन्द्राभम्।
मालामणिवद्वर्णाः क्रमेण भाव्या उपर्युपरि।।

तदुपरि गतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थः कान्त्या तथाकृत्या।
अथ रोधिनी तदूर्ध्वं त्रिकोणरूपा च चन्द्रिकाकान्तिः।।

नादस्तु पद्मरागवदण्डद्वयमध्यवर्तिनीव सिरा।
नादान्तस्ताडिदाभः सव्यस्थितबिन्दुयुक्तलाङ्गलवत्।।

तिर्यग्बिन्दुद्वितये वामोद्यच्छत्सिराकृतिः शक्तिः।
बिन्दूद्यच्छत्र्यश्राकारधरा व्यापिका प्रोक्ता।।

ऊर्ध्वाधोबिन्दुद्वयसंयुतरेखाकृतिः समना।
सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः।।

---

१. प्रकाश।

शक्त्यादीनां तु वपुर्द्वादशरविकान्तिपुञ्जाभम्।
इत्येवं वर्णानां स्थानं ज्ञात्वोच्चरेद्यत्नात्।।२७।।

नादः प्राथमिकस्तु द्वितीयकूटेन साकमुच्चार्यः।
द्वितीयकं नादं तार्तीयेनोच्चरेन्न पृथक्।।२८।।

बिन्द्वादिनवकयोस्तु प्राक्तनेूटस्थयोरनयोः।
सम्मेलनेन शबलं तार्तीयीकं विभावयेत्कूटम्।।

बिन्द्वादिसमनान्तं क्रमेण तार्तीयमुच्चरेन्नादम्।
उन्मन्यन्तर्लीनं विभावयेदेतदुच्चरणम्।।३०।।

विद्यास्वरूप का कालमान बताकर भास्कर राय उच्चारणकाल का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

आद्ये दश मध्ये ताः सार्धास्तार्तीयकूटेऽष्टौ।
एलवोना उनत्रिंशन्मात्रा मनोर्जपे कालः।।३१।।

कूटत्रय का व्यष्टि-समष्टिभेद से चतुर्धा भिन्नस्वरूप— श्रीविद्या में व्यष्टि-समष्टिरूप से चार बीजों का अवस्थान है और वे हैं— सृष्टि, रक्षा, संहार एवं अनाख्या। ये चार बीज चार भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले हैं। व्यष्टि एवं समष्टि के भेद से इस श्रीविद्या में चार बीज हैं— 'व्यष्टिसमष्टिविभेदादस्यां चत्वारि बीजानि।' ये निम्न हैं—

सृष्टिस्थितिसंहारानाख्यारूपाणि भावनीयानि।

पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, मातृका आदि में चार बीजों की भावना व्यष्टि-समष्टिभेद से करनी चाहिये।

व्याख्या— 'अनाख्या' = तिरोधानानुग्रह की समष्टि तथा भगवती एवं भगवान् के पञ्चकृत्यों में औदासीन्यावलम्बनात्मक रूपावस्थानविशेष ही अनाख्या है। 'पुट' = पुटादि-षट्क। 'धाम' = धामसप्तक। 'पीठ' = कामरूप— पूर्णागिरि, जालन्धर, ओड्याण। 'अन्वय' = पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय। 'लिंग' = स्वयम्भू। बाण, इतर एवं पर लिंग। 'मातृका' = परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। 'पुट' = ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय और उनका सामरस्य। 'चक्र' = अग्निचक्र, सूर्यचक्र, सोमचक्र, ब्रह्मचक्र। 'नाथ' = मित्रेशनाथ, षष्ठीशनाथ, उड्डीशनाथ, चर्यानन्दनाथ। 'दशा' = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय। 'शक्ति' = वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, शान्ता। इच्छा-ज्ञान-क्रिया, अम्बिका।

कामेश्वरी— वज्रेश्वरी-भगमालिनी-महात्रिपुरसुन्दरी। 'आत्मा' = आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा-ज्ञानात्मा। 'तत्त्व' = न्यायतत्त्व, आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व, सर्वतत्त्व।

पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, लिंग, मातृका आदि में उक्त चारो बीजों (जिन्होंने कि सृष्टि, स्थिति, संहार एवं अनाख्या का रूप धारण कर रक्खा है) की व्यष्टि-समष्टिभेद से भावना करनी चाहिये। श्रीविद्या में से व्यष्टि एवं समष्टिरूप से (त्रिकूटों में

पृथक्-पृथक् रूपों द्वारा) सृष्टि-स्थिति-संहार एवं अनाख्यारूप वाले चार बीजों का प्रकटीकरण होता है।

श्रीविद्या (पञ्चदशी मन्त्र) का जप-काल—

१. प्रथम कूट में १० मात्रायें हैं।

२. द्वितीय कूट में १०-१/२ मात्रायें हैं।

३. तृतीय कूट में एक लव कम ८-१/२ मात्रायें हैं; अत: सब मिलाकर एक लव कम २९ मात्रा-काल में जप होना चाहिये।

> आद्ये दश मध्ये ता: सार्धास्तार्तीयकूटेऽष्टौ।
> एकलवोना उनत्रिंशन्मात्रा मनोर्जपे काल:।। (१.३१)

जप के अंग— भास्कर राय की दृष्टि में मन्त्रजप के छ: अंग हैं—

१. मन्त्रोच्चारण का स्मरण
२. अवस्थाओं का स्मरण
३. शून्यों का स्मरण
४. विषुवों का स्मरण
५. ५, ६, ७, ९ चक्रों का स्मरण
६. मन्त्रार्थ-चिन्तन (मन्त्रार्थों का चिन्तन)

> एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
> नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चरणं तु जप:।। (१.५२)

अर्थात् मन्त्र के वर्णों का उच्चारण करते हुये अवस्थाओं, शून्यों, विषुवों एवं ५, ६, ७, ९ चक्रों का चिन्तन करते हुए मन्त्रार्थ-चिन्तन करना जप कहलाता है।

अवस्थाचतुष्टय एवं संख्याचतुष्टय, नादत्रय एवं चक्रत्रय (सकल, निष्कल, सकल-निष्कलरूप) तथा अकुल, सहस्रार, मूलाधिकारपञ्चक, सूक्ष्म जिह्वा, भ्रूमध्य, बिन्दुस्थान आदि ९ चक्र और इस प्रकार त्रैलोक्यमोहन आदि ९ चक्रों की भावना (बिन्दु से उन्मना तक भावन) एवं महाबिन्दु में ही भावनमन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान करने वाली विद्या के ५८ वर्णों में बिन्द्वादिक ९ नादों का ग्रहण ही 'जप' है।

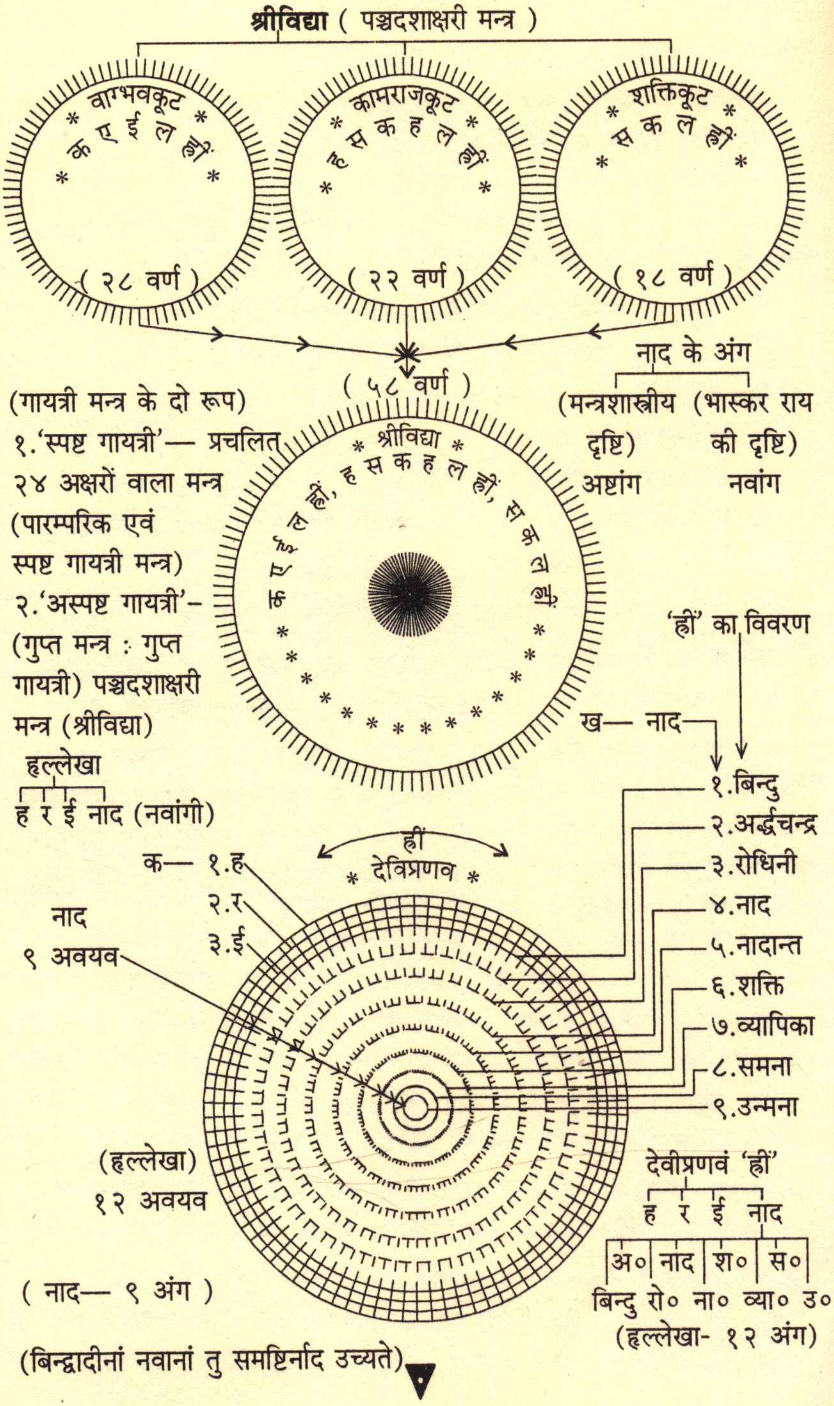

(बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते)

एकविंश अध्याय

श्रीविद्या और कूटत्रय

'श्रीविद्या' कूटत्रय में विभाजित है। उसके कूटत्रय हैं— वाग्भवकूट, कामराजकूट एवं शक्तिकूट। इस कूटत्रय के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

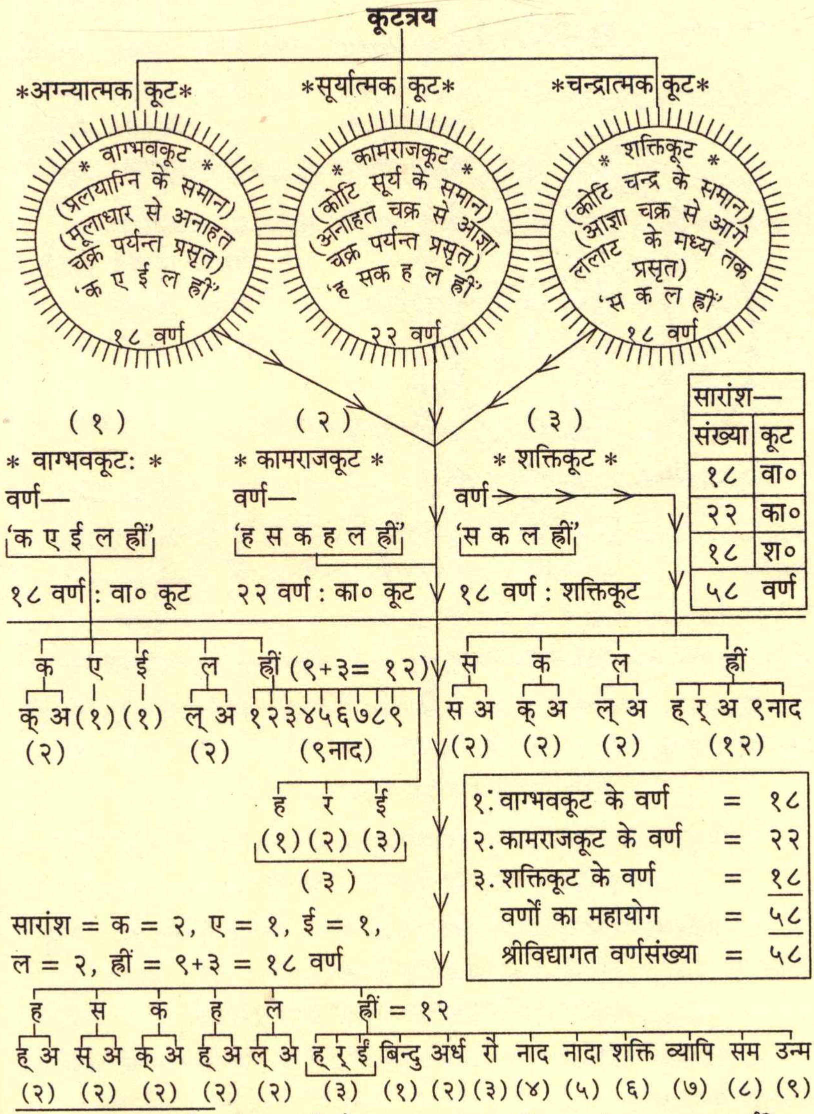

• प्रथमतृतीयकूटे अष्टादशवर्णात्मके। मध्यकूटन्तु चतुरधिकम्। संहृत्याष्टपञ्चाशद्वर्णात्मिका विद्येति सिद्धम्।

भास्कर राय द्वारा प्रस्तुत श्रीविद्या का परिचय—

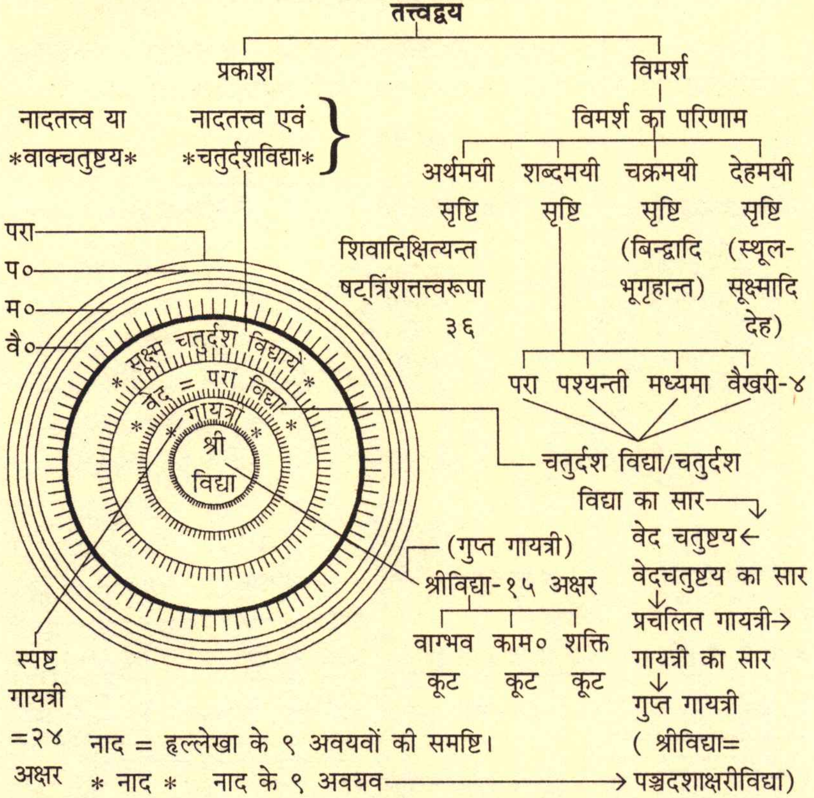

१. नाद— मूलाधार से उठने वाला नाद वर्णों के मध्य से होता हुआ सूत्र की भाँति प्रतीत होता है—

आधारोत्थितनादो गुण इव परिभाति वर्णमध्यगत:।

२. बिन्दु— बिन्दु भाल के मध्य वृत्ताकाररूप में दीप की भाँति देदीप्यमान रहता है—

मध्येकालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकार:।।

३. अर्द्धचन्द्र— बिन्दु के ऊपर अर्धचन्द्र दीप्ति एवं आकृति में अन्वर्थक (आकृति एवं कान्ति दोनों ही दृष्टियों से अर्धचन्द्रमा) के समान है—

तदुपरिगतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थ: कान्त्या तथाकृत्या।

४. रोधिनी— रोधिनी त्रिभुज के आकार की होती है, जो चन्द्रिका की कान्ति से समन्वित है—

अथ रोधिनी तदूर्ध्वं त्रिकोणरूपा च चन्द्रिकाकान्ति:।।

५. नाद— नाद पद्मराग की कान्ति वाला, दो अण्डों के मध्य वर्तमान सिरा (नाडिका) की भाँति विराजमान रहता है—

नादस्तु पद्मरागवदण्डद्वयमध्यवर्तिनीव सिरा।

६. नादान्त— बाईं ओर स्थित बिन्दु से युक्त विद्युत् के समान प्रकाशित होने वाला नादान्त हल की भाँति प्रतीत होता है—

नादान्तस्तडिदाभः सव्यस्थितबिन्दुयुक्तलाङ्गलवत्।।

७. शक्ति— शक्ति दो बिन्दुओं के बायें से उदित होने वाली सिरा की आकृति वाली होती है—

तिर्यग्बिन्दुद्वितये वामोद्गच्छत्सिराकृतिः शक्तिः।

८. व्यापिका— व्यापिका बिन्दु एवं उसके ऊपर त्रिकोण के समान आकृति वाली कही गई है—

बिन्दूद्गच्छत्त्र्यश्राकारधरा व्यापिका प्रोक्ता।।

९. समना— समना की आकृति रेखा के ऊपर-नीचे स्थित दो बिन्दुओं के समान होती है—

ऊर्ध्वाधोबिन्दुद्वयसंयुतरेखाकृतिः समना।

१०. उन्मना— ऊपर वाले बिन्दु के विना उपर्युक्त समना ही उन्मना है।

११. महाबिन्दु— इसके ऊपर महाबिन्दु की स्थिति है—

सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

मनोन्मनी— यह भी ध्यातव्य है कि अमृतानन्द ने 'शक्त्यादीनां च मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी' की व्याख्या के प्रसंग में कहा है कि यहाँ 'मनोन्मनी' पद 'समना' का पर्याय है; अतः इसे इसी अर्थ में गृहीत करके शक्त्यादि तीनों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहा हूँ।[१]

मात्रा— लघ्वक्षरस्य कालः। **गुरु**— तद्विगुणो गुर्वक्षरस्य।

वर्णों का काल-मान— 'पञ्चदशी मन्त्र'—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।।

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि (ल), गुहा (ह्रीं), ह-स वर्ण, मातरिश्वा (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं), स-क-ल वर्ण एवं माया (ह्रीं)— यह सर्वात्मिका जगन्माता मूल विद्या है और वह ब्रह्मरूपिणी है।

'काम' और 'मातरिश्वा' दोनों ककार हैं। 'योनि' एकार है। 'कमला' तुरीय स्वर 'ई'

---

१. वरिवस्यारहस्यम् : भास्कर राय।

है। 'वज्रपाणि' लकार है। 'गुहाद्वय' एवं 'माया' लज्जाबीज (ह्रीं) है। 'हस' एवं 'स-क-ल' स्वरूप है।

वरिवस्यारहस्यम् में कहा गया है कि इन्हीं सांकेतिक शब्दों के व्यवहार द्वारा इस मन्त्र की अत्यधिक गोपनीयता प्रमाणित होती है।

१. वाग्भवकूट— प्रथम वाग्भव कूट में श्रीकण्ठ (अ) से युक्त क्रोधीश (क), कोणत्रय (त्रिभुज ए), लक्ष्मी (ई), अनुत्तर (अ) के साथ मांस (ल) आते हैं—

क्रोधीश: श्रीकण्ठारूढ: कोणत्रयं लक्ष्मी:।
मासमनुत्तररूढं वाग्भवकूटं प्रकीर्तितं प्रथमम्।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.९)

२. कामराजकूट— इसमें शिव (ह), हंस (स), ब्रह्मा (क), वियत् (ह्) एवं शक्र (ल) आते हैं। ये अक्षर (अ) के साथ हैं—

शिवहंसब्रह्मवियच्छक्रा: प्रत्येकमक्षरारूढा:।
द्वितीयीकं कूटं कथितं तत्कामराजाख्यम्।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.१०)

३. शक्तिकूट— शिव (ह) एवं वियत् (ह) के विना उपर्युक्त कामराजकूट शक्ति-कूट कहा जाता है। प्रत्येक कूट के अन्त में एक-एक हृल्लेखा (ह्रीं) जोड़ लेनी चाहिये—

शिवतो वियतो मुक्तं तृतीयमिदमेव शक्तिकूटाख्याम्।
हृल्लेखानां त्रितयं कूटत्रितयेऽपि योज्यमन्ते स्यात्।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.११)

हृल्लेखा का स्वरूप—

हृल्लेखाया: स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तय:।।१२।।

व्यापिका: समनोन्मन्य इति द्वादशसंहति:।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।।१३।।

हृल्लेखा के स्वरूप के अन्तर्गत व्योम (ह), अग्नि (र), वामलोचना (ई), बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना तथा उन्मना— ये बारह आते हैं। बिन्द्वादिक नव की समष्टि को 'नाद' कहा जाता है।

ह्रीं— 'ह्रीं' अर्थात् हृल्लेखा स्वयं भगवती का स्वरूप है— 'ह्रींकारी ह्रीमती हृद्या' (ललितासहस्रनाम-७०.३००)। वे नादरूपा भी हैं— 'नारायणी नादरूपा' (७०.३००)। वे ह्रीं के अन्तर्गत अनुस्यूत अन्य नौ नाद भी हैं—'नैष्कर्म्या नादरूपिणी' (१६७)। 'नाद' भी भगवती का स्वस्वरूप है—

आसीच्छक्तिस्ततो नाद: नादाद्बिन्दुसमुद्भव:।

'परा वाक्' जीव को आत्मविस्मृत करके रखती है और जीव के हृदय में असंख्य विकल्पों की सृष्टि करती है। 'पश्यन्ती' भूमि में सर्वप्रथम ग्राह्य-ग्राहक और ग्रहीता की त्रिपुटी अस्पष्ट रूप से उदित होती है। परा वाक् से लेकर वैखरी वाक् तक शब्द का अवतरण होने पर 'वर्णात्मक' शब्द का उदय होता है। समस्त मातृकायें या वर्ण ही विकल्पों के उदय का कारण हैं। जब तक मूल में वर्ण को वर्णहीन अविच्छिन्न 'नाद'रूप में परिणत न किया जा सके एवं नाद को 'बिन्दु'रूप में प्रतिष्ठित न किया जा सके, तब तक विकल्पों का अन्त होना सम्भव नहीं है। बिन्दु 'परबिन्दु' के रूप में 'आज्ञाचक्र' के ऊपर नित्य विराजमान रहता है।

नाद— वर्णों को विगलित करके 'नाद'रूप में परिणत करने हेतु 'ताप' आवश्यक है। ताप या अग्नि वस्तुतः 'चिदग्नि' है। सुप्त कुण्डलिनी को जगाने से ही 'चिदग्नि' की प्राप्ति सम्भव है। उद्बुद्ध कुण्डलिनी के तेज के साथ अपने प्राण एवं मन को मिला देने पर मन, प्राण एवं कुण्डलिनी तीन न रहकर एक शक्ति के रूप में परिणत हो जाती हैं। मन को 'चन्द्र', प्राण को 'सूर्य' एवं वाक् शक्ति को 'अग्नि' मान लें तो ये तीनों शक्तियाँ एक शक्ति में परिणत होती हैं। उनके प्रभाव से चतुर्दल में स्थित चार वर्णमातृकायें विगलित होकर 'नाद' का रूप ग्रहण कर लेती हैं और ये चार नाद समष्टिरूप से अभिन्न नाद के आकार में 'मूलाधार' के केन्द्र में स्थित बिन्दु में पहुँच जाते हैं।

बिन्दु— मूलाधार का 'बिन्दु' सुषुम्णा द्वारा ऊपर उठता है और मूलाधार चक्र शून्य हो जाता है। इसी प्रकार स्वाधिष्ठान से आरम्भ करके आज्ञाचक्र तक सभी चक्रों में संस्कार-कार्य चलता है। अन्ततः षट्चक्रों की पचास मातृकायें नादरूप में परिणत होकर एवं छः बिन्दुओं में परिणत होकर अन्त में एक बिन्दु में स्थित हो जाती हैं। यही 'बिन्दु' भ्रूमध्य में स्थित तृतीय नेत्ररूप बिन्दु है। इसका स्थान आज्ञाचक्र के ऊपर है। इसी के उन्मीलन को (नेत्रोन्मीलन को) आज्ञाचक्र का उन्मीलन कहते हैं।

षट्चक्रों में प्रत्येक चक्र में एक 'बिन्दु' है। वही उस चक्र का केन्द्र है। उस चक्र के अधिष्ठाता चक्रेश्वर उस बिन्दु पर अधिष्ठित रहते हैं। प्रत्येक चक्र का बहिरंग वर्णयुक्त है। उन्हें जाग्रत् कुण्डलिनीस्वरूपा चित् शक्ति द्वारा विगलित करके 'नाद' में परिणत कर सकने पर चक्रस्थ बिन्दु प्राप्त हो पाता है। ब्रह्मनाडी द्वारा उसकी ऊर्ध्व गति होती है। छहों चक्रों की बिन्दुप्राप्ति एवं बिन्दु की ऊर्ध्व गति से भौंहों के ऊर्ध्व में प्रज्ञाचक्षु का उन्मीलन होता है। इस नाद को अतिक्रान्त करके साधक जिस विकल्पशून्य विशुद्ध ज्योति को प्राप्त करता है, वही ज्योति 'बिन्दु' होता है।

अर्धमात्रा— मन की एक मात्रा में स्थिति होने पर 'एकाग्र भूमि' की प्रतिष्ठा होती है। इस स्थिति में सम्पूर्ण विश्व विलुप्त हो जाता है और एकमात्र अनन्त 'चिदाकाश' ही प्रकाशमान रहता है। चिदाकाश होने पर भी वह चिद्रूप में नहीं; बल्कि 'महाशून्य' के रूप में भासित होता है। एकाग्र भूमि में प्रतिष्ठित समग्र मन को तोड़ कर उसके दो टुकड़े करने होते हैं। इसी का नाम है— 'अर्धमात्रा।'

मन की मात्रा जितनी ही क्षीण से क्षीणतर होती जाती है, उतनी ही चैतन्य एवं उससे सम्बद्ध आनन्द की अधिकाधिक वृद्धि होती है। अन्तिमावस्था में मन इतना सूक्ष्म हो जाता है कि तब मन रहते हुये भी न रहने के बराबर रहता है। उस क्षीणतम मन का भी परित्याग करना पड़ता है और उस परित्याग को ही 'उत्सर्ग' एवं 'आत्मसमर्पण' कहते हैं। इस स्थिति में लेशमात्र भी मन नहीं रह जाता। इसी दशा का नाम है— 'चिदानन्दमय' 'दिव्यभूमि।' तत्पश्चात् जीव शिव से 'परमशिव' के रूप में अपने को प्रकट करता है और उसकी शक्ति होती है— 'उन्मना शक्ति' परा शक्ति।

ह्रींगत नव नाद— मन 'बिन्दु' की अवस्था में पूर्ण चन्द्रबिम्ब के समान रहता है। तदुपरान्त 'अर्धमात्रा' से अर्धचन्द्र 'निरोधिका' का अतिक्रमण करके नादमण्डल में प्रवेश करके 'ब्रह्मरन्ध्र' के द्वार पर 'नादान्त' को पार करके 'शक्ति' का आश्रय लेकर व्यापिनीरूप 'महाशून्य' में प्रवेश करता है एवं उसके बाद 'समना' में पहुँचकर विकल्पहीन मन के द्वारा विकल्पहीन मन का भी त्याग कर देता है और तभी ब्रह्मविद्यास्वरूपा 'उन्मना शक्ति' का आविर्भाव होता है।

'एकाग्र भूमि' में चित्त ध्येय का अवलम्बन ज्ञेयरूप में करता है। चित्त स्वयं ही ज्ञान एवं ज्ञाता है। एकाग्र भूमि में ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान अभिन्न रूप में प्रकट होते हैं। स्वच्छ चित में चिदालोक पड़ने पर प्रज्ञास्वरूप ज्योति का विकास होता है। एकाग्र भूमि से 'निरोध भूमि' एवं फिर 'निरोध वृत्ति' का भी निरोध एवं संस्कारों का भी निरोध करना पड़ता है। निरोध हो जाने पर वृत्ति एवं संस्कार दोनों विलुप्त हो जाते हैं।

जहाँ तक चञ्चल मन की गति है, वहाँ तक 'काल का राज्य' है। मन के एकाग्र होने पर स्थूल काल का अस्तित्व न रहकर सूक्ष्म काल ही अवशिष्ट रह जाता है। मात्राक्षय के साथ ही साथ काल के अंश भी क्षीण होते जाते हैं। अमात्र भूमि में ही काल का अवसान होता है। यही भगवद्धाम में प्रवेश है और यही है— मन से उन्मना की यात्रा का सारांश या मात्रा से अमात्रा की यात्रा।

मूलत: 'नाद' एक ही है और वह है— 'अनाहत नाद'। कहा भी है—

एको नादात्मको वर्ण: सर्ववर्णविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इवोदित:।।

इस अनाहत नाद के मुख्य अभिव्यक्तिस्थान दो बीज हैं— सृष्टिबीज 'सकार' एवं संहारबीज 'हकार'। सकार + हकार → नाद। साधक का हृदय परिष्कृत हो और भगवन्नाम चैतन्यसम्पन्न करके शिष्य को प्रदान किया गया हो तो नादात्मक नाम अपने-आप चलता रहता है, उसे चलाना आवश्यक नहीं होता।

पूर्ण पश्यन्ती अवस्था में नाद श्रुतिगोचर नहीं होता। मन्त्रात्मक इष्टदेवता का साक्षात्कार षोडश कलाविशिष्ट आत्मा की 'षोडशी' या 'अमृतकला' की अभिव्यक्ति है।

जहाँ तक नाद की बात है, मन न रहने पर नाद नहीं रहता एवं नाद के न रहने पर

मन भी नहीं रहता। नाद-श्रवण एकाग्रावस्था की ज्ञानदशा में होता है। नाद-श्रवण-स्थगन निरोधावस्था है। नादश्रवण = एकाग्रावस्था।

नादश्रवण का स्थगन = निरोधावस्था। (मात्र संस्काररूप से मन रहता है, किन्तु संस्कार के भी न रहने पर चिन्मात्र शुद्ध आत्मा की स्वरूपस्थिति रहती है।)

अविभक्त वर्ण (परनाद) या परज्योति एक चिदात्मिका शक्ति है और यही पूर्णाहन्तास्वरूप 'परा वाक्' है।

'नाद' सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि है। 'नाद' ही विश्व का प्राण या जीवनी शक्ति है। यही अनन्त विश्व को गर्भ में धारण करके प्रसुप्त सर्प के रूप में अवस्थित रहता है। यही है— 'परम बीज।' विश्व को अपने गर्भ में धारण किये रहने तक इसका नाम है— 'परा कुण्डलिनी' और जब इसका नादात्मक रूप में स्फुरण होता है, तब इसे कहते हैं— 'वर्णकुण्डलिनी।' जब यह नाद भी सुषुप्ति में अवस्थित हो जाता है, तब इसे कहते हैं— 'प्राणकुण्डलिनी।' इस प्रकार स्पष्ट है कि नाद के तीन रूप हैं— परा कुण्डलिनी, वर्ण कुण्डलिनी एवं प्राण कुण्डलिनी।

नादसञ्चरण की क्रियाओं के विभिन्न चरण— १. अ-उ-म → २. भ्रूमध्य में बिन्दुरूप में परिणति : अ + उ + म का स्थूल + सूक्ष्म + कारणस्वस्वरूप में भेदमय अवस्थान 'बिन्दु' में अविभक्त एवं एकीभूत होकर अनुभूत होता है। योगियों की नौ भूमियों में (चिन्मय अनुभूतियों में) 'बिन्दु' प्रथम है। नौ भूमियाँ ही 'नव नाद' हैं।

'बिन्दु' का उच्चारणकाल 'अर्ध मात्रा' है। एक मात्रा से अर्ध मात्रा में प्रवेश अत्यन्त दुष्कर है। अर्ध मात्रा = एकाग्रता + निरोध का सन्धिस्थान। आज्ञाचक्र में 'एकाग्रता' का पूर्ण विकास होता है। बिन्दु की भूमि में जागतिक ज्ञान पूर्णतया विलुप्त नहीं होता। समाधिज प्रज्ञा से यह उत्कृष्टतरावस्था है। अर्ध मात्रा का ज्ञान चिन्मयानुभव है। पाँच शून्यों में प्रथम शून्य यही 'बिन्दु' है।

अर्द्धचन्द्र— बिन्दु के बाद आता है— 'अर्धचन्द्र।' इसकी मात्रा है— १/४। यह शून्य नहीं है। बिन्दु यदि पूर्ण चन्द्र है तो अर्धचन्द्र है, उसका अर्धांश। अर्धचन्द्र बिन्दु के ऊपर स्थित है।

निरोधिका या रोधिनी— यह तृतीय भूमि है। इसकी मात्रा है— १/८। समग्र विश्व के शासन का दायित्व जिन ब्रह्मा आदि पञ्च कारणों को दिया गया है, वे भी इस भूमि को अतिक्रान्त नहीं कर पाते। केवल योगी ही यहाँ तक पहुँच पाते हैं।

नाद और नादान्त— निरोधिका के बाद नाद एवं 'नाद' के बाद 'नादान्त' आते हैं। नाद की मात्रा है— १/१६ एवं नादान्त की मात्रा है— १/३२।

ह्रीं में अवस्थित नादनवक— नाद को चतुर्दिक आच्छादित करके असंख्य मन्त्र-मन्त्रेश्वर विद्यमान हैं। नाद का स्थान 'ब्रह्मरन्ध्र' के मुख में है। विशुद्ध चिति की धारा यहीं

से प्रारम्भ हुई है; अत: विशुद्ध, त्रिगुणातीत एवं चित्सम्पन्न शब्द की अनुभूति भी यहीं से होती है। 'नादान्त' शून्य है, तृतीय शून्य है। कोई-कोई आचार्य नाद-नादान्त को 'ईश्वर' मानते हैं। इस भूमि में नि:शेष वाचक वर्ण अभिन्न रूप में स्थित हैं। इसके बाद अनाहत ध्वनि (हंस) मस्तक में ध्वनित होती रहती है।

'नादान्त' नाड़ियों का आधार ब्रह्मविल में लीन है। इसने मोक्षद्वार को अवरुद्ध कर रक्खा है।

नादान्त के अनन्तर है— 'शक्तिस्थान' : षष्ठ चिद्भूमि। यह ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर स्थित है। शक्ति का ही नामान्तर है— 'ऊर्ध्व कुण्डलिनी।' यह विश्वाधार है। इसके केन्द्र में है— 'व्यापिनी कला।' शक्ति की मात्रा १/६४वीं है। शक्ति में ही आनन्द सत्ता की अनुभूति होती है और तदनन्तर ब्रह्म की सगुण शक्ति के आनन्द की अनुभूति होती है। शक्ति से उन्मनी तक की प्रत्येक भूमि का प्रकाश बारह सूर्यों के समान है। 'व्यापिनी' शून्यात्मक है, किन्तु शक्ति नहीं। शक्तितत्त्व ही 'अनाश्रित भुवन' या योगियों की 'निरालम्बपुरी' है। पृथ्वी पर्यन्त समस्त तत्त्व एवं समस्त भुवन शक्ति का ही विस्तार है। अनाश्रित भुवन के चतुर्दिक चार शक्तियाँ अवस्थित हैं और केन्द्र में स्थित है— 'अनाश्रिता शक्ति।' शिवरूप 'अनाश्रित देव' के क्रोड़ में अनाश्रिता शक्ति अवस्थित है।

व्यापिनी के ऊर्ध्व में स्थित है— 'समना।' यही परा शक्ति है। यह 'व्यापिनी' पद में अवस्थित 'अनाश्रित भुवन' के भी ऊर्ध्व में स्थित है। यही है— समस्त कारणों का महाकारण और समस्त अण्डों का मूलाधार। शिव इसी शक्ति में अवस्थित होकर समग्र जगत् की सृष्टि-रक्षा-संहार-निग्रह-अनुग्रह व्यापार निष्पादित करते हैं। 'व्यापिनी' की मात्रा १/१२८ है और समना की मात्रा १/२५६ है।

समना के ऊर्ध्व देश में स्थित है— 'उन्मना।' किसी-किसी आचार्य का मत है कि इसकी मात्रा १/५१२ है और अन्य आचार्यों की दृष्टि में यह अमात्रक होने के कारण मात्रा-शून्य है। अत: इसका कोई भी उच्चारण-काल है ही नहीं। यह मन की अतीतावस्था है। यहाँ नादात्मा 'शब्दब्रह्म' भी नहीं है। यही पञ्चम शून्य भी है। यही ९ नादों में नवाँ नाद है।

१/२५६ मात्रा को मन की सूक्ष्मतम मात्रा का उच्चारण माना गया है और 'लव' को काल की सूक्ष्मतम इकाई। उन्मना में न तो मन की क्रिया है और न ही उसका सन्धान। 'मन' ही तो पूर्ण चन्द्र है। मन के रहने पर ही काल का भय रहता है, इसके बाद नहीं। यहाँ काल का प्रवेश है ही नहीं।

ह्रीं एवं नादनवक— नाद एवं पश्यन्ती— बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका एवं उन्मना— यह नौ का समूह 'नाद' कहलाता है। यह नवांगी नाद 'ह्रीं' (हल्लेखा) का अंग है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही 'परा वाक्' हैं। वे ही 'मातृका' (माति तरति कायतीति मातृका) हैं। उसी निर्विकारा शक्ति में अनादि सिद्ध अदृष्ट के कारण स्वान्त:संहत विश्व में सिसृक्षा उत्पन्न होती है और श्रष्टव्य पदार्थालोचनार्थ वह ईक्षण करती है— 'तदैक्षत बहु स्यां

प्रजायेय।' वही 'ईक्षण' प्रवृत्ति के निमित्त से भगवती में 'पश्यन्ती' का रूप ग्रहण करता है। वही 'पश्यन्ती' मातृका उत्तीर्ण होने के कारण 'उत्तीर्णा' भी कही जाती है। उसके अवयव 'वामा' आदि आठ शक्तियाँ हैं और वही व्यष्टि-समष्टिरूप से नौ रूपों में रूपायित होकर अविकृत शून्दादिक 'नव नाद' बन जाती हैं। उसकी समष्टि 'नादध्वनि' आदि पदवाच्य होकर 'मध्यमा' मातृका बन जाती है। मध्यमावयवस्वरूप, अविकृतशून्य स्पर्श नादध्वनि बिन्दु शक्ति बीजाक्षरस्वरूप नादनवक मूलाधार आदि षट् चक्रों के नाद, नादान्त एवं ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। इसी नादनवक से क-च-ट-त-प-य-श आदि वर्गों एवं अक्षरों से 'वैखरी' मातृका का निर्माण होता है (वैखरी— वै निश्चयेन स्पष्टतरत्वात्खं कर्णविवरवर्तिनभोरूपं श्रोत्रेन्द्रियं राति गच्छति तज्ज्ञानविषयो भवति इति वैखरी)। समस्त वर्णों में नाद अनुस्यूत हैं— 'वर्णेषु नादो अनुस्यूतः।'[१]

नाद की अनुभूति कहाँ और किस तरह होती है— जिस प्रकार परिणाम (घट) में परिणामी (मृतिका) दिखाई पड़ता है या पट (परिणाम) में तन्तु या तल दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार दो वर्णों के मध्य भाग में वर्ण का मूल शरीर स्थित रहता है, मणिद्वय के मध्यभाग में स्थित सूत्र की भाँति ही शुद्ध नाद का भान होता है— 'द्वयोर्वर्णयोर्मध्यभागे मणिद्वयमध्यभागस्थशुद्धसूत्रवच्छुद्धनादस्य भानम्। वर्णशरीरान्तर्भागे तु पटाभेदेन संवलिततत्तुवद्धटान्तर्मृद्वच्च तत्तद्वर्णाभिदेनैव नादस्य भानम्।'[२]

'आधारोत्थित नादो गुण इव परिभाति वर्णमध्यगतः' अर्थात् 'नाद' मूलाधार चक्र से निकलकर समस्त वर्णों में उनके गुण (धर्म) की भाँति— माला में पिरोये गये सूत्र की भाँति— स्थित है। 'नाद' बिन्द्वादिनवक का समूह है— 'नादो बिन्द्वादिनवकम्' (वरिवस्यारहस्यम्)। जो उत्क्रान्तमनस्का हो, वही है 'उन्मना'— 'उत्क्रान्तमनस्कत्वादुन्मना' (वरिवस्यारहस्यम्)। 'व्यापिका' को स्पष्ट करते हुये वरिवस्यारहस्यम् में कहा गया है कि 'बिन्दुसंस्पृष्टाग्रकत्रिकोणाकारा व्यापिकां। बिन्दुद्वयान्तरालस्थऋजुरेखामयी पुनः समना। इयं च ब्रह्मरन्ध्रसंस्थाना। इयमेव च 'मनोन्मनी' व्यवह्रियते।'

मात्राकाल का विवरण और श्रीविद्या—

१. श्रीविद्या का विभाजन तीन कूटों में किया गया है, जिसके निम्न नाम हैं—

क. 'वाग्भवकूट'— मन्त्र— क ए ई ल ह्रीं ख. 'कामराजकूट'— मन्त्र— ह स क ह ल ह्रीं ग. 'शक्तिकूट'— मन्त्र— स क ल ह्रीं	**पञ्चदशी मन्त्र** पञ्चदशी मन्त्र का मूल स्रोत है— वेद : 'कामो योनिः कमला.. विश्वमातादिविद्या।'

मात्रा— शब्द के उच्चारणकाल को 'मात्रा' कहते हैं। एक मात्रा ह्रस्वोच्चारण है अर्थात् लघु अक्षर का उच्चारणकाल ही एक मात्रा है। गुरु अक्षर का मात्राकाल द्विमात्रिक है। सारांश यह कि लघ्वक्षर का मात्राकाल एक एवं दीर्घाक्षर का मात्राकाल दो मात्रा होता

१. भास्कर राय : वरिवस्यारहस्यम्। २. भास्कर राय : वरिवस्यारहस्यम्।

है। तीन मात्राकाल को 'प्लुत' कहते हैं और व्यञ्जन को 'अर्धमात्रा' कहते हैं—

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम्।।

'अ' = एक मात्रा। 'आ' = दो मात्रा। 'आऽऽ' = तीन मात्रा।

एक मात्रा = ह्रस्व : लघु। दो मात्रा = दीर्घ : गुरु।

तीन मात्रा = प्लुत। अर्धमात्रा = व्यञ्जन। यथा— क्, ख्, ग् आदि।

मात्राओं का आरोहात्मक सूक्ष्म क्रम (सूक्ष्म से सूक्ष्मतर क्रम)—

क. प्लुत = ३ मात्रायें। दीर्घ = २ मात्रायें। ह्रस्व = १ मात्रा।
व्यञ्जन (हलन्त) = अर्धमात्रा (३-२-१-१/२)।

ख. बिन्दु का १/२ काल = 'अर्धचन्द्र।' अर्धचन्द्र का १/२ काल = 'रोधिनी।' रोधिनी का १/२ काल = 'नाद।' नाद का १/२ काल = 'नादान्त।' नादान्त का १/२ काल = 'शक्ति।' शक्ति का १/२ काल = 'व्यापिका।' व्यापिका का १/२ काल = 'समना।' समना का १/२ काल = 'उन्मना।'

लव = काल का परमाणु 'लव' कहलाता है।

किसी कमल के फूल में सुई प्रविष्ट कराते समय प्रत्येक पंखुड़ी में सुई के प्रवेश करने में जो समय लगता है, उसको 'लव' कहते हैं अर्थात् एक पंखुड़ी में सुई के प्रवेश कराने के बाद दूसरी पंखुड़ी में सुई के प्रविष्ट होने के मध्य का समय ही 'लव' है—

नलिनीपत्रसंहत्या: सूक्ष्मसूच्यभिवेधने।
दले दले तु य: काल: स कालो लवसंज्ञित:।
अत: सूक्ष्मतम: कालो नोपलभ्यो भृगूद्वह।।

१ मात्रा = 'षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयलवैरेका मात्रा' (वरिवस्यारहस्यम्)।

१ मात्रा = २५६ लव। बिन्दु = १२८ लव। अर्धचन्द्र = ६४ लव। रोधिनी = ३२ लव। नाद = १६ लव। नादान्त = ८ लव। शक्ति = ४ लव। व्यापिका = २ लव। समना = १ लव। वरिवस्यारहस्यम् में भास्कर राय कहते हैं कि उन्मना में कोई भी लवसंख्या नहीं है; क्योंकि उन्मना में काल है ही नहीं। योगिनीहृदय में उन्मना का काल भी दिया गया है और उसका काल बताया गया है— ५१२ हवाँ भाग (एक मात्रा का ५१२ हवाँ भाग)। अत: मात्रा का मान होगा ५१२ लवात्मक— 'मात्रास्वरूपं च द्वादशोत्तरपञ्चशतलवात्मकत्वमेव प्रतीयते।' (भास्कर राय)। किन्तु यह भी ध्यातव्य है कि 'देशकालानवच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महत्।' इससे तो यही प्रतीत होता है कि काल का सञ्चार उन्मनी तक है और 'उन्मनी' के बाद ही इसका अन्त हो पाता है।

'चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:' इस कथन के अनुसार उन्मना काल = ५१२ : 'द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भाग उन्मनाकाल:।' मात्रास्वरूप : द्वादशोत्तरपंचशतलवात्मक। शक्ति = चतु:षष्टितम मात्राभाग। व्यापिका (द्विगुणित) = १२८।

वर्ण और उच्चारणस्थान तथा उच्चारणप्रयत्न—

१. 'अन्त:स्थ' — य, र, ल, व। स्पर्श— क से म तक।
२. 'ऊष्म' — श, ष, स, ह।
३. 'अल्पप्राण' — वर्गों के प्रथम-तृतीय-पञ्चम वर्ण तथा अन्त:स्थ।
४. 'महाप्राण' — वर्गों के द्वितीय एवं चतुर्थ तथा ऊष्म वर्ण।
(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा: यणश्चाल्पप्राणा:। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा:।)

वर्णों के उच्चारणस्थान—

१.	'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ:'	— अ, आ, विसर्ग, कवर्ग, ह	= कण्ठ।
२.	'इचुयशानां तालु'	— इ, ई, य, चवर्ग, श	= तालु।
३.	'ऋटुरषाणां मूर्धा'	— ऋ, ॠ, र, टवर्ग, ष	= मूर्धा।
४.	'ऌतुलसानां दन्ता:'	— ऌ, ल, तवर्ग, स	= दन्त।
५.	'उपूपध्मानीयानामोष्ठौ'	— उ, ऊ, उपध्मानीय, पवर्ग	= ओष्ठ।
६.	'ञमङणनानां नासिका'	— ञ, म, ङ, ण, न	= नासिका।
७.	....	ञ	= तालु+नासिका।
८.	....	ङ	= कण्ठ+नासिका।
९.	'एदैतो: कण्ठतालु'	— ए, ऐ	= कण्ठ+तालु।
१०.	'ओदौतो: कण्ठोष्ठम्'	— ओ, औ	= कण्ठ+ओष्ठ।
११.	'नासिकानुस्वारस्य'	— अनुस्वार	= नासिका।

वर्णोच्चारण में बाह्य प्रयत्न (११)—

१. विवार
२. संवार
३. श्वास
४. नाद
५. घोष
६. अघोष
७. अल्पप्राण
८. महाप्राण
९. उदात्त
१०. अनुदात्त
११. स्वरित्

वर्णोच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न (५)—

१. स्पृष्ट — स्पर्श वर्णों का उच्चारण प्रयत्न।
२. ईषत्स्पृष्ट — अन्त:स्थ वर्णों का उच्चारण प्रयत्न।
३. ईषद्विवृत — ऊष्म वर्णों का उच्चारण प्रयत्न।
४. विवृत — (ह्रस्व अ के अतिरिक्त शेष) स्वरों का उच्चारण प्रयत्न।
५. संवृत — केवल ह्रस्व अ का सिद्ध प्रयोग होने पर संवृत प्रयत्न, अन्यथा विवृत।

वर्गों के प्रथम द्वितीय वर्ण एवं श, ष, स (खर) का विवार, श्वास एवं अघोष प्रयत्न है।

शेष का संवार, नाद एवं घोष प्रयत्न है।
स्वरों का प्रयत्न— उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित्।

सवर्ण— एक ही स्थान से निकलने वाले एक ही आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्ण 'सवर्ण' कहलाते हैं— 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् = ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं

यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।'

कूटत्रय में मन्त्र का जपकाल

प्रथम कूट	मध्यकूट	तृतीय कूट,	
(१० मात्रायें)	(साढ़े १०-१/२ मात्रायें)	(एक लव कम साढ़े आठ मात्रायें)	(वरिवस्यारहस्यम् श्लोक-३१)

१०+१०-१/२+८-१/२ = एक लव न्यून २९ मात्राकाल (जप का मात्राकाल)।

आद्ये दश मध्ये ताः सार्धास्तार्तीयकूटेऽष्टौ।
एकलवोना ऊनत्रिंशन्मात्रा मनुर्जपे कालः।।३१।।

कूटत्रय (५८ वर्ण)

वाग्भव कूट	कामराजकूट	शक्तिकूट
(१८ वर्ण)	(२२ वर्ण)	(१८ वर्ण)

प्रथमेऽष्टादशवर्णा द्वाविंशतिरक्षराणि मध्ये स्युः। = १८+२२+१८= ५८

प्रथमेन तुल्यमन्त्यं सङ्घातेनाष्टपञ्चाशत्।। (वरिवस्यारहस्यम्-१४)

१. कामकला (ई) तथा त्रिकोण (ए) का द्विमात्रिक, बिन्दुशून्य हृल्लेखा (ह्री) का त्रिमात्रिक (तीन मात्राकाल के बराबर) उच्चारण किया जाना चाहिये—

'ई' एवं 'ए' = द्विमात्रिक। 'ह्री' (बिन्दुशून्य हृल्लेखा) = त्रिमात्रिक है।

२. अन्य वर्णों के उच्चारण का काल अर्धमात्रासहित मात्राकाल (डेढ़ मात्राकाल) एवं बिन्दु का अर्धमात्राकाल है।

३. उत्तरवर्ती वर्णों का उच्चारणकाल अपने पूर्ववर्ती का आधा होना चाहिये—

मात्राद्वितयोच्चार्या कामकला च त्रिकोणा च।
बिन्दुरहितहृल्लेखा मात्राकालत्रयोच्चार्या।।१५।।

अन्येषां वर्णानां मात्राकालोऽर्धमात्रया सहितः।
बिन्दोरर्धं मात्रा परे परे चापि पूर्वपूर्वार्धाः।।१६।।

प्रथमेऽष्टादश वर्णा द्वाविंशतिरक्षराणि मध्ये स्युः।
प्रथमेन तुल्यमन्त्यं सङ्घातेनाष्टपञ्चाशत्।।१४।।

नाद का काल = मात्राकाल : एक लवशून्य।
वाक्कूट में = ११। कामराजकूट में = ११-१/२।
शक्तिकूट में = ८-१/२ (एक लव कम)।

संहत्यैकलवोनो मात्रा कालोऽस्य नादस्य।
एकादश वाक्कूटे सार्धा एकादशोदिता मध्ये।।१७।।

सार्धा अष्टौ शक्तावेकैकलवोनिता मात्राः।
संहत्यैकत्रिंशन्मात्रा मन्त्रे लवत्रयन्यूनाः।।१८।।

मन्त्राक्षरों का उत्पत्तिस्थान एवं यत्न—

१. तीन ककार— 'क' (ए ई ल ह्रीं), (ह स) 'क' (ह ल ह्रीं) (स) 'क' (ल ह्रीं) = ३ ककार।

२. दस अकार— क, ल, ह, स, क, ह, ल, स, क, ल (ये व्यञ्जन वर्ण, जो कि तीनों कूटों में आये हैं, उन सभी (व्यञ्जनों) में अकार संयुक्त है; अतः १० अकार हैं।)

३. पाँच हकार— वाग्भवकूट, कामराजकूट एवं शक्तिकूट के अन्त में लगे हुये 'ह्रीं' में ३ हकार तथा कामराजकूट के २ हकार = ५ हकार।

३ ककार + १० अकार + ५ हकार = 'कण्ठ'।

द्वितीयाक्षर = कण्ठ एवं तालु। ईकारचतुष्टय = 'ह्रीं' में स्थित ३ 'ई' एवं वाग्भवकूट का 'ई' = ४ ईकार = 'तालु'।

३ लकार एवं २ सकार = 'दन्त'। ३ रकार = 'ह्रीं' के ३ 'र' = 'मूर्द्धा'। बिन्द्वादिक नवकत्रय = 'नासिका' (स्पृष्ट)। ककार = 'स्पृष्ट यत्न'। अकार = 'संवृत'। ईकार + एकार = 'विवृत'। रेफ + लकार = 'ईषत् स्पृष्ट'। हकार + सकार = 'ईषत् विवृत'। बिन्द्वादिक = 'संवृततम'— ये आभ्यन्तर यत्न के अन्तर्गत हैं।

'ककार' = विवार + श्वास + घोष + अल्पप्राण। 'सकार' = महाप्राण + विवार। 'स्वर' = उदात्त। 'रेफ' + 'लकार' = संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण। 'हकार' = संवारादित्रयात्मक + महाप्राण। 'बिन्द्वादि' = संवारादि चतुष्कवान। ये बाह्य प्रयत्न के अन्तर्गत हैं—

कण्ठे च कण्ठतालुनि तालुनि दन्तेषु मूर्ध्नि नासायाम्।
स्पृष्टविवाराद्यान्तरबाह्यैर्यत्नैस्तदक्षरोत्पत्तिः ।।१९।।

प्रथम कूट— मूलाधार से आरम्भ करके प्रलयाग्नि के समान भासित होने वाला 'प्रथम कूट' है। यह 'अनाहत' को स्पर्श करता है।

द्वितीय कूट— अनाहत चक्र से आगे कोटि सूर्य के समान आभा वाला 'द्वितीय कूट' है और यह 'आज्ञाचक्र' को स्पर्श करता है।

तृतीय कूट— आज्ञाचक्र से आगे ललाट के मध्य कोटि चन्द्र के समान आभा वाला 'तृतीय कूट' है।

उपर्युक्त तीनों कूटों के वर्णों को माला की मणियों के रूप में क्रमशः एक के ऊपर एक की भावना करनी चाहिये।

शक्त्यादि तीनों का स्वरूप द्वादश रवि की कान्तिपुञ्ज के समान देदीप्यमान होता है। इस प्रकार वर्णों के स्थान का ज्ञान कर यत्न (आभ्यन्तर एवं बाह्य) के अनुसार उच्चारण करना चाहिये।

प्रथम कूट के नाद का उच्चारण द्वितीय कूट के साथ करना चाहिये। इसी प्रकार द्वितीय कूट के नाद का उच्चारण तृतीय कूट के साथ करना चाहिये, पृथक् नहीं।

तृतीय कूट को प्रथम दोनों कूटों के बिन्दु आदि नवों के गण के सम्मेलन द्वारा चित्रित मानना चाहिये।

'बिन्दु' से आरम्भ कर क्रमशः 'समना' में समाप्त होने वाले तृतीय कूट के 'नाद' का उच्चारण करना चाहिये एवं 'उन्मनी' में अन्तर्लीन मानना चाहिये।

प्रथम (कूट) में दश मात्रायें, मध्य (कूट) में साढ़े दश मात्रायें एवं तृतीय (कूट) में एक लव कम साढ़े आठ; कुल मिलाकर एक लव न्यून उन्तीस मात्राकाल जप में होना चाहिये।

इस विद्या में तीनों कूटों को पृथक्-पृथक् (व्यष्टि) एवं एक साथ (समष्टि) चार बीजों का प्राकट्य होता है, जिनका सृष्टि-स्थिति-संहार और अनाख्या (नामरहित) रूप में चिन्तन करना चाहिये। चार विभिन्न रूपों में पुट, धाम, तत्त्व, पीठ, अन्वय, लिंग एवं मातृका आदि में इन चार बीजों की भावना व्यष्टि-समष्टि भेद से करनी चाहिये। तीनों ब्रह्मा आदि देवता और भारती आदि शक्तियाँ प्रत्येक अक्षर के स्वरूप हैं।

तीन कुण्डलिनियाँ, जिन्हें हृल्लेखा के अन्तर्गत 'कामकला' (ई) की 'सपरार्धकला' भी कहा जाता है, से उत्पन्न होने वाले नादों को तीनों चक्रों के त्रिक में भावना करनी चाहिये।

१. जागरण— दश इन्द्रियों के गण की व्यवहाररूप जाग्रत् अवस्था में प्रकाशस्वरूप कारण तृतीय कूट का रेफ समझना चाहिये। तृतीय कूट का रेफ = 'जाग्रदवस्था'।

इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या जागरावस्था।
तत्र प्रकाशरूपो हेतुर्भाव्यस्तृतीयगे रेफे।।

२. स्वप्नावस्था— तृतीय कूट का 'ई'। अन्तःकरणचतुष्क के व्यवहाररूप स्वप्नावस्था का कारण प्रकाश है, उसे तृतीय कूट का हृल्लेखा स्थित 'ईकार' (द्वारा वहाँ विद्यमान उस प्रकाश को) समझना चाहिये। द्वितीय कूट के लकार को भी वैसे ही समझना चाहिये।

३. सुषुप्ति की अवस्था— तृतीय कूट का 'बिन्दु'। तृतीय कूट के बिन्दु में सुषुप्ति की भावना करनी चाहिये, जो कि अन्तःकरण एवं जीव की सुषुप्तावस्था का कारण है—

वेदनमेव सुषुप्तिश्चिन्त्या तार्तीयबिन्दौ सा।

४. तुरीयावस्था— इसे ही 'नादावस्था' कहते हैं। चैतन्य को अभिव्यक्त करने वाले नाद की अवस्था को 'तुरीयावस्था' कहते हैं। इसकी भावना अर्द्धचन्द्र एवं आगे के तीन वर्णों तक करनी चाहिये।

५. तुरीयातीतावस्था— नादान्त आदि पाँच वर्ण परिपूर्ण आनन्दैकघन की अवस्था, जो व्यक्ति को वाणी द्वारा गोचर नहीं होती, 'तुरीयातींतावस्था' कहलाती है। इसकी भावना नादान्त आदि पाँच वर्णों में करनी चाहिये।

▼

द्वाविंश अध्याय

जपतत्त्व

आचार्य भास्कर ने जप के जो अंग स्वीकार किये हैं, वे हैं— १. अवस्था, २. शून्य, ३. विषुव, ४. चक्र एवं ५. मन्त्रार्थ-चिन्तन। इनमें 'विषुव' सात हैं।

सप्त विषुव

प्राणविषुव मन्त्रविषुव नाडीविषुव प्रशान्तविषुव शक्तिविषुव कालविषुव तत्त्वविषुव

१. प्राणविषुव— प्राण, आत्मा एवं मन के संयोग को ही 'प्राणविषुव' कहते हैं—

प्राणात्ममानसानां संयोगः प्राणविषुवाख्यः।। (१.४३)

आत्मा प्राणा मनश्चेत्येतेषामैक्यं प्राणविषुवसंज्ञमिति केचित्।

२. मन्त्रविषुव— आत्मा के रूप में भावना करना 'मन्त्रविषुव' है। प्रथम कूट के नाद एवं व्यष्टि-समष्टिभेद से अनाहत से आरम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र तक उत्पन्न होने वाले नाद एवं चारो बीज तथा आत्मा के नादमय विभावना को 'मन्त्रविषुव' कहते हैं—

क. प्राण, आत्मा और मन का संयोग = 'प्राणविषुव'।

ख. नाद, चारो बीज एवं आत्मा की नादमय विभावना = 'मन्त्रविषुव'।

प्राथमिककूटनादे त्वनाहताद् ब्रह्मरन्ध्रान्ते।
व्यष्टिसमष्टिभेदाद्बीजचतुष्कस्य च स्वस्य।
ऐक्येन नादमयताविभावनं मन्त्रविषुवाख्यम्।।

प्राथमिक कूट के नाद में बीजचतुष्क की एकात्मकता या उसके साथ ऐक्य, अपनी आत्मा एवं 'आधारचक्र' से उत्थित नाद के साथ ऐक्य 'मन्त्रविषुव' है—

आधारोत्थितनादे तु लीनं बुद्ध्वात्मरूपकम्।
संयोगेन वियोगेन मन्त्रार्णानां महेश्वरि।
अनहताद्याधारान्तं नादात्मत्वविचिन्तनम्।
विषुवम् .... ।।

३. नाडीविषुव— मूल मन्त्र के द्वारा ६ चक्रों एवं १२ ग्रन्थियों का भेदन होने पर मध्य नाड़ी (सुषुम्ना नाड़ी) में नादस्पर्श होता है। 'मूलाधार' से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त बीजशिखरवर्ती नाद के उच्चारित होने पर 'नाड़ीविषुव' स्पर्श का उद्भव होता है।

मूलाधार चक्र से उठने वाले नाद के उच्चारण से ब्रह्मरन्ध्र तक षट् चक्रों की द्वादश ग्रन्थियों का सुषुम्ना के मार्ग से ही (ग्रन्थियों का) भेदन करते हुये भी नाड़ीनाद एवं वर्णों के संयोग को 'नाड़िका-विषुव' कहते हैं—

आधारोत्थितनादस्योच्चाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तम्।
षट्चक्राणां ग्रन्थीन् द्वादशभिन्दन् सुषुम्णयैव यथा।
नाडीनादार्णनां संयोगो नाडिकाविषुवम्।।(१.४५-४६)

मूलाधार चक्र से षट् चक्रों के मध्य— नीचे एवं ऊपर भिन्न-भिन्न ग्रन्थियाँ हैं। सब द्वादश ग्रन्थियाँ हैं। उनका भेदन करने पर सुषुम्णा नाड़ी मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त व्याप्त हो जाती है। उसी मार्ग से नाद का और वर्णपंक्ति का नाड़ीसंयोग की भावना के साथ उच्चारण करना 'नाड़ीविषुव' है— 'तेनैव मार्गेण नादस्य वर्णपंक्तेश्च नाडीसंयुक्तत्वेन भावनयोच्चारणं नाडीविषुवमित्यर्थ:।'

मूलाधारोत्थित नाद के उच्चारण से ब्रह्मरंध्रान्त ६ चक्रों में स्थित द्वादश ग्रन्थियों का सुषुम्णा नाड़ी द्वारा किया गया भेदन तथा नाड़ी-नाद एवं वर्ण का संयोग ही 'नाड़ीविषुव' कहलाता है।

४. प्रशान्तविषुव— नादन्त तक मन्त्रावयवों की 'शक्ति' में लयभावना 'प्रशान्तविषुव' कँहलाती है।

'रेफ' एवं 'कामकला' (ई) तथा 'बिन्दु' से आरम्भ करके 'ह्रीं' के 'नादान्त' तक एक सूक्ष्मतर नाद आविर्भूत होता है। इस सूक्ष्मतर नाद का शक्ति में विलय (या उसके साथ एकीभाव) ही 'प्रशान्तविषुव' कहलाता है—

रेफे कामकलार्णे हार्दकलायां च बिन्द्वादौ।
नादान्तावधि नाद: सूक्ष्मतरो जरयते तत्र।।
शक्तेर्मध्ये तल्लयचिन्तनमुदितं प्रशान्तविषुवाख्यम्।।

तृतीय कूट में स्थित रेफादिक सातों स्थानों में, आधार चक्र से उत्पन्न नाद सूक्ष्मतर अवस्था में उपनीत हो जाता है और अभिघात के कारण उत्तरोत्तर क्षणों में 'कांस्य' एवं 'ताल' ध्वनियों (नादों) का आविर्भाव हो जाता है। वहाँ पर उस 'नाद' की 'शक्ति' में लयभावना 'प्रशान्तविषुव' कहलाती है— 'तस्य शक्तौ लयो भाव्यम्।'

५. शक्तिविषुव— 'शक्ति' के मध्य में स्थित नाद का 'समना'पर्यन्त चिन्तन 'शक्ति-विषुव' कहलाता है। 'शक्ति' के साथ लीन इस नाद की भावना 'समना' में लीन रूप में करनी चाहिये। इसे ही 'शक्तिविषुव' कहते हैं—

शक्त्यन्तर्गतनादं समनायां भावयेल्लीनम्।।

शक्तिस्थानादूर्ध्वं पुनरुज्जीवितस्य नादस्य सूक्ष्मतमस्य व्यापिकामुल्लङ्घ्य समनायां लय: शक्तिविषुवमित्यर्थ:।।

अर्थात् 'शक्ति' के स्थान से पुनरुज्जीवित सूक्ष्मतम नाद का 'व्यापिका' का अतिक्रमण करके 'समना' में लय हो जाना ही 'शक्तिविषुव' कहलाता है।

'समना' तक ही 'काल' का राज्य या काल की सीमा है; किन्तु 'नाद' की सीमा काल से ऊपर भी है। कालातीत 'उन्मना' तक नाद के चिन्तन को 'कालविषुव' कहते हैं। 'उन्मना' कालातीत है, वहाँ तक काल नहीं पहुँच पाता। कालविषुव के बाद 'तत्त्वविषुव' आता है।

६. कालविषुव— उक्त नाद की भावना 'उन्मनी' में करने पर 'कालविषुव' की आख्या पाता है। कालातीत 'उन्मना' तक नाद का चिन्तन 'कालविषुव' कहलाता है। 'समना' के ऊर्ध्व में पुनरुज्जीवित अत्यन्त सूक्ष्मतम नाद का 'उन्मना' में लय 'कालविषुव' कहलाता है—

समनोर्ध्वं पुनरुज्जीवितस्यान्त्यन्तं सूक्ष्मतमस्य नादस्योन्मन्यां लयः कालविषुवमित्याह।

७. तत्त्वविषुव— 'ककार' से 'उन्मना' तक एवं 'अकुल' से 'उन्मना' तक के प्रदेशों में स्थित 'श्रीविद्या' के विभिन्न कूटों के अंगों को व्याप्त करते हुये समस्त ३१७ त्रुटियों एवं ३-१.२ निमेषों को व्याप्त करते हुये नाद की अनुभूति तत्त्वज्ञान का आविर्भाव करती है । यही शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति का मूल हेतु 'तत्त्वविषुव' कहलाता है—

श्रीविद्याकूटावयवेषु ककारादिषून्मनान्तेषु।
अकुलादिकोन्मनान्तप्रदेशसंस्थेषु सकलेषु।
अध्युष्टिनिमेषोत्तरसप्तदशाधिकत्रयत्रुटिभिः।
उच्चरिते नादे सति तस्यान्ते तत्त्ववेदनं भवति।
तदिदं चैतन्याभिव्यक्तिनिदानं तु तत्त्वविषुवाख्यम्।।

३२ पद्मों में अधस्तन दो पद्म एवं अकुल चरम पद्म है। अन्य 'कुलपद्म' है। यद्यपि मूलाधारनामक कुलपद्म से ही विद्याक्षरों का आरम्भ होता है तथापि चक्रराज की 'सकल' नामक भावना द्वारा अधस्तन सहस्रदल कमल से आरम्भ करके 'अकुले विषुसंज्ञे च' (योगिनी हृदय/चतुःशती) में उक्त दृष्टि के अनुसार कुलाकुल विद्याओं में अभेद होने के कारण 'श्रीविद्या' का भी वहीं से आरम्भ (तन्त्रों में) माना गया है।

'निमेष' नयनों के स्पन्दकाल को कहते हैं— 'निमेषो लोचनस्पन्दकालः'। इस निमेष का तीन हजारहवाँ अंश 'त्रुटि' कहलाता है—

स्वस्थे नरे समासीने यावत्स्पन्दति लोचनम्।
तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्परः परिकीर्तितः।
तत्परस्य शतांशस्तु त्रुटिरित्यभिधीयते।।

निमेषो लोचनस्पन्दकालः। तस्य त्रिसहस्रतमोऽशस्त्रुटिः।।

इस प्रकार १०८१७ (अयुतोत्तराष्टशतोत्तरसप्तदश) त्रुटिपर्यन्त विद्यावयवों के स्थान से संलग्नतापूर्वक नादोच्चारण करने पर 'तत्त्व' या 'स्वसंविद' के भेद का बोध होता है। उसका यह उच्चारण ही 'तत्त्वविषुव' है—

अयुतोत्तरशतोत्तरसप्तदशत्रुटिपर्यन्तं विद्यावयवस्थानसंलग्नतापूर्वकं नादोच्चारणे कृते

सति तत्त्वस्य स्वसंविदभेदस्य बोधो भवति। तदिदमुच्चारणं तत्त्वविषुवम्।।

आचार्य भास्कर ने जप के पाँच अंग स्वीकार किये हैं। वे हैं— मन्त्र के वर्णों का उच्चारण, १. मन्त्रोच्चारण के समय 'अवस्था' का चिन्तन, २. मन्त्रोच्चारण के समय 'शून्यों' का चिन्तन, ३. मन्त्रोच्चारण के समय 'विषुवों' का चिन्तन, ४. मन्त्रोच्चारण के समय ५, ६, ७ एवं ९ चक्रों का चिन्तन तथा ५. मन्त्रोच्चारण के समय मन्त्र के अर्थ का चिन्तन। कहा भी है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थांश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

नाद का अन्त और तत्त्वबोध— यद्यपि 'नाद' ही 'तत्त्व' (परम सत्य) का अभिव्यञ्जक है; किन्तु जब तक नाद का अन्त नहीं हो जाता, तब तक तत्त्वबोध नहीं होता । नादान्त शक्ति एवं समना तक कहीं भी 'नाद' का अन्त नहीं होता। शाक्त योगी तो 'उन्मना' में भी नाद का अन्त नहीं मानते। उन्मना के ऊपर अर्थात् उन्मना का भेदन करने के अनन्तर ही 'नाद' का लय हो जाता है। इसी सिद्धिभूमि में तत्त्वबोध या स्वात्म-साक्षात्कार होता है । इसीलिये 'तत्त्वविषुव' को ही चैतन्याभिव्यक्ति का स्थान माना गया है।

परमपद— चैतन्याभिव्यक्ति के बाद ही 'परम पद' है। परमपद ६ शून्य, ५ अवस्था, ७ विषुव के कोलाहल से अतीत एवं विश्व की परम विश्रान्तभूमि और परमानन्दस्वरूप है। यही है— 'परमशिव' की अवस्था। उन्मनापर्यन्त समस्त मन्त्रावयवों के १०८१७ बार उच्चारित होने पर ही 'नाद' का अन्त होता है और तदनन्तर 'तत्त्वज्ञान' का उदय होता है। इसके बाद ही 'परमपद' (परमशिवावस्था) की सम्प्राप्ति होती है।

पाँच अवस्थायें— जपांग के रूप में अवस्था-चिन्तन को भी एक अंग स्वीकार किया गया है। प्रणव के जो १२ अवयव हैं, उनमें प्राथमिक अंगों के रूप में १. जाग्रत् अवस्था, २. स्वप्नावस्था एवं ३. सुषुप्ति अवस्था (प्रणव के अकार, उकार एवं मकार के वाचक) को स्वीकार किया गया है और इन्हें 'अ', 'उ' एवं 'म' का प्रतिनिधि माना गया है।

इसके बाद जो बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका (व्यापिनी), समना एवं उन्मना के रूप में नादावस्थायें हैं, वे 'तुरीयावस्था' एवं 'तुरीयातीतावस्था' की वाचिका हैं।

बीजमन्त्र या प्रणव के ५ अंगों के रूप में ५ अवस्थायें

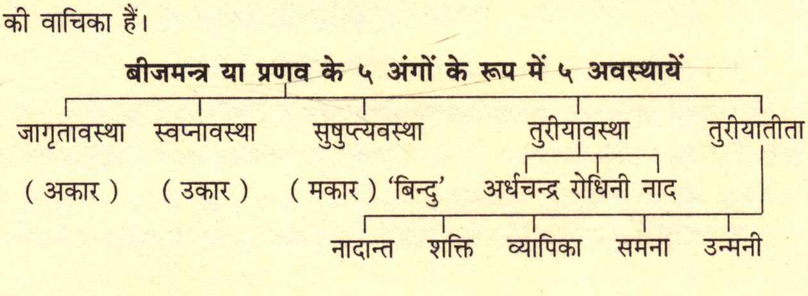

हृल्लेखा के अंग

हृल्लेखा 'ह्रीं' के अवयव

- व्योम — ह् — जाग्रत् अवस्था
- अग्नि — र् — स्वप्न अवस्था
- वामलोचना — ई / ँ — सुषुप्ति अवस्था=बिन्दु
- तुरीयावस्था
  - अर्धचन्द्र
  - रोधिनी
  - नाद
- तुरीयातीतावस्था
  - नादान्त
  - शक्ति
  - व्यापिका
  - समना
  - उन्मना

हृल्लेखायाः स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तयः।।

व्यापिकासमनोन्मन्य इति द्वादशसंहतिः।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते।। (१.१२-१३)

अवस्थाओं का स्वरूप

१. जाग्रत् अवस्था— जिस अवस्था में दस इन्द्रियों द्वारा जागतिक व्यापार निष्पादित होता है, उसे 'जाग्रत् अवस्था' कहते हैं। इसका प्रकाश ही 'करण' है।

२. स्वप्नावस्था— जिस अवस्था में आन्तर चार प्रकार के करणों द्वारा व्यवहार की निष्पत्ति होती है, उसी का नाम है— 'स्वप्नावस्था'।

३. सुषुप्ति अवस्था— स्वप्न में विद्यमान अन्तःकरण-वृत्ति का लय होने पर सब इन्द्रियों का उपरम जिस अवस्था में उदित होता है, उसका ही नाम है— 'सुषुप्ति'। सुषुप्ति की भावना का स्थान भ्रूमध्य में स्थित 'बिन्दु' में है। इस बिन्दु को हृल्लेखा का 'ऊर्ध्वबिन्दु' जानना चाहिये।

४. तुरीयावस्था— स्वात्म-चैतन्य की अभिव्यक्ति के लिये नादाविर्भाव ही 'तुरीय' का स्वरूप है। अर्धचन्द्र, रोधिनी एवं नाद —इन मन्त्रावयवों में इसकी भावना करनी चाहिये।

५. तुरीयातीतावस्था— यह अवस्था परमानन्दस्वरूप है। यद्यपि यह मन और वाणी से अतीत है, तथापि मन एवं वाणी का आभास देह में अवस्थानकाल में अधिकारानुसार किसी-किसी को रह ही जाता है।

नादान्त से शक्ति, व्यापिनी और समना के बाद उन्मना तक तुरीयातीतावस्था व्याप्त रहती है। उन्मना के बाद किसी भी प्रकार की कोई अवस्था होती ही नहीं। 'हृदयजप' मध्यमा-मार्ग में प्रवेश का पर्याय है।

जप के भेद

- वैखरी जप के भेद
  - वैखरी
  - उपांशु
  - मानस
- स्वभावजप
  - हृदय में जप
  - नाभि में जप
  - मूलाधर में जप

मन्त्रावयवों का रहस्य— मन्त्र के जप के अवयवभूत जो उच्चारण काल, नव नाद, पाँच अवस्था, छः शून्य, पाँच चक्र आदि हैं, उनकी जपक्रिया में व्यावहारिक उपयोगिता क्या है? जप तो इन्हीं अवयवों की समष्टि है—

एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

१. अवस्था
२. शून्य
३. नाद
४. उच्चारणकाल
५. चक्र
६. अर्थभावन
७. विषुव

→ **जप** →

१. तुरीयातीतावस्था की प्राप्ति
२. परमशून्य की प्राप्ति
३. उन्मना की प्राप्ति
४. १/५१२हवीं मात्रा की प्राप्ति (काल के १/५१२हवें भाग में अवस्थान)
५. शून्य चक्र की प्राप्ति
६. तत्त्वविषुव की प्राप्ति
७. महावाक्यार्थ की प्राप्ति

विषुव →

१. प्राण-आत्मा-मन का संयोग (प्रा० वि०)
२. नाद, बीजचतुष्टय एवं आत्मा में एकता स्थापित करके सभी में नाद की विभावना (मं० वि०)
३. १२ ग्रन्थियों का भेदन करने वाले नाड़ी-नाद एवं वर्णों का संयोग (ना० वि०)
४. सूक्ष्म नाद का शक्ति में विलय (प्र० वि०)
५. शक्ति में लयीभूत नाद का समना में विलय होने का चिन्तन (श० वि०)
६. समना में लयीभूत नाद की उन्मनी में विलयभूतता का अनुचिन्तन (का० वि०)
७. तदिदं चैतन्याभिव्यक्तिनिदानं तु—
क. तत्त्वविषुवाख्यम्।
ख. उच्चरिते नादे सति तस्यान्ते तत्त्ववेदनं भवति।

विषुवसाधना
→ तत्त्वविषुव
→ शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति
→ तत्त्ववेदन

विषुव-साधना की निष्पत्ति है— तत्त्वविषुव (तत्त्ववेदन, शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति)

१. अवस्था- साधना
२. शून्य- साधना
३. नाद- साधना
४. उच्चारण- साधना → जप
५. चक्र- साधना
६. विषुव- साधना
७. अर्थभावन- साधना
८. १/५१२हवीं काल-मात्रा में अवस्थान

	साधना	निष्पत्ति
१.	विषुव-साधन	'तत्त्वविषुव' तत्त्ववेदनरूप चैतन्य की अभिव्यक्ति।
२.	अवस्था-साधना	तुरीयातीतावस्था की प्राप्ति
३.	शून्य-साधना	परमशून्य (उन्मना) की प्राप्ति
४.	नाद-साधना	उन्मना की प्राप्ति। उन्मना से परमपद की प्राप्ति : परमशिवत्व की प्राप्ति। महाबिन्दु की प्राप्ति। शिव-शक्ति के नित्य सामरस्य की अवस्था की प्राप्ति।
५.	चक्र-साधना	सहस्रार या सहस्रदल पद्म की प्राप्ति = शिवभाव की प्राप्ति
६.	मन्त्रार्थ-चिन्तन-साधना	महावाक्यार्थ। 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म'

उच्चारणगत कालतत्त्व— मन्त्रावयवों का काल अत्यन्त सूक्ष्म है। यह मन्त्र-वाच्य देवता का कालसापेक्ष बाह्य स्थूल काल नहीं है। स्थूल काल बाह्यगत है। सूक्ष्म काल का अतिक्रमण होने पर स्थूल काल भी अतिक्रान्त हो जाता है।

अनुभव-स्थान—
'अकार' का हृदय में है।
'उकार' का कण्ठ में है।
'मकार' का तालु के मध्य में है।

१. 'बिन्दु' का भ्रूमध्य में, २. 'निरोधिनी' का ललाटान्त में, ३. 'नाद' का मूर्द्धा में, ४. 'शक्ति' का ३६ अंगुलरन्ध्रान्त में, ५. 'व्यापिनी' का त्वक् शेष में, एवं ६. 'समना' का केश-शेष में अनुभव होता है।

आन्तर जप और बाह्य जप में अन्तर यह है कि बाह्य जप में मन्त्र के प्रत्येक अक्षर का पृथक्-पृथक् उच्चारण होता है, किन्तु आन्तर जप में मन्त्राक्षरों का पृथक्-पृथक् उच्चारण नहीं होता, अपितु सभी का एक साथ उच्चारण होता है और वह भी नाद के रूप में तथा स्वयम्भू जप होता है।

मन्त्र-जप और अर्थभावन

पतञ्जलि कहते हैं— 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (योगसूत्र)

आचार्य भास्कर राय ने वरिवस्यारहस्यम् के द्वितीय अंश एवं 'प्रकाश' में मन्त्र-जप की दिशा में मन्त्रार्थ-बोध को सर्वाधिक महत्त्व दिया है; वे कहते हैं—

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।।

नार्थज्ञानविहीनं शब्दस्योच्चारणं फलति।
भस्मनि वह्निविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति।। (२.५४)

अर्थमजानानां नानाविधशब्दमात्रपाठवताम्।
उपमेयश्चक्रीवान् मलयजभारस्य वोढैव।। (२.५५)

मन्त्र का अर्थ जाने विना मन्त्र का जप ठीक उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार कि चन्दन के गुणों को न जानने वाला गदहा अपने ऊपर लदे चन्दन की लकड़ी को मात्र भारस्वरूप ही मानता है—

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।

मन्त्रार्थों के भेद— मन्त्रार्थों के कुल पन्द्रह भेद कहे गये हैं और वे हैं—

१. प्रतिपाद्यार्थ	६. रहस्यार्थ	११. शाक्तार्थ
२. भावार्थ	७. महातत्त्वार्थ	१२. सामरस्यार्थ
३. सम्प्रदायार्थ	८. नामार्थ	१३. समस्तार्थ
४. निगर्भार्थ	९. शब्दरूपार्थ	१४. सगुणार्थ
५. कौलिकार्थ	१०. नामैकदेशार्थ	१५. महावाक्यार्थ

योगिनीहृदय में मात्र छः अर्थों का ही प्रतिपादन किया गया है।

श्रीविद्या के १५ अर्थ क्यों?— 'पञ्चदशी विद्या' के वर्णों की संख्यानुसार 'श्रीविद्या' के अर्थ हैं— 'महावाक्यार्थ इत्यर्था: पञ्चदश्या: स्वसम्मिता:।' 'कादिविद्यायां सप्तत्रिंशद्वर्णा: स्फुटीकरिष्यन्ते, तत्सम्मिता अर्था इत्यर्थ:।' चूँकि सम्पूर्ण विद्या में कुल १५ अक्षर हैं— 'क ए ई ल ह्रीं'-५, 'ह स क ह ल ह्रीं'-६ एवं 'स क ल ह्रीं'-४ (योग-१५); इसीलिये इस विद्या का नाम भी 'पञ्चदशी' या 'पञ्चदशाक्षरी' है। इसी दृष्टि से 'पञ्चदशी विद्या' के १५ अर्थ किये गये हैं—

अथात: पूर्णगायत्र्या: प्रतिपाद्योऽर्थ आदिम:।
भावार्थ: सम्प्रदायार्थो निगर्भार्थस्तुरीयक:।।५७।।

कौलिकार्थो रहस्यार्थो महातत्त्वार्थ एव च।
नामार्थ: शब्दरूपार्थश्चार्थो नामैकदेशग:।।५८।।

शाक्तार्थः सामरस्यार्थः समस्तसगुणार्थकौ।
महावाक्यार्थ इत्यर्थाः पञ्चदश्याः स्वसम्मिताः।।

'जप' के साथ पञ्चावस्थायें भी संलग्न हैं। इनमें भी 'तुर्य' एवं 'तुर्यातीत अवस्था' सर्वोच्च है—

तुर्यातीतं सुखस्थानं नादान्तादिस्थितं प्रिये।
अत्रैव जपकाले तु पञ्चावस्थाः स्मरेद्बुधः।। (योगिनीहृदय)

मन्त्र के अवयवभूत अक्षरों का अर्थ 'भावार्थ' है।

सर्वकारणाकारणपूर्ण परमेश्वररूप मूल गुरु के मुख से अपने मन्त्र का उद्भव एवं उसका अवतरणक्रम या परम्परा का ज्ञान ही मन्त्र का 'सम्प्रदायार्थज्ञान' है।

परमेश्वर, गुरु एवं निज आत्मा का ऐक्यानुसन्धान ही 'निगर्भार्थ' है।

चक्र, देवता, विद्या, गुरु और साधक का ऐक्यानुसन्धान ही 'कौलिकार्थ' है।

मूलाधारस्थ कुण्डलिनीरूपा विद्या ही साधक की स्वात्मा है— इस प्रकार की भावना का नाम ही 'रहस्यार्थ' है।

निष्कल, अणु से अणुतर और महान् से महत्तर, निर्लक्ष्य, भावातीत, व्योमातीत परम तत्त्व के साथ प्रकाशानन्दरूप से विश्वातीत और विश्वमय निज गुरु-प्रबोधित निर्मल स्वभाव स्वकीय आत्मा का ऐक्यानुप्रवेश ही 'महातत्त्वार्थ' है।[१]

योगिनीहृदय में प्रतिपादित अर्थ-प्रकार— योगिनीहृदय में श्रीविद्या के मात्र छः अर्थों का ही प्रतिपादन किया गया है और वे छः अर्थ हैं— भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्त्वार्थ। इनका विवेचन निम्नवत् है—

१. भावार्थ— अक्षरों में अनुगत अर्थ या अक्षरार्थ ही 'भावार्थ' है—

अक्षरार्थो हि भावार्थः केवलः परमेश्वरि। (मं०सं०-१६)
श्रीसौभाग्यविद्याऽवयवपञ्चदशाक्षराणामर्थो भावार्थः।। (अमृतानन्द)

यः केवलस्तात्पर्यादिनाऽनवगतोऽक्षराणां वृत्यैव लभ्योऽक्षरार्थोऽक्षरस्वभावलभ्य-त्वात्स भावार्थः। (सेतुबन्ध : भास्कर राय)

कूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम्।
आद्यां शक्तिं भावयन्तो भावार्थमिति मन्वते।।

षड्विधस्तं तु देवेशि कथयामि तवानघे।
भावार्थः सम्प्रदायार्थो निगर्भार्थश्च कौलिकः।।

तथा सर्वरहस्यार्थो महातत्त्वार्थ एव च।
अक्षरार्थो ही भावार्थः केवलः परमेश्वरि।।

(योगिनीहृदय)

---

१. 'तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि' (पृ०-२९०)

'अम्बा' (देवी), 'मन्त्र' एवं 'जगत्' के अभेद का प्रतिपादन करने वाला अर्थ ही 'भावार्थ' है—

तेनाम्बामनुजगतामभेद एवात्र भावार्थ:।। (वरिवस्यारहस्यम्)

२. सम्प्रदायार्थ— जिस प्रकार 'कार्य' एवं 'कारण', 'वाच्य' एवं 'वाचक' तथा 'ब्रह्म' एवं 'जगत्' में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार 'जगत्' एवं 'विद्या' में भी कोई भेद नहीं है। यही 'सम्प्रदायार्थ' है—

जन्यजनकयोर्भेदाभावाद्वाच्यस्य वाचकेनापि।
ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थ:।।८।।

सम्यग्गुरुशिष्यपारम्पर्यक्रमायातमर्यादानुसारेण दीयत इति सम्प्रदायार्थ:।।
(भास्कर राय)

सम्यग् याथार्थ्येन कर्णे शिष्यस्य प्रदीयत इति सम्प्रदाय:।(अमृतानन्द)

३. निगर्भार्थ— सर्वातिशायी सत्त्व परमशिव में एकात्मता या अन्य पदार्थों का अभाव, अपने दीक्षागुरु एवं परमशिव में अभेद तथा उस गुरु की अनुकम्पा से अपने एवं उस परमशिव में अभेद-दर्शन ही 'निगर्भार्थ' है—

परमशिवे निष्कलता तदभिन्नत्वं स्वदेशिकेन्द्रस्य।
तत्करुणात: स्वस्मिन्नपि तदभेदो निगर्भार्थ:।।[1]

४. कौलिकार्थ— माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं— इन पाँचों में भेदाभाव ही मन्त्र का 'कौलिकार्थ' है—

इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरु: स्वयं चेति।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्।।१०२।।

५. रहस्यार्थ— कुण्डलिनी साक्षात् विद्या एवं माता से अभिन्न है। इससे अपने को अभिन्न देखना ही श्रीविद्या का 'रहस्यार्थ' है—

साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता।
अस्या: स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थ:।।१-१०७।।

ईदृश्या: कुण्डलिन्या मातुर्विद्याया: स्वस्य चाभेद इति रहस्यरूपोऽप्रकाश्योऽर्थ इत्यर्थ:।।
(प्रकाश)

६. महातत्त्वार्थ— वाणी, मन एवं इन्द्रियों द्वारा अगम्य अर्थात् ३६ तत्त्वों से परे, महान् से भी महान्, सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म, व्योम से ऊर्ध्ववर्ती, विश्व से अभिन्न, चित् एवं आनन्द से अभिन्न परब्रह्म में अपने-आपको उस ब्रह्म के साथ अभेद की प्राप्ति हेतु नियुक्त करना चाहिये। यही श्रीविद्या का 'महातत्त्वार्थ' है—

---

१. वरिवस्यारहस्यम्— 'स्वस्य गुरुद्वारा शिवगर्भे प्रवेशसम्पादकत्वादेतज्ज्ञानस्य विषय: शिवगुर्वात्मैक्यं निगर्भार्थपदवाच्यम्।' (प्रकाश)

वागिन्द्रियैरगम्ये तत्त्वातीते महत्तरेऽणुतरे।
व्योम्नोऽप्युपरिस्थितिमतिविश्वाभिन्ने चिदानन्दे।।

ब्रह्मणि परे नियोज्य: स्वात्मा तदभेदसम्प्राप्त्यै।
एष महातत्त्वार्थ: श्रीविद्याया: शिवेनोक्त:।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

७. नामार्थ— यह 'श्रीविद्या' अपने घटक अक्षरों द्वारा व्यक्त अर्थ से अभिन्न है। इसका स्वरूप इसका प्रत्येक अक्षर है। श्रीविद्या का यही 'नामार्थ' एवं 'शब्दरूपार्थ' है—

तत्तद्वर्णार्थेयं तत्तद्वर्णस्वरूपेयम्।
इति तु श्रीविद्याया नामार्थ: शब्दरूपार्थ:।।१-११०।।

८. नामैकदेशार्थ— कल्याणी, एकाक्षरी, ईशित्री, ललिता आदि देवी के ३०० नामों का तात्पर्य मन्त्र के आद्यक्षरों द्वारा व्यक्त होता है। नाम के एकदेश (अंश) के ग्रहण द्वारा समस्त नाम के ग्रहण का बोध होता है। समस्त नाम का अर्थ नाम के एक अंश का अर्थ है। नाम के एकांश द्वारा समस्त नाम के अर्थाभिव्यञ्जन के उपर्युक्त सिद्धान्त को नामत्रिशती के प्रत्येक नाम में प्रयुक्त करने से तिथियों की संख्या के बराबर बिन्दु (१५ शून्य) एवं उनके पूर्व क्रमश: ८,६,७,२ एवं ३ (३२७६८०००, ०००, ०००, ०००, ०००) अर्थों के भेद हो जाते हैं।

कल्याण्येकाक्षर्यावीशित्री चापि ललिता च।
इत्थं नामत्रिशतीवाच्योऽर्थस्तत्तदक्षरस्यापि।।१११।।

नामैकदेशमात्रे नामग्रहणस्य लोकसिद्धत्वात्।
नामोपस्थितिगम्य: प्रोक्तो नामैकदेशार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

तिथिमितबिन्दुगणोत्तरगजरसगिरिदस्त्ररामसंख्याका अर्था: भवन्ति योगान्नाम्नो नामैकदेशस्य। (वरिवस्यारहस्यम्)

९. शाक्तार्थ— शाक्तों की मान्यता के अनुसार प्रत्येक अक्षर में शक्ति अधिष्ठित है। इन अक्षरों तथा वामा, इच्छा एवं अन्य शक्तियों में अभिन्नता है और यही है— 'शाक्तार्थ'।

अन्वयितव्योऽक्षरश: शक्ते: शाक्तैर्विभाव्यत्वात्।
वामेच्छादिशक्तिमयत्वोक्तेरेष शाक्तार्थ:।।२-११८।।

१०. सामरस्यार्थ— 'क, ह, ल' एवं 'स' का अर्थ 'शक्ति' है। हल्लेखा (ह्रीं) का अर्थ शिव एवं शक्ति का सामरस्यस्वरूप 'परब्रह्म' है। उक्त तीनों कूटों में से प्रत्येक का अर्थ यह है कि 'शिव एवं शक्ति के सामरस्य के कारण ब्रह्म ही शिव एवं शक्ति दोनों है।' यही श्रीविद्या का 'सामरस्यार्थ' है—

कहयोर्लसयोरर्थौ शिवशक्ती शुद्धयोरचो: शक्ति:।
उभयो: समरसभावो हल्लेखाया: परं ब्रह्म।।

ब्रह्मैव शिव: शक्तिश्चेति प्रत्येककूटार्थ:।
शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया एष सामरस्यार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-२.१२०)

११. समस्तार्थ— श्रीविद्या के अन्तर्गत आने वाले अनेक पदों एवं गुणों का समास तथा समस्त पुरुषार्थों के साधन का सारकथन ही 'समस्तार्थ' है—

बहूत्तरसमासयोगात् समस्तपुरुषार्थसाधनत्वोक्ते:।
संक्षेपात् सारोक्ते: श्रीविद्याया: समस्तार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-२.१३३)

१२. सगुणार्थ— समस्त कलाओं से युक्त बह्म 'स क ल' है— यह तृतीय कूट का अर्थ है। इस प्रकार समस्त गुणगण के कथन द्वारा विद्या का 'सगुणार्थ' प्रतिपादित किया गया है—

सकलकलाभि: सहितं सकलं ब्रह्म तु तृतीयकूटार्थ:।
इत्थं गुणगणकथनाद्विद्याया एष सगुणार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-२.१४०)

१३. महावाक्यार्थ— जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप का लाक्षणिक वाक्यों द्वारा वर्णन करके उनका अभेद स्थिर करना ही 'महावाक्यार्थ' है—

एवमवान्तरवाक्यैर्जीवब्रह्मस्वरूपमभिधाय।
तदभेदो वर्णित इत्येष महापूर्ववाक्यार्थ:।।

(वरिवस्यारहस्यम्-१.१४०)

'जप' के साथ 'अर्थभावन' अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इसके विना जप अपूर्ण रहता है। भास्कर राय कहते हैं कि 'पुरुषार्थों के आकांक्षी लोगों को अर्थज्ञान आवश्यक है। अर्थों के प्रति अनादरभाव रखने वालों को इष्टाप्ति नहीं होती; प्रत्युत उसके स्थान पर उन्हें अनर्थों का विघ्न कष्ट देता है'—

पुरुषार्थानिच्छद्भि: पुरुषैरर्था: परिज्ञेया।
अथानादरभाजां नैवार्थ: प्रत्युतानर्थ:।। (वरिवस्यारहस्यम्)

पञ्चदशी विद्या की जपांगस्वरूप अवस्थायें

जागृति अवस्था	स्वप्न अवस्था	सुषुप्ति अवस्था	तुरीय अवस्था	तुरीयातीत अवस्था

योगिनीहृदय में इसका स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

शून्यषट्कं तथा देवि ह्यवस्थापञ्चकं पुन:।।

विषुवं सप्तरूपञ्च भावयन् मनसा जपेत्।
अग्न्यादिद्वादशान्तेषु त्रींस्त्रीन् त्यक्त्वा वरानने।
शून्यत्रयं विजानीयादेकैकान्तरत: प्रिये।
शून्यत्रयात्परे स्थाने महाशून्यं विभावयेत्।।

जागृति अवस्था—

प्रबोधकरणस्याऽथ जागरत्वेन भावनम्।।

वह्नौ देवि ! महाजाग्रदवस्था त्विन्द्रियद्वयै:।
आन्तरै: करणैरेव स्वप्नमायावबोधक:।।

गलदेशे सुषुप्तिस्तु लीनपूर्वस्य वेदनम्।
अन्त:करणवृत्तीनां लयतो विषयस्य तु।।

पूर्वार्णानां विलोकेन भ्रूमध्ये बिन्दु संस्थिता।।[1] (योगिनीहृदय)

पञ्चदशी विद्या— मन्त्र, मात्रा और उसका रहस्य— योगिनीहृदय में 'चतु:षष्टि-स्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:' इस प्रकार कहा गया है। अत: इस दृष्टि से उन्मनाकाल मात्रा का ५१२हवाँ भाग है (द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भाग: मात्राया: काल: उन्मनाकाल:) और मात्रा का काल ५१२ लवों की समष्टि है। 'मात्रा' से 'अमात्रा' की यात्रा ही प्रणव के अकार से 'महाबिन्दु' की यात्रा है— 'वैखरी' से 'परा' एवं 'परा' से 'सूक्ष्मा वाक्' की यात्रा है।

आचार्य भास्कर वरिवस्यारहस्यम् में कहते हैं कि 'ई, ए' एवं 'ह्री' तीन मात्राकाल वाले हैं (त्रिमात्रिक हैं)। अन्य वर्णों का उच्चारणकाल अर्धमात्रासहित मात्राकाल है। बिन्दु का काल अर्धमात्राकाल है। उत्तरवर्ती वर्णों का काल पूर्ववर्ती वर्णों का आधा होना चाहिये। वृत्तचन्द्रोदय में कहा गया है कि 'लवानां कालपीलूनां षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्। मात्रैका' अर्थात् १ मात्रा २५६ लवों की होती है। अत: बिन्दु १२८ लवों की समष्टि है। योगिनीहृदय के मत में—

दीपाकारोऽर्धमात्रश्च ललाटे वृत्त इष्यते।
अर्धचन्द्रस्तथाकार: पादमात्रस्तदूर्ध्वके।।

वरिवस्यारहस्यम् के मतानुसार—

मध्येकालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकार:।
तदुपरि गतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थ: कान्त्या तथाकृत्या।। (भास्कर राय)

अर्थात् बिन्दु भाल के मध्य वृत्ताकाररूप में दीपवत् दीप्त है। उसके ऊपर अर्ध-चन्द्र दीप्ति एवं आकृति में अर्धचन्द्रमा के समान है।

'देशकालानवच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महत्' द्वारा भी 'उन्मना' कालानवच्छेदक ही समर्थित है; किन्तु योगिनीहृदय के 'चतु:षष्टि:' कथन के अनुसार तो 'शक्ति' का ६४वाँ भाग ही 'मात्राभाग' है।

आचार्य भास्कर राय (वरिवस्यारहस्यम्) के अनुसार—

१. तुर्यरूपं तथा चात्र वृत्तार्धादिस्तु संग्रह:। चैतन्यव्यक्तिहेतोस्तु नादरूपस्य वेदनम्।।

बिन्दु	१२८ लव
अर्धचन्द्र	०६४ लव
नाद	०१६ लव
नादान्त	०८ लव
शक्ति	०४ लव
व्यापिका	०२ लव
समना	०१ लव

उन्मना कतिपय आचार्य उन्मना का काल नहीं मानते; किन्तु कुछ मानते भी हैं।	उन्मनायाः तु नास्त्येव कालः। (भास्कर) उन्मना में काल ही नहीं है ; अतः मात्रायें भी नहीं हैं; क्योंकि मात्रायें तो काल की होती हैं।

योगिनीहृदय के अनुसार— 'द्वादशोत्तरपञ्चशततमो भागः उन्मनाकालः' अर्थात् उन्मना का काल ५१२हवाँ भाग ।

मात्राकाल—
१.हृस्वस्य उच्चारण-कालो मात्रेत्युच्यते।। (अमृतानन्द)

लवो नाम काल परमाणुः।। (सेतुबन्ध)

लव या काल-परमाणु

नलिनीपत्रसंहत्याः
सूक्ष्मसूच्यभिवेधने ।
दले दले तु यः कालः
स कालो लवसंज्ञितः।।
अतः सूक्ष्मतमः कालो
नोपलभ्यो भृगूद्वह।

किसी सुई से यदि किसी कमल को भेद कर सुई को आर-पार कर दिया जाय तो प्रत्येक दल के भेदने में जो काल लगेगा, उसे ही 'लव' (कालपरमाणु) कहा जाता है।

कालपरमाणुर्लव इत्युच्यते। (भास्कर)

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो
द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो
व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम्।।

मात्रा— षट्पञ्चाशत् उत्तरशतद्वय-लवैरेका मात्रा। (भास्कर) = २५६ लवों से 'एक मात्रा' का निर्माण होता है।

	मात्रा	**लव** (कालपरमाणु)
बिन्दु	१/२	१२८ लव
अर्धचन्द्र	१/२	०६४ लव
रोधिनी	१/२	०३२ लव
नाद	१/२	०१६ लव
नादान्त	१/२	०८ लव
शक्ति	१/२	०४ लव
व्यापिका	१/२	०२ लव
समना	१/२	०१ लव
उन्मना	→	५१२हवाँ लव या मात्रा कालशून्य है।

मात्रायें

व्यञ्जन	१/२	मात्रायें
ह्रस्व	१	मात्रा
दीर्घ	२	मात्रायें
प्लुत	३	मात्रायें

व्यञ्जन
व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम् ।

मात्रा
२५६ लवों की एक समष्टि। (वरि०) (भास्कर)

भास्कर राय : सेतुबन्ध— 'मात्रा नाम ह्रस्वस्योच्चारणकालः, स च षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयलवैर्भवति = २५६।' 'मात्रा लघ्वक्षरस्य कालः ।' (वरिवस्यारहस्यम्)

मात्रा और उच्चारणकाल— मात्रा का मन्त्र से अभिन्न सम्बन्ध है। मात्राओं का यदि विवरण दिया जाय तो वह इस प्रकार है—

प्लुत-३, दीर्घ-२, ह्रस्व-१, व्यञ्जन-१/२, बिन्दु-१/२ तथा 'मात्रा' (स्वयमेव) = २५६ लवों की एक मात्रा।

मन्त्र-साधना 'मात्रा' से 'अमात्रा' की साधना है। मात्राओं का बाहुल्य ही जड़ता है। मात्राओं का ह्रास ही मन की, अवस्थाओं की, चाञ्चल्य एवं जड़ता की दीवारों को लगातार तोड़ता जाता है।

मात्राओं के ह्रास के तारतम्य में ही तदनुकूल काल का भी ह्रास होता चलता है और भौतिकता, बहिर्मुखता एवं जड़ता का भी उसी अनुपात में ह्रास होता चलता है तथा उसी अनुपात में चैतन्य का अधिकाधिक विकास होता जाता है।

नाद की अवस्थायें (श्रूयमाणता के आधार पर)

(अश्रुत)	(श्रुत)	(अश्रुत)
जिन अवस्थाओं में नाद श्रुतिगोचर नहीं होता। १. विक्षिप्तावस्था २. क्षिप्तावस्था ३. मूढ़ावस्था	नाद की वह अवस्था, जहाँ नाद श्रुतिगोचर होता है वह अवस्था 'एकाग्रावस्था' (ज्ञान की अवस्था) है।	जहाँ नाद श्रुतिगोचर नहीं होता, वह अवस्था चित्त की निरोधावस्था है। (जहाँ मन नहीं है, वहाँ नाद नहीं है। इस अवस्था में मन की वृत्ति नहीं रहती, केवल संस्कारमात्र से ही मन रहता है।)

प्रणव-(ॐकार)-स्वरूप महामन्त्र और उसके १२ अवयव

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
अ	उ	म	बिन्दु	अर्धचन्द्र	रोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिनी	समना	उन्मना
			(शून्य)		(शून्य)		(शून्य)		(शून्य)		(शून्य) (महाशून्य, निराकार)

अ उ म (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओं के द्योतक) →

शून्य

- अवान्तर शून्य (२,४,६,८,१०)
- महाशून्य (६ठवाँ शून्य)

२,४,६,८,१०,१२ अवयव 'शून्य' कहलाते हैं।

नाद की अवस्थायें

- तुरीयावस्था: अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद
- तुरीयातीतावस्था: नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना, उन्मना

(मन और वाणी से अतीत अवस्थायें)

१. नाद का आविर्भाव ही 'तुरीयावस्था' का स्वरूप है।

२. स्वात्मचैतन्य की अभिव्यक्ति इसी 'नादतत्त्व' के विकास से होती है।

मात्रा

समात्र	अमात्र
(अ-उ-म-अर्धचन्द्र-रोधिनी-नाद-नादान्त-शक्ति-व्यापिनी-समना। किसी-किसी आचार्य के मत में 'उन्मना' भी।)	(उन्मना से परे, अवस्था से परे, मन से परे, नाद से परे = परब्रह्म 'अमात्र शिव')

मात्रा और उसका रहस्य

मात्राओं का जन्म— मात्राहीन (अमात्र) शिवस्वरूप आत्मा से 'चित्कला' का आभास 'बिन्दु' (विशुद्ध सत्त्व) के दर्पण में पड़ता है और उसके कारण स्थिर मात्रा पर आघात होता है। परिणामत: 'एक मात्रा' विभक्त होकर 'अर्धमात्रा' के रूप में रूपान्तरित हो जाती है या परिणत हो जाती है।

एक मात्रा— इस पार्थिव स्थूल जगत् की अनुभूति मन की जिस मात्रा से होती है, उसे ही 'एक मात्रा' कहते हैं। समस्त जागतिक अनुभव मन की एक मात्रा से ही प्रारम्भ होते हैं। सामान्यत: मन एक मात्रा में नहीं रहा करता। मन के एक मात्रा में अवस्थित हो जाने पर साधक में चिद्रश्मि का सम्पात होता है और उससे अर्धमात्रा आदि की अवस्थाओं में पहुँचा जा सकता है। मात्राओं का बाहुल्य ही जड़ता का कारण है। क्षिप्त, विक्षिप्त एवं विमूढ़ चित्तवृत्तियों में चाञ्चल्य के कारण मात्राओं की संख्या बढ़ती जाती है।

'चिद्रश्मि के सम्पात' की अवस्था एक मात्रा एवं अर्धमात्रा के सन्धि की अवस्था है।

मात्रा और मन्त्र— चिद्रश्मि-सम्पात से एक मात्रा ऊपर की ओर टूटना प्रारम्भ करती है। एक मात्रा ही समस्त स्थूल जगत् का मध्यबिन्दु है; क्योंकि यह समस्त विराट् जगत् 'एक मात्रा' में ही अनेक स्तरों पर फैला हुआ है। मन की मात्रा का जितना विकास होता जाता है, उतना ही मन स्थूलतर, क्षुद्रतर एवं 'चिदालोक' से दूर होता जाता है। एक मात्रा नहीं; प्रत्युत 'अर्द्धमात्रा' आदि में प्रतिफलित चैतन्य ही 'मन्त्र' है। चूँकि उसका आधार चित् है; अत: इस स्तर के चैतन्य से जाग्रत् चित्त भी मन्त्र कहा गया है। 'मन्त्र' चिद्रश्मियुक्त है। चूँकि वैखरी स्तर की चेतना में या वैखरीभाव में चैतन्य अस्फुरित एवं गुप्त है; अत: इस स्तर का मन्त्र 'मन्त्र' नहीं है, क्योंकि— 'मन्त्राश्चिन्मरीचय: तद्वाचकत्वाद्वैखरीवर्णविलासभूतानां विद्यानां त्राणता।'

आचार्य वैखरी वर्ण की मन्त्रमयता स्वीकार नहीं करते। चूँकि यह चिद्रश्मि संयुक्त मन्त्र का वाचक है; अत: इस नाते इसे भी 'मन्त्र' मान लिया जाता है।

'पश्यन्ती वाक्' में मन्त्रसाक्षात्कार होता है और ऋषित्व की प्राप्ति होती है— ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:।' यही आत्मा की 'अमृता कला' है— 'विन्देम देवतां वाचममृतामात्मन: कलाम्।'

'मध्यमा वाक्' में नादमय चिद्रश्मियाँ नित्य स्थित रहती हैं, किन्तु वे वैखरी वाक् में नहीं रहतीं। वैखरी भूमि में लक्ष्य नीचे की ओर— 'मूलाधार चक्र' की ओर रहता है, जब कि मध्यमा की भूमि में अन्तर या ऊर्ध्व की ओर पलट जाता है। 'मध्यमा' के एक छोर पर पाशव वाक् 'वैखरी' है तो दूसरे छोर पर दिव्य वाक् 'पश्यन्ती' स्थित है।

'पशुभाव' से 'दिव्यभाव' में यात्रा करने के लिये 'मध्यमा' एक सेतु है। 'मध्यमा भूमि' अपने को मन्त्र के रूप में प्रकट करने के कारण 'मन्त्रमयी भूमि' है।

बिन्दु— 'बिन्दु' मात्रा से मात्राहीन में यात्रा करने का एक मार्ग है। यहाँ त्रिपुटी एकाकार है अर्थात् ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान एकाकार है।

'बिन्दु' से पूर्व 'मकार' मात्रा है। इसके बाद (मकार के बाद) का उच्चार भ्रूमध्य में 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है।

'बिन्दु' की अवस्था क्या है? अकार, उकार एवं मकार (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण) के भेद जहाँ एकीभूत होकर अविभक्त रूप में अवतरित होते हैं, वही धरातल या अवस्था 'बिन्दु' है। ९ योगभूमियों में बिन्दु की भूमि प्रथम भूमि है। यहाँ वेद्य एवं ज्ञेय ही मुख्य है, न कि ज्ञाता। यह चिन्मय धरातल है। चिन्मयानुभूतियों में प्रथम चिन्मय अनुभूति 'बिन्दु' ही है। भावना की दृष्टि से चक्रों के तीन स्तर हैं—

१. सकल भावना : 'सकल चक्र' (अकुल से आज्ञा चक्र तक)।

२. सकल-निष्कल भावना : 'सकल-निष्कल चक्र' (बिन्दु से उन्मनी तक)।

३. निष्कल भावना : 'निष्कल चक्र' (महाबिन्दु)।

'बिन्दु' का उच्चारणकाल 'अर्धमात्रा' है। मन की जो लौकिक अवस्था है, उसके द्वारा एक मात्रा से अर्धमात्रा में पहुँचना अति दुष्कर है। एकाग्रता एवं निरोध की जो सन्धिस्थली है, वही 'अर्धमात्रा' है। मात्राओं के ह्रास का अन्तिम शिखर 'उन्मना' है और वहाँ न नाद है, न अवस्था है, न मन है, न मात्रा है और न ही काल है।

'बिन्दु' पूर्णिमा है, किन्तु यथार्थ पूर्णिमा 'षोडशी' (पञ्चदशी नहीं) है; क्योंकि यह अक्षुण्ण है, घटती-बढ़ती नहीं। बिन्दु से चिदालोक प्रतिबिम्बित है। बिन्दु में १५ कलायें हैं, १६हवीं कला नहीं है। षोडशी 'अमृत कला' है।

'उन्मना' में मन का सन्धान नहीं किया जा सकता। 'समना' तक ही मन है। 'उन्मना' मन की अतीतावस्था है। इसकी मात्रा १/५१२ है। अन्य आचार्यों की दृष्टि में यह मात्रा-हीन है । यहीं शब्दब्रह्म का अन्त होता है । ९ नादों में यही 'नवम नाद' एवं अन्तिम शून्य है ।

१/२५६वीं मात्रा को मन की सूक्ष्मतम मात्रा का उच्चारण माना जाता है। विश्व से समनापर्यन्त सूक्ष्म वर्ण का उच्चारणकाल अर्द्धमात्रा से एक मात्रा का १/५१२ भाग तक है। सूक्ष्मतम काल या कालपरमाणु 'लव' है। 'समना' में मात्र मनन रहता है, मनन का कोई विषय नहीं रहता; लेकिन 'उन्मना' में मनन भी नहीं रहता।

'चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं ततः' के अनुसार 'शक्तेश्चतु:षष्टितमो भागः मात्राभागः' सिद्ध होता है और 'व्यापिका' का मात्राभाग (अष्टाविंशत्युत्तरशततमो भागः) १२८वाँ भाग सिद्ध होता है। इसके ऊर्ध्व-ऊर्ध्व में स्थित अन्य नादों के भागों का मात्राकाल भी इसी आधार पर स्थित है, किन्तु योगिनीहृदय में लिखा गया है कि 'अर्धचन्द्रस्तथाकारः पादमात्रस्तदूर्ध्वके।' अतः इसके अनुसार अर्धचन्द्र आदि का शक्तिपर्यन्त ४ अंश, ८ अंश, १६ अंश आदि भाग-विभाजन द्विगुणित काल-विभाजन सिद्ध होकर 'शक्ति' आदि के पूर्ववर्तियों का द्विगुणांश कालवत्व सिद्ध होता है। इसीलिये 'शक्त्यादीनां च मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी' कहा गया है।

योगिनीहृदय में कहा गया है—

दीपाकारोऽर्धमात्रश्च ललाटे वृत्त इष्यते।
अर्धचन्द्रस्तथाकारः पादमात्रस्तदूर्ध्वके।। (चक्रसङ्केत-१.२९)

अर्धचन्द्र एवं रोधिनी की कलायें— अमृतानन्द के अनुसार दीपाकार, वर्तुलसन्निविष्ट (वृत्तसन्निवेश) भ्रुवों के ऊर्ध्व भाग में अवस्थित एवं अर्धमात्रा वाला (मात्रा के अर्धांश भाग वाला) 'अर्धमात्र' नाद 'बिन्दु' है। अमृतानन्द कहते हैं कि 'अर्धचन्द्र' बिन्दु का अर्धभाग है—

'अर्धचन्द्रो बिन्दोरर्धभागः। तथाकारो दीपाकार एव, पादमात्रो मात्राकालस्य, चतुर्थभागोच्चारणकाल इत्यर्थः। तदूर्ध्वके बिन्दोरूर्ध्वभागे। बिन्दूपरि देशे पादमात्रोच्चारणकालो दीपाकारोऽर्धचन्द्र इति।'

'रोधिनी' = 'ज्योत्स्नाकारा चन्द्रिकासमकान्ति, तदष्टांशा मात्राष्टांशोच्चारणकाला, त्र्यस्रविग्रहा त्रिकोणाकारा रोधिनी।' स्वच्छन्दतन्त्र में भी कहा गया है—

अर्धचन्द्रस्तदूर्ध्वं तु रोधिनी तस्य चोपरि।
ज्योत्स्नाज्योत्स्नावती कान्तिः सुप्रभाविमलाऽपि च।।

अर्धचन्द्रस्थिता ह्येताः कालाः पञ्च प्रकीर्तिताः।
सन्धिनी रोधिनी रोद्धा ज्ञानरोधा तमोपहा।
निरोधिका कलाः पञ्च कथितास्तव सुन्दरि।।

ब्रह्मादिपरमेशानां परमाप्तिनिरोधनात्।
निरोधिकेति सा प्रोक्ता तस्या भेदा वरानने।।

'रोधिनी' का मात्राकाल (उच्चारणकाल) अष्टांश है— 'तदष्टांशा मात्राष्टांशोच्चारणकाला त्र्यस्रविग्रहा त्रिकोणाकारा रोधिनी।' (अष्टांशा द्वात्रिंशल्लवकालाः)

'नादान्त' (अमृतानन्द) 'मात्रा द्वात्रिंशत्तमांशोच्चारणकालो हलाकारादिविशेषितो नादान्त इत्यर्थः।'

नादों का उच्चारणकाल— सेतुबन्ध में भास्कर राय कहते हैं कि 'शक्ति' का

मात्रांश है— 'चतु:षष्टिश्चतु:षष्टितमो मात्रांश:।' इसका काल चतुर्लवात्मक है। 'व्यापिका' का मात्रांश दो लव है। 'समना' का एक लव है। 'उन्मना' का उच्चारणकाल लव का अर्धभाग है— 'व्यापिकाया द्वौ लवौ, समनाया एको लव:, उन्मनायास्तु लवार्धात्मक: काल:। यथा समनाया: कालस्तथैवोन्मनीकाल इत्यर्थ:। मनोन्मनी समनाया एव संज्ञान्तरम्।'

भास्कर राय पुन: कहते हैं कि 'उन्मना' का कोई काल नहीं है— 'ततश्चोन्मनाया इह कालविधिर्नास्त्येव' (सेतुबन्ध)। भास्कर का कथन है कि 'द्विगुणं द्विगुणमिति न वीप्सा, किन्तु शक्तेरूर्ध्वं व्यापिकायां द्विगुणं ततो व्यापिकानन्तरं समनायां द्विगुणमिति प्रत्येकमन्वितं पदद्वयम्, मनोन्मन्या इत्यस्य समनापर्यन्तानामित्यर्थ:।' योगिनीहृदय (१.३४) में भी कहा गया है—

चतु:षष्टिस्तदूर्ध्वं तु द्विगुणं द्विगुणं तत:। शक्त्यादीनां तु मात्रांशो मनोन्मन्यास्तथोन्मनी।।

नाद और वर्ण

प्रश्न— क्या नाद एवं वर्णमाला के वर्ण अभिन्न हैं? क्या इसी दृष्टि से नादों को भी 'वर्ण' कह सकते हैं?

उत्तर— नहीं। भास्कर राय के अनुसार ये ९ नाद ककारादिक वर्णों की भाँति स्पष्टत: उच्चार्य नहीं हैं; प्रत्युत तन्त्री के स्वरों की भाँति श्रूयमाण हैं। इन्हें तन्त्र में 'ध्वनि' कहा गया है; अत: अर्धचन्द्र आदि को 'वर्ण' कहना संगत नहीं है। तालु आदि उच्चारण-स्थानों से ये अभिव्यंग्य नहीं हैं; इसलिये भी ये वर्ण नहीं हैं। 'त्रिषष्टिश्चतु:षष्टिर्वा वर्णा: शम्भुमते मता:' कहा गया है। इस प्रकार यद्यपि ६३, ६४ ध्वनियों को 'वर्ण' कहा गया है, किन्तु इन ९ विशिष्ट ध्वनियों को 'वर्ण' नहीं, 'नाद' कहना ही ठीक है।

बिन्द्वादिक नादों का स्वरूप क्या है? बिन्दु आदि नाद हैं क्या? ये सभी नाद सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम काल से उच्चार्य ध्वनियाँ या वर्ण हैं। भास्कर राय वरिवस्यारहस्य में कहते हैं कि 'बिन्द्वादयो नवापि सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतमकालैरुच्चार्या ध्वनिविशेषा वर्ण-विशेषा वा।'[१]

हृल्लेखा के अवयव—

हृल्लेखायास्स्वरूपन्तु व्योमाग्निर्वामलोचना ।
बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तय:।।

(वरिवस्यारहस्यम्)

हृल्लेखा : 'ह्रीं' के १२ अवयव

ह्	र्	ई	बिन्दु	अर्धचन्द्र	रोधिनी	नाद	नादान्त	शक्ति	व्यापिका	समना	उन्मना
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)	(१०)	(११)	(१२)

१. पूर्वमालिनी एवं उत्तरमालिनी या अक्षमाला की ध्वनियों को तो 'वर्ण' कहना समीचीन है, किन्तु बिन्दु, अर्धचन्द्र आदि ९ के समूह को 'नाद' कहना ही संगत है।

नौ नाद—

१. तुर्यातीत अवस्था के ५ नाद।
२.तुर्यावस्था के ३ नाद।
३.सुषुप्ति का १ नाद = ९ नाद।
बिन्दु से उन्मनापर्यन्त ९ नाद।

९ नाद—

१. उन्मना	४. शक्ति	७. रोधिनी
२. समना	५. नादान्त	८. अर्धचन्द्र
३. व्यापिका	६. नाद	९. बिन्दु

	पञ्चदशी मन्त्रजपचिह्न		
तुर्यातीत	महाबिन्दु	↓ ○	
तुर्यातीतावस्था	उन्मनी	I ○◡	
	समना	○ | ○	
	व्यापिका	▽◡ ○	
	शक्ति	I ○○	
	नादान्त	○/○	
तुर्यावस्था	नाद	○|○	
	रोधिनी	V◡	
	अर्धचन्द्र	◡	
		पञ्चदशी मन्त्राक्षर	
सुषुप्ति	बिन्दु	○◡ ○	कमल दल
१.चक्र ललाट के मध्य सहस्रार	स्वप्न जागृति	ई र् ह् ◡	↓ ह्रीं १०००
	भूमि विष्णु भारती	ल क स	स क ल
२.भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र		ह्रीं	२
	भूमि ब्रह्मा	ल ह	स्वप्न
३.कण्ठ में विशुद्धि चक्र			१६

नाद के ९ भेद

(बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते)

बिन्दु (१) — अर्धचन्द्र (२) — रोधिनी (३) — नाद (४) — नादान्त (५)

शक्ति (६) — व्यापिका (७) — समना (८) — उन्मना (९)

पञ्चदशी में स्थित वर्ण

प्रथम कूट (१८ वर्ण) — मध्य कूट (२२ वर्ण) — अन्तिम कूट (१८ वर्ण)

= कुल संख्या–५८

प्रथमतृतीयकूटेऽष्टादशवर्णात्मके मध्यकूटं तु चतुरधिकम्।

(भास्कर : वरिवस्यारहस्यम्)

यद्यपि मन्त्रशास्त्र में 'बिन्दु' को छोड़कर केवल ८ की समष्टि को ही 'नाद' कहा गया है, तथापि व्यवहारसौकर्यार्थ भास्कर राय ने बिन्दु को भी ९ नादों में सम्मिलित कर लिया है।

योगिनीहृदय में महात्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र को मेरुसमुद्भूत कहा गया है—

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ।
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते।
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवा।।

मात्रायें	
अकार	१
उकार	२
मकार	३
बिन्दु	१/२
अर्धचन्द्र	१/४
नाद	१/१६
निरोधिनी	१/८
नादान्त	१/३२
शक्ति	१/६४
व्यापिनी	१/१२८
समना	१/१२८
उन्मना	

	विष्णु भारती ब्रह्मा	क स ह	
४.हृदय में अनाहत चक्र			१२
	ई-मिथुन र्-रुद्राणी ह्-रुद्र	ह्रीं	
५.नाभि में मणिपूर चक्र			१०
	भूमि विष्णु	ल ई	
६.लिंग में स्वाधिष्ठान चक्र			०६
	भारती ब्रह्मा	ए क	
७.मूलाधार चक्र			

ॐकार की एकादश कलायें

ॐकार की ११ कलाओं के अनुभव के बाद ही उसके निष्कल अनुभव का उदय होता है। वही परमानुभूति है। ये दोनों अनुभूतियाँ मिलकर ही 'पूर्ण ब्रह्मविद्या' कही जाती हैं।

ॐकार की ग्यारहवीं कला की अनुभूति ही 'महामाया' या 'समना शक्ति' है। यही विशुद्धतम मन का स्वरूप है। इस अवस्था में मननात्मक बोध तो रहता है, किन्तु उसमें कोई विषय नहीं रहता। यहाँ मन्तव्यहीन मनन (अविकल्प) रहता है। इस अविकल्प मन के द्वारा ही इस अविकल्पात्मक शुद्ध मन का परिहार होता है। शुद्ध मन एकाग्रता के उच्च शिखर पर पहुँचते ही समाप्त हो जाता है। (मन का त्याग = जीव के संकुचित ज्ञान का प्रशमन। चिन्मात्र स्थिति। विशुद्ध कैवल्यावस्था = मन की इच्छाहीन अवस्था। फिर भी यह परमपद नहीं है।) पूर्णाहन्ता— विकास के लिए 'परा भक्ति' भी सहायक है,

जो कि भगवान् की नित्यसमवेता, स्वतन्त्रभूता, स्वरूपभूता 'उन्मना' शक्ति की उल्लासात्मिका अभिव्यक्ति है।

'बिन्दु' ईश्वर का वाचक है, ईश्वर है। 'बिन्दु' के ऊपर ही ललाट देश में 'अर्धचन्द्र' और उसके आगे 'निरोधिका' है। निरोधिका कला योगियों के ऊर्ध्व गति की प्रतिबन्धिका है। बिन्दु ज्योति अर्धचन्द्र एवं निरोधिकापर्यन्त व्याप्त है। 'बिन्दु' में ज्ञेय का प्राधान्य है। 'अर्द्धचन्द्र' में ज्ञेय का प्राधान्य अत्यल्प है। 'निरोधिका' में तो ज्ञेयप्राधान्य अत्यल्प मात्रा में भी नहीं है।

'बिन्द्वावरण' प्रथम आवरण है और इसमें तीन सूक्ष्म स्तर हैं। इसके अनन्तर मूल स्रोत ब्रह्मरन्ध्र या शक्तिस्थान की एवं प्रवाहित होकर पहले 'नाद' एवं फिर 'नादान्तभूमि' में पहुँचता है। 'बिन्दुतत्त्व' का ज्ञेयप्राधान्य 'निरोधिका' में शान्त हो जाता है। 'नादभूमि' में समस्त वाचकों या मन्त्रों की अभिन्नता का अनुभव पुष्कल मात्रा में होता है। 'बिन्दु' में वाच्य एवं वाचक का भेद हो जाने पर भी विभिन्न वाचकों के पारस्परिक भेद लुप्त नहीं होते, किन्तु 'नाद' एवं 'नादान्त' में जाकर वे भी लुप्त हो जाते हैं। यहाँ समस्त मन्त्रों की अभिन्नता दृष्टिगत होती है। इस भूमि के अधिष्ठाता 'सदाशिव' हैं। 'नादावरण' में पाँच एवं 'नादान्त' में एक सूक्ष्म स्तर है। 'नादान्त' का सुषुम्णा से सम्बन्ध है। जहाँ नाद का विश्राम होता है, उसी को 'ब्रह्मरन्ध्र' कहते हैं। यही देह का ऊर्ध्व छिद्र है। इसका भेदन अत्यन्त कठिन है। मूर्धा के मध्यदेश में 'शक्ति' का स्थान है। यहाँ श्वास-प्रश्वास के या प्राणायाम के संगम का कारण एक अनिर्वचनीय स्पर्शमय तीव्र आनन्द की अनुभूति है। यहाँ सृष्टि-प्रलय का द्वन्द्व नहीं है। यहाँ दिन-रात एकाकार है। 'शक्त्यावरण' में 'परा शक्ति' का भी एक स्तर है और इसका भेदन करके ही योगी 'व्यापिनी' (महाशून्य) में प्रवेश कर पाते हैं। यहाँ प्राणों का सञ्चरण नहीं है। यहाँ सुषुम्ना की क्रिया भी नहीं है। यहाँ महादिन भी नहीं है। यहाँ कलनात्मक काल साम्य रूप से अवस्थित है। 'महाशून्य' भी ॐकार की ही एक 'कला' है। इसमें पाँच अवान्तर कलायें हैं। 'महाशून्य' के बाद की अवस्था में 'महामाया' का साक्षात्कार होता है और इसके अनन्तर ही 'निष्कल पद' है।

'बिन्दु' में ज्ञेय और ज्ञान (वाच्य एवं वाचक) अभिन्न रूप में ज्योति के आकार में स्फुरित होते हैं।

प्रणव की प्राथमिक कलाओं में अ, उ, एवं म —इन तीन कलाओं के केन्द्र हृदय, कण्ठ एवं तालुमूल हैं। तालु तो 'मायाग्रन्थि' का स्थान है और हृदय तथा कण्ठ भी ग्रन्थिस्थान है।

१. 'बिन्दु' से 'समना' तक मात्रांश को जोड़ देने पर १ मात्रा होती है।

२. मायाजगत् में मन्त्र की मात्रायें ६ होती हैं।

३. मायातीत पद में मन्त्र की मात्रा १ होती है।

४. अकार की मात्रा १, उकार की मात्रा २ एवं मकार की मात्रा ३= सब मिलकर ६ मात्रायें हैं।

५. भागांश का विवरण—

अ, उ, म, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना = ११ कलायें।

नव नाद →

१.बिन्दु	—	१/२	मात्रा
२.अर्धचन्द्र	—	१/४	मात्रा
३.निरोधिनी	—	१/८	मात्रा
४.नाद	—	१/१६	मात्रा
५.नादान्त	—	१/३२	मात्रा
६.शक्ति	—	१/६४	मात्रा
७.व्यापिनी	—	१/१२८	मात्रा
८.समना	—	१/१२८	मात्रा
९.उन्मना (कालातीत है; अत: मात्रातीत भी है।)			

प्राथमिक तीन भूमियाँ : अ, उ, म— भ्रूमध्य 'बिन्दुग्रन्थि' का स्थान है, जहाँ ज्योति के दर्शन होते हैं। यह ज्योति अ, उ, एवं म के मन्थन से उद्भूत उन्हीं का सारभूत तेज है। इन तीनों मात्राओं में जगत् के समस्त द्वैत, भेद एवं पृथत्त्व समाहित हैं। 'बिन्दु' उनका अविभक्त ज्ञानात्मक स्वरूप है। समस्त मायिक जगत् तो केवल 'अ, उ, म' कलाओं में ही है। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, स्थूल जगत्, पुर्यष्टक (लिंगशरीर) आदि सभी इन तीन कलाओं में ही प्रतिष्ठित हैं। १४ भुवनान्तर्गत ब्रह्माण्ड भी इसके भीतर है। मायाग्रन्थि का भेदन होने पर मायिक जगत् एवं माया का भी भेदन हो जाता है। इस अवस्था में द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन तीनों पृथक् हैं। माया का कार्य ही है— 'भेददर्शन'। 'बिन्दु' में अभेद के दर्शन होते हैं। यहाँ अनन्त भेद एवं अनन्त वैचित्र्य एकीभूत (अविभक्त) रूप में दृष्टिगत होता है। ज्योति-दर्शन का अर्थ है— 'अनन्त ज्ञेय पदार्थों का एक ज्ञान के आकार में आकारित होकर (बिन्दु पद में) दृष्टिगत होना'। यही ज्योतिस्वरूप बिन्दु 'ईश्वर'तत्त्व की अधिष्ठानभूमि है। ईश्वर 'योगीश्वर' है। 'बिन्दुदर्शन' अर्थात् अखिल स्थूल प्रपञ्च का साक्षात्कार। 'बिन्दुदर्शन' → त्रिकालदर्शित्व। बिन्दुसिद्धि = तृतीय नेत्र, दिव्य चक्षु का उन्मीलन। 'बिन्दु' से 'समना'पर्यन्त आठ पद 'आज्ञाचक्र' से 'सहस्रार' की कर्णिका तक प्रसृत हैं।

स्वच्छन्दतन्त्र (४ पटल) में प्रणव के अंग इस प्रकार बताये गये हैं—

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्द्धचन्द्रो निरोधी च नादो नादान्त एव च।।२२५।।

कौण्डिली व्यापिनी शक्ति: समनैकादशी स्मृता।
उन्मना च ततोऽतीता तदतीतं निरामयम्।।२२६।।

अर्धचन्द्र की कलायें— ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नावती, सुप्रभा, विमला, शिवा।

निरोधिका की कलायें— सन्धनी, रोधिनी, रौद्री, ज्ञानबोधा, तमोपहा।

नाद की कलायें— इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका।

नादान्त की कलायें— ऊर्ध्वगा।

शक्ति की कलायें— सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, अमृता, अमृतसम्भवा, व्यापिनी।

व्यापिनी की कलायें— व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, अनाथा।

समना की कलायें— सर्वज्ञा, सर्वगा, दुर्गा, सवना, स्पृहणा एवं धृति।

अकार की कलायें— रजा, रक्षा, रति, पाल्या, काम्या, तृष्णा, मति, क्रिया, वृद्धि, माया, नाड़ी, भ्रामिणी, मोहिनी।

उकार की कलायें— तम मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया, भया, जरा।

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्ति ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका।
ततोऽर्द्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत्परा ततः।। (शारदातिलक)

शब्दब्रह्ममयी कुण्डलिनी → ध्वनि → नाद → निरोधिका → अर्द्धेन्दु; फिर बिन्दु → परा → पश्यन्ती → मध्यमा → वैखरी।

प्रणव की मात्रायें— पद्मपाद (प्रपञ्चसारविवरण) के अनुसार प्रणव की निम्न सात मात्रायें होती हैं—

प्रणव

अकार	उकार	मकार	बिन्दु	नाद	शक्ति	शान्त
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)

प्रणव के अंग (कलायें)— प्रणव के निम्न बारह (१२) अंग होते हैं—

१. अकार	४. बिन्दु	७. नाद	१०. व्यापिनी
२. उकार	५. अर्धचन्द्र	८. नादान्त	११. समना
३. मकार	६. रोधिनी	९. शक्ति	१२. उन्मना

ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती चैव सुप्रभा विमला शिवा।
अर्द्धचन्द्रकला ह्येताः सर्वज्ञपदसंस्थिताः।।३७।।

रुन्धनी रोधनी रौद्री ज्ञानबोधा तमोपहा।
निरोधिका कला ह्येताः सर्वदेवनिरोधिकाः।।३९।।
इन्धिका दीपिका चैव रोचिका मोचिका तथा।।४०।।
ऊर्ध्वगामिन्य इत्येताः कलाः नादसमुद्भवाः।।४१।।
सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च ह्यमृतामृतसम्भवा।।४२।।
व्यापिनी चैव विख्याता शक्तितत्त्वसमाश्रिताः।। (नेत्रतन्त्र)

* * * * * * * * *

व्यापिनी व्योमरूपा च ह्यनन्ता नाथसंज्ञिता।
अनाश्रिता महेशानि व्यापिन्यास्तु कला: स्मृता:।।

सर्वज्ञा सर्वगा दुर्गा सवना स्पृहणा धृति:।
समना चेति विख्याता एता: शिवकला: स्मृता:।। (नेत्रतन्त्र)

जो 'एक' है (एकाग्र मन की अवस्था है। एकाग्र मन एक मात्रा में अवस्थित रहता है), वह एक से दो रूपों में विभक्त होता है और इस प्रकार एक मात्रा से अर्ध मात्रा का उन्नयन होता है। एक में से दो अर्धमात्राओं का आविर्भाव होता है और उसके बाद लगातार नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी आदि सभी में से अपनी अर्धमात्रा आविर्भूत होती है।

'उन्मना' क्या है? मन का अभाव। एकमात्रिक मन से अर्द्धमात्र मन, चतुर्थांशमात्रिक मन, षोडशांशमात्रिक मन, द्वित्रिंशतांशमात्रिक मन, चतु:षष्टांशमात्रिक मन— सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मनों की अवस्थायें हैं। मन का वह स्तर, जिसके आगे मन की यात्रा पूर्णतया रुक जाती है, वह है— १/५१२वाँ मात्रांश।

१/५१२वें मात्रांश के बाद 'उन्मना' आ जाती है। अर्द्धमात्रा को 'योगमाया' कहा गया है। उपासना की दृष्टि से 'श्रीचक्र' में प्रविष्ट होकर तत्त्वातीतावस्था में चलने के मार्ग के तीन चरण हैं— १. चतुष्कोण से त्रिकोण तक, २. बिन्दु से उन्मना एवं ३. महाबिन्दु।

मात्राओं के विवरण का सारांश

१. काल का परमाणु 'लव' है।

२. २५६ लवों से एक 'मात्रा' का गठन होता है। २५६ लव = १ मात्रा।

३. एक मात्रा लघु स्वर का उच्चारण-काल है।

४. योगिनीहृदय के अनुसार ५१२ लवों से एक मात्रा निर्मित होती है।

५. 'बिन्दु' का उच्चारणकाल अर्द्धमात्रा है।

६. इसके अनन्तर प्रत्येक 'नाद' की मात्रा पूर्ववर्ती नाद की आधी-आधी होती जाती है अर्थात् प्रत्येक का काल आधा-आधा होता जाता है।

७. 'उन्मना' को एक लव मानने पर 'बिन्दु' में २५६ लव या अर्धमात्रा होती है।

८. भास्कर के मतानुसार 'उन्मना' में काल का परिच्छेद नहीं है, 'समना' में ही काल का आरम्भ है।

९. योगिनीहृदय के मतानुसार 'उन्मना' से काल का आरम्भ होता है और 'उन्मना' के बाद काल नहीं है।

१०. किसी-किसी तन्त्र के मत से 'बिन्दु' की मात्रा १/२ है। 'अर्धचन्द्र' की मात्रा

१/४ है। 'निरोधिका' की मात्रा १/८ है। 'नाद' की मात्रा १/१६ है। 'नादान्त' तो नाद का ही पल्लवित रूप है।

११. 'शक्ति' की मात्रा १/३२ है। 'व्यापिनी' की मात्रा १/६४ है। 'समना' की मात्रा १/६४ है।

१२. 'उन्मना' अमात्र एवं कालास्पृष्ट है। इस मत में 'समना' + व्यापिनी = १/३२ मात्रायें हैं। उसके साथ 'शक्ति' का संयोग होने पर १/३२ + १/३२ (या १/१६) है। उसके साथ 'नाद' का योग होने से मात्रा हो जायेगी— १/८। उसके साथ 'निरोधिका' का योग होने से मात्रा हो जायेगी— १/४। 'अर्द्धचन्द्र' का योग होने से मात्रा हो जायेगी— १/२ और उसके साथ 'बिन्दु' की १/२ मात्रा का योग होने पर मात्रा की संख्या हो जायेगी— एक मात्रा।

इस मात्रा को छोड़कर 'प्रणव' के 'अकार' की मात्रा १, 'उकार' की मात्रा २ एवं 'मकार' की मात्रा ३ हो जायेगी तथा सभी मात्राओं का योग हो जायेगा— ६।

ग्रन्थ-सन्दर्भ

वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्यविद्याओं में अन्यतम, सिद्धियों के रत्नाकर एवं मोक्ष के अन्यतम साधन 'श्रीविद्या' में निहित 'श्री' शब्द शकार, रकार, ईकार एवं बिन्दु का कल्पवृक्ष है। यही 'षोडशी कला', भगवती त्रिपुरसुन्दरी, दश महाविद्याओं में षोडशी महाविद्या या श्रीविद्या भी है। त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी, सुभगा, बालत्रिपुरसुन्दरी आदि नामों से इसी की उपासना की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्करराय, पुण्यानन्दनाथ आदि इसके परमोपासक रहे हैं। पौराणिक दृष्टि से इसके द्वादश सम्प्रदाय एवं द्वादश उपासक हैं, जिसका यन्त्र 'श्रीयन्त्र' कहलाता है। महाविद्याओं के दो कुलों– कालीकुल और श्रीकुल में से श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बद्ध है। श्रीयन्त्र के मुख्यत: तीन सम्प्रदाय हैं– हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। श्रीयन्त्र के अन्तरतम में स्थित 'बिन्दु' ही है– भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, आसन एवं धाम और यही है– ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शक्त्यण्ड का उद्भव-केन्द्र। सृष्टि के रेखात्मक चित्र के साथ-साथ अनन्त देवी-देवताओं, शक्तियों, रचनास्तरों, लोकों तथा आध्यात्मिक सूक्ष्ममण्डलों का निवासस्थान भी 'श्रीयन्त्र' ही है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना का सर्वोत्तम भाव दिव्यभाव होता है।

अद्वैतवादी दर्शन में विश्वास रखने वाले श्रीसम्प्रदाय की अनुभूति एवं काम्य है– 'अहं देवी न चान्योऽस्मि'। श्रीविद्या-साधनापथ में भक्ति, ज्ञान एवं योग– तीनों ही स्वीकृत हैं। षट्चक्रवेधन-द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत कर उसके वियुक्त प्रियतम 'अकुल' से उसका सम्मिलन कराना भी एक साधन-पथ है तथा 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' के द्वारा विश्वात्मा का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधन-पथ है। ये दोनों ही पथ श्रीविद्या में स्वीकृत हैं। श्रीविद्या की साधना में 'बहिर्याग' से उत्कृष्टतर 'अन्तर्याग' का ही आत्मीकरण माना जाता है और महात्रिपुरसुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्वमय भी। यथार्थत: तो वे 'कामेश्वर' भी हैं और 'कामेश्वरी' भी।

बैन्दवस्थान-स्थित सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा ही आदर्श पूजा है। बैन्दवपुर ही 'चिन्तामणि-गृह' है। सामयिकों के मत में इसी चिन्तामणि गृह में या सहस्रदल कमल में भगवती की पूजा की जानी चाहिये; न कि बाह्य पीठ आदि पर।

अङ्ग-उपाङ्गसहित श्रीविद्या और उसकी साधना का प्रतिपादक प्रकृत **श्रीविद्या-साधना** ग्रन्थ तज्जिज्ञासुओं एवं समुपासकों के लिये अवश्यमेव पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी